# भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दी साहित्य
# (1920-1947)

डी०फिल् उपाधि

हेतु

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

निर्देशक
डा० ललित जोशी

प्रस्तुतकर्ता
शैलेश कुमार उपाध्याय

मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उ०प्र०)

2000

# प्रस्तावना

"भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दी साहित्य १९२०–१९४७" विषय पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करना निश्चित रूप से एक चुनौतीपूर्ण कार्य रहा क्योकि इतिहास लेखन की परम्परा मे साहित्य, भल ही उसका स्वरूप अतियथार्थवादी ही क्यो न हो, हमेशा से अस्पृश्य जैसा रहा है पर मेरी मान्यता ऐसी कभी नही रही। इसका आशय यह नही है कि साहित्य को इतिहास का विद्यार्थी ऑख बन्द करके इतिहास का स्रोत स्वीकार कर ले, बल्कि मेरी मान्यता के पक्ष मे यह तर्क रहा है कि साहित्य भी एक प्रबुद्ध समुदाय की समकालीन समाज को अपने तरीके से देखने की तथा उसे समस्या मुक्त करने की कोशिश है। भले ही उनकी दृष्टि पर साहित्यिक नियम, शैली और युगीन परिवेश के दबाव कार्य कर रहे हो। अत इन नियमो और दबावो को समझते हुए इतिहास के अन्य स्रोत सम्बन्धी साधनो की तरह साहित्य का भी उपयोग किया जा सकता है। हमे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि साहित्य मानवीय समाज की सवेदनशील प्रस्तुति है और यदि इतिहास सवेदनशील मानव के द्वारा सवेदनशील मानव के लिए लिखा जा रहा है तो साहित्य के महत्व को खारिज नही किया जा सकता। यद्यपि मेरा प्रयास साहित्य के आधार पर इतिहास लिखने का नही बल्कि यह स्थापित करना है कि जिन मुद्दो से समकालीन समाज और राष्ट्र सघर्ष कर रहा था उन मुद्दो पर हिन्दी साहित्यकारो की दृष्टि क्या थी?

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय विभिन्न साहित्यकारो ने अपनी सीमाओ, युगीन दबावो अपनी बौद्धिक क्षमता और पूर्वाग्रहो के बीच जो साहित्य प्रस्तुत किया है और देश के सम्पूर्ण हिन्दी भाषी नागरिको को राष्ट्र सेवा के लिए प्रबुद्ध करते हुए प्रेरित किया है, वह निश्चित रूप से काफी महत्वपर्ण है। मैने समकालीन साहित्यिक उपादानो के अध्ययन क्रम मे यह पाया कि समकालीन समाज विशुद्वत साम्राज्यवाद के बहुआयामी शिकजे से त्रस्त भारतीयजन की मुक्ति के लिए ही नही जद्दोजहद कर रहा था वरन् लम्बे आर्थिक शोषण, आर्थिक अविकास से उत्पन्न पिछडेपन एव सामाजिक, सास्कृतिक विद्रूपताओ से मुक्ति के लिए भी प्रयास कर रहा था।

समकालीन समाज मे वैचारिक द्वद्व भी कम नही रहे। पाश्चात्य सस्कृति की भौतिक प्रगति के चकाचौध जहॉ उन्हे आकर्षित करती थी वही भारत की समृद्ध वैचारिक एव अध्यात्मिक परम्परा हिन्दी साहित्यकारो को उनके गौरवगान के लिए बाध्य करती थी। साथ ही गॉधीजी का भारतीय राजनीतिक क्षितिज पर उदय ने देश की जनता को साम्राज्यवादी शक्तियो के खिलाफ उभरती हिसा पर अकुश लगाते हुए सत्याग्रह, स्वदेशी, असहयोग के लिए प्रेरित करते हुए उनके हाथ मे नवीन अस्त्र दिये।

यद्यपि इस अस्त्र की सफलता पर शकाए बनी रही। फलत क्रान्तिकारी और हिसात्मक गतिविधियॉ नेतृत्व के असहयोग के बावजूद जारी रही। इन सब के बीच साहित्यकारो ने समन्वयकारी दृष्टि अपनाते हुए जनता को प्रशिक्षित किया। गॉधीवाद की लहर मे डुबकी लगाते हुए भी वे आवश्यकतानुरूप तटस्थ भी रहे और रूस की समाजवादी क्रान्ति से भी प्रेरणा ली।

साहित्य समाज की पीडाओ और समस्याओ का उस रूप मे जर्नल नही होता कि वह समकालीन समाज मे उपस्थित सभी पीडाओ और समस्याओ को तुरन्त–तुरन्त स्थान देता चले। मृणाल पाण्डे ने हाल ही मे एक भेटवार्ता मे एक बात कही थी उसका आशय यह था कि साहित्य समस्याओ के चित्रण मे कभी–कभी उस डायनासोर की तरह होता है जिसके बारे मे यह कहा जाता है कि उसकी पूँछ आज दबने पर दर्द उसे दो वर्ष बाद होता है। साहित्य मे यह अवधि कभी–कभी इससे कम और कभी इससे कई गुना ज्यादा होती है। यदि ऐसा न होता तो राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तर्विरोधो और विभाजन की त्रासदियो का चित्रण समकालीन साहित्य मे न होता। खुशवन्त सिह की पुस्तक 'ट्रेन टू पाकिस्तान' गिरिराज किशोर की 'पहला गिरिमिटिया' और कमलाकान्त त्रिपाठी का 'पाहीघर' इसके ज्वलन्त उदाहरण है। अत· हमने साहित्य को जर्नल की तरह नहीं देखा है बल्कि अध्ययन सुविधा के लिए एक विशेषकाल को आधार मानते हुए उन मुद्दो की खोज की जो समकालीन समाज मे चर्चा के केन्द्र बिन्दु थे।

स्वय की साहित्य मे रूचि शोध के पूर्व मात्र एक सामान्य पाठक के रूप मे रही कभी यह मेरा आधिकारिक विषय के रूप मे नहीं रहा यद्यपि जब मेरे शोध निर्देशक डा० ललित जोशी ने यह शीर्षक सुझाया और मेरी सहमति चाही तो मै असहमत न हो सका। मेरे शोध कार्य के पूर्ण होने मे उनके सहयोग ने प्रत्येक स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शोध कार्य के सन्दर्भ मे निर्देशक और शोधार्थी के परस्पर सम्बन्धो को लेकर फैली हुई तमाम भ्रान्तियॉ मेरे लिये अन्त तक भ्रान्तियॉ ही रही वैसा व्यवहारिक अनुभव मुझे नही हुआ। शोध कार्य के सम्पूर्ण कार्यकाल मे विभाग की अध्यक्ष रही डा० श्रीमती रेखा जोशी तथा प्रो० चन्द्र प्रकाश झा, प्रो० एन०आर० फारूकी, श्री वी०सी० पाडे, डा० हेरम्ब चतुर्वेदी, श्री योगेश्वर तिवारी और मध्यकालीन आधुनिक इतिहास विभाग की पूरी टीम से मुझे जो मार्गदर्शन और सहयोग मिला उसके लिए मै उनके प्रति आभार प्रगट करता हूँ।

मेरे शोध के मूल स्रोत चूँकि हिन्दी साहित्य के ग्रन्थ ही रहे अत हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के सग्राहलय एव पुस्तकालय मे वृहद् पैमाने मे उपलब्ध ग्रन्थ, पत्रिकाए एव पाण्डुलुपियो का उपयोग मैने किया। इसके अलावा भारतीय भवन इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालय, पब्लिक लाइब्रेरी इलाहाबाद, गोविन्द बल्लभ पत समाजिक विज्ञान सस्थान इलाहाबाद, काशी हिन्दू

विश्वविद्यालय के पुस्तकालय एव काशी नागरी प्रचारणी सभा से मैने स्रोत सामग्री का इस्तेमाल किया। इसके अलावा कथाकार शेखर जोशी, प्रो० रामकृष्णमणि त्रिपाठी, डा० किशोरी लाल गुप्त, साहित्यकार रामदेव शुक्ल, डा० राजीव मोहन श्रीवास्तव आदि विद्वानो के साक्षात्कार एव उनके निजी पुस्तकालयो का भी उपयोग मैने किया।

माता श्रीमती सावित्री उपाध्याय, पिता श्री विष्णु कुमार उपाध्याय और परिवार के सदस्यो मे डा० राजीव कुमार उपाध्याय, डा० ओम प्रकाश उपाध्याय और श्रीमती सुधा उपाध्याय, श्री अशोक द्विवेदी, श्री चन्द्रदेव त्रिपाठी तथा भाई श्री अखिलेश कुमार उपाध्याय के सहयोग और विमर्श साथ ही मित्रो मे अनिल सिह, मनीष, राजेश सिह, अमिता, सजय पाठक, सदीप वर्मा, अशोक दूबे एव प्रकाश चन्द्र तिवारी के उत्साहवर्धक साहचर्य ने अवसाद के क्षणो मे मुक्त करते हुए सतत कार्य करने की प्रेरणा दी।

अन्त मे श्रीमती ममता जोशी, अनुभव द्विवेदी, गुजन द्विवेदी, सरिता उपाध्याय, कश्यप किशोर मिश्र, जय प्रकाश त्रिपाठी, विनय मिश्र, श्रीमती किरन पाठक का समर्पित परिश्रमपूर्ण सहयोग शोध परिस्कार मे सहायक रहा। इन सभी के प्रति आभार प्रगट करता हूँ।

Shailesh 9.4.2000
शैलेश कुमार उपाध्याय

# विषय सूची

# : प्र क्कथन :

## साहित्य और इतिहास लेखः

सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि इतिहास लेखन मे साहित्यिक स्रोतो की उपेक्षा की जाती रही है। इतिहास – वृतातो की रचना के लिए परम्परागत स्रोत सामग्री को निश्शेष करने के बाद ही इतिहासकार साहित्यिक स्रोतो पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करता है, परन्तु विगत दो दशको मे यूरोपीय तथा अमेरिकी महाद्वीपो मे 'लिटरेरी हिस्ट्री के क्षेत्र मे होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनो से इतिहासकारो मे स्रोत सामग्री एव उसके उपयोग को लेकर अधिक मथन हुआ है।[1] आज यह भी स्वीकार किया जाने लगा है कि साहित्यिक स्रोतो के प्रयोगो से इतिहासकार को अतीत मे झॉकने के लिए एक ऐसी खिडकी उपलब्ध हो जाती है जिसे परम्परागत स्रोतो से प्राप्त नही किया जा सकता।[2]

साहित्य को उपयुक्त स्रोत सामग्री न स्वीकार किए जाने का कारण रहा है उसे फतासी जगत का अग मानना। यह इसलिए भी क्योकि फतासी अथवा कल्पना प्रधान रचनाऍ यथार्थ से दूर होती है जबकि इतिहास अतीत का यथार्थवादी चित्रण है। साहित्य पर अन्य आरोप यह है कि वह शिल्प प्रधान है। दूसरे शब्दो मे साहित्य कर्म की 'एसथेटिक्स' उसे कला के निकट ले जाती है न कि इतिहास लेखन के। यह कहा जाता है कि साहित्य कर्म और इतिहास लेखन, दो अलग–अलग विधाओ से नियन्त्रित है अतएव इतिहासकारो को साहित्यिक स्रोतो को इस्तेमाल करते समय पूरी सतर्कता बरतनी चाहिये। यथासभव उन्हे साहित्यिक स्रोतो की पुष्टि इतिहास के ठोस स्रोतो के आधार पर करनी चाहिये।

साहित्य के प्रति इतिहासकारो का दुराग्रह चाहे कुछ हद तक ही क्यो न सही या अपरोक्ष रूप से क्यो न हो, प्रबोधन के युग मे पनपने वाली प्रत्यक्षवादी या विज्ञानवादी विचारधाराओ का परिणम था। प्रबोधन युग की बौद्धिक धरोहर से लाभान्वित होकर जब जर्मनी और ब्रिटेन ने उन्नीसवी शताब्दी मे पदार्पण किया तो नये इतिहास के निर्माण की मॉग प्रबल हुई। जर्मनी तथा ब्रिटेन के विश्वविद्यालयो मे प्रत्यक्षवादी इतिहास लेखन की बुनियाद इसी दौर मे डाली गई। इतिहास और मिथक मे भेद किया जाने लगा तथा आज जिसे ऐतिहासिक तथ्य कहा जाता है उसका स्वरूप लगभग सुनिश्चित हो गया।

कालिगवुड के अनुसार प्रत्यक्षवाद ने तथ्य उसे माना जो प्रत्यक्ष मे उपस्थित हो तथा जिसकी अनुभूति इन्द्रियो द्वारा की जा सके।[3] प्रत्यक्षवादी स्थापना का इतिहास लेख पर नकारात्मक प्रभाव पडा

क्योकि "रॉके तथा फ्रीमैन जेसे इतिहासकारो न कला धर्मविज्ञान, आदि के इतिहास की उपेक्षा की"[4] फलस्वरूप इतिहास कवल राजनीतिक घटनाओं का लेखा–जाखा बन कर रह गया।

कालिगवुड इतिहासकार की तुलना उपन्यासकार से करते है। दोनो का सम्बन्ध कल्पना से हे और दोनो ऐसे दृश्य की रचना करते है जो घटनाओ के वृतात परिस्थितियो की विवेचना उद्देश्यो की अभिव्यक्ति और पात्र विश्लेषण पर निर्भर करता है।[5] लेकिन इतिहासकार को एक अन्य दायित्व का निर्वाह भी करना पडता है जो उन घटनाओ को प्रतिबिम्वित करता है जो वास्तव मे घटी है।[6] इस प्रकार कालिगवुड प्रत्यक्षवाद की आलोचना करते हुए स्वय उसके शिकार हो जाते है जब वह "वास्तव मे घटी घटनाओ" का उल्लेख करते है। यह जर्मन प्रत्यक्षवाद के सस्थापक रॉके की परियोजना का उद्देश्य भी था। पर कालिगवुड को इस बात का श्रेय मिलना चाहिये कि उन्होने राजनीतिक इतिहास की परम्परा की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे तर्कपूर्ण जानकारी दी।

प्रत्यक्षवाद के सरुक्षित घेरे मे राजनैतिक इतिहास को समृद्ध होने का पूरा अवसर मिला लेकिन विगत वर्षों मे सामाजिक इतिहासकारो ने इस घेरे को भेदकर वैकल्पिक स्रोत सामग्री के प्रयोग तथा परम्परागत स्रोतो की पुनर्व्याख्या पर बल दिया है। लिटरेरी थ्योरी, भाषा विज्ञान एव नृविज्ञान द्वारा विकसित की गई नवीन तकनीको से लैस शोधकर्ताओ ने अद्भुत सूझ–बूझ का परिचय दिया है।

'न्यू हिस्टारीसिजम' के नाम से विकसित यह नई विधा पाठ/ रचना को मौजूदा ऐतिहासिक और सास्कृतिक परिस्थितियो का उत्पाद मानती है।[7] न्यू हिस्टारीसिजम लुई अल्थूजर, माइकल फूको, मिखाइल बाख्तिन, और क्लीफर्ड गीयर्टज जैसे दार्शनिको और समाजशास्त्रियो के बौद्धिक मथन का परिणाम है। न्यू हिस्टारीसिजम स्वीकार करता है कि {१} विचारधारा पाठक को डिस्कोर्स अर्थात शासक वर्ग के जीतो का अधीन बना देती है। {अल्थूजर}। {२} किसी भी युग मे विद्यमान शक्ति सम्बन्ध उसमे उपजे डिस्कोर्स के विचारो, पारस्परिक द्वद्वो और सोपानो के आधार को बनात है तथा यह सुनिश्चित करते है कि उस युग मे ज्ञान और सत्य की परिकल्पना क्या है (फूको)। {३} पठन के दौरान एक ही पाठक परस्पर विरोधी स्वरो को मुखरित करता है {बाख्तिन}। {४} सस्कृति स्वय को चिन्हित करने वाले अनेक जोडो (सेट्स) से मिलकर बनती है। पाठ की धनी विवेचना को भेद कर ही उसमे निहित बिम्बो, चितन की पद्धतियो, प्रचलित दस्तूरा (जो सस्कृति और सास्कृतिक उत्पादो को अर्थ प्रदान करते है) को मुखरित किया जा सकता है। कुल मिलाकर न्यू हिस्टारीसिजम को पाठ की ऐतिहासिकता तथा इतिहास की पाठ्यता (Textuality) के मध्य उभरने वाली पारस्परिक चिता भी कहा जा सकता है।[8] यह चिता लिटरेरी या साहित्यिक पाठो/ रचनाओ मे कुछ अधिक है क्योंकि

साहित्यिक पाठो मे 'दमन', 'विस्थापन' स्थान लेने के सभी तत्व मौजूद रहते है, चाहे लेखक को उनका आभास हो या न हो इसलिए कुछ हद तक पाठ का अध्ययन एक राजनैतिक क्रिया है, जिसका उद्देश्य पाठ मे छिपे तत्वो का उद्घाटित करना है।[9]

आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन मे साहित्य को स्रोत सामग्री के रूप मे प्रयोग करने की परम्परा नवीन है। सामान्यत साहित्यिक स्रोतो का उपयोग तभी किया जाता है जब किसी घटना/ परिदृश्य पर परम्परागत स्रोत मौन हो। या फिर साहित्यिक स्रोतो का इस्तेमाल रिक्त स्थानो की पूर्ति के लिए अथवा पाद टिप्पणियो के रूप मे किया जाता है। साहित्यिक स्रोतो को परम्परागत स्रोतो की दासता से मुक्त कराने और प्रतिष्ठा दिलाने की प्रथा नवीन है।

सुधीर चन्द्र, पार्थ चटर्जी, सुमित सरकार तथा सबआल्टर्न स्टडीज से जुडे शोधकर्ताओ ने अपनी–अपनी रचनाओ मे अलग–अलग विधाओ का प्रयोग करते हुए अद्भुत नवोन्मेषता का परिचय दिया है।[10] इन नवीन कृतियो से यह विदित होता है कि आज परम्परागत स्रोतो (अर्थात शासक वर्ग द्वारा तैयार किए गये स्रोतो) के पुर्नपाठ की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि नई स्रोत सामग्री (जो शासित वर्गो द्वारा रचित हो) के खोज और पुर्नव्याख्या की। औपनिवेशिक काल मे प्राच्यवाद से प्रभावित शासकीय कर्मचारी, धर्म प्रचारक और सामान्य लेखक भारत को अधकारमय प्रदेश के रूप मे स्थापित कर चुके थे। औपनिवेशिक काल को नये युग (आधुनिक) अथवा नवजागरण के काल के रूप मे प्रतिष्ठित किया गया। तथाकथित नवजागरण के इस युग मे गजेटियरो, मानचित्रो, शासकीय इतिहासो, जनगणनाओ तथा अन्य वृतातो की रचना की गई। 'आधिकारिक' कही जाने वाली सूचनाओ से परिपूर्ण यह वृत्तात अच्छेशासन, शान्ति और सुधार जैसे आदर्शों की आड मे सरकारी 'वर्चस्व' और नियन्त्रण को बढाने के साधन बने। इनमे भारतीय इतिहास के उन्ही पक्षो को आलोकित किया गया जिनमे ब्रिटिश सरकार को दिलचस्पी थी। साथ ही यह साहित्य तत्कालीन साम्राज्य विस्तार, प्रजातीय दुराग्रहो और प्राच्यवादी कल्पनाओ से मुक्त नही था। औपनिवेशिक काल तथा बाद मे उत्तर औपनिवेशिक काल मे भी इन्ही वृत्तान्तो के आधार पर इतिहास पाठ्य पुस्तको मे लिखा गया। स्पष्ट है कि इन वृत्तान्तो मे तथ्य कहलाई जाने वाली जानकारी भी लेखक/ पाठ की माध्यमिकता से मुक्त नही है।[11] ऐसी स्थिति मे केवल साहित्य को फतासी लोक का दस्तावेज करार कर इतिहास लेखन के लिए अनुपयुक्त बताना कहाँ तक न्यायोचित है?

अपने शोध प्रबन्ध मे मैने आधारभूत विचारधाराओ (अल्थूजर, ग्रामशी) परस्परविरोधी स्वरो (बाख्तिन) तथा रचनाओ मे अन्तर्निहित शक्ति सम्बन्धो (फूको) को निरन्तर खोजने और सन्दर्भित करने

का प्रयास किया हे। मेरा मानना है कि ऐसा करना उतना ही अनिवार्य है जितना की पाठ की सापेक्षता को बर्करार रखना। मै देरिदा और अन्य विचारकों क उस तर्क से असहमत हूँ जो पाठ तथा पाठक को सदर्भ से अलग कर पठन को स्वायत्त क्रिया मानता है। नृविज्ञान शास्त्री लेवी स्ट्रास ने ऐसा करने के प्रति हमे सचेत किया है।[१२]

भारतेन्दु, निराला, प्रसाद, गुप्त, प्रेमचन्द इत्यादि की रचनाओ के पठन के बाद मुझे न केवल उनकी अद्वितीय शिल्प सज्जा का बोध हुआ बल्कि उन्हे शक्ति डिस्कोर्स के दस्तावेजो के रूप मे देखने का मौका मिला है। यह रचनाएँ कलात्मक होते हुए भी राजनैतिक दस्तावेजो से कम नही है क्योकि उनमे २०वी शताब्दी के भारत के प्रथम पॉच दशको के उच्च जातीय/ उच्चवर्गीय/ साम्प्रदायिक तथा अन्य आग्रह पूरी तरह से समाहित है। कभी–कभी एक ही रचना मे अनेक परस्पर विरोधी स्थापनाएँ भी मौजूद रहती रही है। तब यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि रचना के उपनिवेशवाद विरोधी तेवर होते हुए भी क्यो उच्चजातीय आग्रह से मुक्त नही हो पा रही है। तब रचनाकर को राष्ट्रभक्त या राजभक्त जैसे चौखट मे रखना कठिन हो जाता है। वैसे भी उपनिवेशवाद विरोधी चेतना का स्वरूप क्या था इसे आज पुर्ननिर्धारित करने की आवश्यकता है। राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति जैसे शब्द इस जटिल परिदृश्य को समझने के लिए पूर्णतया अनुपयुक्त है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे चाहे अस्पष्ट रूप से ही क्यो न सही उपनिवेशवाद विरोधी चेतना की प्रकृति को समझने का प्रयास किया गया है।

## साहित्य और राष्ट्रवाद अर्न्तसम्बन्ध :

शताब्दियो से साहित्य के उद्देश्य के सम्बन्ध मे निरन्तर चर्चा होती रही है, विभिन्न दृष्टियो से इसका आकलन भी किया गया है। इसलिए यह सर्वमान्य नही है कि साहित्य का किसी राजनीतिक प्रत्यय के साथ अनिवार्य सम्बन्ध हो। यह सम्बन्ध प्रासगिक हो सकता है और जो प्रासगिक है वह कभी परोक्ष भी होता है कभी प्रत्यक्ष भी। यह भी आवश्यक नही कि साहित्यकारो की राजनीतिक प्रतिबद्धता एक ही ढर्रे की हो यह रिश्ता रचनाकारो के राजनीतिक सरोकार पर आधारित है। इसके ढेरो उदाहरण है कि एक ही समय मे विभिन्न रचनाकारो की राजनीतिक मान्यताओ मे विभिन्नता थी। उदाहरण स्वरूप रूस मे 'मैक्सिम गोर्की' और 'इवान ब्यूनिन'[१३] अमेरिका मे 'होवर्ड फास्ट' और 'अर्नेस्ट हेमिग्वे'[१४] फ्रास मे 'जी पाल सात्र' और 'अल्बेयर कामू'[१५] जर्मनी मे 'टामसन' और 'रिल्के'[१६] और अग्रेजी मे 'टी०एस० इलियट'[१७] और एजरापाउण्ड इसी तरह हिन्दी साहित्य के समकालीन रचनाकारो मे राजनीतिक सरोकारो की भिन्नता कही सूक्ष्म रूप मे कही स्पष्ट, दिखाई पडती है। प्रेमचन्द, निराला, प्रसाद एव मैथिलीशरण गुप्त आदि के साहित्य मे यह भेद स्पष्ट दिखाई पडता है।

इस सदर्भ मे 'शिलर' ओर 'गेट' को दो प्रारूप के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। शिलर का कृतित्व रचना और राजनीति के अविच्छिन्न सम्बन्ध को रखाकित करता है। ठीक उसी के समानान्तर गेटे का रचना ससार राजनीति निरपेक्ष है। गेटे के लिए राजनीति अस्थाई विषय हे, साम्प्रतिक शिलर के लिए वह रचना का नर्म हे। एक बार गेटे ने कवि टामसन के सम्बन्ध मे यह कहा कि उसने ऋतुओ के सम्बन्ध मे अच्छी कविता लिखी और स्वतत्रता पर घटिया किस्म की। इसका कारण यह नही था कि कवि मे कवित्व शक्ति नही थी यदि नही होती तो वह अच्छी कविता ऋतुओ पर लिखता ही कैसे? मूल बात यह है कि स्वतत्रता नामक विषय मे कविता का अभाव था। इस प्रकार गेटे के लिए राजनीतिक प्रतिबद्धता कविता को क्षीण करती है।

> "यदि एक कवि राजनीतिक है तो उसे अपने को किसी दल को समर्पित करना पडेगा और जब भी वह ऐसा करेगा वह कवि के रूप मे शेष हो जाता है। उसे अपनी मुक्त चेतना और निष्पक्ष दृष्टिकोण को विदा करना पडता है और ऑखो पर पूर्वाग्रह और अधी घृणा की पट्टी बॉधनी पडती है।"[१८]

गेटे की उक्ति का सत्य स्टालिन द्वारा नियन्त्रित रूस मे लिखी हुई साहित्यिक कृतियो के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कुछ एक रचनाकारो को छोडकर श्लोकोफ, आस्रावस्की और एलेया एहरेनवर्ग–ज्यादातर रचनाकर पार्टी साहित्य लिखते रहे, वे प्रोपेगेण्डा के साधन बन गये।

दरअसल रचनाकार की स्वायत्तता एक व्यापक प्रश्न के साथ जुडी है। क्या साहित्यकार सही अर्थो मे स्वायत्त है। कार्ल मार्क्स ने इस प्रश्न के अन्तर्विरोधी उत्तर दिये है। मार्क्सवादी चितन मे रचनाधर्मिता, सृजनशीलता और यथार्थ के सम्बन्ध बडे ही जटिल है और कभी–कभी अन्तर्विरोध ग्रस्त भी, इस अन्तर्विरोध का कारण है मार्क्स का चिन्तन या मार्क्स की दार्शनिक दृष्टि। इस दार्शनिक दृष्टि ने स्वतत्रता और अनिवार्यता को समन्वित करने का प्रयास किया है। इस प्रयास मे मार्क्स का चितन 'डिरेल' हो गया है। उदाहरण के लिए मार्क्स की कृतियो से दो उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते है

> "रेशम का कीडा जिन कारणो से रेशम उत्पन्न करता है उन्ही कारणो से मिल्टन ने 'पैराडाइज लास्ट' की रचना की है।'[१९]

मिल्टन और रेशम का कीडा, पैराडाइज लॉस्ट और रेशम – क्या ये समतुल्य है? किन्तु मार्क्स के लिए सारी सृष्टि लौह नियमो से सचालित है तो ' पैराडाइजलास्ट' का रचनाकार उससे बरी कैसे? किन्तु मार्क्स के चितन मे एक मानववादी पक्ष भी है जो मनुष्य और उसकी आत्मचेतना को मानवेतर सृष्टि से अलग करता है। इसका साक्ष्य निम्नलिखित उद्धरण मे प्रस्तुत है–

'एक मकडी ऐसा जाला बुन सकती है, जैसे एक जुलाहा और एक मधुमक्खी अपना छत्ता बनाने मे वहुत स शिल्पियो को लज्जित कर सकती है किन्तु नितान्त अकुशल शिल्पी और कुशलतम मधुमक्खी म यह अन्तर है कि शिल्पी अपने शिल्प को वस्तुगत यथार्थ मे ढालने के पूर्व अपनी कल्पना मे सारे ढॉचे को खडा करता है।"[२०]

दूसरा उद्धरण रचनाकार की स्वतत्रता और उसकी कल्पनाशीलता को रेखाकित करता है। मार्क्स के चितन मे इस विवाद की गुजाइश निरन्तर बनी हुई है कि मनुष्य कितना अपने परिवेश से परिचालित होता है और कितना अपनी चेतना और वर्ग चेतना से। इस प्रश्न को केन्द्र मे रखकर परवर्ती काल का मार्क्सवादी चितन अनेक विध समृद्ध हो उठा है।[२१]

रचनाकार की रचनाधर्मिता यदि प्रतिबद्ध होती है तो यह प्रतिबद्धता रचनाकार मे सहज रूप मे व्यक्त होनी चाहिये ओढी हुई न दिखे, वह रचना मे अनुस्यूत हो। फ्रेडरिक जेमसन ने एक पुस्तक लिखी है 'द पोलिटिकल अनकाशस,' उसके अनुसार हर साहित्य सामाजिक दृष्टि से प्रतीकात्मक क्रिया है इस लिये इसकी व्याख्या को भी उस प्रतीकात्मक क्रिया का निर्वचन करना चाहिये।[२२] इस दृष्टि से तो ऐसा कुछ भी नही है जो राजनीति के परे हो किन्तु सप्रमाण इस बात को खण्डित किया जा सकता है। अब यह बात दूसरी है कि खीचतानकर उसके राजनीतिक सदर्भो को उजागर किया जाय। खीचतान की ये कोशिश मनोविश्लेषणवादी और मार्क्सवादी दोनो करते है लेकिन जैसा कि होता है प्रस्थापना और निष्कर्ष मे कोई अनिवार्य सम्बन्ध नही होता और इसका ये भी अर्थ नही है कि राजनीतिक कृतियॉ होती ही नही। बहुत रचनाकार तो घोषित तौर पर साहित्य के माध्यम से राजनीतिक विचारो की स्थापना करते है। दोस्तोवेस्की ने तो स्वत एक पत्र मे स्वीकार किया है कि वह एक ऐसा उपन्यास लिखना चाहता है जो विचार प्रधान हो और उसमे वे सभी बाते कहना चाहता है भले ही उसको शून्यवादी अथवा पश्चिमी सभ्यता के समर्थक प्रतिक्रियावादी कहे। वह इसे कला की दृष्टि से नही किन्तु वैचारिकता की दृष्टि से लिखना चाहता है।[२३]

इस प्रकार साहित्य और राजनीति के सम्बन्धो को कभी-कभी रचनाकार प्रतिबद्ध रूप से स्वीकार करते है। यदि साहित्य और राजनीति के आकस्मिक सम्बन्धो को रचनाकार कभी स्वीकार करते है तो राष्ट्रवाद और साहित्य के अर्न्तसम्बन्ध को उसी प्रकार आकस्मिक मानना चाहिये।

पाश्चात्य साहित्य मे साहित्य और राष्ट्रवाद का अर्न्तसम्बन्ध कभी – कभी प्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है और कभी – कभी परोक्ष रूप से । ऐतिहासिक कालक्रम मे इग्लैण्ड की राजनीतिक एकता 'हेनरी सत्तम' के नेतृत्व मे ट्यूडरवश के शासन मे स्थापित हो गयी थी। अगली शताब्दी मे

उपनिवेश का विस्तार होने लगा। इस प्रकार राष्ट्रवाद का समर्थन साम्राज्यवाद विस्तार का समर्थन हो गया। न केवल साहित्यिक वरन सस्कृति के अन्य उपादान भी साम्राज्यवाद के समर्थन के साथ सपृक्त थे। एडवर्ड सईद ने अपनी दो पुस्तको 'ओरिएण्टलिजम' और 'कल्चर एण्ड इम्पियरीयलिजम' मे इस घनिष्ठ सम्बन्ध को विस्तार के साथ प्रस्तुत किया है। टेरी इगल्टन के अनुसार एडवर्ड सईद का मानना कि साम्राज्यवाद ने न केवल प्राच्य बल्कि सम्पूर्ण प्राश्चात्य सस्कृति को प्रभावित किया, प्राच्यवादी डिस्कोर्स की मूल विशेषता है तथा उसकी जटिलता को भी स्पष्ट करता है"।[24] साहित्यिक और गैर साहित्यिक कृतियो के सदर्भ मे प्राच्यवाद की परिभाषा देते हुए एडवर्ड सईद का यह विश्वास है कि "प्राच्यवाद लिखित साहित्य और तीन साम्राज्यो – ब्रिटेन, फ्रास और अमेरिका के बीच का गत्यात्मक विनिमय है। ये कृतियॉ साम्राज्य के सदर्भ मे प्रस्तुत की गई है।"[25] अत· ललित साहित्य की भी कृतियॉ इस दृष्टिकोण का समर्थन करती है। इनके अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि साम्राज्यवादी दृष्टिकोण अनजाने मे लोगो ने स्वीकार किया है। इसी व्याधि से उनमे राष्ट्रवाद का अव्यक्त गौरवभाव है। जोसेफ कानराड के उपन्यास 'हार्ट आफ डार्कनेस' मे साम्राज्यवादी दृष्टि का चित्र खीचा गया है। वह मानता था कि अफ्रीका एशिया और अमेरिका के आदिवासी स्वतत्र होने के उपयुक्त नही है और उन्हे यूरोप की दासता स्वीकार करनी ही है। उनका आग्रह है कि यूरोप ही सभ्यता और सस्कृति का वाहक है और जितने भी उपनिवेश है वे यूरोपियन दासता से लाभान्वित है। यही वह उग्र राष्ट्रवाद है जिसकी आलोचना टैगोर एव गॉधी ने की है। ऐसा नही है कि कानराड की दृष्टि इसकी कमजोरियो की ओर नही है उसने अपने उपन्यास 'नासट्रेमो' मे इस ओर ध्यान आकर्षित किया है कि साम्राज्यवाद तदर्थ व्यवस्था है स्थायी नही। यह भ्रान्तियो पर आधारित है और हिसा एव विनाश इससे सपृक्त है।

इसी प्रकार 'रुडयार्ड किपलिग' की कृतियो मे एक ओर तो उसके मन म उन लोगो के प्रति स्नेह का भाव है जो अग्रेज द्वारा शासित है किन्तु दूसरी ओर उसकी यह धारणा है कि अग्रेजी राज की महानता इसी मे है कि वह गौराग जातियो के दायित्व का निर्वाह करे और भारत को सभ्य और सुसस्कृत बनाए। किपलिग के बहुत से सूत्र अब व्यापक सज्ञान के अग हो गये है। जैसे 'ईस्ट इज ईस्ट वेस्ट इज वेस्ट', 'द ह्वाइटमैन वर्डेन' इत्यादि।

यह ध्यातब्य है कि यूरोपीय देशो मे राष्ट्रवाद साम्राज्यवाद का समर्थन है और यह उनके साहित्य मे परिलक्षित होता है। चार्ल्स डिकेस के 'ग्रेट एक्सपेक्टेसेस' उपन्यास मे आस्ट्रेलिया नामक उपनिवेश का वर्णन है जो इंग्लैण्ड का एक व्यापक कैदखाना था। जेन आस्टिन और आर्थर

कानडाइल के उपन्यासो म उन लोगो का वर्णन आया हे जो उपनिवेशो से धन कमाकर इग्लेण्ड लौटत हैं। इसके अतिरिक्त 'सर्वाल्टर स्काट' की कविताओ का सदर्भ दिया जा सकता हे।[25]

फ्रास मे फ्लावेयर के उपन्यासो मे साम्राज्यवादी विषय वस्तु अनुस्यूत हैं। कारनाड की तरह यह उपन्यासो की सतह पर नही हे, लेकिन कुल मिलाकर फ्रासीसी साहित्य मे साम्राज्यवाद का नग्न समर्थन नही है। फ्रासीसी साहित्यकार इस बात को तो मानते थे कि फ्रासीसी राज्यक्रान्ति के पहले पुष्पित और पल्लवित होने वाला फ्रासीसी बुद्धिवाद (इनलटिनमेण्ट) की मुख्य धारणा उन सभी को विकसित करेगी जो उपनिवेशो मे रहते है। इस तरह से फ्रासीसी साहित्य ने भी इस यूरोपियन अहकार को स्वीकार किया है। लेकिन इसके अतिरिक्त १६वी सदी के फ्रासीसी साहित्यकारो मे उपनिवेशवाद इत्यादि की समस्याओ को जिन्हे फ्रासीसी राज्यक्रान्ति ने अथवा नेपोलियन के विस्मयकारी उदय और अन्त ने छोड दिया था से वाल्जाक, जोला, विक्टर ह्यूगो की समस्याये भिन्न हे।

जर्मन साहित्य मे 'होल्डरलिन' का काव्य आह्वान का काव्य है। वह जर्मनी को सगठित और सशक्त देखना चाहता था, इसलिए उसकी कविताओ मे जर्मन इतिहास की पीडा व्यक्त हुई है। लेकिन होडरलिन को मात्र राष्ट्रवाद के साथ जोडना कवि के रूप मे उसकी गरिमा को सकुचित करना है। होल्डरलिन की काव्य सृष्टि जीवन की मूलभूत समस्याओ से जूझती है, वे समस्याये जो आधुनिक युग मे सास्कृतिक परिवर्तनो के नाते उत्पन्न हो गई थी। २०वी सदी मे हेडेगर ने होल्डरलिन के काव्य को आधुनिक युग मे मनुष्य की त्रासदी से जोड दिया है। गेट ने होल्डरलिन को अत्यधिक महत्व नही दिया उसके लिए होल्डरलिन राष्ट्रवादी और अतीतोन्मुखी था किन्तु 'काफमैन' के अनुसार होल्डरलिन न तो राष्ट्रवादी था न तो अतीतोन्मुखी था।[26]

रूस की १६वी शताब्दी विचारो के द्वद की शताब्दी थी। साहित्यकारो का एक वर्ग था जो रूस को यूरोपियन सभ्यता के शिल्प मे ढालना चाहता था और दूसरा वर्ग था जो रूस को यूरोपियन सभ्यता के आक्रमण से सुरक्षित रखना चाहता था। वैसे दोनो वर्ग राष्ट्रवादी थे, किन्तु पहला वर्ग राष्ट्रवाद के साथ यूरोपीय दृष्टि सम्पन्न था अत उसका राष्ट्रवाद उदार राष्ट्रवाद था। इवान तुर्गनेव इत्यादि इस वर्ग के प्रतिनिधि रचनाकार थे। दूसरा वर्ग स्लावोफील अर्थात वह जो स्लाव सस्कृति अर्थात रूस की सस्कृति को सुरक्षित रखना चाहता था। दोस्तोवेस्की इस वर्ग का प्रतिनिधि रचनाकार था। इसके उपन्यासो और कहानियो मे रसियन आर्थोडाक्स चर्च, स्लावस्कृति, आधुनिक विचारधारा के खोखलेपन को उजागर किया गया है। इसका 'डेविल्स' नामक उपन्यास विचार प्रधान है। और इसमे

इस आर सकेत किया गया है कि जो भी विचारधाराये और सिद्धान्त आयातित हो रहे है वे रूस के लिए खतरनाक है। विचारो से मानवता की मुक्ति नही होती। यह ईश्वर मानव का नही बल्कि मानव ईश्वर का पूजन है – धर्मनिरपेक्ष है और मनुष्य के अहकार पर अधिष्ठित है।

भारतीय साहित्य मे राष्ट्रवाद का स्फुरण १९वी सदी के उत्तरार्ध मे स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है। दीनबन्धु मित्र के नाटक 'नीलदर्पण' मे नील की खेती करने वाले किसानो के विद्रोह का चित्रण है। अगले दशको मे बग्ला साहित्य मे राष्ट्रवाद का स्वर अधिक मुखर हुआ है किन्तु इस स्वर मे हिन्दू पुनुरूत्थान का भी स्वर मिश्रित था। अभी तक यह विवाद का विषय है कि बकिमचन्द्र चटर्जी राष्ट्रवाद के प्रतीक थे या हिन्दू सम्प्रदायवाद के। हैसमथ उन्हे सम्प्रदायवाद का प्रतीक मानते थे। यदि इस बात की जॉच पडताल की जाय तो उनके उपन्यासो मे इतना अन्त साक्ष्य प्राप्त होता है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होने मुसलमानो की और उसके शासन की आलोचना की है। उनकी अपेक्षा अग्रेजो के शासन की प्रसशा की है और हिन्दू धर्म के परिष्कृत रूप को सर्वोत्कृष्ट माना है। अमरेश त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'दि एक्समिस्ट आफ चैलेज' मे बकिम को राष्ट्रवादी माना है और उनके उपन्यास आनन्दमठ की व्याख्या करते हुए अपनी बात की पुष्टि की है।

इस बात को ध्यान मे रखना आवश्यक है कि गदर के उपरान्त मुस्लिम समाज मे यह विश्वास बद्धमूल होने लगा था कि यदि हमे अपने समाज की रक्षा करनी है तो अग्रेजो के साथ मिलकर रहना होगा। यह विश्वास ही सरसैय्यद अहमद खॉ के विचार और अलीगढ आन्दोलन के नीव मे है। इस प्रकार अग्रेजो का विरोध और राष्ट्रवाद का जन्म उन्ही से सभव था, जो अग्रेजो से मिलकर अपने समाज का उत्थान नही करना चाहते। यह कार्य मुस्लिम समाज नही कर सकता था क्योकि उसके नेता मुसलमान और अग्रेजो की मित्रता पर जोर देते थे और उन्हे यह भी खतरा महसूस होता था कि अग्रेजो के चले जाने पर जो लोकतत्र भारतवर्ष मे बनेगा वह हिन्दू लोकतत्र होगा। इस तरह अग्रेजो के विरोध का लगभग सारा दायित्व हिन्दुओ पर आ पडा और उन्होने इस विरोध के लिए अपनी परम्परा और इतिहास से प्रेरणा ली। यही कारण है कि बकिमचन्द्र जैसे साहित्यकारो का राष्ट्रवाद हिन्दू सम्प्रदायवाद दिखाई पडता है। बकिम करते भी क्या वे कृष्ण की ही तो व्याख्या कर सकते थे, उनके उपन्यासो मे यह स्वर निरन्तर दिखाई पडता है।

रमेश चन्द्र दत्त की कृतियॉ भी राष्ट्रवाद और हिन्दू परम्परा का मिश्रण है। उन्होने अपनी इतिहास की पुस्तक 'हिस्ट्री आफ सिविलाइजेशन इन एशिएन्ट इण्डिया' मे हिन्दू गौरव को तो स्थापित किया ही है अपने चार उपन्यासो ('बग विजेता', 'माधवी ककड', 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' और 'राजपूत

जीवन सध्या') म भी हिन्दू गौरव का समर्थन किया है। उन्होने भारतवर्ष का आर्थिक इतिहास भी लिखा जिसमें उन्होंने इस प्रक्रिया का निदर्शन भी किया हे जिस प्रक्रिया से अग्रेजो न भारतवर्ष को लूटा। इसके अतिरिक्त द्विजेन्द्रलाल राय के नाटको मे हिन्दू गौरव और राष्ट्रवाद का मिश्रण दीख पडता है। 'दुर्गादास' उनका प्रसिद्ध नाटक है।

शरतचन्द्र के उपन्यास सामान्यतया मानव मन की व्याख्याओ से सम्बन्धित हे। यदि किसी उपन्यास मे राजनीतिक स्वर मुखर हुआ है तो वह है 'पथ के दावेदार'। इसके अतिरिक्त उनके किसी भी उपन्यास मे राष्ट्रवाद या राजनीतिक विषयो का विस्तार से वर्णन नही हे। हालॉकि वे अपने व्यक्तिगत जीवन मे देशबन्धु चितरजनदास और काग्रेस के साथ जुडे थे और राजनीतिक आन्दोलनो से सक्रिय भाग लेते थे।

रवीन्द्र नाथ टैगोर की स्थिति शरतचन्द्र से कुछ भिन्न थी। वे व्यक्तिगत जीवन मे तो राजनीति मे भाग नही लेते थे यद्यपि २०वी सदी के प्रारम्भ मे जो स्वदेशी आन्दोलन आरम्भ हुआ उसमे उन्होने सभाओ मे भाग लिया। उनकी कविताए भी उन सभाओ मे पढी जाती थी, किन्तु बाद मे चलकर काग्रेस की सक्रिय राजनीति से वे नही जुडे।

एक बार टैगोर गॉधी के सत्याग्रह आश्रम अहमदाबाद गये और बातचीत के दौरान उन्होने गॉधी जी से कहा कि 'आप एक दूसरे 'बन्धन आरोग्य' (अर्थात जेल मे जाकर आरोग्य विश्रान्त के माध्यम से आरोग्य लाभ करना) की तैयारी कर रहे है। मेरी भी इच्छा है कि मुझे भी ऐसा ही आरोग्य लाभ प्राप्त होता' गॉधी जी ने तुरन्त उत्तर दिया 'आपने कभी ऐसा आचरण किया ही नही'। इस उत्तर का आशय था कि टैगोर कभी राजनीति से जुडे नही और इसलिए उन्हे कभी अग्रेजी शासन का कोपभाजन नही होना पडा।[२८]

टैगोर समकालीन सक्रिय राजनीतिक आन्दोलनो से भले ही नही जुडे किन्तु उनके उपन्यासो मे राजनीतिक स्वर अपेक्षाकृत अधिक मुखर है। इस सदर्भ मे तीन उपन्यास विशेषरूप से उल्लेखनीय है, 'गोरा' 'घर और बाहर' एव 'चार अध्याय'। 'गोरा' मे उसका मुख्य पात्र गोरा हिन्दू रीतिरिवाजो की आस्था और कर्मकाण्ड मे जीता है जो इससे इतर है वह उसके लिए त्याज्य है किन्तु अन्त मे चलकर जब उसे ज्ञात होता है कि वह मूलत हिन्दू नही एक अग्रेज महिला की सतान है और उसका पालन पोषण एक हिन्दू महिला ने किया है उसे अपना पुत्र मानकर और उसे मॉ का स्नेह देकर तो उसे उसकी मॉ व्यापक राष्ट्रवाद का प्रतीक लगती है। उसका भावान्तर होता है और वो भारतीय राष्ट्र के लिए एक व्यापक राष्ट्रवाद की कल्पना करता है।

'घर अंर बाहर' परिवार और राष्ट्र के प्रति जा कर्तब्य है उसकी कथा हे। इस सारी कथा मे हिसा की अनुपयागिता को रेखाकित किया गया ह। 'चार अध्याय' मूलत एक क्रान्तिकारी बन्धुवान्धव उपाध्याय के जीवन कथा पर आधारित एक उपन्याम हे। बन्धुवान्धव उपाध्याय ने धर्मान्तरण करके ईसाई धर्म स्वीकार किया किन्तु वेदान्त से अत्यधिक प्रभावित थे, वे क्रान्तिकारी थे, रवीन्द्रनाथ से उनका व्यक्तिगत सम्बन्ध था। १६३४ मे 'चार अध्याय' का प्रकाशन हुआ उसके प्रथम सस्करण की भूमिका मे रवीन्द्रनाथ ने इस उपन्यास के उद्देश्य की चर्चा की – हिसा की व्यर्थता। इस उपन्यास की कडी प्रतिक्रिया हुई बाद के सस्करणे मे भूमिका हटा दी गई। 'चार अध्याय' राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए क्रान्तिकारी मार्ग को स्वीकार नही करता। रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिस राष्ट्रवाद के समर्थक थे वह सकीर्ण और उग्रराष्ट्रवाद नही था, युद्ध लोलुप नही था, विस्तारवादी नही था, उपनिवेश नही बनाना चाहता था, साम्राज्यवाद स्थापित नही करना चाहता था। उस राष्ट्रवाद का आधार वैदिक ऋषि की उदार दृष्टि थी सृजनात्मक साहित्य के अतिरिक्त अपने व्याख्यानो के सग्रह जो 'राष्ट्रवाद' के शीर्षक से प्रकाशित हुआ है उसमे भी रवीन्द्रनाथ ने राष्ट्रवादी अहकार पर प्रहार किया है। वे यह मानते थे कि राष्ट्र व्यापक मानव परिवार के अग है। उनके लिए (रवीन्द्रनाथ) केवल एक ही इतिहास है मनुष्य का इतिहास और जितने भी राष्ट्रीय इतिहास है इस व्यापक इतिहास के अध्याय मात्र है।[२६]

उर्दू साहित्य भी राष्ट्रवादी चेतना से अछूता नही है। यह सच है कि मुस्लिम समाज पर अलगाव वादी राजनीति का प्रभाव पडा किन्तु इसने राष्ट्रवादी मुस्लिम साहित्यकार और प्रगतिशील मुस्लिम साहित्यकारो को प्रभावित नही किया। अल्लामा इकबाल की प्रसिद्ध रचना 'सारे जहॉ से अच्छा हिन्दोस्तॉ हमारा' भारतीय राष्ट्रवाद से जुडा हुआ है। भले ही उन्होने आगे चलकर अलगाववादी राजनीति के प्रभाव मे आकर 'मिल्ली तराना' लिखा। इसके अतिरिक्त जोश मलीहाबादी मे प्रचुरमात्रा मे अग्रेजो का विरोध और राष्ट्रवाद की चेतना दीख पडती है, उनकी नज्मे जब्त भी हुई है।

## 'हिन्दी साहित्य और राष्ट्रवाद'

मुद्रण, पूँजीवाद के विकास तथा राष्ट्रवाद के अर्न्तसम्बन्ध पर टिप्पणी करते हुए 'बेनेडिक्ट एडरसन' लिखते हैं, "पूँजीवाद तथा मुद्रण प्रौद्योगिकी ने मानव भाषाओ की विवधता पर केन्द्रण करके नये रूप मे परिकल्पित समुदायो की सभावना को जन्म दिया"।[३०] आधुनिक भारत मे यह प्रक्रिया गतिशील रूप मे बगाल से आरम्भ हुई जहा ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा यूरोपीय धर्म प्रचारको की पहल पर अठारहवी शताब्दी मे बगला मे पुस्तको का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य तक मैकाले की नीति के फलस्वरूप फारसी का अग्रेजी द्वारा विस्थापन हुआ तथा क्षेत्रीय भाषा के रूप मे

बगला का विकास हुआ। बगाल क भद्रलोक ने एक नई परियाजना का दायित्व सँभाला, कला को आधुनिक सस्कृति के अनुकूल बनाना।[30] फलस्वरूप बगाल मे "छापाखानो प्रकाशनो, समाचार पत्रों, पत्रिकाआ तथा साहित्यिक सस्थाआ का जाल बिछ गया।[32] "पार्थ चटर्जी के अनुसार 'उस समय रचनाकर्म का उद्देश्य था एक एसे एस्थेटिक का निर्माण जो आधुनिक तथा राष्ट्रीय होत हुए भी पश्चिम से भिन्न हो"।[33] इस प्रकार पद्य, गद्य, सगीत अन्य कलाएँ "राष्ट्रवाद के सास्कृतिक उत्पादो" के रूप मे विकसित होने लगे।

आधुनिक शोधकर्ता स्वीकार करते है कि यद्यपि कलकत्ता मे फोर्ट विलियम की स्थापना (१८००) से पहले मैथिल, मगही, भोजपुरी, अवधी और ब्रज भाषा मे साहित्य उपलब्ध था (विशेषकर, मौखिक पद्य साहित्य) फिर भी खडी बोली मे महत्वपूर्ण साहित्य का प्रकाशन १८०० ई० के बाद ही हो सका। १८०० ई० के उपरान्त एक नया साहित्य अस्तित्व मे आया जो स्वरूप और विषयवस्तु की दृष्टि से पश्चिम और भारत का सम्मिश्रण था जो भविष्य मे हिदी और उर्दू के लेखको के लिए माडल बना।[34] फोर्ट विलियम से प्रकाशित ग्रन्थो मे लल्लू लाल द्वारा रचित 'प्रेमसागर' (१८०५) इतनी लोकप्रिय हुई कि उसके १५ सस्करण प्रकाशित किये गये। श्रीकृष्ण के जीवन पर आधारित प्रेमसागर खडी बोली मे लिखे गये गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।[35] लल्लू लाल की दूसरी रचना 'बैताल पच्चीसी' को भी समान लोकप्रियता मिली। लल्लू लाल के समकालीन सदल मिश्र ने 'रामचरित्र' खडी बोली मे लिखी।[36] इसी प्रकार ईशा अल्ला खान की रानी केतकी की कहानी मे (हालॉकि इसमे देवनागरी के स्थान पर उर्दू लिपि का प्रयोग है) खडी बोली का उत्कृष्ट प्रयोग किया गया है।[37] जान ग्रिअर्सन के अनुसार "उन्नीसवी सदी के समाप्त होते–होते खडी बोली दो धाराओ मे बॅट गई। पहली धारा जिसमे फारसी अलकरणो से युक्त उर्दू का रूप ग्रहण किया तथा जिसका केन्द्र लखनऊ था तथा देवनागरी के रूप मे बहने वाली दूसरी धारा जो सस्कृत द्वारा समृद्ध हुई और जिसका केन्द्र बनारस बना।[38] बनारस के राजा शिव प्रसाद (१८२३–६५) तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सरक्षण मे खडी बोली का नागरी लिपि मे विकास हुआ। भारतेन्दु गद्य के लिए खडी बोली किन्तु पद्य हेतु ब्रजभाषा का प्रयोग किया करते थे।

भारतेन्दु की मृत्यु के बाद बिहार निवासी अयोध्या प्रसाद खत्री ने खडी बोली मे काव्य रचना की क्षमता को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से 'खडी बोली का पद्य' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस रचना ने खत्री ने नागरी मे लिखने वाले लेखको से अनुरोध किया कि वह ब्रजभाषा के स्थान पर खडी बोली का व्यापक प्रयोग करे।[39] हालॉकि खत्री को सफलता नही मिली फिर भी १८८७–८८ तक उत्तर पश्चिमी सीमा प्रान्त से हिन्दी मे प्रकाशित होने वाले पत्र 'हिन्दुस्तान' मे खत्री के प्रस्ताव पर अधिक बहस हुई।[40] इस बहस मे मथुरा से प्रकाशित होने वाले 'भारतेन्दु' नामक पत्र के सपादक राधाचरण

गोस्वामी ने भी हिस्सा लिया।[४०] गोस्वामी ब्रजभाषा मे तथा खडी बोली मे भेद करने के खिलाफ थे। उनका विचार था कि ब्रजभाषा काव्य रचना के लिए अधिक उपयोगी थी। खत्री और उनके समकालीन श्रीधर पाठक का मानना था कि चूँकि ब्रज की अपेक्षा खडी बोली का प्रयोग करने वालो की सख्या अधिक थी अतएव उस अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया जाय। अत मे विजय खडी बोली के समर्थको की हुई। खडी बोली की सर्वोपरिता को स्थापित करन मे इलाहाबाद से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के सपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४–१९३८) का प्रमुख योगदान रहा। द्विवेदी का तर्क था कि गद्य तथा पद्य के लिए अलग–अलग जनभाषाओ का प्रयोग करने से हिन्दी भाषा को हानि पहुँचेगी। द्विवेदी के हस्तक्षेप का प्रभाव २०वी शताब्दी के दूसरे दशक से देखा जा सकता है। १९१० मे बनारस मे आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पहले सत्र मे ब्रजभाषा के विरूद्ध मुहिम छेडने का एलान किया गया। १९११ के दूसरे सत्र मे बद्रीनाथ भट्ट ने घोषणा की कि खडी बोली की प्रतिद्वदी ब्रजभाषा ने दम तोड दिया है।[४२] किग के अनुसार तो १९१४ तक खडी बोली और ब्रजभाषा के विवाद का अत हो चुका था। छायावाद के प्रवर्तको द्वारा खडी बोली के अपनाये जाने पर ब्रजभाषा पर वज्राघात हुआ।[४३]

हिन्दी साहित्य के लिए यह सयोग की बात मानी जानी चाहिये कि जब राष्ट्र साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिए छटपटा रहा था तब हिन्दी साहित्य विभिन्न क्षेत्रीय बोलियो से मुक्त होकर एक खडी बोली (मानक हिन्दी) के निर्माण के लिए प्रयास कर रहा था। विभिन्न हिन्दी बोलियो (अवधी, ब्रज, मैथिली आदि) का विस्तृत क्षेत्र विस्तार एव उस पर निवास करने वाली जनसख्या के विस्तृत जन समूह ने हिन्दी को एक शक्तिशाली और भारत मे सबसे अधिक लोगो द्वारा बोली और समझे जाने वाली भाषा के रूप मे स्थापित किया। इसलिए जब भारतेन्दु और द्विवेदी के काल मे हिन्दी भाषा खडी बोली के साहित्य के रूप मे निर्माण के दौर से गुजर रही थी तब भी उसकी शक्ति कम नही थी। इस नये कलेवर मे भले ही हिन्दी साहित्य समकालीन भारतीय भाषाओ (बगला, तेलगु, मलयालम, कन्नड आदि) और विदेशी भाषाओ की तुलना मे शिल्प, स्वरूप और विस्तार की दृष्टि से कमजोर रही हो पर उसके पीछे जो जनशक्ति कार्य कर रही थी, उससे उसके महत्व को सभी समकालीन राजनीतिज्ञो ने, भले ही उनकी मातृभाषा हिन्दी न रही हो, स्वीकार किया चाहे वह महात्मा गाँधी हो या जवाहर लाल नेहरू या सुभाषचन्द्र बोस। इस तरह हिन्दी साहित्य ने अपने बल पर न केवल साम्राज्यवाद और उसके देशी समर्थको के विरूद्ध सघर्ष किया बल्कि समकालीन परिवेश मे स्थापित भाषाओ मे अपनी श्रेष्ठता भी सिद्ध की। यह श्रेष्ठता न केवल अपने साहित्यिक सन्दर्भो एव विकास से प्राप्त की वरन् उसके पीछे काम कर रही विशाल जनसख्या से भी। बगला जहाँ भारतीय भाषाओं मे एक विकसित भाषा थी और

उसके विकास का अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति नोबेल पुरस्कार के रूप म भी मिल चुकी थी वही उर्दू भाषा भी जो अभी निकट अतीत मे राजभाषा रही, फारसी की कोख से उपजी थी और सामान्यत वह ऐसे वर्ग की भाषा थी जो अल्पसख्यक समुदायो मे सबसे बडे समुदाय की भाषा थी। इन सबसे ऊपर साम्राज्यवादी शक्ति की भाषा अग्रेजी थी। इन बहुकोणी भाषा सघर्ष के बीच मे हिन्दी का अपनी यथार्थ शक्ति को परिभाषित करना था ओर उसने भरपूर कोशिश भी की।

साम्राज्यवादी वर्जनाओ के बीच मे हिन्दी साहित्यकार अपनी–अपनी क्षमता के अनुपात मे सर्जनात्मक साहित्य से जुडे रहे। भारतेन्दु एव द्विवेदी युगीन साहित्यकारो की रचनाओ और गैर साहित्यिक स्रोतो के अन्वेषण से यह पता चलता है कि साम्राज्यवादी दबाव वे अच्छी तरह महसूस करते थे। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे बुद्धिजीवी अनेक सुरक्षात्मक उपायो मे एक उपाय यह भी बताते हैं कि ऐसी पोशाक धारण किया जाय कि उनकी पहचान साम्राज्यवादी प्रतिनिधि के रूप मे हो। वे लिखते है, "अपना फैशन छोडकर कोट पतलून इत्यादि पहने जिससे जब दुर्दैव की फौज आये तो हम लोगो को यूरोपियन जानकर छोड दे"। यही नही उन्हे अग्रेज अफसरो का सदैव भय बना रहता था। भारतेन्दु अपने इसी नाटक मे लिखते है, "अगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हो तो"।[५] द्विवेदी युगीन साहित्यकार भी ऐसी रचनाओ को प्रकाशित करने से बचते थे जिससे साम्राज्यवादी ताकते कुपित न हो बल्कि कभी – कभी ऐसी रचनाएँ जानबूझकर प्रकाशित भी करते थे ताकि वे प्रसन्न रहे। 'हिन्दी प्रदीप' के सपादक बालकृष्ण भट्ट को इतना परेशान किया गया कि उन्होने अन्त मे अपनी पत्रिका को विशुद्धत साहित्यिक बना लिया। उनपर कई बार जुर्माना किया गया और कई बार तलब भी किया गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी जो 'सरस्वती' पत्रिका के लम्बे काल (१९०३–१९२०) तक सपादक रहे, अपनी सपादन कला एव अधिकार का उपयोग इसलिए भी करते थे कि कोई ऐसी रचना न प्रकाशित हो जाय जिससे साम्राज्यवादी शक्तियॉ नाराज हो जाय। साथ ही वे इसके लिए रचनाकारो को प्रोत्साहित भी करते थे कि साम्राज्यवादी शक्तियो के समर्थन मे भी कुछ लिखे। भारतेन्दु जी कि पत्रिका की सरकारी खरीद बन्द करवा दी गई, जिससे उन्हे वित्तीय सकट से जूझना पडा। 'सरस्वती' के मुख्य पृष्ठ के पीछे वाले भाग पर शायद इन्ही दबावो की वजह से कई नियमो मे एक नियम यह भी लिखा रहता था कि इसमे समकालीन राजनीति एव धर्म से सम्बन्धित लेख नही छापे जाएगे। इधर कानपुर से प्रकाशित 'प्रताप' जिसके सपादक गणेशशकर विद्यार्थी थे, अपने जुझारू तेवर के कारण कई बार जमानत जब्ती एव जुर्माने के शिकार हुए।

मैथिलीशरण गुप्त अपने आरम्भिक काल मे कई रचनाओ मे ऐसे अशो के सम्पादन के शिकार हुए थे जिन्हे सम्राज्यवादी शक्तियॉ अपने खिलाफ मान सकती थी। उनकी चर्चित रचना 'भारत–भारती

मे तिलक शब्द को (लोकमान्य बाल गगाधर तिलक जो समकालीन भारत मे उग्र राष्ट्रीय चेतना के जनक बन गये थे और साम्राज्यवादी शक्तियॉ उन्हे एक सकट के रूप मे स्वीकार करते हुए लम्बे कारावास की सजा दे चुकी थी) निकालने के लिए बाध्य किया और अन्त मे गुप्त जी ने 'सॉप भी मरे और लाठी भी न टूटे' कहावत को चरित्रार्थ करते हुए तिलक शब्द की जगह लोकमान्य रख दिया । इसी तरह 'सरस्वती' के राज्याभिषेक विशेषाक के लिए द्विवेदी जी ने मैथिलीशरण गुप्त से एक प्रसशनात्मक कविता की रचना करवाई जिसके अन्त मे गुप्त जी ने यह भी लिख दिया कि "दीख रही जो है ऑख बाहरी लाली / भीतर होली जले किन्तु बाहर दीवाली" जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने उद्धृत किया है कि "गुप्त जी को इस अश का कविता से निष्कासन अच्छा नही लगा और उन्होने इसे पूना से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'चित्रमय जगत' मे पूरी कविता को प्रकाशित करवाई" ।[१६]

प्रेमचन्द अपनी आरम्भिक रचनाधर्मिता के काल मे ही साम्राज्यवादी दबाव के शिकार हुए। उनके प्रथम कहानी सग्रह 'सोजेवतन'की सारी प्राप्त प्रतियॉ स्थानीय साम्राज्यवादी प्रशासक ने न केवल जब्त कर ली बल्कि आग के हवाले भी कर दी। यह महसूस करने की बात है कि एक कथाकार के इस आरम्भिक प्रयास को जिस निर्ममता से कुचला गया जिसने लेखक के रूप मे अपने को स्थापित करने का निर्णय ले लिया हो उसकी रचना शीलता को यह दुर्घटना कितना प्रभावित किए होगी ? यद्यपि प्रेमचन्द राष्ट्रप्रेम की मशाल अपने सहित्य मे मृत्युपर्यन्त जलाये रखे और राष्ट्र को अनेकानेक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक जकडनो से मुक्त करने के लिए प्रयास करते रहे। उन्होने जब 'हस' पत्रिका निकालनी शुरू की तो तमाम आर्थिक सकटो के बावजूद, साम्राज्यवादी शासन ने उनसे कई बार जमानते मॉगी और जब्ती, की जिससे उसका जुझारू तेवर प्रभावित होता रहा।

जयशकर प्रसाद इन्ही दबावो के कारण सम्भवत समकालीन समाज के चित्रण से पलायन कर गये थे। यद्यपि दबाव वश (जैसा कि उनके समकालीन प्रेमचन्द ने उनपर गडे मुर्दे उखाडने का आरोप लगाया था) उन्होने समकालीन सामाजिक सदर्भो को आधार बनाकर रचनाएँ प्रस्तुत की (ककाल, तितली) परन्तु जैसे अतीत के सदर्भ ही उनके प्रिय सदर्भ हो गये थे और पुन उसी सदर्भ मे रचनाएँ करने लगे। यद्यपि अतीत के सदर्भ मे ही उन्होने समकालीन राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने के लिए ऐसी रचनाएँ प्रस्तुत की जो एक मिसाल बन गई।

साम्राज्यवादी दबावो को निराला ने भी महसूस किया। निराला को तो समकालीन युगीन पीडा और उनके निजी पारिवारिक सकट ने उन्हे अन्तत विक्षिप्त कर दिया। वे तो भारत विभाजन की त्रासदपूर्ण स्थिति मे पुन एक नवीन सगठन और आन्दोलन की मॉग कर रहे थे पर उनकी आवाज

साम्राज्यवाद और उनके समर्थको तथा थक हुये राजनीतिज्ञो क बीच नक्कारखाने की तूती सिद्ध हुई। अगर यह नान ले कि साहित्य की सवेदनशीलता जन की सवदनशीलता होती है, तो निराला की आवाज जन की आवाज थी जिसे ठुकरा दिया गया और खण्डित भारत ही सत्ता के भावी सहभागियो ने स्वीकार कर लिया।

महादेवी वर्मा की लगभग सम्पूर्ण रचना अन्तर्मुखी और दार्शनिक आवरण से आवृत्त रही। जिसका कारण उनकी निजी बौद्धिकता और पीडा के साथ युगीन साम्राज्यवादी दबाव भी रहा। वे जब १९४२ के आन्दोलनकारियो को अपने यहाँ शरण देती है तो उनके शुभचितक उन्हे ऐसा करने से साम्राज्यवादी दमन का भय दिखाकर रोकते है, परन्तु महादेवी वर्मा अपने आत्मोत्सर्ग को तैयार होने की बात कहकर उन्हे आवाक कर देती है। उनके साहित्य मे दलितो पीडितो, कामगारो तथा नारियो के प्रति सच्ची पीडा दिखाई पडती है जो उनके व्यवहारिक जीवन के अन्वेषण से भी स्पष्ट होती है। माखनलाल चतुर्वेदी अपने आरम्भिक रचना क्रम मे ही साम्राज्यवादी अधिकारियो द्वारा तलब किये जा चुके थे जिससे उनके मित्र ने उन्हे सुरक्षित बचाया। उनका साहित्यिक एव व्यवहारिक जीवन दोनो मुखर और सक्रिय होने के कारण उन्हे कई बार जेलो की यात्राएँ करनी पडी। सुमित्रानन्दन पन्त तो प्रकृति के प्रतीको के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को समृद्धतर करते चलते है और समकालीन जन जागृति देखकर साम्राज्यवाद के पतन को अतिशीघ्र एव स्वाभाविक स्वीकार करते है।

हिन्दी साहित्यकारो की रचना धर्मिता का राष्ट्रवाद के सदर्भ मे मूल्याकन करते हुए हमे समकालीन साम्राज्यवादी दबावो और जनता की न्यूनतम साक्षरता दर एव आर्थिक स्तर का भी ध्यान रखना चाहिये। जिस युग मे आम जनता भोजन एव वस्त्र की समस्याओ से जूझ रही हो उसकी रूचि साहित्य पाठ मे किस सीमा तक रही होगी? पाठको का अभाव और उन्हे तैयार करने के लिए साहित्यकारो ने क्या–क्या प्रयास किए। साम्राज्यवादी शोषण के कारण कृषिगत विकास एकदम से न्यूनतम स्तर पर रहा, उत्पादन के तरीके लगभग पारम्परिक ही रहे तथा भारत मात्र कच्चे माल का उत्पादक बनता चला गया वह भी साम्राज्यवादी शक्तियो द्वारा निर्धारित शर्तो पर। साथ ही जब राष्ट्र कृषि प्रधान देश हो तब स्थिति और भी भयावह हो जाती है तथा शेष क्षेत्रो मे विकास के लिए जो ऋण साम्राज्यवादियो द्वारा उपलब्ध कराये गये उनके कारण सारे विकल्प समाप्त हो गये और शोषण बहुआयामी हो गया। आम जनता कि स्थिति एकदम बदहाल हो गई, जो सम्पूर्ण जनसख्या का महत्वपूर्ण भाग थी। उसे कही से भी सबल नही प्राप्त हो रहा था। इन समग्र स्थितियो का ब्यौरावार विवरण रजनी पाम दत्त ने अपनी पुस्तक 'इण्डिया टुडे' के आरम्भिक अध्यायो मे विधिवत दिया है।

इस समग्र दमन और शोषण का प्रभाव समकालीन साहित्य के सम्प्रसार एव पत्रिकाओ पर व्यापक रूप से पडा। भारतेन्दु अपनी पत्रिका की सरकारी खरीद पर अकुश लगने पर जनता से आह्वान करते है और उन्हे ही अब अपना एकमात्र सहारा मानते है। 'सरस्वती' पत्रिका के नियम मे ही यह लिखा होता है कि यह समकालीन राजनीतिक एव सामाजिक धार्मिक विषयो से सम्बन्धित लेख प्रकाशित न करेगी। खण्डवा से प्रकाशित माखनलाल चतुर्वेदी को अपनी पत्रिका 'प्रभा' एक साल के भीतर ही बन्द कर देनी पडी क्योकि उसका प्रसार बहुत कम था। कही से भी प्रोत्साहन की स्थिति नही तैयार हो रही थी। प्रेमचन्द अपनी पत्रिका 'हस' लगातार घाटा उठाते हुये भी निकालते रहते है और अन्त मे उसकी क्षतिपूर्ति के लिए बम्बई भी प्रस्थान करते है फिल्मो के पटकथा लेखन के लिए। जिसमे जाहिर था कि आज की तरह पैसा अन्य क्षेत्रो से अधिक था। इसी तरह कई पत्रिकाएँ अपने पाठकीय प्रसार के अभाव की वजह से दम तोड रही थी। हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि भारत के लिए यह काल हिन्दी पत्रिकाओ के सदर्भ मे शैशवकाल था ऐसे समय मे समकालीन शासन स्रोतो से प्रोत्साहन स्वरूप सहयोग मिलना चाहिये था लेकिन सहयोग तो दूर की बात है वे तटस्थ भी न रह सके और अपने प्रेस अधिनियमो के माध्यम से दमन कार्य करते रहे।

इसी काल मे हिन्दी साहित्यकारो ने कुछ ऐसी रचनाएँ दी जो 'सौ सुनार की एक लुहार की' कहावत चरितार्थ करती है। ये रचनाएँ समकालीन राष्ट्रीय चेतना के विकास के क्रम मे उद्दाम राष्ट्रीयता की प्रसारक बन गई। माखन लाल चतुर्वेदी की १६२२ मे लिखी 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक से रचित गीत इसी श्रेणी की रचना थी जिसकी अन्तिम पक्तियॉ थी, "मुझे तोड लेना वन माली/ उस पथ पर देना तुम फेक/मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जाएँ वीर अनेक"।[४७] इसी तरह जयशकर प्रसाद की यह रचना – "हिमाद्रि तुग श्रृग से/ प्रबुद्ध शुद्ध भारती – स्वय प्रभा समुज्जवला स्वतत्रता पुकारती"[४८] भी है। इस श्रेणी की रचनाओ की इस युग मे कमी नही रही। सोहन लाल द्विवेदी की 'बापू' शीर्षक से रचित गीत "चल पडे जिधर दो डगमग मे/ चल पडे कोटि पग उसी ओर।"[४९] और 'भैरवी' शीर्षक से रचित गीत, "सुना रहा हूँ तुम्हे भैरवी जागो ओ सोने वालो"।[५०] भी इसी श्रेणी की रचनाएँ रही। सुभद्रा कुमारी चौहान की 'खूब लडी मरदानी' शीर्षक से रचित गीत, "बुन्देलो हरबोलो के मुख से हमने सुनी कहानी थी/ खूब लडी मरदानी वह तो झॉसीवाली रानी थी"।[५१] 'बालकृष्ण शर्मा नवीन की कविता, "कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल – पुथल मच जाए"।[५२] और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविता 'भारती वन्दना', 'जागो फिर एक बार' और सुमित्रानन्दन पत की कविता "भारतमाता/ ग्रामवासिनी/ खेतो मे फैला है श्यामल/ धूल भरा मैला सा ऑचल"[५३] और 'राष्ट्रगान' शीर्षक से रचित गीत इसी श्रेणी की रचनाए रही। इसी तरह गया प्रसाद शुक्ल सनेही की 'असहयोग'

महादेवी वर्मा की 'जागो तुझको दूर जाना' और रामचरित उपाध्याय कि 'बन्देमातरम' उस युग के हिन्दी क्षेत्र की राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ मे प्रेरक एव लोकप्रिय गीत बन गये। यही नही वन्देमातरम नारा और पूरा गीत हिन्दी क्षेत्र का प्रिय गीत रहा जबकि यह बगला उपन्यास 'आनन्दमठ' से उद्घृत था। ये सारे गीत अन्य साहित्यकारो की अन्य रचनाओ पर लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत भारी पडते थे। मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'भारत–भारती' हिन्दी क्षेत्र मे लोकप्रियता के शिखर पर रही जिसने राष्ट्रीय चेतना को समग्रता के साथ प्रेरित किया।

हिन्दी साहित्यकारो ने अपनी बात विभिन्न प्रतीको के माध्यम से कही। यद्यपि यह प्रतीक योजना सबसे कम प्रेमचन्द मे है। जयशकर प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त भी राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध करने के लिए अतीत को प्रतीक के रूप मे इस्तेमाल करते है। इसी तरह सुमित्रानन्दन पत प्रकृति को और महादेवी वर्मा एक असीम सत्ता को, जो उनका प्रेमी भी है; को प्रतीक के रूप मे प्रयोग करती है। यही नही कभी–कभी उनका प्रणय गान और राष्ट्रगान एक ही गीत मे साथ–साथ आगे बढते है। प्रतीकात्मक शैली मे बात करने की कला साहित्यकारो की अनोखी कला है। हजारी प्रसाद द्विवेदी 'बाणभट्ट की आत्मकथा' शीर्षक से लिखी गई अपनी कृति मे इस ढग के आख्यान प्रस्तुत करते है जो अतीत के सन्दर्भ मे होते हुए भी समकालीन प्रश्नो से बडी शिद्दत के साथ जूझता प्रतीत होता है, "प्रजा मे मृत्यु का भय छा गया है यह अशुभ लक्षण है अगर तुम आर्यावर्त को बचाना चाहते हो तो प्राण देने के लिए तैयार हो जाओ। धर्म के लिए प्राण देना किसी जाति का पेशा नही है वह मनुष्य का उत्तम लक्ष्य है। अमृत के पुत्रो न्याय जहॉ से मिले वहॉ से बलपूर्वक खीच लाओ यदि तुम नही समझते कि न्याय पाना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है और ना पाना उसे, अधर्म है तो भारतवर्ष का भविष्य अधकार से आछन्न है"।[५४] उपर्युक्त अश हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा तब लिखा गया जब भारत की मुक्ति की बात चल रही थी साथ ही कई प्रश्नो और शर्तों मे उसकी मुक्ति उलझती हुई विभाजन की त्रासदी तक पहुँच गई थी। इसी तरह जयशकर प्रसाद अपने साहित्य मे प्राचीन सदर्भ होते हुये भी समकालीन राष्ट्रीय प्रश्नो से समग्रता के साथ जूझते रहे और उनके उत्तर देते रहे।

गॉधी जी द्वारा विकसित राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ मे सिद्धान्तो और मूल्यो के प्रति प्राय आमतौर पर लगभग सभी साहित्यकारो मे सहमति है। यद्यपि रूस की क्रान्ति और वहॉ हुए मजदूरो और किसानो की समृद्ध स्थिति पर भी रचनाकार नजर रखे हुए है पर उनमे उनकी पूर्ण आस्था कभी नही बन पायी। ये साहित्यकार पाश्चात्य सभ्यता के अधानुकरण की भी खिल्ली उडाते है और कभी भी नितान्त भौतिकता का समर्थन नही करते और समकालीन समाज के आर्थिक प्रश्नो को भी वे अपने साहित्य मे स्थान देते है। साथ ही वे विशुद्ध अध्यात्मिकता की भी आलोचना करते है। वे विशुद्ध

मानवीय मूल्यो से मुक्त एक समन्वित विकास की बात करते है जिसमे भौतिकता और अध्यात्मिकता का समन्वय हो।

मजदूर, किसान और गॉव हिन्दी साहित्यकारो के प्रिय विषय है। वे कृषिगत विकास की बात करते है। मजदूरो एव किसानो का समस्यागत चित्रण करके उसके प्रति लोगो का ध्यान आकृष्ट करने का यत्न करते है साथ ही ऐसा करके वे समृद्धतम वर्ग (जमीदार, सामन्त व्यवसायी) की सहानभूति भी प्राप्त करना चाहते है कि विभिन्न प्रकार के शोषणो ने किस प्रकार उनकी स्थिति को दयनीय बना दिया है, इस पर वे बहुत बारीकी से नजर रखते है। प्रेमचन्द का 'गोदान' और मैथिलीशरण गुप्त का 'किसान' इसी सदर्भ मे लिखी गई रचनाए है। जिसमे देशी और विदेशी दोनो तरह के शत्रुओ के मकडजाल मे कृषक एव मजदूर वर्ग जकडा हुआ है। वे इसी सदर्भ मे श्रम की सर्वोच्चता स्थापित करते है और उनके बल पर वैभव एव विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले जमीदारो एव साम्राज्यवादी शक्तियो की आलोचना करते है।

धर्म और साम्प्रदायिकता के मुद्दे पर भी हिन्दी साहित्यकार बराबर सवाद स्थापित करते चलते है। वे धर्म मे व्याप्त पाखण्ड, ढोग और उसकी साम्प्रदायिक अभिव्यक्ति की आलोचना करते है वे पुरोहितो की मध्यस्थता और मठाधीशो के शोषण को अनावृत्त करते है। साम्प्रदायिक फूट को समाप्त करने के लिए वे साहित्य का उपयोग करते हुए उनकी एकता की वकालत करते है। साथ ही वे सिद्ध करते है कि हम स्वय ही साम्प्रदायिक वैमनस्य के जिम्मेदार तो है ही साथ ही साम्राज्यवादी शक्तियॉ अपना शोषण चक्र जारी रखने के लिए इस वैमनस्य को बढावा देती है। यदि हमे इस चक्र से मुक्ति पानी है तो हमे साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित करना ही चाहिये।

स्त्रियो के सन्दर्भ मे विधवा विवाह, बालविवाह, अशिक्षा आदि उनके प्रिय विषय रहे। दहेज प्रथा की दबाव की वजह से कम उम्र की लडकियो का विवाह अधेड उम्र के पुरूषो से हो जाता है परिणामत उनका शोषण क्रम आरम्भ हो जाता है। प्रेमचन्द ने इस प्रश्न पर तथा वैधव्य के प्रश्न पर ढेरो साहित्य लिखे है। 'निर्मला' उपन्यास इसी विषय पर लिखी नारी जाति का त्रासदपूर्ण चित्रण है जो मनोवैज्ञानिक शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक प्रश्नो के साथ आगे बढता है। 'प्रेमा' और 'देवस्थान का रहस्य' भी इसी सदर्भ मे लिखा गया उपन्यास है। समकालीन पत्रिका 'चॉद' ने अप्रैल १९२३ मे विधवा विशेषाक निकाला था, उनके समस्त लेखो के अवलोकन से पता चलता है कि समाज विधवा विवाह से किस कदर खिलाफ था। 'भारतीय विधवाओ का जीवन' शीर्षक से लिखे लेख मे कुमारी सुखलता उनके पुनर्विवाह के प्रश्न को छोडकर "विधवाओ को पेशन"[५५] देने की बात करती है। इसी तरह

'विधवाओ के कार्य' शीर्षक से श्रीमती पद्माजी सजीव राव विधवाओ को अपना जीवन ''दूसरो के हित''[५६] मे लगाने की बात करती है। इसी तरह अन्य लेखक इसी अक मे विधवा पुनर्विवाह का विरोध करते है। श्री राम कृष्ण मुकुन्द लघाटे 'विधवा विवाह का विरोध' शीर्षक मे कहते है, ''विधवा विवाह का समर्थन करना हिन्दू धर्म विवाह सम्बन्धी आदर्श का खण्डन करना है''।[५७] इसी अक मे राजनीति मे सक्रिय पुरूषोत्तम दास जी टण्डन अपने लेख मे कहते है, ''मै सिद्धान्त रूप मे विधवा विवाह का पक्षपाती नही हूँ''।[५८] इस तरह ऐसे प्रतिकूल बौद्धिक परिवेश मे साहित्यकारो ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। अत उनके प्रस्तुतीकरण मे युग सीमाएँ आडे आईं। वे स्त्रियो की अधिक स्वतत्रता की वकालत नही करते तथा 'सती सावित्री' के आदर्श उनके सामने रहते है। सिलाई कढाई एव गृह कार्य मे निपुणता तथा बच्चो के पालन पोषण मे विशेषज्ञता समकालीन नारियो के लिए आदर्श बताए जाते है। इस क्रम मे महादेवी वर्मा का निबन्ध सग्रह 'श्रृखला की कडियॉ' जरूर उनके शोषण चक्र की बडी सूक्ष्मता से अन्वेषण करते हुए उनके आर्थिक एव सामाजिक मुक्ति की बात करता है। 'श्रृखला की कडियॉ' समकालीन नारी आन्दोलन के लिए गीता सदृश है।

हिन्दी साहित्यकारो के समक्ष स्वतत्रता एक स्वर्णिम मूल्य है जिसके लिए वे कोई भी बलिदान तुच्छ मानते है पर ऐसी स्वतत्रता नही कि जान के बदले गोविन्द बैठ जाय, बल्कि समग्र स्वतत्रता जिसमे प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास के लिए अनुकूल अवसर सुलभ हो। किसी प्रकार का शोषण एव दमन न हो, बहुमुखी विकास हो, मानव विकास के सदर्भ मे सभी अवरोधो की समाप्ति हो। तात्पर्य यह कि वे समग्र स्वतत्रता की बात करते है। इस सदर्भ मे वे विदेशी साम्राज्यवाद के साथ – साथ देशी साम्राज्यवाद समर्थको को भी सामाजिक विकास का शत्रु मानते है और उनसे भी मुक्ति की बात करते है।

हिन्दी साहित्य की समकालीन पत्रिकाए अन्य देशो और समाजो मे बदलती हुई सामाजिक अवस्था का उल्लेख भी करती है जिससे भारतीय समाज सीख ले। जैसे जापान, चीन और रूस मे स्त्रियो, मजदूरो एव किसानो की स्थिति कैसी है? तथा उसके प्रति शासको का दृष्टिकोण कैसा है? शासको ने उनको कौन – कौन सी सुविधाए दी है। तथा उनकी स्थिति सुधारने के लिए कैसे – कैसे कानून बनाए है? साम्राज्यवादी शक्तियॉ किन–किन क्षेत्रो मे मुँह की खा रही है? कैसे छोटे – छोटे राष्ट्र अपनी अदम्य जीजीविषा के बल पर साम्राज्यवादी शक्तियो को घुटने टेकने के लिए विवश कर रहे है। तथा उनके सेनानायको का चित्रण करके भारतीय जन मे आत्मविश्वास का सचार करती थी। साथ ही उन्हे आत्ममूल्याकन एव सघर्ष के लिए प्रेरित करती थी, उन्हे वे प्रबुद्ध भी बनाती थी,

समकालीन भारतीय साम्राज्यवादी शासको की नीतियॉ कैसी है? शिक्षा विकास आदि पर उनका बजट कितना है? आदि।

इस तरह हिन्दी साहित्य जिसे सच्चिदानन्द वात्स्यायन "परम्परा से ही विद्रोह की भाषा"[५९] स्वीकार करते है समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के समक्ष भी उस परम्परा का बखूबी निर्वाह किया और साम्राज्यवाद के खिलाफ विद्रोहात्मक तेवर रखा। साथ ही समकालीन राष्ट्रीय जागरण के मुद्दे पर पूरी समग्रता के साथ अपनी सीमाओ के बावजूद विचार करते है और एक समग्र राष्ट्रवाद की वकालत ही नही करते वरन् हिन्दी के रचनाकार समग्र मुक्ति की भी बात करते है।

## नवीन इतिहास विधा – कुछ चिंतायें :

इस शोध प्रबन्ध मे साहित्यिक स्रोतो को प्राथमिक आधार मानकर चला गया है परन्तु इसे हिन्दी साहित्य के इतिहास से भिन्न रखने के लिए रचनाओं/ रचनाकारो को न तो परम्परागत काल–खंडो मे बाटने की कोशिश की गई है और न ही भाषा, शिल्प, सौन्दर्य बोध जैसे प्रश्नो को उठाया गया है। मेरा मूल उद्देश्य राष्ट्रीय आन्दोलन के उत्ताल दौर मे हिन्दी साहित्य मे उभरती चिताओ को चिन्हित करना है। मै यहॉ सुजीत मुखर्जी के विचार से सहमत हूँ कि "हमे एक ऐसी विधा कि जरूरत है जिसका प्रयोग हम भाषा के इतिहास के अलावा अपने सहित्यिक अतीत को जानने के लिए भी कर सके"।[६०] इसके लिए हमे भाषा विज्ञानी, इतिहासकारो, पाठ–समीक्षको तथा सहित्यिक अलोचको के अनुभवो से प्रेरणा लेनी पडेगी।[६१]

राष्ट्रीय आन्दोलन के जुझारू दौर (१९२०–४७) मे हिन्दी साहित्य ने, निर्माणाधीन राष्ट्र के सन्दर्भ मे सामाजिक विषमताओ को कैसे दूर किया जाय, राष्ट्र का स्वरूप क्या मूलत हिन्दू हो, राजनीति मे व्याप्त साम्प्रदायिक हिसा की प्रवृत्ति से कैसे निजात पाया जाय, नारी मुक्ति सीमाए क्या होगी ग्रामीण अचल को मुख्यधारा से जोडने की अनिवार्यता, पाश्चात्य सस्कृति बनाम स्वदेशी सस्कृति जैसे अनेकानेक विषयो पर व्यापक रूप से टिप्पणी की। निराला, प्रेमचन्द, प्रसाद, महादेवी वर्मा, गुप्त, पत वैचारिक रूप से एक दूसरे से भिन्न थे। किन्तु राष्ट्रीय स्वतत्रता के सवाल पर एकमत थे। चूँकि राजनीतिक स्वतत्रता अधूरी रह जाती यदि सामाजिक सक्रमण को उसके तार्किक लक्ष्य तक नही ले जाया जाता इसलिए हिन्दी साहित्य भारतीय समाज मे आमूल–चूल परिवर्तन लाने के लिए प्रतिबद्ध था।

१९२०–४७ के दौर मे भारत मे दो शक्तिशाली विचारधाराओ का उदय हुआ जिसने जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया, यह था, गॉधीवाद और मार्क्सवाद। दोनो विचारधाराये एक दूसरे से सिद्धान्ततः भिन्न थी किन्तु दोनो ने राष्ट्रीय आन्दोलन के जनवादी पक्ष को मजबूत बनाया। गॉधी के

करिश्माई व्यक्तित्व से निराला, प्रेमचन्द, महादेवी, प्रसाद सभी स्पदित हुए। फिर भी गॉधी के कार्यक्रमो को लेकर उनकी प्रतिक्रियाओ मे भिन्नता दिखाई पडती है। निराला गॉधी से सामान्यत प्रभावित है लेकिन हिन्दी भाषा के सवाल पर गॉधी से मतान्तर रखते है। प्रेमचन्द पर रूसी जनवादी साहित्य का भी प्रभाव है उनकी परवर्ती रचनाओ मे यह प्रभाव बढता हुआ ही आभासित होता है यद्यपि उनकी आस्था समानान्तर मे गॉधीवाद मे भी बनी हुई थी। महादेवी और पत मार्क्सवाद को अस्वीकार करते है किन्तु उनका नया मानव पूरी तरह से गॉधीवादी सॉचे मे नही ढला है। प्रसाद का साहित्य सतही अध्ययन करने पर अतीतोन्मुखी प्रतीत होता है लेकिन वर्तमान से सरोकार का उनका तरीका अनूठा है। उनके सभी ऐतिहासिक नाटको मे राष्ट्रीय लक्ष्यो और आदर्शों का बिम्बात्मक उल्लेख किया गया है जो नैरेटिव रणनीति और शिल्प सज्जा की दृष्टि से अद्‌भूत है। प्रसाद के समकालीन गुप्त भी गॉधी को राष्ट्र की बागडोर सौपकर नये भारत के निर्माण के प्रति आश्वस्त दिखाई पडते है। जैसा कि आगामी पृष्ठो से विदित हो जाएगा, रचना सदैव प्रचलित विचारधाराओ की मातहत नही होती। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय प्रकाशित किया गया साहित्य कभी–कभी गॉधीवाद तथा मार्क्सवाद के आदर्शों से परे जाकर परिकल्पना के स्तर पर नये राष्ट्र और समाज का सृजन करता हुआ दिखाई देता है। यही तथ्य साहित्यिक स्रोतो की परम्परागत स्रोत सामग्री पर सर्वोपरिता को प्रतिष्ठित भी करता है।

इतिहास लेखन मे पाठ विश्लेषण की पद्धतियॉ सदैव परिवर्तनशील रही है। प्रारम्भ मे यह कहा जाता था, कि पाठ मे छिपे अर्थ को बाह्य वैचारिक सदर्भ की माध्यमिकता/ हस्तक्षेप से न जाना जाये। अर्थात पाठ का अर्थ प्रयुक्त मुहावरो बिम्बो, चिन्हो के आधार पर किया जाय। इसे हरमनाथटिकल विधि भी कहा गया। प्रबोधन के युग मे परवर्ती चरणो मे जब इतिहास का अध्ययन एक अनुशासन के रूप मे किया जाने लगा तब रचनाओ के सापेक्ष विश्लेषण को अधिक महत्व दिया जाने लगा। रॉके का मत था कि रचनाओ को समग्रता से समझने के लिए उनके विश्लेषण के अलावा रचनाकार का परिवेश तथा उसपर पडने वाले प्रभावो को जानना भी आवश्यक है।[62] मार्क्सवाद ने भी वस्तुनिष्ठ परिस्थितियो के सदर्भ मे रचना को समझने का आग्रह किया। उत्तर औपनिवेशिक काल मे विचारको ने प्रबोधन की धरोहर तथा मार्क्स की उपलब्धियो को ठुकराते हुए रचना की स्वायत्तता को रेखाकित किया। उदाहरण स्वरूप, पाठक प्रतिक्रिया (Reader Response) सिद्धान्त के अनुसार पाठ अलग–अलग पाठको पर अलग–अलग प्रभाव डालता है। अतएव पाठ मे छिपा एकागी अर्थ खोजना बेकार है।

व्याख्यानो के इस मकडजाल मे न उलझकर भी यह तय कर पाना कठिन है कि पाठ की सर्वोपयोगी व्याख्या कौन सी हो? सदर्भ की उपेक्षा करने पर इतिहासकार पर यह आरोप लगाना

स्वाभाविक है कि उसकी पद्धति अनैतिहासिक है। दूसरी ओर पाठ के अर्थ को बाह्य सन्दर्भों की तहो मे खोजना भी उतना ही निरर्थक होगा। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध मे मैने यथा सभव अतिरेको से बचने की कोशिश की है। फिर भी यह कहना कि अतिरेको से बचने की प्रक्रिया मे मैने किसी नवीन विधा का निर्माण किया है – अतिशयोक्ति होगी।

# सन्दर्भ सूची


१ देखिए डॉमनिक लॉ कापरा, रीथिकिग इटलेक्चुएल हिस्ट्री इथका, १६८३ पृष्ठ ३०–३१, कैथरीन बेल्सी, क्रिटिकल प्रैक्टिकल, लन्दन, मेथ्यून १६८०, वाल्टर बेजामिन, इल्यूमिनेशस, न्यूयार्क, शौकेन, १६७०, टेरी इगलटन, मार्क्सिजम एण्ड लिटरेरी क्रिटिसिजम, कैलिफोर्निया वर्कले प्रेस, १६७६

२ ललित जोशी, साहित्य और इतिहास लेख अर्न्तसम्बन्ध – सदर्भ गुमानी, इतिहास बोध, इलाहाबाद १६६६ ४६–५२

३ आर०जी० कालिगवुड, द आइडिया आफ हिस्ट्री आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १६६२ पृष्ठ १३२

४ वही

५ वही पृष्ठ २४५

६ वही

७ एम०एच० एब्रम्स, ए ग्लासरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स, बगलौर प्रिज्म बुक्स,१६६३ पृष्ठ २४८

८ इस शब्दावली का प्रयोग पहली बार स्टीफैन ग्रीन ब्लैट द्वारा १६८२ मे किया गया था स्टीफेन ग्रीन ब्लैट, प्रस्तावना, द फार्म्स आफ पावर एण्ड द पावर्स आफ फार्म इन द रेनेसा, जानर १६८२, पृष्ठ ३–६ इस अध्याय मे ग्रीन ब्लैट के विचारो का सक्षिप्त रूप एब्रम्स की पुस्तक से लिया गया है (पृष्ठ २४४)

६ वही पृष्ठ २५०

१० सुधीर चन्द्र ने हिन्दी बॅग्ला गुजराती मे उपलब्ध साहित्य का अध्ययन किया है (लिटरेरी एण्ड सोशल कौनशसनेस इन कालोनियल इण्डिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १६६२ । चन्द्र ने इस साहित्य को परम्परा/ आधुनिकता, भारतीय/ विदेशी की टकराहट के सदर्भ मे देखा है (पृष्ठ १–१६) सुमित सरकार की नवीनतम रचना, राइटिग सोशल हिस्ट्री आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, ६७, के छठवे, सातवे और आठवे अध्याय मे इसका प्रमाण मिलता है

११ माध्यमिकता की भूमिका के लिए देखे हेडेन व्हाइट, ट्रापिक्स आफ डिस्कोर्स, एसेज इन कल्चरल क्रिटिसिजम, जान हापकिस, युनिवर्सिटी प्रेस, बाल्टीमोर, १६७८ पृष्ठ १२५–१२६

१२ लेवी स्ट्रास – स्ट्रक्चरल एन्थ्रोपॉलजी, न्यूयार्क, १६६८ पृष्ठ १२

१३ मैक्सिम गोर्की जहॉ कम्युनिष्ट थे वही इवान ब्यूनिन कम्युनिष्ट विरोधी मैक्सिम गोर्की की प्रमुख रचना जहॉ 'मदर' है वही इवान ब्यूनिन कि 'द वेल आफ डेज' 'दिविलेज', 'डार्क डब्यूज'.

१४ होवर्ड फास्ट जब रूसी क्राति का समर्थक था तो उसके उपन्यास साम्यवादी विचारधारा से अनुप्राणित थे जिसका प्रतिफलन उसके प्रसिद्ध उपन्यास 'स्पाटिक्स' मे दिखाई पडता है किन्तु १६५८ के आस–पास होवर्ड फास्ट ने साम्यवाद से सम्बन्ध तोड लिया, केवल सम्बन्ध ही नही तोड लिया बल्कि रूस के कम्युनिष्ट शासन मे लेखको और विचारको की प्रताडना पर एक पुस्तक भी लिखी 'द नेकेड गाड' जिसका उपशीर्षक था 'द राइटर एण्ड दि कम्युनिष्ट पार्टी'। 'अर्नेस्ट हेमिग्वे' कभी भी साम्यवादी नही था लोकतात्रिक मूल्यो का समर्थक था उसकी पुस्तक 'फार हूम द वेल्ट टास' स्पेनिश गृहयुद्ध (१६३६) की पृष्ठभूमि पर आधारित है

१५ 'जी पाल सात्र' और 'अल्बेयर कामू' के राजनीतिक सरोकार इतने भिन्न थे कि उनकी बातचीत बन्द हो गई थी। सात्र ने स्टालिन की निरकुशता का समर्थन किया था और उसे अनिवार्य बताया। जब कि कामू ने किसी भी प्रकार की निरकुशता का विरोध किया। उसके लिये स्वतत्रता किसी भी उपलब्धि की आवश्यक शर्त है। उसकी प्रसिद्ध उक्ति का आशय यह है कि जो लोग रोटी के लिये विचार और अभिव्यक्ति की स्वतत्रता को छोडने के लिये तैयार है, वे लोग उस समय क्या करेगे जब रोटी छिन जाएगी और मुँह पर ताला लगा रहेगा

१६ रिल्के जर्मन राष्ट्रवाद के समर्थक थे जबकि टामसन किसी सकीर्ण राष्ट्रवाद के समर्थक नही थे।

१७ टी०एस० इलिएट हिटलर और मुसोलिनी के समर्थक नही थे किन्तु एजरापाउण्ड ने मुसोलिनी का समर्थन किया, द्वितीय महायुद्ध मे रोम के रेडियो स्टेशन से उसकी वार्ताए प्रसारित की गई

१८ एकरमैन, कनवसेशन्स विथ गेटे, जे०एम० डेण्ट एण्ड सस लिमिटेड लन्दन १६३० पृष्ठ ४२५

१६ कार्ल मार्क्स थीयरीज आफ सरप्लस वैल्यू खण्ड–१ प्रोगेस पब्लिसर्स मास्को १६७४ पृष्ठ १४०

२० सैमूअल मूर और एडवर्ड स्कलिग द्वारा अनुदित कार्ल मार्क्स कैपिटल खण्ड–१, जार्ज एलेन एण्ड एनविन लन्दन – १६४६ पृष्ठ १५७

२१ द्रष्टब्य ग्रामची, लुकाच, एडम सैफ की कृतिया

२२ It conceives of the Political perspective not as some supplementary method not as an optional auxillary to other interpretive methods current today – the psychoanalytic, or the mythocritical the stylistic, the ethical the structural - but rather as the absolute horizon of all reading and all interpretation the political unconscious (Fredric Jameson, The Political Unconscious, Routledge, London, 1996, P 17)

२३ डेविड मैगारशाक द्वारा अनुदित दोस्तोवोस्की का उपन्यास 'द डेविल्स' हारमण्ड वर्क्स पेग्विन, १६५३, अनुवादक की भूमिक P VIII, IX

२४ एडवर्ड सईद, कल्चर इम्पियरीयलिजम, लदन विण्टेज १६६४ मुख्य पृष्ठ पर गार्जियन मे प्रकाशित टेरी इगल्टन की समीक्षा का एक अश

२५ एडवर्ड सईद, ओरियण्टलिजम, पेग्विन बुक्स, लन्दन, १६६५ पृष्ठ १५

२६ ऐसा नही था कि सभी अग्रेज भारत मे कम्पनी शासन का समर्थन करते थे। जिनका कपनी मे शेयर था उनका उद्देश्य था कि कम्पनी को सिर्फ व्यापारिक गतिविधियो मे ही लगा रहना चाहिये। उसे भारत मे कम्पनी शासन की स्थापना के लिए प्रयास नही करना चाहिये। इससे युद्ध की सम्भावना बढती है, खर्चे बढते है और शेयरधारको का मुनाफा कम होता है। इस तरह की धारणाए सृजनात्मक साहित्य मे नही दीख पडती कम से कम मुझे तो नही दिखाई पडा।

२७ वाल्टर काफमैन, 'फ्राम शेक्सपियर टू एक्सिजटलिजम' ऐकर बुक्स, न्यूर्याक, १६६० पृष्ठ ८०

२८ जनवरी १६३० यग इण्डिया

२६ Nation along the high road of huminity, we shall be called upon to bring our own vessel of sacred water- the water of worship- to sweeten the history of man into purity, and with its sprinkling make the trampled dust of the conturies blessed with fruitfulness-रवीन्द्र नाथ टैगोर, नेशनलिजम, रूपा, कलकत्ता १६६२ पृष्ठ ७६

३० बेनेडिक्ट एडरसन, इमैजिड कम्यूनिटीज, वर्सो, लन्दन १६६३ पृष्ठ ४६

३१ पार्थ चटर्जी, ए नेशन एण्ड इट्स फैगमेट्स १६६३ पृष्ठ ७

३२ वही

३३ वही पृष्ठ ८

३४ क्रिस्टोफर आर० किग, वन लैग्वेज टू स्क्रिपट्स द हिन्दी मूवमेट इन नाइनटीथ सेचुरी इडिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस १६६४ पृष्ठ २६

३५ वही

३६ वही पृष्ठ २८

३७ वही पृष्ठ २६

३८ जार्ज ग्रिअर्सन, लिगविस्टिक सर्वे आफ इडिया, कलकत्ता, खण्ड–दस, भाग–एक, १६११ पृष्ठ ४५–४८

३६ किग, पृष्ठ ३३

४० वही पृष्ठ ३८

४१ वही

४२ द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, कार्य विवरण दूसरा भाग, इलाहाबाद, १६१४ पृष्ठ २२८–२३३

४३ किग, पृष्ठ ३६

४४ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ स० व्रजरत्नदास, नागरी प्रचारणी सभा काशी सवत २००६, पृष्ठ ४८८

४५ वही पृष्ठ ४८७

४६ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्ययात्रा, साहित्य सगम इलाहाबाद, १६८६ पृष्ठ ४५

४७ 'पुष्प की अभिलाषा', माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए सम्पादक श्रीकान्त जोशी, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली १६६६ पृष्ठ ६७.

४८ जयशकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, प्रसाद वाङ्गमय खण्ड–२ सपादक रत्नशकर प्रसाद लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १६८५ पृष्ठ ७२०

४६ सोहनलाल द्विवेदी, 'बापू', आजादी की अग्निशिखाएँ, सम्पादक डा० शिव कुमार मिश्र, इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड नई दिल्ली १६८८ पृष्ठ ७३

५० सोहनलाल द्विवेदी, 'भैरवी', आजादी की अग्निशिखाए, पृष्ठ ७१

५१ सुभद्रा कुमार चौहान, 'खूब लडी मरदानी', आजादी की अग्निशिखाए, पृष्ठ ५८

५२ बालकृष्ण शर्मा नवीन, 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ', आजादी की अग्निशिखाए, पृष्ठ ६३

५३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–२, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १६६३, पृष्ठ १४१

५४ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली भाग–१ बाणभट्ट की आत्मकथा, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १६६१, पृष्ठ १७१

५५ चॉद, अप्रैल १६२३, पृष्ठ ४३७

५६ वही, पृष्ठ ४३८

५७ वही, पृष्ठ ४३३

५८ वही, पृष्ठ ५४६

५६ सच्चिदानन्द वात्स्यायन, 'हिन्दी' आज का भारतीय साहित्य, डा० राधकृष्णन, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली १६५८ पृष्ठ ३७५

६० सुजीत मुखर्जी, टूवर्डस ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ इडिया, इडियन इस्टीट्यूट आफ एडवास स्टडीज, शिमला, १६७५, पृष्ठ २४

६१ वही, पृष्ठ ३०

६२ जी०पी०गूच, हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरिएस इन द नाइनटीथ सेचुरी, ओरियट लागमैन्स, लन्दन, १६६१, पृष्ठ ७३–७५

अध्याय–१

# औपनिवेशिक शासन और आरम्भिक हिन्दी साहित्य

परम्परागत रूप मे १६२० के पूर्व के आधुनिक कालीन हिन्दी साहित्य रचना ससार को दो प्रमुख साहित्य कर्मियो–भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर भारतेन्दु युग एव द्विवेदी युग मे विभाजित किया जाता है। "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०–८५) इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द की वश परम्परा मे उत्पन्न हुए थे"।[1] "भारतेन्दुजी के पिता गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास एक सत्कवि हो गये है। भारतेन्दु जी के हिन्दी फारसी और अग्रेजी के प्रथम शिक्षक ईश्वरीदत्त तिवारी, मौलबी ताज अली और बापूनन्दकिशोर थे। इन्होने कुछ दिन क्वीस कालेज बनारस मे शिक्षा पाई। इन्होने मराठी, बगला, गुजराती मारवाडी आदि अनेक भाषाए समय–समय पर स्वय पढ ली। इनके काव्य गुरू प० लोकनाथ जी थे। १४ वर्ष की अवस्था मे बापू गुलाबराय की कन्या मन्नोदेवी से इनका विवाह हुआ इनमे स्वदेश प्रेम की मात्रा विशेष थी इनके काव्यो और कार्यों से स्वदेश प्रेम के सैकडो उदाहरण मिल सकते है।[2] "ग्रियर्सन ने भारतेन्दु के सम्बन्ध मे लिखा, The only critic of northen India"[3] उनकी मृत्यु पर 'सरस्वती' की टिप्पणी उल्लिखित है "भारत वर्ष के एक छोर से दूसरे छोर तक हाहाकार मच गया काशी का तो कहना ही क्या था पेशावर से लेकर नेपाल तक कलकत्ते से लेकर बम्बई तक सैकडो ही स्थानो मे शोक समाज हुए।"[4] "कवि होने के साथ भारतेन्दु पत्रकार भी थे। 'कवि वचन सुधा' व 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' उनके सम्पादन मे प्रकाशित होने वाली प्रसिद्ध पत्रिकाए थी।[5] "नगेन्द्र उनके बारे मे लिखते है कि, "वे राजभक्त होते हुए भी वे देश भक्त थे।"[6] भारतेन्दु का सम्बन्ध समकालीन राष्ट्रीय राजनीतिज्ञो एव समाज सुधारको से भी रहा। "सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने जब नेशनल फण्ड खोला और काशी पधारे तब भारतेन्दु ने उनकी बडी सहायता की और एक रात जलसा मे उनका सत्कार भी किया।[7] "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सम्पर्क मे भी आये। विद्यासागर की विधवा माता कुछ वर्ष बनारस मे रही। भारतेन्दु उनकी देखभाल तथा सेवा करते रहे।[8] दरअसल भारतेन्दु एक अभिजात्य परिवार से सम्बन्ध रखते थे फलत उनके यहाँ समाज सेवक, राजनीतिज्ञ एव बडे प्रशासको का आना–जाना लगा रहता था।

भारतेन्दु के समकालीन "प्रताप नारायण मिश्र (१८५६–१८६४) का जन्म बेजगॉव, जिला उन्नाव मे हुआ था।[9]" पिता ने उन्हे अग्रेजी मदरसे मे भेजा. धीरे–धीरे पढना उन्हे पीडाजनक मालुम होने लगा और अग्रेजी की थोडी बहुत विज्ञता प्राप्त करके आपने १८७५ ई० के लगभग स्कूल से अपना

पिण्ड छुडाया। इसके कुछ दिनो बाद इनके पिता की मृत्यु हो गई स्कूल मे इनकी दूसरी भाषा हिन्दी थी पर इन्होने उर्दू मे भी अच्छा अभ्यास कर लिया था तथा फारसी और सस्कृत मे भी कुछ कविताए लिखी है बग्ला भी इन्होने सीख लिया था। जिस जमाने मे प्रतापनारायण स्कूल मे थे 'बापू हरिश्चन्द्र' की 'कविवचन सुधा' उन्नत अवस्था मे थी। उसमे बहुत ही मनोरजक गद्य–पद्यमय लेख निकलते थे। उसे और बापू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओ को भी पढकर प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की तरफ हुई इन्होने १५ मार्च१८८३ से 'ब्राह्मण' नामक एक बारह पृष्ठ का मासिक पत्र निकालना शुरू किया। यह कोई दस वर्ष तक निकलता रहा पर निकलने मे बहुत अनियमित था'' ।[१०] ''प्रताप लहरी' उनकी प्रतिनिधि कविताओ का सकलन है। भारतेन्दु की भॉति इन्होने भी विभिन्न विषयो को लेकर काव्य रचना की है किन्तु भक्ति और प्रेम की तुलना मे सामाजिक, देश दशा और राजनीति का वर्णन उन्होने अधिक मनोयोग से किया है'' ।[११] प्रताप नारायण मिश्र अपने लेखो और साहित्यिक रचनाओ के माध्यम से प्राय सभी समकालीन समस्याओ को चित्रित करते है।

लगभग इसी समय मिर्जापुर जनपद के 'बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन (१८५५–१९२३) ने अपने प्रभावशाली रचना कर्म से हिन्दी जगत मे महत्वपूर्ण स्थान बनाया। ''भारतेन्दु की भॉति उन्होने भी पद्य और गद्य दोनो मे विपुल साहित्य की रचना की है। उनका मुख्य क्षेत्र जातीयता समाज सुधार और देश प्रेम की अभिव्यक्ति है। यद्यपि उन्होने राजभक्ति सम्बन्धी कविताओ की भी रचना की है तथापि राष्ट्रीय भावना की नई लहर से उनका अविछिन्न सम्बन्ध था। देश की दुरावस्था के कारणो का जितना वर्णन उन्होने किया है उतना भारतेन्दु की कविताओ मे नही मिलता'' ।[१२] डा० किशोरी लाल गुप्त उद्धृत करते है कि, ''प्रेमघन जी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति भी हुए जिन दिनो वे सभापति हुए थे उन दिनो 'राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन' उसके मन्त्री थे'' ।[१३] प्रेमघन जी का रचना सन्दर्भ गॉधी आन्दोलन के शुरूआती दौर तक पहुँचता है फलत उनका रचना सदर्भ अधिक विविधतापूर्ण रहा है।

''बालकृष्ण भट्ट (१८४४–१९१४) का जन्म प्रयाग मे हुआ था, प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही सस्कृत मे हुई थी और बाद मे मिशन स्कूल से इण्ट्रेस की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। यह परीक्षा देने के उपरान्त ही आप वहॉ अध्यापक हो गये किन्तु ईसाई वातावरण के उस स्कूल मे आपकी पट नही सकी और शीघ्र ही त्यागपत्र देकर अलग हो गये। इसके उपरान्त भट्टजी ने अपना स्वाध्याय घर पर ही जारी रखा १८६८ के लगभग आपने वहॉ के सी०ए०वी० स्कूल मे शिक्षक का कार्य प्रारम्भ किया और थोडे दिनो बाद आप कायस्थ पाठशाला इटर कालेज मे सस्कृत के शिक्षक हो गये।''[१४] ''यही पर उनका सम्पर्क 'मार्डन रिव्यू' के सम्पादक 'रामानन्द चट्टोपाध्याय', पत्रकार 'पण्डित सुन्दर लाल', और

'पुरूषोत्तम दास टडन' से हुआ। शिक्षक का कार्य करते हुए आपने बाबू हरिश्चन्द्र की प्रेरणा पर सितम्बर १८७७ मे 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्र निकालना प्रारम्भ किया जिस पर यह छपा रहता था सूझे विवेक विचारि उन्नति कुमति सब या मे जरै/ हिन्दी प्रदीप 'आकाश मूरखतादि भारत तम हरै''।[१५] भट्ट जी का 'हिन्दी प्रदीप' साम्राज्यवादी दबावो के बीच राष्ट्रीय चेतना के नये आयामो का प्रणेता बना।

''महावीर प्रसाद द्विवेदी(१८६४–१९३८) का जन्म जिला रायबरेली के धौलपुर नामक ग्राम मे हुआ था । कालान्तर मे इन्होने सस्कृत, गुजराती, मराठी और अग्रेजी का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया मिडिल कक्षाओ मे इन्होने वैकल्पिक विषय के रूप मे फारसी पढी तथा इन्हे बग्ला का भी अच्छा अभ्यास था। आजीविका के लिए द्विवेदी जी ने रेलवे की नौकरी की किन्तु उच्चाधिकारी से कुछ कहासुनी हो जाने के कारण इन्होने त्यागपत्र दे दिया। साहित्य-साधना तो द्विवेदी जी नौकरी के दिनो मे भी कर रहे थे किन्तु नौकरी छोडने के बाद तो ये पूर्णतया हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा मे जुट गये। सन १९०३ मे ये 'सरस्वती' के सम्पादक बने और १९२० तक बडे परिश्रम और लगन से कार्य करते रहे। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे इन्होने हिन्दी भाषा और साहित्य के उत्थान के लिए जो कार्य किया वह चिरस्मरणीय रहेगा''।[१६] अपने आत्मनिवेदन लेख मे द्विवेदी जी लिखते है,'' सरस्वती मे वही मसाला जाने देता जिसमे मै पाठको का लाभ समझता। मै उनकी रूचि का सदैव खयाल रखता और देखता रहता कि मेरे किसी काम से उनको सत्पथ से विचलित होने का साधन न प्राप्त हो। जानबूझकर मैने कभी अपनी आत्मा का हनन नही किया न किसी के प्रसाद की प्राप्ति की आकाक्षा की''।[१७] द्विवेदी जी के प्रोत्साहन और उद्योग से कवियो एव लेखको की एक नई पीढी तैयार हुई। जिनमे मैथिलीशरण गुप्त और प्रेमचन्द्र उल्लेखनीय रहे जिन्होने अपने गुरू द्विवेदी जी से भी अधिक ख्याति प्राप्त की।

इस अध्याय मे यह विचार करने की कोशिश करेगे कि १९२० के पूर्व उपरोक्त लेखक अपनी रचनाओ मे समकालीन प्रश्नो से किस प्रकार टकराये उनकी क्या सीमाये रही तथा उन्होने आने वाली साहित्यिक पीढी को विरासत मे क्या दिया। १९२० के पूर्व की साहित्यिक कृतियॉ एव उनके विचार आने वाले काल मे नये सदर्भो मे क्या बोझ सी लगी या उन्हे एकदम से नयी परम्पराये स्थापित करनी पडी या आने वाली पीढी ने उन्ही परम्पराओ को सिर्फ विकसित किया।

X X X X X

१९२० के पूर्व के रचनाकारो मे कुछ रचनाओ की प्रवृत्ति ऐसी भी पायी जाती है जिसे साम्राज्यवादी शक्तियो के पक्ष मे माना जाता है और उसके लिए राजभक्ति शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। यद्यपि ऐसी धारणा तब ही बनती है जब हम रचनाओ का सतही अध्ययन करते है। समकालीन परिस्थितियो, साम्राज्यिक दबावो आदि का सूक्ष्मता के साथ अन्वेषण करने पर यह प्रवृत्ति एक रास्ता प्रतीत होती है जिसके द्वारा रचनाकार राष्ट्रभक्ति की बात कर पाता है यद्यपि इस रास्ते पर चलने की प्रवृत्ति आगे के रचनाकारो मे समय के साथ समाप्त हो जाती है या कम हो जाती है। भारतेन्दु अपने लोकप्रिय भाषण 'भारत की उन्नति कैसे हो सकती है' मे कहते है कि, "अग्रेजो के राज्य मे सब प्रकार का सामान पाकर, अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करे तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है"।[१८] भारतेन्दु यह भी कहते है कि, "सन् १८५७ के विद्रोह की घटना भविष्य मे अग्रेजो और भारतवर्ष के पारस्परिक सम्बन्ध के लिए घातक हुई।[१९] फिर भी तारीफ करनी चाहिये सहृदय अग्रेजो की उन्होने बिगडी बात को बहुत जल्दी बना लिया। महारानी विक्टोरिया का घोषणा पत्र पढा गया, लार्ड लिटन के दरबार मे भारत के राजा महाराजाओ ने विक्टोरिया को साम्राज्ञी स्वीकार किया। इडियन कौन्सिल ऐक्ट, हाइकोर्ट ऐक्ट, स्वायत्त शासन ऐक्ट आदि के साथ ही सडको, रेलो, तार डाक विभाग आदि की स्थापना से देश मे एक सूत्रता स्थापित हुई और औद्योगिक तथा वैज्ञानिक उन्नति मे बहुत सहायता मिली"।[२०] यही नही शभूनाथ जोशी उद्घृत करते है, "अपनी ग्यारह वर्ष की उम्र मे जब उन्होन महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर 'अन्तर्दीपिका' (१८६१) लिखी वे पारम्परिक राजभक्ति के सस्कार से आक्रान्त थे। उन्नीस वर्ष की उम्र मे ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन पर 'श्री राजकुमार स्वागत पत्र' लिखा तथा इसके एक साल बाद उनके काशी आने पर 'सुमनोञ्जलि' अर्पित की इनमे भी प्राचीन सस्कार हावी थे"।[२१] "१८८२ मे प्रेस को स्वतन्त्रता देने पर 'रिपनाष्टक' भी लिखा"।[२२] १८८४ मे विक्टोरिया के चतुर्थ पुत्र के मरने पर बनारस मे उन्होने टाउनहाल मे एक शोक सभा का आयोजन किया"।[२३] प्रिस आफ वेल्स के आगमन पर भारतेन्दु ने टिप्पणी की "जिमि रघुवीर आये अवध"।[२४]

इसी तरह बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' "ईस्ट इडिया कपनी को सुखदायक राज"[२५] मानते है। ब्रिटिश शासन के अकाल नीति से सतुष्ट प्रेमघन लिखते है "जौ न दया करि देवि दान दरियाव बहाती/ कोटिन प्रजा हिन्द की बिना अन्न मर जाती"।[२६] सम्राट सप्तम एडवर्ड के भारत मे राज्याभिषेक के अवसर पर वे कहते है, "तेरे सुखद राज की कीरति है अटल इत/ धर्म राज रघुराम प्रजा हिय मे जिमि अकित"[२७]। इस तरह आगामी समय मे गाधीजी जिस आदर्श 'रामराज्य' की कल्पना करते है वह प्रेमघन के लिए ब्रिटिश राज मे ही चरितार्थ है।

बालकृष्ण भट्ट जैसे मुखर पत्रकार ने भी साम्राज्यवादी शक्ति के पक्ष मे लिखा। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी उद्धृत करते है कि "पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने स्तुतिपरक 'बडो का बडप्पन' लेख लिखकर बताया कि भारत को श्रीमान् जार्ज पचम महाराज का आगमन वैसा ही सुखद हुआ जैसा ग्रीष्म के प्रचण्ड ताप से सतापित धरती को वर्षा काल के नवमेघोदय से होता है।"[२८]

इसी तरह महाबीर प्रसाद द्विवेदी की रचना भी साम्राज्यवाद के पक्ष मे कही – कही दिखाई पडती है। चतुर्वेदी जी लिखते है, "द्विवेदी जी ने भी कृतज्ञता प्रकाश आदि रचनाओ मे कुछ सुविधाएँ देने वाली सरकार की मुक्त कठ से प्रशसा की है और हर्ष की इतनी असस्कृत अभिव्यक्ति की है मानो किसी बच्चे को अभीष्ट खिलौना मिल गया हो।"[२९] द्विवेदी 'हिन्दी की वर्तमान दशा' शीर्षक से अपने लेख मे लिखते है," अग्रेजो के शासन की कृपा से जब शिक्षा का प्रसार बढा और अन्य भाषाओ मे अच्छे–अच्छे समाचार पत्र और पुस्तके निकलने लगी तब हिन्दी के दो चार हितचितको का ध्यान अपनी मातृभाषा की ओर गया।[३०] यही नही वे अग्रेजी भाषा एव प्रशासन को समाचार पत्रो के विकास के लिए वरदान मानते है। "वह अग्रेजी शासन ही का प्रसाद है"।[३१] महाराज एडवर्ड सत्तम के स्वर्गवास पर द्विवेदी जी लिखते है," हमारे राज राजेश्वर सप्तम एडवर्ड का स्वर्गवास हो गया है इस दुर्घटना ने ब्रिटिश साम्राज्य ही नही किन्तु सारे ससार को शोकाकुल कर दिया है भारतवासियो को आपकी मृत्यु से विशेष कष्ट हुआ है परमशेवर आपकी आत्मा को शान्ति और आपके कुटुम्बियो और प्रजा को धैर्य दे।"[३२] अगस्त १९१० के 'सरस्वती' अक मे सर विलियम वेडरबर्न की प्रशसात्मक जीवनी लिखते हुए उन्हे काग्रेस की स्थापना मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाला तथा स्त्री शिक्षा का समर्थक घोषित किया गया है। इसी तरह साम्राज्यवादी प्रवर्तको एव प्रशासको के चित्र 'सरस्वती' की सज्जा के अग होते थे। फरवरी मार्च १९०३ के 'सरस्वती' अक मे लिखा है," यदि भारतवर्ष और ग्रेट ब्रिटेन की सयुक्त सैनिक शक्ति से सीमा पर निरन्तर शान्ति रह सके यदि राजा–महराजो एव प्रजा मे, अग्रेजो और हिन्दुस्तानियो मे और शासको तथा शासित लोगो मे आपस का भाव बना रहे और यदि इन्द्र राज अपनी उदारता मे कमी न करे तो कोई चीज भी उन्नति की गति को रोक नही सकती।"[३३]

परन्तु हम आगे देखेगे कि साम्राज्यवाद की इतनी पक्षधरता के बावजूद उसके प्रति विरोध भी कम नही है। यद्यपि इस पक्षधरता के कई कारण परिलक्षित होते है पहला तो यही जैसा कि प्रताप नारायण मिश्र अपने व्यगात्मक लेख 'हम राजभक्त है' मे भारत की सस्कृति एव शास्त्रो मे राज्य के दैवी सिद्धान्त की मान्यता की चर्चा करते है। वे कहते है "राजभक्ति हमारा सनातन धर्म है"।[३४] दरअसल अग्रेजो के आगमन के पूर्व छोटे–छोटे राज्यो का उदय और उनकी अलोककल्याणकारी नीति ने सामान्य जनता को इतना रूष्ट कर दिया था कि वे किसी विदेशी शासन के खतरे की पहचान न कर

सके और उसके प्रति नकारात्मक भावना जिस गतिशीलता के साथ विकसित होनी चाहिये थी न हो सकी। फलत जन के साहित्यकारो ने भी उन्ही की मनोवृत्ति के अनुरूप अपनी रचनाए दी और औपनिवेशिक शासन के खतरो को धीरे–धीरे उजागर किया।

भारतेन्दु के साहित्य का इस सदर्भ मे मूल्याकन करते समय हमे ध्यान रखना चाहिये कि वे सेठ अमीचन्द के खानदान से सम्बन्ध रखते थे जिन्होने कम्पनी शासन की मदद मे राष्ट्रहित को भुला दिया था यद्यपि क्लाइव ने उन्हे भी धोखा दिया था। दरअसल साम्राज्यवाद की पक्षधरता की यह प्रवृत्ति समकालीन राजनीतिज्ञो मे भी कम नही थी। मुसलमानी राज से ब्रिटिश राज की तुलना करते हुए एक राजनीतिज्ञ मे कहा था, "रक्षा, शिक्षा और रेलो के लिहाज से तो अग्रेजी राज्य अच्छा है"।[३५] जैसा कि शिवकुमार मिश्र भी लिखते है, "राष्ट्रीयता की जो चेतना हममे आज है उस युग मे सभव नही थी और अपने युग के अनुरूप राष्ट्रीयता की माग हम भारतेन्दु बाबू से ही क्यो करे जबकि उस युग के नवजागरण के विचारको मे वह उस रूप मे नही मिल पाती।[३६]

हमे इन साहित्यकारो की इस सदर्भ मे समीक्षा करते समय उनके ऊपर पडने वाले साम्राज्यवादी दबावो के बारे मे भी विचार कर लेना चाहिए। हिन्दी जो कि अभी अपने विकास के आरम्भिक दौर से गुजर रही थी उसे प्रोत्साहन की जगह दमन का शिकार होना पडा। साम्राज्यवादी असहयोग की चर्चा करते हुए भारतेन्दु के सम्बन्ध मे डा० किशोरी लाल गुप्त उदधृत करते है कि, "१८७० मे काशी के सूबे मे लार्ड मेयो की अध्यक्षता मे एक 'लेवी' दरबार हुआ था। भारतेन्दु विनोदशील तो थे ही उन्होने 'लेवी प्राण लेवी' नाम से एक परिहास लेख 'कवि वचन सुधा' मे प्रकाशित कराया। कुछ दिनो के अनन्तर उन्होने इसी ढग का एक और लेख मर्सिया प्रकाशित किया। 'राजा शिव प्रसाद' ने इन दोनो लेखो का उल्टा–सीधा अर्थ करवाकर तत्कालीन अधिकारियो को रूष्ट करा दिया। इस पर 'कविवचन सुधा', 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' एव 'बालवोधनी' का प्रान्तीय शिक्षा विभाग से खरीद होना बन्द करा दिया गया। अधिकारियो के इस ढुलमुल व्यवहार से अप्रसन्न होकर भारतेन्दू बाबू ने आनरेरी मैजिस्ट्रेरी से इस्तीफा दे दिया। अग्रेज अफसर के प्रति अपने इस असन्तोष की सूचना 'मानसोपान' की भूमिका मे दी है। बेचारे छोटे पद के अग्रेजो को हमारे चित्त की क्या खबर है ये अपनी ही तीन छॅटाक पकाना जानते है।"[३७] साम्राज्यवादी दबावो को उदघाटित करते हुए प्रतीकात्मक रूप से भारतेन्दु जी कहते है, "देखो सच बोलने से तुम्हारी बडी हानि होगी इससे सच मत बोलो। एक मॉ बेटे से सदा सच बोलने को कहे, तब एक दिन बेटे ने कहा, "तुम तो रॉड हो सिगार किसके वास्ते करती हो तो इस पर उसकी मॉ ने लडके को घर से निकाल दिया। अग्रेजी राज का सत्य प्रेम रॉड के सिगार जैसा ही था। खरी कहने वाले पत्रकार वैसे ही कष्ट पाते थे जैसे घर से निकाला हुआ लडका"।[३८] इस तरह

भारतेन्दु जी उस प्रचार की पोल खोलते है जिसमे साम्राज्यवादी शक्तियॉ वैचारिक स्वतत्रता की वकालत करती है पर यथार्थत सत्यता उनके लिए पचाना एक मुश्किल काम होता है।

हमे समकालीन पत्रिकाओ के ऊपर साम्राज्यवादी प्रकोप के गिरने के तथ्यो को भी ध्यान मे रखना चाहिये। बालकृष्ण भट्ट की 'हिन्दी प्रदीप' साम्राज्यवादी दबावो के बीच अपनी मुखरता के लिए प्रसिद्ध थी। ''हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन विक्टोरिया प्रेस प्रयाग से प्रारम्भ हुआ और दो अको के बाद बर्नाक्यूलर ऐक्ट के कारण उसके स्थान पर बनारस लाइट प्रेस से इसका प्रकाशन किया गया १६०८ मे श्री माधव शुक्ल की लिखी 'बम क्या है' कविता प्रकाशित हुई यह कविता प्रशासन को राजद्रोह से पूर्ण लगी इसलिए वहॉ के तत्कालीन गवर्नर मैक ग्रेयर ने उन्हे बुलाया और बताया कि यह कविता राजद्रोह की है और यदि आगे भी ऐसा ही हुआ तो भट्ट जी पर प्रशासन द्वारा राजद्रोह का मुकदमा चलाया जाएगा। इस घटना के बाद 'हिन्दी प्रदीप' का प्रकाशन स्थगित हो गया''।[३९] जैसा कि उनके समकालीन द्विवेदी जी भी लिखते हैं, ''प्रदीप मे कई लेख ऐसे निकले कि वह स्थानीय कर्मचारियो की ऑख का कॉटा हो गया सालभर मे कई बार मजिस्ट्रेट साहब के यहॉ उसके मैनेजर और सपादक की तलबी बराबर होती गई अस्तु यह तय पाया गया कि पत्र बन्द कर दिया जाय''।[४०] पुन डेढ वर्षो बाद १६०६ मे प० सुन्दरलाल के प्रबन्धन मे इसका मुद्रण गगादास द्वारा चौक, इलाहाबाद मे होने लगा। १६१० मे हिन्दी प्रदीप की ज्योति सदा के लिए विलीन हो गई और उसने इस महान पत्रकार की कमर तोड दी थी।''[४१] उसके उपरान्त यह पत्रिका जो राजनीतिक विषयो पर भी टिप्पणी करती थी पूरी तरह साहित्यिक हो गई।

साम्राज्यवादी दबाव 'द्विवेदी के सरस्वती' पर भी कम नही था। भारतेन्दु जो कि बनारस से अपना पत्र निकालते थे उस पर लिखा रहता था Monthly Journal literature of News and Politics",[४२] पर द्विवेदी जी के सम्पादन मे निकलने वाली पत्रिका 'सरस्वती' के नियम के अन्तर्गत यह स्पष्ट लिखा होता था कि ''इस पत्रिका मे ऐसे राजनीतिक या धर्म सम्बन्धी लेख न छापे जाएगे जिसका सम्बन्ध वर्तमान काल से होगा।''[४३] लोगो के सामने यह भी भय उस समय काफी प्रचारित हो गया था कि तिलक को अपने पत्र 'केसरी' की टिप्पणियो की वजह से जेल जाना पडा। द्विवेदी जी भी उद्धृत करते है, ''जब पहले 'केसरी' का जन्म हुआ तभी एक मानहानि के मुकदमे मे फसने से उन्हे कई महीने कारावास – वास करना पडा''।[४४]

इन साम्राज्यवादी दबावो को देखते हुए कहा जा सकता है कि समकालीन साहित्यकार ऐसा कोई जोखिम नही मोल लेना चाहते थे जिसमे उन्हे कारावास या जमानत देना पडे या सरकार की निगाह मे चढ जाय। इसलिए समकालीन साहित्यकार एव पत्रिकाए सीधे साम्राज्यवाद के खिलाफ जाने

से बचती थी क्योकि वे अपना हस्र जानती थी। वे अपने रचनाओ की जब्ती या जमानत को सुरक्षित करने के लिए उन मुद्दो से बचती थी जो सरकार को अप्रिय लगे या कभी–कभी उनकी प्रसशा करके अपनी यह छवि बनाना चाहते थे कि समकालीन साम्राज्यवाद के हम आलोचक नही है। हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि उस समय की शिक्षा दर बहुत ही न्यून थी। पाठको का वैसे ही अकाल पडा रहता था ऊपर से साम्राज्यवादी प्रकोप और प्रोत्साहन की नीति के अभाव के कारण वे प्राय आर्थिक सकट के दौर से गुजरते थे। जैसा कि द्विवेदी जी उद्घृत करते है, "हिन्दी की दशा कुछ ऐसी बुरी है कि अच्छे से अच्छे पत्र को बहुत कम लोग पढते है। इस कारण बेचारे हिन्दी प्रदीप को कोई २८ वर्ष से न मालुम कितना घाटा उठाना पड रहा है"।[४५]

ऐसी स्थिति मे समकालीन रचनाकार एव उनकी पत्रिकाओ का यह नजरिया रहा है कि राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हम सीधे सरकार से टक्कर लेकर नही कर सकते हमे केवल उन कारणो को सामने लाना होगा तथा उन्हे प्रबुद्ध करना होगा जो साम्राज्यवाद के शोषण से अपरिचित है। उन्हे शिक्षित एव साक्षर बनाकर स्वय राष्ट्रीय चेतना के प्रसारको की पक्ति मे खडा किया जा सकता है। वास्तव मे यही उचित भी था यह एक समग्र चेतना की बात थी और इस समग्र चेतना की मजिल तक पहुँचने के लिए उन्हे जिन टेढे–मेढे मार्गों से आगे बढना पडा, उसमे से ही एक प्रवृत्ति साम्राज्यवाद का सकारात्मक चित्रण था न कि राजभक्ति। जैसा कि कथाकार डा० रामदेव शुक्ल भी कहते है, "इस युग के साहित्यकारो मे राजभक्ति या राष्ट्रभक्ति का द्वद नही था साम्राज्यवादी दमन के परिवेश मे अपने साहित्य को जनता के बीच पहुँचाने के लिए कभी कभी साम्राज्यवाद के पक्ष मे मीठी बाते भी की पर साथ ही उस कडवे सत्य को भी जनता के सामने रखा जिससे भारतीय जनता मे राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होना था"।[४६]

**X X X X X**

भारतेन्दु एव द्विवेदी तथा उसके समकालीन साहित्यकारो ने साम्राज्यवादी शोषण का खुलासा किया साथ ही स्वेदशी आन्दोलन की भूमिका तैयार की। भारतेन्दु अपने 'भारत दुर्दशा' नाटक मे कहते है, "पै धन विदेश चलि जात इहै अतिख्वारी/ ताहुपे मँहगी काल रोग विस्तारी/ दिन दिन दूने दुख ईश देत हा – हा री/ सबके उपर टिक्कस की आफत आई/ हा–हा भारत दुर्दशा न देख जाई"।[४७] अपने 'अधेर नगरी' नाटक मे भारतेन्दु कहते है, "हिन्दू चूरन इसका नाम विलायत पूरन इसका काम/ चूरन जब से हिन्द मे आया इसका धन बल सभी घटाया/ चूरन अमले सब जो खावे दून रिश्वत तुरन्त पचावे/ चूरन सभी महाजन खाते जिससे जमा हजम कर जाते/ चूरन साहब लोग जो खाता सारा हिन्द हजम कर जाता/ चूरन पुलिस वाले खाते सब कानून हजम कर जाते"[४८]। इसी रचना मे वे

आगे लिखते है, 'अधेर नगरी अनबूझ राजा टका सेर भाजी टका सेर खाजा/ सॉच कहे तो पनही खावै/ झूठे बहुविधि पदवी पावै/ अधाधुध मच्यौ सब देसा/ मानहु राजा रहत विदेशा।''[४९] भारतेन्दु अपने 'अधेर नगरी' नाटक मे प्रतीकात्मक रूप से समकालीन शासन की आलोचना करते है जिसमे पूरा साम्राज्य अपनी मूर्खतापूर्ण नीतियो के कारण पतन का शिकार होता है, ''जहॉ न धर्म नहि बुद्धि नहि नीति न सुजान समाज/ ते ऐसहि आपुहिन्न से, जैसे चौपट राज।''[५०] 'हिन्दुस्तान के दरिद्र होने के कारण' शीर्षक से लेख लिखते हुए भारतेन्दु ने ६ मार्च १८७४ मे 'कवि वचन सुधा' मे लिखा ''रेल आदि से भी द्रव्य बढने की आशा नही है रेलवे कम्पनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है उसका ब्याज सरकार को देना पडता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग है कुल मिलाकर २६ करोड रूपया बाहर जाता है।[५१] ३० नवम्बर १८७२ की 'कविवचन सुधा' मे एक अग्रेज स्तोत्र छपा इस स्तोत्र मे अग्रेजो की प्रसशा इन शब्दो मे की गई है, ''चुगी और पुलिस तुम्हारी भुजा है अमले तुम्हारे नख है अधेर तुम्हारे पृष्ठ है और आमदनी तुम्हारा हृदय अतएव हे अग्रेज हम तुमको प्रणाम करते है। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है सेना तुम्हारा चरण है खेताब तुम्हारा प्रासाद है अतएव हे विराट रूप अग्रेज हम तुमको प्रणाम करते है।''[५२]

भारतेन्दु न केवल साम्राज्यवादी शोषण का खुलासा करते है वरन भारतीयो को आगाह भी करते है, परदेसी वस्तु और परदेसी भाषा का भरोसा मत रखो। ६ फरवरी १८७४ की 'कविवचन सुधा' मे लिखते है, ''अब भी हम लोगो को कला कौशल्य की ओर ध्यान देना चाहिये अग्रेजो व्यापारी माल भेजने लगे देखो बढई आदि छोटे–छोटे व्यापारियो को काम मिलना कठिन हो गया यहॉ तक कि घरो की खिडकियॉ दरवाजे आदि विलायत से बनकर आते है। अब हम लोग इस बात की ओर कुछ चित्त लगाकर अपने लाभ के विषय मे सोचने लगे है और उसका कुछ फल भी दृष्टिगोचर होने लगा है परन्तु यथार्थ मे यहॉ का माल तैयार करने के निमित्त जो लोग एकत्र हुए हैं वे कुछ भी नही है क्योकि जब तक देश भर के व्यापारी इस विषय मे उद्योग न करेगे तब तक कार्य सिद्धि भली भॉति नही हो सकता अग्रेजो के समान वस्तु तैयार करना बिना सबो की सहायता के नही हो सकता।[५३] इस तरह भारतेन्दु न केवल साम्राज्यवादी शोषण के तरीको का खुलासा करते है बल्कि अपनी शैली मे साम्राज्यवादी दमन का उपहास भी करते है। जैसा कि शिवकुमार मिश्र कहते है ''ब्रिटिश राज की लूट उसके अमानवीय अर्थतत्र, उसके कुशासन और उसके परिणामो, अकाल, महामारी आदि का जितना यथार्थ हृदय द्रावक और रोमाचक वर्णन अपने समय के सदर्भो मे भारतेन्दु ने किया है उतना अन्यत्र नही दिखाई पडता।''[५४] उनके स्वदेशी विचारधारा के प्रति टिप्पणी करते हुये डा० रामविलास शर्मा कहते

है, 'यह कहना अतियुक्ति न होगी कि हिन्दी प्रदेश मे स्वदेशी आन्दोलन के जन्मदाता और देश के लिए बलिदान का पाठ पढाने वाले भारतेन्दु ही थे।'[५५]

प्रताप नारायण मिश्र अपनी कविता मे साम्राज्यवादी शोषण एव भारतीय शिल्प की दयनीय स्थिति की बात करते हुए कहते हे, "नोन तेल लकडी घासहु पर टिकस लगे जहॅ/ चना चिरौजी मोल मिले जहॅ दीन प्रजा कहॅ।"[५६] यही नही प्रताप नारायण मिश्र अपने 'देशी कपडा' निबन्ध मे स्वदेशी वस्त्रो का विज्ञापन करते हुए कहते है, "पर खेद का विषय है हम अपने मुख्य निर्वाह की वस्तु के लिए भी परदेशियो का मुॅह ताका करे शौकीन लोग यह भी खयाल न करे कि देशी कपडे मे नफासत नही होती, ढॉके की मलमल, भागलपुर और मुर्शिदाबाद की गर्द अब भी अग्रेजी कपडे को अपने आगे तुच्छ समझती है एक बेर हमारे कहने से एक – एक जोडा देशी कपडा बनवा डालो यदि कुछ सुभीता दीख पडे तो मानना, दाम कुछ दूने न लगेगे, चलेगा तिगुने समय। देशी लक्ष्मी और देशी शिल्प का उद्धार अलग। यदि अब भी न चेतो तुमसे ज्यादा भकुआ कौन"?[५७]

प्रेमघन अपने लेख मे साम्राज्यवादी शोषण को उद्घाटित करते हुए लिखते है, "विलायती व्यापारियो ने जैसी कुछ दीन–दशा इस देश की की और किसी प्रकार हो ही नही सकती। जो प्राचीन नगर व्यापार मे विख्यात थे अब वहॉ खडहरो का दृश्य विदेशी व्यापारियो की निर्दयता को सूचित कर रही है"।[५८] यही नही वे इसका निदान भी प्रस्तुत करते है। अपने लेख मे आगे कहते है, "यदि देशी महाराजाओ ने देश के व्यापार पर ध्यान न दिया तो कभी देशी व्यापार मे उन्नति हो ही नही सकेगी"।[५९] यही नही वे 'चरखे की चमत्कारी' शीर्षक से लिखित अपनी कविता मे लिखते है "चला चल चरखा तू दिन रात. कात कात कर सूत/ तेरे चलने की चरचा सुनि यूरप जो अकुलात/ ज्यौ ज्यौ तू चलता त्यौ–त्यौ आता स्वराज नियरात/ परतत्रता दीनता भागी जाती खाती लात/ चलना तेरा बन्द हुआ तब से भारत मे तात/ दु खी प्रजा तब से न यहॉ की अन्न पेट भर भात/ सस्ता शुद्ध स्वदेशी खद्दर पहिन छिपावे गात।"[६०]

१८६६ के 'हिन्दी प्रदीप' मे बालकृष्ण भट्ट ने लिखा, "विलायत वालो ने जो हमे दासत्व की अवस्था मे छोड दिया है, हमारा शिल्प वाणिज्य सब हमसे छीन विलायत के अपने भाइयो का हर तरह पेट भर रहे है। पसीने की मेहनत का फल मुल्क की पैदावारी का सुख आप उठा रहे है सो सब हमारे कुलक्षणो से, मसल है जिसकी लाठी उसकी भैस।"[६१]

महावीर प्रसाद द्विवेदी भी अग्रेजो की छलपूर्ण व्यापार नीति से परिचित थे। 'सरस्वती' मे प्रकाशित 'इग्लैण्ड की व्यापार नीति' शीर्षक लेख मे टिप्पणी की गई है कि, " भारत एक कृषि प्रधान दश है। यहॉ पर हर किस्म का कच्चा माल बहुतायत मे मिलता है। पहले यह सब माल इसी देश के

कारखानो के उपयोग मे आ जाता था परन्तु जब से यह देश अग्रेजो के अधीन हुआ है तब से यहॉ का कच्चा माल इग्लैण्ड को चला जाता है"।[६२] इसी लेख मे आगे लिखा गया है, "भारत वर्ष का व्यापार भारतवर्ष ही के लोगो को दिन–दिन दरिद्र बनाता जा रहा है उसकी आर्थिक दशा खेदकारक हो रही है। प्राचीन समय मे भारतवर्ष का व्यापार अच्छी दशा मे था"।[६३] इसी लेख मे आगे लिखा गया है, "भारतवर्ष का यथार्थ हित तभी होगा जब इग्लैण्ड के राजनीति निपुण लोग स्वार्थ बुद्धि को छोड हमारे व्यापार की नीति को कुछ स्वतत्र होने देगे।[६४] द्विवेदी जी न केवल इग्लैण्ड की व्यापार नीति के आलोचक रहे, बल्कि साम्राज्यवादी प्रशासको के शिक्षण एव समाज के क्षेत्र मे कर रहे कार्यो के प्रति असन्तुष्ट थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी स्वदेशी वस्तुओ के कडे समर्थक थे। उन्होने जुलाई १६०३ मे 'सरस्वती' के अक मे लिखा, "विदेशी वस्त्र हम क्यो ले रहे है/ वृथा धन हम देश का क्यो दे रहे है/ हजारो लोग भूखे मर रहे है/ पडे वे आज या कल कर रहे है/ इधर तू मद्रजु मलमल दूढता है/ न इनसे बढकर मूढता है/ न काशी और चदेरी न ढाका, नागपुर नगरी बिचारी/ गई है नष्ट हो जो देश भाई/ दया उनकी भी तुम्हे कुछ भी न आई/ अकेला एक लुधियाना हमारा/ चला सकता है अभी काम सारा/ फिरे तिस पर हम जो और के द्वार/ हमे फिर क्यो नही सौ बार धिक्कार/ स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजै/ विनय हमारा इतना मान लीजे/ शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो/ न जाओ पास उससे दूर भागो"।[६५] द्विवेदी अपने एक लेख "भारत मे जावा और जापान के माल की वृद्धि' मे लिखते है कि, "ये छोटे से देश अपने परिश्रम और व्यापार नीति की वजह से ढेर सारा माल भारत मे पाटते चले जा रहे है"। वही भारत के बारे मे लिखते है कि "किसी समय यहॉ इतनी शक्कर और इतना गुड होता था कि यहॉ से अन्य देशो को जाता था पर धीरे–धीरे यूरोपवालो ने हमारे इस व्यापार को नष्टप्राय कर दिया। अनेक कारणो से शक्कर के सैकडो हजार कारखाने बन्द हो गये। स्वदेशी जागरण के कारण इस व्यापार ने उन्नति के कुछ लक्षण दिखाये थे पर कुछ ही दिनो मे वे लक्षण भी लुप्त हो गये"। मि० जमशेद जी टाटा की मृत्यु पर द्विवेदीजी टिप्पणी करते है कि, "हमारे धनवान लोगो ने एक आदर्श नररत्न खो दिया हम तो यही समझते है कि इस समय भारत के सौभाग्य मन्दिर का सुवर्ण कलश फूट पडा"।[६६] इसी मे वे आगे लिखते है, "उन्होने इस देश की आर्थिक अवनति के कारणो की उचित चिकित्सा करके उसकी उन्नति का उद्योग किया उनका यह उद्योग हमारे राजाओ और महाराजाओ के लिए आदर्श के समान है क्योकि इन्ही लोगो के पास कुछ सम्पत्ति है यदि वे अपनी सम्पत्ति का उपयोग टाटा की तरह देश हित के कामो मे करे तो निस्सदेह एक दिन हम लोगो की गणना दुनिया के सभ्य देशो मे होने लगेगी"।[६८]

द्विवेदी जी मालवीय जी (मदन मोहन) की स्वदेशी नीति की प्रशसा करते हुए कहते है, ''मालवीय जी को स्वदेशी आन्दोलन से बडा प्रेम है। आज तीस वर्ष से आप इसके आन्दोलन मे सक्रिय है। सच तो यह है कि भाषा, भेष और भाव यदि तीनो मे से किसी को स्वदेश प्रेमी देखना हो तो वह मालवीय जी के दर्शन करे  आपने सन १८८१ मे देशी तिजारत कम्पनी प्रयाग मे खुलवाई।''[६९] यही नही द्विवेदी जी बगाल मे हुए स्वदेशी आन्दोलन को आदर्श मानते है, ''इस समय बगाल मे स्वदेशीयता का जोर जियादह है। इससे दो चार उदाहरण देकर हम यह दिखलाना चाहते है कि वहॉ वालो ने अपने देश की चीजो का कितना आदर किया है और इस आदर के कारण विदेशी व्यापार को कितना धक्का पहुचा है''।[७०] इसी समय १९०८ मे द्विवेदी जी की 'सम्पत्ति शास्त्र' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसके मूल सिद्धान्तो का प्रकाशन 'सरस्वती' मे भी हुआ जिसमे  उन्होने सूक्ष्म आर्थिक सिद्धान्तो का न केवल विश्लेषण किया वरन भारत के सम्बन्ध मे साम्राज्यवादी नीतियो का खुलासा किया जो दोषपूर्ण थी, ''अवस्था विशेष मे कुछ माल के लिए विदेशी वर्जन अथवा कडे कर लगाकर विदेशी माल की आमदनी की रोक से लाभ भी बहुत होता है''।[७१] इसी मे वे दूसरी जगह कहते है, ''इस्ट इण्डिया कम्पनी की प्रभुता के पहले और उसके कुछ समय बाद तक भी देश मे उद्योग धधे की बडी अधिकता थी बेहद माल तैयार होता था और देश देशान्तरो को भेजा जाता था पर कम्पनी ने अनेक युक्तियो से उसका सर्वनाश कर दिया। यहॉ के कला कौशल के पुर्नजीवन की तरफ गवर्नमेण्ट का ध्यान नही फल यह हुआ कि देश का निर्वाह खेती के पैदावार पर रह गया''।[७२] इस तरह द्विवेदी जी ने उस समय सरल भाषा मे न केवल आर्थिक सिद्धान्तो को समझाया वरन साम्राज्यवाद के बहुविध शोषणो का खुलासा किया। जैसा कि डा० राम विलास शर्मा लिखते है, ''महावीर प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'सम्पत्ति शास्त्र' १९०८ मे प्रकाशित हुई उसी वर्ष राधामोहन गोकुल जी छोटी सी पुस्तक 'देश का धन' प्रकाशित की थी। यह रोचक तथ्य है कि २०वी सदी के प्रथम दशक मे हिन्दी के ये दो गद्य लेखक स्वतत्र रूप से अर्थशास्त्र का अध्ययन कर रहे थे।''[७३] भातर यायावर' ने द्विवेदी जी की स्वदेशी विचारधारा पर टिप्पणी करते हुए लिखा है, "द्विवेदी जी स्वाधीनता की चेतना विकसित करने के लिए स्वदेशी चितन को व्यापक स्वरूप प्रदान किया, उन्होने महात्मा गॉधी के स्वदेशी और चरखा–करघा आन्दोलन के बहुत पहले ही 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' जैसी कविताए और लेख लिख कर इस चेतना का प्रयार किया''।[७४]

X X X X X

मजदूरो और किसानो के सम्बन्ध मे भारतेन्दु सीधे–सीधे उल्लेख बहुत कम करते है। यद्यपि अग्रेजो की शासन व्यवस्था की नकारात्मक प्रवृत्तियो ने, जिसका वे खूब उल्लेख किए है, देश की

सामान्य जनता को पीडित बना दिया था। 'भारत दुर्दशा' और 'अधेर नगरी' जैसी रचनाएँ उसकी प्रतीक है। मार्च १८७४ की 'कविवचन सुधा' मे वे कहते है, "कपडा बनाने वाले, सूत कातने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मॉगते है। खेती करने वालो की यह दशा है कि लगोटी लगाकर हाथ मे तुम्बा (भिक्षापात्र) लेकर भीख मॉगते है"।[७५] भारतेन्दु उनकी दुर्दशा का ही चित्रण नही करते बल्कि वे उनकी शक्ति को भी पहचानते है। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे वे शिक्षित उच्च्व वर्ग के साम्राज्यवाद के विरोध या निष्कासन के तरीको पर जहॉ व्यग करते है वही हुकूमत से पत्रिका की सरकारी खरीद बन्द होने पर सीधे जनता से अपील करते है, "मेरे ग्राहको अब तुम हमसे न रूष्ट हो क्योकि अब हमे तुम्हारे बिना किसी का अवलम्ब नही।"[७६] प्रताप नारायण मिश्र 'बेगार' शीर्षक से मजदूरो पर हो रहे शोषण को अन्यायपूर्ण बताते है और उनकी तुलना गुलाम से करते है और कहते है "इस बेगार का भयकर दु ख आढतियो, व्यापारियो, गाडीवालो, दर्जियो, कहारो आदि से पूछा जाना चाहिये कि वे इस नाम से कैसा थर–थर कॉपते है।[७७]

'सरस्वती' के १६०७ मई के अक मे हडतालो के कारण को सम्पत्ति का केन्द्रीयकरण स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि, "जब किसी देश की सम्पत्ति थोडे से पूँजीवालो के हाथ मे आ जाती है और अन्य लोगो को मजदूरी से अपना निर्वाह करना पडता है तब पूँजीवाले अपने व्यापार का सब नफा स्वय आप ही ले लेते है और जिन लोगो के परिश्रम से यह सम्पत्ति उत्पन्न की जाती है उनको वे पेटभर खाने को नही देते। ऐसी दशा मे श्रम करने वाले मजदूरो को हडताल करनी पडती है।"[७८] यही नही 'सरस्वती' मे हडतालो के व्यापक प्रसार का भी उल्लेख है, "आसनसोल मे तो कुछ समय हुआ हडतालो की तेजी बहुत बढ गई थी, 'बगाल, नागपुर, रेलवे, 'नार्थ व्यस्टर्न रेलवे', 'अवध रूहेलखण्ड रेलवे' और अन्य – अन्य स्थानो मे भी हडताल होने की शका हुई है कोई कहते है इस समय हिन्दुस्तान मे हडतालो की बीमारी फैली है, कोई कहते है यह सब स्वदेशी आन्दोलन का परिणाम है"।[७९] मई १६०७ के अक मे द्विवेदी जी लिखते है, "इन दिनो भारत वर्ष मे भिन्न–भिन्न प्रान्तो मे भिन्न – भिन्न व्यवसायो के लोग हडताल कर रहे है। सात–आठ वर्ष की बात है जी०आई०पी० रेलवे के तारबाबुओ ने बहुत बडी हडताल की थी उस समय हडताल करने वालो के साथ सब लोगो ने अपनी सहानुभूति प्रगट की थी। परन्तु हडतालियो मे एकता न होने के कारण उनका यत्न सफल न हुआ। कलकत्ते के मेहतरो और झाडूबरदारो ने, कोलम्बो के गाडीवालो ने बम्बई के चिट्ठी रस्सो ने, पुतलीघर के मजदूरो ने भी हडताल की है।"[८०] इस तरह द्विवेदी युगीन 'सरस्वती' पत्रिका मे सम्पत्ति के केन्द्रीयकरण एव उसके विरोध मे उभरे आन्दोलन का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण है।

हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि द्विवेदी जी के समय कृषक असन्तोष का दबाव बढता जा रहा था। उनके शिष्य मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' और 'किसान' मे कृषक असन्तोष की मुखर अभिव्यक्ति दी। द्विवेदी जी भी 'अवध के किसानो की बरबादी' शीर्षक से लेख प्रकाशित करते है, "जो लोग किसानो की हालत से परिचित है जिनके पास थोडी भी जमीन है उन्हे भली भॉति मालुम है कि किसानो पर जो अत्याचार होते है और जमीदार जिस प्रकार उन्हे नित्य चूसना चाहते है वह अकथनीय है। जमीदार लोग किसानो को मनुष्य समझते ही नही उन्हे अपनी मिल्कियत समझते है अब तो जागृति देश मे हो रही है इसका प्रभाव किसानो पर भी पड रहा है उसमे किसानो की ऑखे खुली है और उन्होने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए हाथ पैर हिलाना प्रारम्भ कर दिया है। यह देखकर जमीदारो को यह भय होने लगा है कि कही उनकी सोने का अण्डा देने वाली मुर्गी उड न जाय।"[८१] इतना ही नही द्विवेदी 'सरस्वती' के जुलाई १६०८ अक मे 'कृषि सुधार' शीर्षक से लेख प्रकाशित करते है जिसमे अनेक सुधारो के साथ किसानो को शिक्षा देने और जमीदारो को नये – नये आविष्कारो से लाभ उठाने की बात करते है। उनकी समझ मे एक शिक्षित कृषक अपनी समस्याओ का समाधान स्वय कर लेगा।

इस तरह भारतेन्दु एव द्विवेदी एव उनके समकालीन रचनाकार किसानो एव मजदूरो की समस्या को चित्रित ही नही करते वरन् उन सूत्रो की खोज भी करते है जिनसे उनका समाधान होना है। साथ ही उन्हे कृषक असन्तोष की अनुगूजे भी सुनाई पडती थी जिससे इस काल के अन्त को किसान आन्दोलन का भी सामना करना पडा। अवध क्षेत्र का किसान आन्दोलन निश्चित रूप से उस कृषक असन्तोष की ही अभिव्यक्ति है जिसका चित्रण इस युग के रचनाकार अपने साहित्य एव निबन्ध मे कर रहे थे।

**X X X X X**

भारतेन्दु एव द्विवेदी युगीन रचनाकार धर्म के विकास के मुद्दे को साथ – साथ लेकर चलते है। यद्यपि भारतेन्दु युगीन रचनाकार स्वीकार करते है कि समस्त भारतवासी हिन्दू है। इस तरह समस्त भारतवासी को हिन्दू शब्दावली के अन्तर्गत लाकर अन्य सम्प्रदायो के बीच शका के बीज आरोपित कर देते है जो दिन पर दिन पल्लवित होता चला गया और एक दिन विशाल विषवृक्ष के रूप मे एक विशाल त्रासदी का कारण बना क्योकि अल्पसख्यको का सबसे बडा समूह अपनी अलग पहचान भाषा एव राष्ट्र के रूप मे चाहता था। भारतेन्दु जी के अनुसार, "सबके पहले धर्म की ही उन्नति करनी उचित है।"[८२] अपने बलिया मे दिये गये भाषण मे यहॉ तक कह देते है कि "जो हिन्दुस्तान मे रहे किसी रग किसी जाति का क्यो न हो वह हिन्दू है"।[८३] मुस्लिम समुदाय को सावधान करते हुए द्विवेदी

जी कहते है, "मुसलमानो को भी उचित है कि इस हिन्दुस्तान मे बसकर वे लोग हिन्दुओ को नीचा समझना छोड दे" ।[८४]

भारतेन्दु हिन्दू धर्म मे व्याप्त रुढियो और अधविश्वासो के परिष्कार की बात करते है, "रचि बहुविधि के वाक्य पुरानन माहि घुसाए/ शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए/ जाति अनेकन करी नीच अरू ऊँच बनायो/ खान–पान सम्बन्ध सबन सो बस जो छुडायो/ रोकि विलायत गमन कूप मडूक बनायो/ और न को ससर्ग छुडाई प्रचार घटायो/ बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई/ ईश्वर सो सब विमुख किए हिन्दू घबराई" ।[८५] दरअसल भारतेन्दु जब रचनाधर्मिता से जुडे थे तो उनको साम्प्रदायिक तनाव से उतना दो चार नही होना पडा था जितना आने वाली पीढी को। फलत भारतवर्ष के सम्पूर्ण जनमत को वह हिन्दू मान लते है चाहे जिसका जिस मत मे सस्कार हुआ हो। यद्यपि साम्प्रदायिक विद्वेष की सीमित अभिव्यक्ति को भी वे साम्राज्यवादी दुष्परिणाम स्वीकार करते है। 'भारत दुर्दशा' नाटक मे 'भारत दुर्दैव' जो साम्राज्यवाद का प्रतीक है कहता है, "फूट बैर और कलह बुलाऊँ . / काफिर काला नीच पुकारूँ तोडू पैर और हाथ।"[८६] 'अंधेर नगरी' मे एक कुजडिन "हिन्दुस्तान का मेवा फूट और बैर"[८७] बेचती है क्योकि साम्राज्यवादियो और उनके समर्थको के लिए हिन्दु–मुस्लिम समुदायो का वैमनस्य एव अलगाव ही सकारात्मक स्थापना है। भारतेन्दु मुसलमानो के पवित्र ग्रन्थ 'कुरान–ए–शरीफ' का अनुवाद भी करते है। यही नही वे अग्रेज शासको से मुस्लिम शासको की तुलना करते हुए कहते है, "मुसलमान लोग अग्रजो की अपेक्षा सौ गुने अपव्ययी थे परन्तु वे लोग इस देश के निवासी थे उनके अभिव्यय से भी देसवासियो का उपकार ही होता था" ।[८८] इस तरह भारतेन्दु अपने हिन्दूवादी आग्रहो और सदर्भो के बावजूद दूसरे समुदाय के प्रति द्वेष नही रखते। साथ ही धर्म के जातिरूपक स्वरूप से क्षुब्ध भी होते है, "सरयूपार के ब्राह्मण बडे विचित्र है कुएँ के जगत पर एक आदमी जो पानी भरता हो दूसरा चला आवे तो अपना घडा फोड डाले और उससे घडे का दाम ले" ।[८९] वे कहते है "धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है केवल स्पर्श से या एक चुल्लू पानी मे मर जाता है।[९०] इस तरह भारतेन्दु ब्राह्मणवाद के ढकोसलो का भी विरोध करते है।

प्रतापनारायण मिश्र हिन्दुस्तान की समस्त समस्याओ का समाधान करते हुए कहते है, "चहहु जो सॉचो जिन कल्यान/ ता सब मिलि भारत सतान/ जपो निरन्तर एक जबान/ हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।"[९१] यही नही उन्हे गोवध भी विचलित करता है, "सब सुख दु ख तो जैसे तैसे/ गाइन की नहि सुनै गुहार/ जब सुधि आवे मोहि गैय्यन की/ नैनन बहे रक्त की धार।"[९२] अपने 'गोरक्षा' लेख मे भी प्रताप नारायण मिश्र गोवध का विरोध करते है। यद्यपि मिश्र जी किसी धर्म के प्रति द्वेष न रखते हुए

भी अपने सदर्भों के माध्यम से ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति देते है जो आने वाली पीढियो के लिए गले की हड्डी बन जाती है और हिन्दी साहित्य उससे मुक्त होकर भी मुक्त नही हो पाता।

द्विवेदी जी के काल मे मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी और देश मे साम्प्रदायिक अभिव्यक्ति की अनुगूँजे कभी – कभी सुनाई पडने लगी थी पर द्विवेदी जी राष्ट्रीय चेतना को समृद्ध करते हुए भी उन खतरो से सीधे – सीधे कम ही उलझते है। द्विवेदी जी अपने पत्र मे महात्मा गॉधी के सर्वधर्मसमभाव नीति की प्रशसा करते है, "हिन्दू, मुसलमान, पारसी इत्यादि उन्हे अपना सच्चा मित्र समझते है और सदैव सहायता करने को तैयार है। किसी विशेष धर्म के आप पाबन्द नही है अच्छी बाते सब धर्मों की पसन्द करते है"।[६३] सरस्वती' के फरवरी – मार्च १६०३ के अक मे एकता की बात करते हुए उद्धृत करते है, "एक गेह मे जो रहते है/ दुख न विशेष कभी सहते है/ प्रीत परस्पर रहते है/ जिसका फल मीठा चखते है।"[६४] इस तरह द्विवेदी जी साम्प्रदायिक विद्वेष की वकालत नही करते बल्कि जहॉ तक सभव बन सका है साम्प्रदायिक सौहार्द की ही बात करते है, उनके साहित्यिक रुझानो से तो यही सिद्ध होता है। साथ ही वे इन विवादपूर्ण मुद्दो से अपने को अलग करते हुए राष्ट्र के नागरिको को विकास के पथ पर अग्रसर करने का यत्न किया है।

**X X X X X**

इस युग के सहित्यकारो के समक्ष नारी प्रश्न, बालविवाह, वैधव्य और उनकी स्वतत्रता के स्वरूप के रूप मे उपस्थित होते हैं। भारतेन्दु इन समस्याओ और उनसे उपजी विद्रूपताओ की ओर सकेत करते हुए लिखते है," बालपन मे ब्याहि प्रति – बल नास किया सब/करि कुलीन के बहुत ब्याह बल धीरज मारयो /विधवा विवाह निषेध कियो विभिचार प्रचारयो"।[६५] भारतेन्दु अपने नाटक 'नीलदेवी' की भूमिका मे पाश्चात्य स्त्रियों की तरह अतिरेक की स्वतत्रता से बचते हुये भारतीय स्त्रियो के लिए स्वतत्रता चाहते है, "वे कहते है जिस भॉति अग्रेज स्त्रियॉ सावधान होती है, पढी लिखी होती है घर का काम–काज सभालती है, अपने सतानगण को शिक्षा देती है अपना स्वत्व पहचानती है, अपने जाति और अपने देश सम्पत्ति–विपत्ति को समझती है और इतने समुन्नत जीवन को व्यर्थ मे नही खोती"।[६६] अपने बलिया भाषण मे लडकियो की शिक्षा पर टिप्पणी करते हुये कहते है, "लडकियो को भी पढाइये किन्तु उस चाल से नही जैसे आजकल पढॉई जाती है जिसमे उपकार के बदले बुराई होती है। ऐसी चाल से उनको शिक्षा दीजिए कि वह अपना देश और कुल धर्म सीखे, पति की भक्ति करे और लडको को सहज मे शिक्षा दे"।[६७] इस तरह भारतेन्दु की नारी शिक्षा अपने युग–सीमा का अतिक्रमण नही कर पाती। उनकी शिक्षा की वकालत करते हुए भी उसका उद्देश्य पति भक्ति और

बच्चो की शिक्षा आदि मान लेते है। यह उनके युग–सदर्भ की सकीर्णता है जब स्त्रिया अशिक्षा के पूर्ण बन्धन मे जकडी हुई पर्दा प्रथा जैसी तमाम कुरीतियो की शिकार थी।

यही नही भारतेन्दु यह भी स्वीकार करते है कि प्राचीन काल मे स्त्रियो की स्थिति काफी ठीक थी। 'नाटक' शीर्षक से लिखे अपने लेख मे भारतेन्दु ने लिखा कि, "प्राचीन काल मे स्त्रियॉ भी रग मच पर अभिनय करती थी। हर क्षेत्र मे पुरूषो की तरह स्त्रियो के भाग लेने पर उन्हे आपत्ति न थी। स्त्रियो के पिछडेपन से आधा समाज ही पिछडा और निरक्षर रहता है"।[९८] यही साम्राज्यवादी शक्तियो के इस प्रचार का वे खण्डन करते है जिसमे वे नारी शिक्षा के प्रचारक बताए जाते है," जो लोग समझते है अग्रेज न आते तो यहॉ स्त्री शिक्षा का प्रचार न होता वे या भूल जाते है कि अग्रेजो के आने से पहले यहॉ जितनी स्त्री शिक्षा थी उतनी उस समय इग्लैण्ड मे भी न थी"। [९९] 'नील देवी' नाटक मे नील देवी विदेशी आक्रमण के विरूद्ध कौशल से लडाई लडने की सलाह देती है अन्त मे नील देवी सती हो जाती है। इस प्रकार नाटक का अन्त गौरव से सयुक्त होता है जिसका कही भी खण्डन नहीं है। नाटक 'सतीप्रताप' मे यम नामक पात्र सावित्री की प्रशसा करते हुए कहता है "आज मैने जाना सती नारी को सबकुछ करने का सामर्थ्य है"।[१००] 'नील देवी' 'सती प्रताप' आदि नाटको के द्वारा ऐसा लगता है भारतेन्दु उन्हे अतीत के स्वर्णमयी सलाखो के पीछे कैद करना चाहते है। यही नही वे समकालीन समाज मे नारी सुधार आन्दोलनो के भी समर्थक है। इस क्षेत्र मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की प्रशसा करते हुए वे कहते है, "सुन्दर बानि कहि समुझावै /विद्यागन सो नेह बढावै / दया निधान परम गुन आगर /सखि सज्जन नहि विद्यासागर"।[१०१]

प्रतापनारायण मिश्र नारी को स्वतत्रता के सदर्भ मे प्रेरित नही कर पाते यद्यपि वे स्त्री को "ससार की उत्पत्ति, गृहस्थी का सुख, रसिको का प्रमोद"[१०२] आदि के रूप मे स्वीकार करते है। प्रतापनारायण मिश्र अपने लेख 'पतिव्रता' मे कहते है, "स्त्री के लिए पतिव्रत से बढकर कोई धर्म नही है न पति से बढकर कोई देवता"[१०३]। इतना ही नही वे स्त्रियो को मूर्ख भी मानते है और उनके साथ वे "साम दण्ड भेद"[१०४] से काम लेने की बात करते है, 'निरे न्याय से और धर्म से वे राह पर न आयेगी ऐसी युक्ति वर्तना चाहिये कि वे प्रसन्न भी रहे और कुछ डरती भी रहे तभी प्रीत करेगी स्वतन्त्रता सौप देने से भी वे सिर चढेगी अत भय और प्रीत दोनो दिखाना स्वतत्र और परतत्र दोनो बनाए रखना चाहिये"।[१०५] अपने एक अन्य निबन्ध मे, "उसे बन्धन और बखेडा को जन्म देने वाली" स्वीकार करते है यद्यपि इसी लेख मे वे स्त्रियो को शिक्षित करने की समस्या पर भी टिप्पणी करते है, "पुरूषो के लिए सब कही पाठशाला है, इनके लिए यदि है भी तो नही के बराबर।"[१०६] इस तरह अपने समकालीनो मे प्रताप नारायण मिश्र का दृष्टिकोण नारी–सम्मान के प्रति पारम्परिक रूढियो और धारणाओ के बन्धन से

मुक्त नही हो पाया है। जबकि प्रेमघन नारी गौरव की स्थापना के लिए ऐतिहासिक स्त्रियो की कीर्ति का गौरवगान करते है जिससे उनके मन मे गौरव का भाव जागृत हो। वे हीनग्रस्तता से मुक्त हो और उन्हे प्रेरणा मिले, "धनि–धनि भारत की भामनियॉ जिनको सुजस रहो जग छाय/ कमला गौरी, गिरा, शची जिहि निरखि रही सकुचाय"।[१०७]

स्त्रियो के सम्बन्ध मे द्विवेदी जी का दृष्टिकोण निश्चित रूप से भारतेन्दु युग की तुलना मे प्रगतिशील है। फिर भी वे ऐसी नारी की कल्पना नही कर पाते जो पुरूषो के समकक्ष हो। निश्चित रूप से उनके युग की भी एक सीमा रही है। मई १६०३ मे द्विवेदी जी लिखते है, "स्त्रियो को पढाने लिखाने से जो लाभ है छिपे नही है, परन्तु तिसपर भी कोई –कोई मनुष्य स्त्री शिक्षा के प्रतिकूल है वे कहते है कि "स्त्रियो को शिक्षा देने से वे अपने पति की परवाह न करेगी घर के काम मे मन न लगावेगी और धर्म को तुच्छ समझने लगेगी इसलिए गृहस्थी का सारा सुख जाता रहेगा परन्तु यह समझना भूल है"।[१०८] द्विवेदी जी शिक्षित एव समाज मे अग्रणी भूमिका निभाने वाली स्त्रियो के जीवन सदर्भ भी 'सरस्वती' मे प्रकाशित करते है जिससे उनके वर्ग के अन्य लोगो को प्रेरणा मिले। रजया बाई, निर्मला बाला सोम इसी ढग की स्त्रियॉ थी। वे लक्ष्मीबाई के जीवनी लेखक की प्रशसा भी करते है।

द्विवेदी जी नारी शिक्षा को लेकर प्राय अपनी चिता प्रगट करते है। "शिक्षा एक बहुत व्यापक शब्द है पढने लिखने के सिवा सभ्यता के और भी अनेक अगो का समावेश उसमे होता है। गाना – बजाना, सूई और ब्रश को काम मे लाना, आये गये की खातिर तवज्जो करना, बाहर घूम फिर आना और पहाडो की हवा खाना इत्यादि बाते स्त्री शिक्षा मे शामिल है"।[१०९] हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि 'सरस्वती' अपने समय की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका मानी जाती थी, जिसमे स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध मे यह दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। 'सत्यदेव' जो अमेरिकी सस्कृति से परिचित थे अपने लेख मे स्त्री शिक्षा को आवश्यक बताते हुए लिखते है, " हमारी स्त्रियॉ हमारे ह्रदय के भावो को नही समझ सकती जिन विषयो को हमने स्कूलो मे पढा उसका नाम तक वे नही जानती पति बी०ए० है पत्नी निरक्षरा आप खुद ही सोचे अज्ञान मे पडी हमारी मॉ बहने क्या हमारी उच्च्य अभिलाषाओ मे सहायक हो सकती है। हमारा आधा अग बिल्कुल निकम्मा है यदि आप अपनी सतान का, अपने देश का कुछ भी उपकार करना चाहते हो तो स्त्रियो को शिक्षित कीजिए"।[११०] 'स्त्रियो के विषय मे अत्यल्प निवेदन' शीर्षक मे द्विवेदी जी लिखते है, " यदि आप पारिवारिक सुख मे वृद्धि चाहते हो, यदि आप अपने घर की शोभा बढाना चाहते हो, यदि अपनी सतति के ह्रदय मे शैशवावस्था से ही सद्गुणो का बीज बोना चाहते हो तो आप स्त्रियो को ऐसी –वैसी चीज मसलन जूती न समझिये। उन्हे आदर और शिक्षा दान का पात्र

समझिये''।[१११] द्विवेदी जी नारियो के विकास मे बाल विवाह को अभिशाप मानते है और उसका विरोध करते है। साथ ही दहेज प्रथा का विरोध करते हुए उसके उन्मूलन के लिए युवाओ का आह्वान करते है ''युवको के चित्त मध्य यह बात बिठा दे / वे दहेज की महाघृणित दुष्प्रथा उठा दे''।[११२] इतना ही नही वे स्त्री शिक्षा के प्रति साम्राज्यवादी नीति से असन्तुष्ट है और लडकियो के सीमित स्कूल पर जनवरी १९०७ मे ऑकडे प्रस्तुत करते है, '' जहॉ लडको के लिए १४७४१ मदरसे है वहॉ लडकियो के लिए सिर्फ ६६७ मदरसो का होना इस बात का प्रमाण है कि स्त्री शिक्षा की अवस्था कितनी हीन है''।[११३] अन्त मे वे कहते है, ''हमारी प्रार्थना है कि अपनी सामाजिक स्थिति अपनी वर्ण व्यवस्था, अपनी कुलरीति अपनी हैसियत के अनुसार यथाशक्ति हमे अपनी लडकियो की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये''।[११४]

नारी स्वतत्रता के सदर्भ मे विमर्श करते हुए द्विवेदी जी उन लोगो के प्रश्नों का उत्तर देते है जो उन्हे मनु के उस श्लोक का उद्धरण देते है जिसमे कि उन्हे बचपन मे पिता, युवावस्था मे पति और वृद्धावस्था मे पुत्र के सरक्षण मे  रहने की बात कही गयी है, कहते है कि ''स्त्रियॉ स्वभाव से ही सुकुमार होती है वे स्वभाव से ही दुर्बल होती है उनकी शारीरिक शक्ति पुरूषो की अपेक्षा कम होती है। वे अपनी रक्षा आप नही कर सकती है। इस दशा मे यदि पिता–पुत्र या पति के वश मे रहने का नियम कर दिया तो क्या गजब किया''।[११५] यही नही वे नारी स्वतत्रता एक सीमा मे चाहते है, ''स्वाधीनता की कुछ सीमा होनी चाहिये।''[११६] इस तरह द्विवेदी जी अपने युग सीमा को ध्यान मे रखते हुए नारी प्रश्नो का समाधान ढूढते है। जिसे उन्होने नारी समस्या की जड माना है वह अशिक्षा है जिसकी समाप्ति निश्चित रूप से एक नई राह दिखलाएगी और अपने पथ का चयन वे स्वय करेगी। आने वाली साहित्यिक पीढी को इन्ही राहो पर मशाल प्रज्जवलित करना था।

**X X X X X**

भाषा का प्रश्न भारतेन्दु और द्विवेदी युग के प्राय सभी रचनाकारो के समक्ष खडा होता है। हिन्दी भाषा की शक्ति को पहचानते हुए इन रचनाकारो ने उसे राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत ही नही की वरन् उसे स्वाभाविक भाषा मानते हुए उर्दू और अगेजी को थोपी हुई भाषा और देशी भाषा के विकास मे बाधक माना। यही नही, इस युग के एक प्रमुख साहित्यकर्मी ने 'हिन्दू हिन्दी हिन्दुस्तान' का नारा दिया जिसने भाषा आन्दोलन को साम्प्रदायिक आधार प्रदान किया। भारतेन्दु किसी भी भाषा मे अभिव्यक्ति की बात करते है शर्त बस इतनी है कि वह नये ढग की होनी चाहिये, ''बात अनूठी चाहिये भाषा कोऊ होय''। [११७] निश्चित रूप से भाषा की अपरिपक्वता भले ही भारतेन्दु मे हो पर हिन्दी को नये सदर्भो से सयुक्त करने का काम उन्होने किया। भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा की समृद्धि के लिए अनुवाद

का भी सहारा लिया, "भारतेन्दु ने सस्कृत, बगला तथा अग्रेजी तीनो स्रोतो से नाटक के अनुवाद किए"।[११८] अपनी भाषा की उन्नति के लिए भी वे चितित होते है, वे कहते है, "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल / बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल"।[११९]

प्रतापनारायण मिश्र अपने साहित्य मे अधिक उग्र तेवर अख्तियार करते हुए 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का नारा देते है उनका यह तेवर यह बताता है कि उन्हे सम्पूर्ण राष्ट्र की भाषाओ और उसकी सीमाओ का ज्ञान नही है या तो वे एक सकीर्ण राष्ट्रीयता का पोषण उत्साह मे कर देते है। प्रतापनारायण अपने लेख 'उर्दू बीवी की पूजी' मे उर्दू भाषा की असमृद्धता का उल्लेख करते हुए उसकी तुलना मे नागरी को समृद्ध बताते है और कहते है "न जाने देश का दुर्भाग्य कब मिटेगा कि राजा प्रजा दोनो इस मुलम्मे को फेक सच्चे सोने को पहिचानेगे।[१२०] 'नागरी महिमा की चोच' शीर्षक लेख मे भी वे नागरी भाषा और उसकी धात्री सस्कृत की प्रशसा करते है जबकि अन्य भाषाओ पर उपहासात्मक टिप्पणी करते है। सरकारी प्रकोप को वे हिन्दी भाषा के अविकास के लिए उत्तरदायी ठहराते है, "हक मे हिन्दी के नही अहले कमीशन देते राय/ छूटे है खरगोश पर कुत्ते शिकारी हाय"।[१२१] प्रेमघन जी भी प्रताप नारायण के 'हिन्दी हिन्दू हिन्दूस्तान' के दृष्टिकोण का समर्थन अपने इसी शीर्षक से लिखे लेख मे करते है कि, "ब्रिटिश राज की निर्मल नीति की प्रभा से प्राय· समस्त प्रदेश और प्रान्तो मे प्रादेशिक ओर प्रान्तिक भाषाएँ प्रचारित है परन्तु आश्चर्य कि अभागे पश्चिमोत्तर प्रदेश मे उर्दू और अरबी के अक्षर प्रचारित है।"[१२२]

हिन्दी की दुरावस्था से द्विवेदी जी भी चितित है। वे पाठको के अभाव का भी उल्लेख करते है। अग्रेजी भाषा को वे समृद्ध मानते है पर जब उसके ज्ञाता जन यह आक्षेप प्रस्तुत करते है कि हिन्दुस्तानियो को अग्रेजी नही आती तो इसका उत्तर देते हुए कहते है, "अग्रेजी के समान, अपूर्ण, अनियमित और उच्चारण नियमहीन विदेशी भाषा मे यदि इस देश वाले वैसी विज्ञता न प्राप्त कर सके तो विशेष आश्चर्य नही"।[१२३] यही नही द्विवेदी जी विजेताओ को विजितो की भाषा के ज्ञान को आवश्यक मानते है क्योकि उसके बिना वे प्रजा के आन्तरिक भावो को नही जान सकते। अपने 'हिन्दी की वर्तमान दशा' शीर्षक के लेख मे वे लिखते है, "हिन्दी के जिस नये पौधे मे आज से तीस पैतीस वर्ष पहले केवल दो चार कोमल पत्ते दिखाई दिये थे इस समय अनेक पल्लव पुञ्जो से आच्छादित है। यद्यपि उसमे अब तक शाखा – प्रशाखाओ का प्राय अभाव है, यद्यपि उसका तना अभी बहुत पतला और कमजोर है, यद्यपि उसे फूल और फल बनने मे अभी बहुत देरी है तथापि वह बढ रहा है और आशा है कि किसी समय उसके अग–प्रत्यगो की पूर्ति और पुष्टि भी देखने को मिलेगी। हिन्दी की वर्तमान अवस्था को देखकर यही अनुमान होता है"।[१२४] यही नही वे उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को भी

हिन्दी लिखने – पढने की सलाह देते है। साथ ही नफरत करने की आदत छोडने के लिए भी कहते है। द्विवेदी जी किसी भाषा के प्रति विद्वेष नही रखते। वे अग्रेजी भाषा मे भी व्याप्त विशेषताओ से शिक्षा लेने की बात करते है। यही नही वे मातृ भाषा प्रेम को उचित ठहराते है और उसकी सेवा करने वालो की प्रशसा करते है। 'सरस्वती' के जनवरी १६०३ के अक मे 'विष्णुशास्त्री चिपलूकर' की प्रशसा इसलिए भी करते है कि "अग्रेजी भाषा के जानकार होते हुये भी मराठी के सामने अग्रेजी को उन्होने तुच्छ समझा"।[१२५] इसी अक मे वे बगाली, मराठी और गुजराती भाषाओ की उन्नति का उल्लेख करते है और गुजराती मे लिखे नरोत्तमदास के ग्रन्थ 'महाजन मण्डल' और इसी भाषा मे लिखे 'सती मण्डल' की प्रशसा करते हुए "हिन्दी मे ऐसे ग्रन्थ की रचना कब होगी?"[१२६] प्रश्न उठाते है। इसी अक मे एक राष्ट्रभाषा की बात करते हुए हिन्दी को उसके लिए उपयुक्त मानते है, "इस देश मे यदि कोई सर्वव्यापी भाषा हो सकती है तो वह हिन्दी है।"[१२७] इसी अक मे वे हिन्दी उर्दू जानने वालो की गणना प्रस्तुत करते हुए कहते है, "उर्दू जानने वालो की अपेक्षा हिन्दी जानने वाले चौगुने है इससे प्रमाणित है कि हिन्दी ही यहाँ की प्रधान भाषा है और उसी का प्रचार होना प्रजा के लिए हितकर है"।[१२८] फरवरी १६०४ मे 'सरस्वती' अक मे हिन्दी की अन्य भाषाओ से तुलना करते हुए 'देश व्यापक भाषा' शीर्षक से द्विवेदी जी लिखते है हिन्दी लिपि सर्वगुण विशिष्ट, सरल, सुन्दर और निर्दोष है, इसमे किसी को कुछ सदेह नही हो सकता। पारसी, अग्रेजी, अरबी, तैलगी, तामील आदि विदेशी लिपियाँ किसी प्रकार इस देश मे सर्वव्यापक भाषा लिखने के लिए योग्य नही। गुजराती, बगाली लिपियाँ भी इस महत्व की अधिकारिणी नही हो सकती क्योकि उनके अक्षर न तो ऐसे सरल और स्पष्ट है और न देखने मे उत्तम प्रतीत होते है।"[१२९] इस तरह द्विवेदीजी भाषा के प्रश्न को लेकर विस्तृत विमर्श करते है अपनी पूरी क्षमता और कौशल से लैस होकर। वे हिन्दी के पीछे जो जनशक्ति काम कर रही थी उसे शायद पहचानते थे समकालीन राजनीतिज्ञो की तरह ।

इस युग के साहित्यकारो के समक्ष शिक्षा के स्वरूप के प्रति भी चिता दिखाई पडती है। वे ऐसी शिक्षा नही चाहते जिससे देश पाश्चात्य रग मे रग जाय। भारतीय परिवेश की शिक्षा की उपेक्षा करने पर भारतेन्दु कहते है, "सब गुरूजन को बुरो बतावै अपनी खिचडी अलग पकावै/ भीतर तत्व न झूँठी तेजी क्यो सखी सज्जन नहि अग्रेजी"।[१३०] शिक्षित बेरोजगारो की चर्चा करते हुए भारतेन्दु कहते है, "तीन बुलावै तेरह आवै निज–निज विपद रोई सुनावै/ ऑखो फूटे भरा न पेट, क्यो सखि सज्जन नहि ग्रेजुएट"।[१३१] प्रतापनारायण अपने निबन्ध 'बालशिक्षा' और 'पढे लिखो के लक्षण' मे पारम्परिक शिक्षा की वकालत करते है। वे यह भी कहते है कि भारतीय शिक्षा की महत्ता कोई यूरोप अमेरिका वाला बताये तो हम मानने को तैयार हो जाते है। बेरोजगारी की समकालीन समस्या पर टिप्पणी करते हुए

प्रेमघन जी लिखते है, "जब इस देश मे परदेशी नही थे तब इस देश के लोग नौकरी पाते थे अब विदेशी राजा के होने से नौकरियॉं विलायतो को विशेषकर दी जाती है और देश के लोगो को परिश्रम कर उनके विद्याओ को पढने पर भी नौकरी नही मिलती जब कोई नौकरी खाली होती है तो सहस्रो प्रार्थनाऍं उस स्थान के लिए की जाती है। इतने लोग बेकार ही रहते है जो चारा फेकते ही भूखो टूट पडते है हमे भारी पदो को देने से सिटपिटाते है"।[132]

द्विवेदी जी अपने शिक्षा विषयक विमर्श मे सक्रिय भाग लेते दिखाई पडते हैं। वे स्कूलो की सख्या–जनसख्या के अनुपात मे कमी को ऑकडे के द्वारा समझते है और उसे 'सरस्वती' मे प्रकाशित भी करते है। वे विश्वविद्यालय मे हिन्दी शिक्षा की बात करते है जिससे किसी दिन हिन्दी विश्वविद्यालय की स्थापना हो सके। 'देशी भाषाओ की उच्च शिक्षा से सरकार को लाभ' शीर्षक से लिखे अपने लेख मे कहते है, "उनके द्वारा राजा और प्रजा का सम्बन्ध और घनिष्ठ हो जाता है और परस्पर की नासमझी के कारण जो अहितकर परिणाम होते है उनसे कुछ बचाव होता है"।[133] यही नही वे शिक्षा मे पाश्चात्य और भारतीय सस्कृति के सम्मिश्रण की बात करते है। वे कालिदास के सस्कृत ग्रन्थो, महाभारत, रामायण आदि के अशो का अनुवाद भी करते है और उनकी प्रशंसा भी करते है। साथ ही 'बेकन' के सिद्धान्तो का भी प्रचार करते है तथा यूरोपियन इतिहास से भी सीखने योग्य बाते ढूढ लेते है। यूरोपियन शिक्षा को उन्नति के लिए अनिवार्य मानते हुए द्विवेदी कहते है, "भारतवर्ष उस समय तक उन्नति नही कर सकता जब तक यूरोपियन शिक्षा को पूर्ण रूप से ग्रहण न कर लेगा। पुराने विचारो को त्याग कर नवीन विचारो और रीतियो को ग्रहण करे इसी मे देश का कल्याण है"।[134] इस तरह द्विवेदी जी केवल भारतीय परम्परा का ही गौरवगान नही करते बल्कि पाश्चात्य परम्परा और मूल्यो से भी सकारात्मक तत्व ग्रहण करने की बात करते है।

**x x x x x**

भारतेन्दु और उनके समकालीनो मे भारत की अधीनता और उसकी स्वतत्रता की बात तथा साम्राज्यवादी शक्तियो के निष्कासन की बात सीधे कही नही जाती बल्कि प्रतीकात्मक रूप से कही जाती है। भारत दुर्दशा' नाटक मे भारतेन्दु भारत दुर्दैव से कहलवाते है "मुझ तुम सहज न जानो जी मुझे एक राक्षस मानो जी/ कौडी–कौडी को करूँ मै सबको मुहताज"।[135] निश्चित रूप से यह दुर्दैव साम्राज्यवाद का प्रतीक है। यही नही वे साम्राज्यवाद से सॉठ–गॉठ करने वालो और देश को सकट मे डालने वालो के लिए कहते है "धरके हम ही लाखो भेस/ किया यह चौपट सारा देश/ हो के जयचन्द हमने इकबार खोल ही दिया हिन्द का द्वार"।[136] इस तरह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साम्राज्यवाद एव उससे हाथ मिलाने वाले शत्रु दोनो को नगा करके जनता के सामने खडा कर देते है। वे किसी

राष्ट्रीय नेतृत्वकर्ता की अनुपस्थिति को एक समस्या के रूप मे लेते है। वे कहते है, "अब नहि राम अर्जुन नहि शक्य सिह अरू व्यास/ करिहै कौन पराक्रम इनमे को दे है अब आस/ सेवाजी रनजीत सिह, हूँ नही बाकी अब जौन/ करिहै कुछ नाम भारत को अब तो सब नृप मौन।"[१३७] अपने बलिया भाषण मे भी वे कहते है, "हिन्दुस्तानी लोगो को कोई चलाने वाला हो तो वे क्या नही कर सकते"।[१३८] यही नही वे भारतवर्ष के जागरण की भी बात करते है, "सोअत निसि वैस गवाई/ जागो – जागो रे भाई निसि कि कौन कहे दिन बित्यो काल राति चलि आई"।[१३९] इस तरह भारतेन्दु साम्राज्यवाद के छलपूर्ण व्यवहार को जनता के सामने रखते है और उनके छोटे – छोटे प्रलोभनो (खेताब) से प्रभावित न होकर प्राचीन वैभव को सामने रखकर जनता को गौरव से भर देते है।"सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो/ सबके पहिले जोहि सभ्य विधाता कीनो"।[१४०] भारतेन्दु के योगदानो की समीक्षा करते हुए डा० रामविलास शर्मा लिखते है, "भारतेन्दु ने जिस सस्कृति की नीव डाली वह राष्ट्रीय थी। उसकी मूल भावना अग्रेजी राज की लूट से देश की रक्षा करके उसकी उन्नति करना है। उन्होने रईसो, जमीदारो, राजाओ, पण्डितो का मुँह न देखकर जनता को अपना भरोसा करना सिखाया। उन्होने पढे लिखे लोगो से कहा कि जनता के बिना तुम अपाहिज हो। उन्होने शिक्षित वर्ग को साधारण जनता से एकता कायम करना सिखाया। हिन्दुओ और मुसलमानो से परस्पर भेदभाव भूलकर देशोद्धार के लिए उन्होने एक होने को कहा। अग्रेजो ने जिस न्याय, पुलिस, कचहरी, फूट और आतक की व्यवस्था की थी उसके विपरीत जनता के हित अनहित को न्याय–अन्याय की कसौटी बनाया और अग्रेजो की कूटनीति और आतक दोनो का विरोध किया। इसी तरह उन्होने भारतवासियो के राष्ट्रीय आत्मसम्मान को जागृत किया और इस काम मे उन्होने पुरातत्व और प्राचीन सस्कृति को भी इस्तेमाल किया"।[१४१]

द्विवेदीजी के साहित्य मे भी साम्राज्यवाद से सीधे–सीधे सघर्ष की बात नही है। वे जनता को अपने साहित्य और विचारो से प्रबुद्ध करना चाहते थे। उनकी स्वतत्रता कही भी ऐसे अर्थ नही उद्घाटित करती जिसमे वे साम्राज्यवाद से सीधे सघर्ष करने की प्रेरणा दे यद्यपि जनता को शिक्षित करके, आर्थिक शोषण का खुलासा करके, जनता को आर्थिक बदहाली की तरफ ध्यान आकर्षिक कराके, अर्थशास्त्र के जटिल नियमो की सरल व्याख्या करके, पाश्चात्य शिक्षा एव अर्थव्यवस्था की अच्छाइयो को ग्रहण करने की प्रेरणा देकर तथा भारतीय परम्पराओ, मूल्यो, साहित्यो एव समकालीन व्यक्तियो के देशहित कार्यों को प्रचारित करके उन्होने राष्ट्र को प्रबुद्ध बनाने का प्रयास किया। उनके सम्पूर्ण साहित्य एव विचारो के अवलोकन करने से पता चलता है कि वे जैसे राष्ट्र को भावी सघर्ष के लिए पूरी समझ के साथ समग्र तैयारी करने का काम कुशल शिल्पी की भाँति कर रहे हो। डा० रामविलास शर्मा उनके इस विस्तृत सदर्भों से परिचित कराते हुए कहते है, "द्विवेदीजी ने साम्राज्यवाद

का अर्थतत्र क्या है, उसके राजनीतिक दावपेच क्या है, साम्राज्यवादी व्यवस्था मे भारत का स्थान क्या है, इस व्यवस्था मे भारत कैसे पराधीन बना, अग्रेजी राज कायम होने से पहले यहॉ के अर्थतत्र की दशा कैसी थी, भारतीय इतिहास को देखते हुए अग्रेजी राज की भूमिका क्या थी, भारत मे पूँजीवाद की विशेषता क्या थी, इस विशेषता को देखते हुए मजदूरवर्ग कौन सी भूमिका निभा रहा था, सारी परिस्थिति मे मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवियो के क्या कर्तव्य थे, इस विश्व साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरूद्ध लोग कहॉ–कहॉ लड रहे है, भारत को अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध किन देशो से कायम करने चाहिये इन सभी और ऐसी ही अन्य समस्याओ की ओर द्विवेदी और उनके सहयोगियो ने ध्यान दिया और साम्राज्य विरोधी दृष्टि से उनका विवेचन किया। इस सारे विवेचन को एक साथ देखने पर द्विवेदी जी के योजनाबद्ध कार्य का ज्ञान होता है। वैसा योजनाबद्ध विस्तृत और वैज्ञानिक विवेचन हिन्दी मे अभी तक उपलब्ध नही होता"।[५२]

द्विवेदीजी ने अपने साहित्यिक और वैचारिक सरक्षण मे एक ऐसी पीढी का पोषण किया जिसने आने वाले मुखर राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अपने विचारो एव रचनाओ से सम्पूर्ण हिन्दी जनता को न केवल प्रबुद्ध किया वरन् सघर्ष के तरीको को समझाते हुए उन्हे मुखर सघर्ष के लिए प्रेरित किया, चाहे वह निराला हो या जयशकर प्रसाद या मैथिलीशरण गुप्त। जैसा कि रामविलास शर्मा लिखते है, "निराला ने अग्रेजी राज, जमीदारी प्रथा, किसान आन्दोलन, वर्णाश्रम धर्म, नारी की पराधीनता, भाषा की समस्या आदि पर जो कुछ लिखा है उस पर ध्यान दीजिए तो पता चलेगा कि हिन्दी नवजागरण के सम्बन्ध मे निराला का यह लेखन महावीर प्रसाद द्विवेदी के ही कार्य की अगली कडी है"।[५३]

इस तरह भारतेन्दु और द्विवेदी युगीन हिन्दी साहित्य स्वय अपनी भाषा निर्माण के लिए सघर्ष करते हुए साम्राज्यवादी दबावो और गर्जना तथा आतक के बीच सर्जना से जुडे रहकर और अपनी युग सीमा और परिवेशगत सरचना एव निजी पूर्वाग्रहो के बावजूद समकालीन समस्याओ से सघर्ष का वैचारिक आधार प्रस्तुत करता रहा। उनकी साहित्यिक कृतियो की प्रेरणा ने निश्चित रूप से समकालीन रूढिग्रस्त जनता को जो गतिहीनता की शिकार सी थी, नई राह दिखाई होगी।

# सन्दर्भ सूची


१ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स १९९६, पृष्ठ ४६२

२ सरस्वती, अप्रैल १९१०, पृष्ठ १६६

३ सरस्वती, मई १९१०, पृष्ठ १४३

४ वही, पृष्ठ १४६

५ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४६२

६ वही

७ मीना अग्रवाल, बग्ला नव जागरण और भारतेन्दु, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, सम्पादक, शम्भूनाथ, अशोक जोशी, आने वाला कल प्रकाशन १९८६, पृष्ठ ५१

८ वही पृष्ठ ४८

९ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४६३.

१० सरस्वती, मार्च १९०६ पृष्ठ ८८–८९

११ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ–४६४

१२ वही पृष्ठ ४६३

१३ किशोरी लाल गुप्त, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय बनारस, १९५६, पृष्ठ ३७६

१४ पद्माकर पाण्डेय, सम्पादक, राष्ट्रीय पत्रकार और अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट, नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, १९९५, पृष्ठ ११

१५ वही

१६ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४७५

१७ सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषाक (१९००–१९५९) स० श्रीनारायण चतुर्वेदी इडियन प्रेस, इलाहाबाद १९६१, पृष्ठ ६४४ / ६४५

१८ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–३, स० व्रजरत्नदास, नागरी प्रचारणी सभा काशी सवत २००७, पृष्ठ ८९५

१९ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९५६, पृष्ठ ११३

२० वही पृष्ठ २१, २२

२१ शभूनाथ, १८५७ का राष्ट्रीय जागरण और भारतेन्दु, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, पृष्ठ २७

२२. वही

२३ वही पृष्ठ ३६

२४ वही पृष्ठ २८

२५ प्रेमधन सर्वस्व प्रथम भाग, स० प्रभाकर प्रसाद उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सवत १६६६, पृष्ठ ३४२

२६ वही पृष्ठ ३४३

२७ वही पृष्ठ २६२

२८ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्राा, साहित्य सगम, इलाहाबाद १६६६ पृष्ठ ५३

२६ वही

३० महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–१ सम्पादक भारत यायावर, किताब घर नई दिल्ली १६६५ पृष्ठ १११

३१ वही पृष्ठ ११३.

३२ सरस्वती जून १६१० पृष्ठ २८५

३३ सरस्वती फरवरी मार्च १६०३ पृष्ठ ८१

३४ प्रतापनारायण ग्रन्थावली प्रथम खण्ड सम्पादक विजय शकर मल्ल, नागरी प्रचारणी सभा काशी, सवत २०१४, पृष्ठ २१४

३५ वी०पी० पट्टाभि सीतारमैया, काग्रेस का इतिहास, अनुवादक श्री हरिभाऊं उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल दिल्ली १६३६, पृष्ठ ४०

३६ शिवकुमार मिश्र, भारतेन्दु अन्तर्विरोधो के बीच, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, पृष्ठ ६२

३७ किशोरी लाल गुप्त, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि पृष्ठ २१४

३८ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ २४

३६ राष्ट्रीय पत्रकार अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट, पृष्ठ ६६

४० महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–२ पृष्ठ १४२

४१ राष्ट्रीय पत्रकार और अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ ६६

४२ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ २४

४३ सरस्वती जनवरी १६०३ (सभी अको पर लिखित)

४४ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–३ पृष्ठ ५५

४५ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–२ पृष्ठ १४२

४६ कथाकार रामदेव शुक्ल से शोध छात्र का साक्षात्कार २० सितम्बर १६६६ गोरखपुर।

४७ भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग–१, पृष्ठ ४६६

४८ वही पृष्ठ ६६२

४६ वही पृष्ठ ६६५

५० वही

५१ उदघृत रामविलास शर्मा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र.

५२ वही

५३ वही

५४ शिवकुमार मिश्र, भारतेन्दु अन्तर्विरोधो के बीच, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण स० शभुनाथ, अशोक जोशी, पृष्ठ ७०

५५ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ ३५

५६ सरस्वती जनवरी १६०७ पृष्ठ ६७

५७ प्रताप नारायण ग्रन्थावली खण्ड–१ पृष्ठ १२३, १२४

५८ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग, पृष्ठ २७८

५६ वही पृष्ठ २८१

६० वही पृष्ठ ६३२

६१ राष्ट्रीय पत्रकार और अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ ८०

६२ सरस्वती जुलाई १६०४ पृष्ठ २३१

६३ वही पृष्ठ २३५

६४ सरस्वती अगस्त १६०४ पृष्ठ २८२

६५ सरस्वती जुलाई १६०३ पृष्ठ २३५

६६ सरस्वती अगस्त १६१४ पृष्ठ ४७०

६७ सरस्वती जून १६०४ पृष्ठ २१४

६८ वही पृष्ठ २१७

६६ सरस्वती फरवरी १६११ पृष्ठ ५७

७०. सरस्वती अक्टूबर १६०७ पृष्ठ ४११

७१ सरस्वती फरवरी १६०७ पृष्ठ ५२

७२ सरस्वती अप्रैल १६०७ पृष्ठ १६०

७३ रामविलास शर्मा, भारत मे अग्रेजी राज और मार्क्सवाद, खण्ड–१ राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९८२, पृष्ठ २३४

७४ भारत यायावर, महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली की भूमिका प्रथम खण्ड पृष्ठ ६

७५ रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, भूमिका, राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९७७ पृष्ठ १३

७६ उद्धृत, रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ५८

७७ प्रतापनारायण ग्रन्थावली, प्रथम खण्ड पृष्ठ ६

७८ सरस्वती मई १९०७ पृष्ठ २०७

७९ वही

८० वही

८१ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–६ पृष्ठ १७

८२ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–३ पृष्ठ ६००.

८३ वही पृष्ठ ६०२

८४ वही

८५ भारतेन्दु ग्रन्थावली खण्ड–१, पृष्ठ ४७५

८६ वही पृष्ठ ४४३

८७ वही

८८ उद्धृत रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ६१

८९ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–३ पृष्ठ ६५६, ६५७.

९० उद्धृत रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ६१

९१ सरस्वती मार्च १९०६ पृष्ठ ९७

९२ वही पृष्ठ ९९

९३ सरस्वती फरवरी १९१० पृष्ठ ५५

९४ सरस्वती फरवरी मार्च १९०३ पृष्ठ ३९

९५ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ ४७५

९६. वही पृष्ठ ५१९

९७. भारतेन्दु ग्रन्थावलो भाग–३ पृष्ठ ६०१

९८ रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ४६

९९ वही पृष्ठ ४५

१०० भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ ७०६

१०१ उद्धृत रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ४७

१०२ प्रताप नारायण ग्रन्थावली प्रथम भाग पृष्ठ १५४

१०३ वही पृष्ठ १८६

१०४ वही पृष्ठ १९०

१०५ वही पृष्ठ १९०, ९१

१०६ वही पृष्ठ २०१

१०७ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृष्ठ ६३१

१०८ सरस्वती फरवरी मार्च १९०३ पृष्ठ १०६

१०९ सरस्वती नवम्बर १९०४ पृष्ठ ३६७

११० सरस्वती मार्च १९०८ पृष्ठ १३५.

१११ सरस्वती जुलाई १९१३. पृष्ठ ३९०

११२ सरस्वती अगस्त १९१४ पृष्ठ ४६२

११३ सरस्वती जनवरी पृष्ठ २२

११४ महावरी प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–७ पृष्ठ १५२

११५ वही पृष्ठ १४५

११६ वही

११७ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ ३७२

११८ रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद १९९६ पृष्ठ १०१

११९ राष्ट्रीय पत्रकार और अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट, पृष्ठ १०४

१२० प्रतापनारायण ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ १३४

१२१ किशोरी लाल गुप्त, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि पृष्ठ ३९७

१२२ प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग, पृष्ठ–५१

१२३ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली भाग–१ पृष्ठ १५३

१२४ वही पृष्ठ १११

१२५ सरस्वती, जनवरी १९०३ पृष्ठ १०

१२६ वही पृष्ठ २

१२७ वही

१२८ वही पृष्ठ ३

१२९ सरस्वती १९०४ पृष्ठ ६१

१३० उद्धृत, रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ २६

१३१ वही

१३२ प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग पृष्ठ २६८

१३३ सरस्वती मई १९१३ पृष्ठ ३०१

१३४ महावीर प्रसाद द्विवेदी रचनावली खण्ड–४ पृष्ठ ४४६

१३५ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ ४७५

१३६. वही पृष्ठ ४७४

१३७ उद्धृत रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ४०

१३८ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–३ पृष्ठ ८९५

१३९ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–१ पृष्ठ ४८८.

१४० वही पृष्ठ ४६६

१४१ राम विलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृष्ठ ५५

१४२ रामविलास शर्मा, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण पृष्ठ १०६

१४३ वही भूमिका पृष्ठ १९

अध्याय–२

# रा[illegible], जन और प्रेमचन्द सा[illegible]त्य

"बनारस से आजमगढ जाने वाली सडक पर शहर से करीब चार मील दूर एक छोटा सा गॉव है लमही, पन्द्रह बीस घर कुर्मियो के, दो एक कुम्हार, एकाध ठाकुर, तीन चार मुसलमान और नौ - दस घर कायस्थो के यही इस गॉव की कुल आबादी है।"[१] इसी ग्रामीण परिवेश मे पिता अजायबराय और माता आनन्दी देवी से ३१ जुलाई १८८० को जन्मा हुआ पुत्र प्रेमचन्द के नाम से जाना गया जबकि "प्रेमचन्द के बचपन का नामकरण पिता द्वारा मुशी धनपत राय और चाचा द्वारा मुशी नवाबराय किया गया"[२] था। अमृतराय लमही के कायस्थो के बारे मे लिखते है, "यो तो इक्का दुक्का कायस्थ भी अपने हाथ से हल चला लेते है बस लेकिन इक्का – दुक्का, खेती किसानी कुर्मियो का काम है कायस्थो की शान मे इससे बट्टा लगता है, ये यहा के अकेले पढे लिखे लोग है और अपनी इसी काबलियत के बल पर अभी कुछ बरस पहले तक गॉव पर राज करते थे।"[३] प्रेमचन्द के परिवारजनो मे उनके पूर्व कोई भी उच्च शिक्षा से नही जुडा था और न ही लेखक के रूप मे स्थापित था यद्यपि अमृत राय प्रेमचन्द के नाना के बारे मे लिखते है, "वह साहित्यिक रूचि के आदमी थे और शायद कुछ किताबे भी उन्होने लिखी जिन्हे दुनियॉ की रोशनी देखना नसीब न हुआ।"[४] प्रेमचन्द के जीवन पर जिन लोगो ने प्रभाव छोडा उनमे कजाकी भी एक था जिसने प्रेमचन्द को ढेर सारी कहानियॉ सुनाई, "उसकी कहानियो मे चोर डाकू सच्चे योद्धा होते थे जो अमीरो को लूट कर दीन दुखी प्राणियो का पालन करते थे।"[५]

प्रेमचन्द आठ साल के थे तो उनकी माता आनन्दी देवी चल बसी बालपन मे इस दुर्घटना ने प्रेमचन्द को झिझोड कर रख दिया, "वे एकान्त मे बैठकर खूब रोते थे"[६]। प्रेमचन्द के पिताजी ने दूसरी शादी कर ली। विमाता से प्रेमचन्द से तालमेल न रहा यद्यपि अपने पिता की मृत्यु के बाद प्रेमचन्द आर्थिक रूप से अपनी विमाता की मदद करते रहे। उनके बचपन के भटकाव एव अध्ययन रूचि को अमृत राय सदर्भित करते हुये लिखते है, "बारह – तेरह बरस की उम्र तक पहुँचते – पहुँचते उसे सिगरेट, बीडी का चस्का लग चुका था और उनके ही शब्दो मे उन्हे उन बातो का ज्ञान हो गया था जो कि बच्चो के लिये घातक है। बिना मॉ के बच्चे का ऐसा ही हाल होता है, न हो तो अचरज की बात। पता नही मॉ का प्यार किस रहस्यपूर्ण ढग से बच्चे का परिष्कार किया करता है। माता – विमाता एव पुत्र के सम्बन्धो की गुत्थी को सुलझाने के लिये प्रेमचन्द ने उनसे मिलते–जुलते पात्रो की सृष्टि की। प्रेमचन्द की आवारागर्दी बाद मे तिलस्म और ऐयारी की पुस्तको के अध्ययन के रूप मे

बदल गई। मौलाना फैजी के तिलस्म होशरूबा के पच्चीसो हजार पन्ने तेरह साल के नवाब ने दो तीन बरस के दौरान पढे और भी न जाने कितना कुछ चाट डाला जैसे रेनाल्ड की 'मिस्ट्रीज ऑफ कोर्ट आफ लन्दन' की पच्चीसो किताबो के उर्दू तजुर्मे, मौलाना सज्जाद हुसैन की हास्य कृतियॉ, उमरावजान अदा के लेखक मिर्जा रूसवा और रतनाथ सरशार के ढेरो किस्से। उपन्यास खत्म हो गया तो पुराणो की बारी आई नवल किशोर प्रेस मे बहुत से पुराणो के उर्दू अनुवाद छापे थे उनपर टूट पडे"।[७]

"कोई पूछे कि इतनी सब किताबे इस लडके को मिलती कहॉ थी, रेती पर एक बुकसेलर बुद्धिलाल नाम का रहता था मै उसकी दुकान पर जा बैठता था और उसके स्टाक से उपन्यास ले लेकर पढता था मगर दुकान पर तो सारे दिन बैठ न सकता था इसलिए मै उसकी दुकान से अग्रेजी पुस्तको की कुजियॉ और नोट्स लेकर अपने स्कूल के लडको के हाथ बेचा करता था और उसके मुआवजे मे उपन्यास घर लाकर पढता था दो तीन वर्षो मे मैने सैकडो उपन्यास पढ डाले होगे"।[८] प्रेमचन्द को अपनी लेखन शक्ति का एहसास बचपन मे तब हुआ जब उन्होने अपने एक रिश्ते के मामा को उनका कच्चा चिट्ठा नाटक के रूप मे लिखकर उन्हे भागने के लिए विवश किया जो प्राय घर मे ही जमे रहते थे। अमृत राय लिखते है, "नवाब तब तक शरीर से दुर्बल थे और शायद पहली बार उन्हे अपने भीतर की इस नयी शक्ति की चेतना हुई जो मारपीट कर सकने से कही ज्यादा भयकर थी जो काम लाठी से नही हो सकता वह काम यह कलम कर सकती है। मै कमजोर हूँ तो क्या यह एक बडा हथियार मुझे मिल गया है अब मुझे कोई सताकर तो देखे मै उसकी कैसी मिट्टी पलीद करता हूँ। ऐसी मार मारूँगा कि पानी भी मॉगते नहीं बनेगा।"[९]

"इसी बीच नवाब ने मिशन स्कूल से आठवा दर्जा ज्यौ–त्यौ पास कर लिया था। जहीन थे मगर स्कूली किताबो मे जी न लगता था क्योकि तिलस्मी कहानियो की वजह से होश उडा रहता था और जो मजा हातिमताई की सगत मे था वह भला मास्टर साहब की सगत मे कहॉ। लस्टम–फस्टम पास हो जाते। हॉ, हिसाब (गणित) मुस्तकिल हौवा था जिसके नाम से गरीब का हलक सूखता था नवाब को अब नवे दर्जे मे नाम लिखाना था जो कि बनारस मे ही सभव था। पिताजी ने पूँछा कितना खर्चा लगेगा? नवाब ने कहा पॉच रूपया दे दीजिएगा, मगर पॉच रूपये मे भला क्या होता है"?[१०]

प्रेमचन्द को इसी समय बेमेल विवाह का भी सामना करना पडा "नाना साहब ने पन्द्रह साल के इस खूबसूरत नवाब के लिए ऐसी उम्र से ज्यादा, काली भद्दी, थुलथुल, चेचकरू, अफीम खाने वाली, भचक कर चलने वाली औरत ही क्यो चुनी? यह रहस्य उनके साथ ही चला गया लेकिन इसमे शक नही कि जिस–जिस ने देखा उसके मुँह से एक सर्द आह निकल गई।"[११] इस बेमेल विवाहिता से प्रेमचन्द के सम्बन्ध न के बराबर ही रहा। "वह कभी लमही रहती कभी अपने मैके चली जाती।"[१२]

बनारस मे मैट्रिक की शिक्षा के दौरान ही प्रेमचन्द के पिता बीमार पडे और इस दुनिया से चल बसे जिसके कारण प्रेमचन्द एक साल इम्तिहान न दे पाये उसके अगले साल नवाब ने मैट्रिक का इम्तिहान दिया द्वितीय श्रेणी मे पास हुये। अगली कक्षा मे क्वीस कालेज मे उनका प्रवेश पाना एक समस्या बन गयी। पिताजी के स्वर्गवास के कारण आर्थिक समस्या जटिल होती चली गयी कि भाग्य ने उन्हे चुनार मे अट्ठारह रूपये महीने का मास्टर बना दिया। वेतन से पूरा न पडता था इसलिए नवाब ने पॉच रूपये का ट्यूसन भी कर लिया था। "यही पर एक रोज स्कूल की टीम का फुटबाल मैच मिलिटरी के गोरो की एक टीम से हुआ गोरे ने एक खिलाडी को बूट से ठोकर मार दी चढती जवानी की उम्र, नवाब का खून खौल उठा। इसकी यह हिम्मत, सिर्फ इसलिए कि हम काले है, हिन्दुस्तानी है, फिर क्या था. बेतहासा उनपर पिल पडा"।[१३]

"मुशी जी की नियुक्ति २ जुलाई १९०० को बहराइच के जिला स्कूल मे पॉचवे मास्टर के पद पर हुई वेतन बीस रू० महीना सरकारी नौकरी का सिलसिला शुरू हुआ"।[१४] "सरकारी पद पर कार्य करते हुए वे विभिन्न क्षेत्रो के जीवन शैली और उनसे जुडी समस्याओ को नजदीक से देखा और निश्चय किया कि मै अपने किस्से कहानियो से लोगो को उनके समाज के असली रूप को उनकी ऑखो के सामने लाऊँगा और उन्हे सोचने के लिए मजबूर करूँगा, इतना अगर मै कर सका तो समझूँगा कि मेरी जिदगी अकारथ नही गई। अपनी कौम की, जाति की, देश की सेवा करने से बडी बात और क्या है?"[१५]

इन्ही दिनो १९०३ मे उनका एक छोटा उपन्यास 'असरारे मआविद' (देवस्थान का रहस्य) बनारस के एक साप्ताहिक उर्दू पत्र 'आवाज–ए–खल्क' मे ८ अक्टूबर १९०३ से धारावाहिक रूप मे छपना शुरू हुआ। "सन १९०५ मे प्रेमचन्द ने शिवरानी देवी नामक एक बाल विधवा से विवाह किया"।[१६] सरकारी नौकरी के सैलानीपन ने उनकी रचना के लिए विविध रग उपलब्ध कराए "मगर इससे भी बडा लाभ इस सरकारी नौकरी मे यह था कि घूमने को खूब मिलता था। बुन्देलखण्ड का इलाका यूँ भी बहुत खूबसूरत है तमाम नदी, जगल, पहाड, यू०पी० जैसे सपाट समतल मैदान ही नही अपने घोडे या बैलगाडी मे एक से एक बीहड जगह उसको जाना होता वह अपने देश को देख रहा था जिसका मौका अब तक कम मिला था और यह देखना सिर्फ नदी–पहाड का देखना न था बल्कि उस खित्ते की पूरी जिदगी को देखना था उसका सुख, उसका दु ख, उसकी गरीबी, उसकी बहादुरी सभीकुछ"।[१७] शिक्षा विभाग मे सब डिप्टी इसपेक्टर के रूप मे उन्हे कई अनुभव हुए। "सर्वेक्षण के समय बेगार मे दूध, घी, बर्तन सब मिलते थे। पहले तो बेगार लेने से उन्होने इन्कार किया तब वहॉ के रईसो ने कहा कि यह नियम है आप यह नियम हटा देगे तो यह कभी किसी को बेगार देगे ही नही इसपर

उन्होने कहा 'मै तो नही खाऊँगा मेरे नौकर खाएगे'' ।[18] प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य मे बेगार समस्या को भरपूर स्थान मिला है चाहे वह 'प्रेमाश्रम' हो या 'कायाकल्प' या 'कर्बला'।

१६०५–१६०६ मे प्रेमचन्द ने विधवा समस्या पर एक उपन्यास 'प्रेमा' लिखा। कही–कही ऐसा लगता है कि इस उपन्यास का नायक 'अमृत' प्रेमचन्द स्वय है। इसी समय प्रेमचन्द का पहला कहानी सग्रह 'सोजेवतन' प्रकाशित हुआ। 'सोजेवतन' के प्रकाशन की प्रथम सूचना उर्दू मासिक पत्र 'जमाना' जुलाई १६०८ के अक मे मिलती है।[19] प्रेमचन्द ने 'सोजेवतन' की भूमिका मे लिखा है, ''हर एक कौम का साहित्य अपने जमाने की सच्ची तश्वीर होता है बगाल के विभाजन ने लोगो के हृदयो मे विद्रोह का भाव भर दिया है ये विचार साहित्य को प्रभावित करने से कैसे रह सकते थे। ये कुछ कहानियॉ इसी असर की शुरूआत है। हमारे मुल्क मे ऐसी किताबो की सख्त जरूरत है जो नई नस्ल के जिगर पर हुस्बे वतन (देश प्रेम) की अजमत का नशा जगाएँ'' ।[20] इस कहानी सग्रह से समकालीन प्रशासन इतना उद्वेलित हुआ कि हमीरपुर के जिलाधीश ने उन्हे तलब किया। प्रेमचन्द रातो–रात तीस–चालीस मील दूरी तय करके दूसरे दिन साहब से मिले, ''साहब ने मुझसे एक कहानी का आशय पूछा और अन्त मे बिगडकर बोले तुम्हारी कहानियो मे सिडीशन भरा है हुआ है तुम्हारी कहानियॉ एकागी है तुमने अग्रेजी सरकार की तौहीन की है आदि, फैसला हुआ कि मै 'सोजेवतन' की सारी प्रतियॉ सरकार के हवाले कर दूँ और साहब की अनुमति के बिना कभी कुछ न लिखूँ एक हजार प्रतियॉ छपी थी अभी मुश्किल से तीन सौ बिकी थी। शेष सात सौ प्रतियॉ मैने 'जमाना' कार्यालय से मँगवाकर साहब की सेवा मे हाजिर कर दी मुझे बाद मे मालुम हुआ कि साहब ने इस विषय मे जिले के अन्य कर्मचारियो से परामर्श किया डिप्टी इसपेक्टर साहब मुझसे बहुत स्नेह करते थे उन्होने मामले को जैसे–तैसे रफा दफा करवाया।''[21] इसके बाद, ''पहला काम तो नवाब ने यह किया कि 'सोजेवतन' की कुछ ही प्रतियॉ कलेक्टर साहब के हवाले की जो आग की नजर कर दी गई मगर जो कापियॉ जमाना के दफ्तर मे बच गई उनपर किसी का ध्यान नही गया और वह खुफिया तौर पर बिकती रही।[22] इस घटना ने प्रेमचन्द को निश्चित रूप से एक विचारोत्तेजक एव राष्ट्रभक्त लेखक के रूप मे समकालीन परिवेश मे स्थापित किया होगा जैसा कि शिवरानी देवी स्वय लिखती है, ''आप बोले यह तो हमेशा की बात है जब सरकार किसी पुस्तक को जब्त करती है तो उसके खरीददारो की सख्या बढ जाती है महज यह देखने के लिए कि आखिर उसमे है क्या''?[23]

उनके नाम बदलने की घटना को प्रस्तुत करते हुए अमृत राय उद्धृत करते है, ''जब शिवरानी देवी ने इस घटना के बाद पूछा कि तो फिर अब लिखना भी बन्द ही समझूँ तो आप बोले लिखूँगा क्यो नही उपनाम रखना पडेगा। अभी तक नवाबराय के नाम से लिखा करते थे इस घटना के बाद मुशी

दया राम निगम, जो उनके अच्छे मित्रो मे से एक थे, ने प्रेमचन्द नाम पेश किया इसके जवाब मे मुशी नवाबराय ने लिखा प्रेमचन्द अच्छा नाम है मुझे भी पसन्द है। सन् १६१० के अक्टूबर–नवम्बर मे आकर प्रेमचन्द का जन्म हुआ। इस नये नाम के साथ छपने वाली पहली कहानी 'बडे घर की बेटी' है।"[२४] 'सोजेवतन' के उपर साम्राज्यवादी प्रकोप पर टिप्पणी करते हुए 'कमल किशोर गोयनका' लिखते हैं, "अग्रेजी सरकार द्वारा किसी भारतीय लेखक की पुस्तक को इस प्रकार अग्नि मे जला देने की यह पहली घटना थी और विदेशी दासता के उखाड फेकने के सग्राम मे किसी लेखक द्वारा यह पहली साहित्यिक आहुति थी।"[२५]

प्रेमचन्द स्वय की अनगढ विचारधारा से परिचित थे, ४ मार्च १६१४ को उन्होने निगम साहब को लिखा," मुझे अभी तक इत्मिनान नही हुआ है कि कौन दर्जे की तहरीर इख्तियार करूँ कभी तो बकिम की नकल करता हूँ कभी आजाद के पीछे चलता हूँ आजकल काउण्ट टालस्टाय के किस्से पढ रहा हूँ तबसे कुछ उसी रग की तरफ तबियत माइल है यह अपनी कमजोरी है और क्या"[२६]। १६१३ के लगभग कानपुर जाकर 'प्रताप' के सपादक गणेश शकर विद्यार्थी से मिले वहॉ से लौटने पर शिवरानी देवी से बोले, "विद्यार्थी जी बडे मेहनती है कार्यालय का बहुत काम अपने ही हाथो करते है इसे ही पुरूषार्थ कहते है इसी तरह के आदमियो की मुल्क को जरूरत है. मेरी भी यह इच्छा होती है कि मै भी इस नौकरी को छोड–छाडकर कही एकान्त मे बैठकर साहित्य की सेवा करूँ मेरा दुर्भाग्य है कि मेरे पास थोडी सी जमीन भी नही है।"[२७] इस तरह ग्रामीण परिवेश मे पालित–पोषित और यथार्थ अभिव्यक्ति देने वाले प्रेमचन्द विकल्प शून्यता एव विवशतावश सरकारी नौकरी कर रहे थे। उनके उपर पारिवारिक आश्रितो की सख्या भी कम न थी। साथ ही इस समय अपने मित्र निगम को जो उन्होने पत्र लिखा उसमे उन्होने अपने खराब स्वास्थ्य की चर्चा की तथा उसके कारण के रूप मे सरकारी दौरो को प्रस्तुत किया। २२ मार्च १६१४ को अपने पत्र मे दयाराम निगम को लिखा, "कुछ दिन और जिन्दा रहूँ तो पेशन का हकदार हो जाऊँ"।[२८] "यही नही १६१५ मे उन्होने छ महीने की छुट्टी ले ली" "कानपुर और लखनऊ दोनो जगह दवा कराते रहे"।[२९] पर आराम नही। अन्तत अपने स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या की वजह से तबादले की दरख्वास्त दी और इलाहाबाद डाइरेक्टर से मिले उसने उन्हे मास्टरी की जगह देने को कहा प्रेमचन्द ने अन्तत स्वीकार कर लिया। अब उन्हे गोरखपुर मे तबादले के द्वारा भेजा गया जहॉ वे अपनी सरकारी सेवा के अन्त तक रहे यद्यपि इस सेवाकाल की अवधि अधिक नही रही। सरकारी नौकरी से तो पहले से ही खीझे हुए थे ऊपर से प्रतिकूल स्वास्थ्य साथ ही इसी समय महात्मा गॉधी जी अपने असयोग आन्दोलन के प्रचार–प्रसार के लिए गोरखपुर पहुँचे प्रेमचन्द भी सपरिवार मीटिग मे पहुचे, "महात्मा जी का भाषण सुनकर हम दोनो बहुत प्रभावित हुए"।[३०] कुछ

दिनो के कश्मकश के बाद उन्होने त्यागपत्र दे दिया इस प्रकार वे सरकारी सेवा से मुक्त हो गये, गोरखपुर की नौकरी छोडने के बाद वे "महावीर प्रसाद पोद्दार के निवास स्थान मानीराम गये दो महीना रहने के बाद तय हुआ कि पोद्दार जी के साझे मे शहर मे चर्खे की दुकान खोली जायॅ और वहॉ एक मकान लिया जाय उसी जगह दस चर्खे लगाये जाय चरखा चलाने वाली कुछ औरते भी थी, देहात से बनकर चर्खे आते थे वे बेचे भी जाते थे"।[31] कुछ महीने उपरान्त उन्होने गॉव लमही मे रहने का निर्णय लिया।

गॉव आने पर प्रेमचन्द पुन चर्खा आन्दोलन से जुडे। शिवरानी देवी लिखती है "एक दिन चरखा बनवाने के लिए एक जमीदार के पास लकडी मॉगने गये मुझे आप लकडी दीजिए मै बनवाई दूँ और चर्खे देहात मे बाटे जायॅ जिससे गरीब भाइयो मे चर्खे का प्रचार बढे। जमीदार को यह बात प्रिय लगी और वे देने पर राजी हो गये गॉव भर के आदमियो को इकट्ठा करके आप अपने साथ लकडी लदवा लाये। एक माह तक दो बढई दरवाजे पर चर्खे बनाते रहे उसके बाद सब लोगो को एक–एक चर्खा मुफ्त बॉटा गया चर्खे किस तरह चलाये जायॅ कैसा सूत हो इन सब बातो की जानकारी वे लोगो को कराने लगे"।[32] इस तरह वे अपनी स्वय की परिस्थितियो एव विचारो तथा गॉधी जी कि प्रेरणा से सरकारी नौकरी से अलग हुए और गॉधी जी द्वारा प्रेरित चर्खा आन्दोलन से व्यक्तिगत रूप से न केवल जुडे बल्कि कई समूहो को जोडने का यथाशक्ति प्रयास किया अगर उनके (प्रेमचन्द) प्रयास को ध्यान मे रखा जाय तो 'सुमित सरकार' के इस कथन से सहमत नही हुआ जा सकता, कम से कम उत्तर भारत मे, चर्खा कार्यक्रम मे आरम्भ मे बुद्धिजीवियो का प्राधान्य रहा।[33]

प्रेमचन्द अधिक दिनो तक लमही न रह सके। कानपुर मे एक मारवाडी स्कूल मे अध्यापक हो गये, पर अधिक दिनो वहॉ भी न रहे २२ फरवरी १६२२ को मारवाडी विद्यालय कानपुर से इस्तीफा दे दिया। "इन्ही दिनो बाबू शिवप्रसाद गुप्त ज्ञानमण्डल से 'मर्यादा' नामक मासिक पत्र निकालते थे जिसका सम्पादन बाबू सम्पूर्णानन्द करते थे। वे असहयोग आन्दोलन मे पकडे गये और स्थानापन्न सपादक के रूप मे प्रेमचन्द की नियुक्ति हो गई।"[34] सम्पूर्णानन्द की वापसी पर उन्हे विद्यापीठ के सरकारी महकमे मे हेडमास्टरी मिल गई"[35] उधर 'प्रेमाश्रम' की भी अच्छी बिक्री हो रही थी "सवासाल मे एक हजार प्रतियॉ निकल गईं थी।"[36] इस समय तक हिन्दी रचनाजगत मे प्रेमचन्द एक लेखक के रूप मे स्थापित हो चुके थे यही नही उनकी कुछ कहानियॉ विदेशो मे भी वहॉ की भाषा मे अनुदित हो चुकी थी। २ अगस्त १६२८ को सब्बरवाल ने टोकियो से लिखा "आपकी पहली कहानी जिसका अनुवाद मैने किया 'मर्यादा की बेदी' मेरी आशा के विपरीत यह विल्कुल असफल रही। जापान कि किसी प्रथम श्रेणी की पत्रिका ने उसे स्वीकार नही किया। उसमे भारतीय इतिहास और राष्ट्रीय भावना बहुत है

जिसमे जापान के पाठक समाज की रूचि नही है। उसके बाद 'मुक्तिमार्ग' को लेकर किस्मत आजमाई और वह जब जून के महीने मे टोकियो के 'काइजो' (पुर्ननिर्माण) पत्रिका मे छपी तो एक तहलका सा मच गया। 'काइजो' जापान की ही सर्वश्रेष्ठ पत्रिका नही है उसकी गिनती ससार के सर्वश्रेष्ठ पत्रिकाओ मे होती है।''[३७]

प्रो० ताराचन्द राय ने जो बर्लिन विश्वविद्यालय मे हिन्दी के प्रोफेसर थे, २७ नवम्बर १९२८ को लिखा'' मै यह कहने की जरूरत नही समझता कि आप आधुनिक युग के सबसे महान हिन्दी लेखक है आपने आज के जीते जागते हिन्दुस्तान को वाणी दी है आपने हमारी मातृभूमि की जीवन मरण समस्याओ पर अपनी विराट मनीषा का आलोक फेका है।[३८]

''सन् १९२८ की बात है हिन्दुस्तानी एकेडमी की मीटिग थी और प्रयाग मे ही काग्रेस वर्किंग कमेटी की भी मीटिग थी। महात्मा गॉधी भी उन दिनो प्रयाग मे आने वाले थे आपको (प्रेमचन्द) महात्मा गॉधी से मिलने की बहुत ख्वाइश थी वे दो दिन पहले गये और एकेडमी की मीटिग के दो दिन बाद लौटे फिर भी महात्मा गॉधी के दर्शन न कर पाये।''[३९] ''फिर उस समय के बाद सन् ३५ मे 'हिन्दी परिषद' की मीटिग वर्धा मे हुई उस समय आप 'हस' के विषय मे बातचीत करने के लिए वर्धा गये परिषद को 'हस' देना था और उसके साथ हिन्दी और हिन्दुस्तानी के विषय मे भी सलाह मसविरा करना था, उसमे महात्मा जी ने स्वय बुलाया था।''[४०] इस समय महात्मा गॉधी जी के दर्शन की उनकी इच्छा पूरी हुई और उन्होने स्वीकार किया कि मै उनका चेला हो गया।

सयुक्त प्रान्त के गवर्नर हेली साहब भारत के सबसे बडे राइटर के रूप मे उन्हे राय साहबी देना चाहते थे प्रेमचन्द ने जवाब लिखा ''मै जनता का तुच्छ सेवक हूँ अगर जनता की राय साहबी मिलेगी तो सिर ऑखो पर''।[४१] १९३० के आन्दोलन मे उनकी प्रवृत्ति को सदर्भित करती हुई शिवरानी देवी उद्घृत करती है,'' १९३० की लखनऊ की बात है महात्मा गॉधी नमक कानून तोडने डाडी गये वे (प्रेमचन्द) 'माधुरी' का सम्पादन करते थे अप्रैल का महीना था मेरे घर के सामने अमीनुद्दौला पार्क था उसी जगह रोज स्वयसेवक आकर नमक बनाते ऐसा मालुम होता था कि सारा लखनऊ उमड आता था उन्ही के साथ पुलिस मय हथियार के पहुँच जाती थी वह बराबर कहते मेरे जेल जाने का समय आ गया है। मै उनको जेल नही जाने देना चाहती थी क्योकि उनकी सेहत ठीक नही थी फलत शिवरानी देवी खुद मोहनलाल सक्सेना के माध्यम से गुपचुप तरीके से सक्रिय हुई और परिवार के एक सदस्य के रूप मे कई बार जेल यात्राएँ की उन्होने पिकेटिग और शराब बन्दी आन्दोलनो मे सक्रिय हिस्सा लिया।[४२]

इसी समय तमाम आर्थिक कठिनाइयो के बावजूद वे (प्रेमचन्द) अपना प्रेस लगाने और 'हस' पत्रिका (मासिक) निकालने का निर्णय किया उसके पहले अक (मार्च १६३०) के स्थायी स्तम्भ 'हसवाणी' मे वे लिखते है, "यह हस के लिए परम सौभाग्य की बात है कि उसका जन्म ऐसे शुभ अवसर पर शुरू हुआ है जब भारत मे एक नये युग का आगमन हो रहा है जब भारत पराधीनता की बेडियो से निकलने के लिए तडपने लगा है।"[४३] 'हस' के शुरूआती चार अक इतने धारदार रहे कि ब्रिटिश सत्ता को पचा पाना मुश्किल रहा और प्रेस से हजार रूपये की जमानत मॉग ली गई। 'हस' पर 'काले कानून के प्रहार' शीर्षक से एक पर्चे मे प्रेमचन्द ने लिखा, "हमने जमानत जमा करने से इन्कार करके प्रेस को बन्द कर दिया जिन बडी–बडी आशाओ को लेकर हमने 'हस' को बडे प्रेम से प्रकाशित किया था वे अभी कोसो दूर थी।"[४४] 'हस' उन्होने पुन निकालना प्रारम्भ किया पर उसमे वह धार नही रही। प्रेस घाटे मे चल रहा था विज्ञापन का दबाव बढता जा रहा था। पाठको की सख्या भी कम ही थी। इसी विषय पर उन्होने जून १६३४ के अक मे एक लेख, 'मुफ्तखोर पाठक' शीर्षक से लिखा। यही नही प्रेस खोलने के निर्णय को वे अपनी –जिदगी की सबसे बडी गलती मान बैठे।[४५] सितम्बर १६३१ के 'हस' मे नये प्रेस बिल के अन्तर्गत जो निरकुश अधिकार प्रशासन को दिए गये उसकी कडी आलोचना की, "यह कानून उस वक्त बनाया जा रहा है जब भारत को स्वराज देने की बात हो रही है।"[४६]

इसी बीच अक्टूबर १६३४ से 'हस' 'भारतीय साहित्य परिषद के मुखपत्र के रूप मे निकालने का निर्णय किया गया। प्रेमचन्द ने लिखा, "महात्मा गॉधी ने हमे आशीर्वाद दिया है सच तो यह है कि यह काम उन्ही की प्रेरणा से उठाया गया है। 'हस' के प्रकाशन के लिए बम्बई मे एक लिमिटेड कम्पनी बनाई गई है और अब वही उसका प्रकाशन करेगी"।[४७] भारतीय साहित्य परिषद को 'हस' को सौपने के पूर्व भी 'सरस्वती प्रेस' और 'जागरण' से दो हजार की जमानत मॉग ली गई थी जिसकी पुष्टि जैनेन्द्र को लिखे एक पत्र से होती है, "जरा–जरा सी बात पर गर्दन पर छुरी चल जाती है।[४८]

मई १६३४ मे बम्बई के फिल्म कम्पनी वालो के बुलाने पर प्रेमचन्द बम्बई पहुँचे। एक साल का समझौता था उनका उद्देश्य क्या था शिवरानी देवी लिखती है, "उन्होने कहा जाने से खास फायदा होगा वह यह कि उपन्यास और कहानिया लिखने मे जो फायदे नही हो रहे है उससे कही ज्यादा फिल्म दिखला कर हो सकता है। कहानियॉ उपन्यास जो लोग पढेगे वही तो उससे लाभ उठा सकेगे? फिल्म से हर जगह के लोग लाभ उठा सक्ते है।"[४९] पर प्रेमचन्द का उद्देश्य पूरा नही हुआ "मै जिन इरादो से आया था उनमे एक भी पूरा होता नजर नही आता मैने सामाजिक कहानियॉ लिखी जिन्हे

शिक्षित समाज भी देखना चाहे लेकिन उनका फिल्माकन करते इन लोगो को सदेह होता है कि चले या न चले"।[50] प्रेमचन्द इस बात से सहमत थे कि "भारतीय सिनेमा कुपात्रो के हाथ मे है"।[51]

मुम्बई से ही दिसम्बर मे मद्रास जाने की तेयारी हो गई। हिन्दी प्रचार सभा ने दीक्षान्त भाषण करने के लिए आमन्त्रित किया था वही से उन्होने मैसूर, बग्लौर आदि स्थानो पर भ्रमण किया। अन्तत मई १६३५ मे वे बनारस आ गये और बीमारी (अन्तिम) शुरू हो गई। प्रेस का कार्य, कहानी उपन्यास लेखन समानान्तर मे चलता रहा, साथ ही पूर्णियॉ, दिल्ली आदि स्थानो की यात्रा भी की और कई सभाओ का सभापत्तिव भी किया। 'हस' महात्मा गॉधी के हाथो कोई दस महीने तक रहा उसके बाद जुलाई के महीने मे 'हस' से जमानत मॉगी गई। भारतीय साहित्य परिषद ने 'हस' को बन्द करने की घोषणा कर दी। प्रेमचन्द इस बात पर क्षुब्ध हुए और उन्होने जमानत जमा करके 'हस' को मरने से बचा लिया पर स्वय ८ अक्टूबर १६३६ को इस दुनियॉ से चल बसे।

**XXXXX**

प्रेमचन्द के जीवन के कुछ निजी पक्षो को उद्घाटित करते हुए 'शैलेश जैदी' अपने अध्ययन मे उन्हे (प्रेमचन्द) अमृतराय की तरह 'कलम का सिपाही' न स्वीकार करते हुए कहते है, "मेरी दृष्टि मे उन्हे यदि कुछ कहा जा सकता है तो कलम का सौदागर वे जीवन मे जितना व्यापारिक थे उतना कोई अन्य साहित्यकार मुश्किल से होगा"।[52] परन्तु जैदी का दृष्टिकोण अतिरेक प्रतीत होता है। प्रेमचन्द निम्न मध्यमवर्गीय परिवार मे जन्मे और मृत्यु पर्यन्त सघर्ष करते रहे। आर्थिक उपादानो के लिए, वह भी अपनी पुस्तको (उपन्यास, कहानी आदि) के लिए, यदि उन्होने कुछ मूल्य प्रकाशको से लिया इससे उनकी महत्ता कम नही हो जाती। यद्यपि उन्होने कभी भी स्वय को कलम का सिपाही नही कहा अपितु अपने को कलम का मजदूर मानते रहे, जैसा कि शिवरानी देवी उद्घृत करती है, "मै पहले ही सबसे कह दूँगा कि मै तो मजदूर हूँ तुम फावड़ा चलाते हो मै कलम चलाता हूँ हम दोनो बराबर ही है।"[53] जैसा कि डा रामविलास शर्मा भी स्वीकार करते है, "प्रेमचन्द दु खी हिन्दुस्तान के गरीबो के लेखक है उनका साहित्य तमाम पीडितो का मानसिक सबल है। प्रेमचन्द की आवश्यकताएँ हिन्दुस्तान के एक साधारण किसान की आवश्यकताएँ थी। उन्हे भी पूरा करने के लिए उन्हे जी तोड परिश्रम करना पडा। उन्हे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से टक्कर लेनी पडी यह कहना सच होगा की प्रेमचन्द देश की आजादी के लिए लडते हुए शहीद हुए और उनका खून अग्रेज साम्राज्यवादियो के सिर पर है।[54]

'कमल किशोर गोयनका' अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशाएँ' मे प्रेमचन्द के एक ऐसे पत्र का उद्धरण प्रस्तुत करते है जिसमे प्रेमचन्द वास्तव मे विधवा विवाह के पक्षधर नही मालुम

पडते और उनकी इस विचारधारा को गॉधीजी के इस विचार से जोडते है कि एक सच्ची हिन्दू विधवा एक अमूल्य निधि है और मानवता को हिन्दुत्व की एक बहुत बडी देन है।"[५५] पत्र सक्षिप्त रूप मे इस प्रकार है, "प्रियवर बन्दे, मैने विधवा का विवाह कराके हिन्दू नारी को आदर्श से गिरा दिया था। उस वक्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति जोरो पर थी"। क्या प्रेमचन्द अपने उपन्यास 'प्रेमा' (१९०७) मे विधवा पूर्णा का विवाह नायक अमृत से कराकर प्रायश्चित कर रहे हैं? या 'प्रतिज्ञा' (१९२७) उपन्यास ने नायिका (विधवा) को समाज सेवा से जोडकर अपनी आरम्भिक त्रुटि सुधार रहे है? दोनो का उत्तर है नही। दरअसल प्रेमचन्द हिन्दू समाज की जटिलताओ से परिचित थे जो कि सुधार का मार्ग जानते हुए भी उसपर चलने मे सकोच करता है। अत एक विधवा के सामने उन्होने दो विकल्प रखने की कोशिश की, समाज सेवा एव पुनर्विवाह दोनो। दोनो का चयन विधवाए अपनी सुविधानुसार कर सकती है। साथ ही हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि लेखक स्वयं युवक होने पर भी एक विधवा से ही विवाह करता है और वह भी तमाम अन्तर्विरोधो के बावजूद।

प्रेमचन्द अपने युग मे कम विवादित न थे। ठाकुर श्रीनाथ सिह ने दिसम्बर १९३० मे 'सरस्वती' मे मुशी प्रेमचन्द को ब्राह्मणो के खिलाफ घृणा का प्रचार करने वाला बताया।[५६] यही नही १९२६ मे प्रेमचन्द ने 'मोटेराम शास्त्री' कहानी लिखी तो उस शास्त्री महाशय ने केस दायर कर दिया।[५७] प्रेमचन्द की अधिकाश कहानियो मे 'मोटेराम शास्त्री' एक व्यग एव हॅसी के पात्र है। प्रेमचन्द ब्राह्मणो की पराश्रितता एव वशानुगत सर्वोच्चता के खिलाफ थे, "इन्ही ब्राह्मण देवता ने आज हिन्दू समाज को इस दशा मे पहुँचाया है और अगर समय रहते इसका उपचार न किया गया तो भगवान भी हिन्दू समाज को रसातल मे जाने से नही बचा सकते।"[५८] "लेखक की दृष्टि मे ब्राह्मण कोई समुदाय नही एक महान पद है जिसपर आदमी बहुत त्याग, सेवा और सदाचरण से पहुँचता है। हर एक टके पथी पुजारी को ब्राह्मण कहकर मै इस पद का अपमान न्ही कर सकता।"[५९] कहानी 'बालक' का नायक जरूर ब्राह्मण पद का अधिकारी है क्योकि उसने एक प्ररित्यक्ता को शरण दी है।

प्रेमचन्द पर कई बार उपन्यास कहानियो के प्लाट चुराने के भी आरोप लगे। एक सज्जन 'अवधनारायण उपाध्याय' ने तो जैसे अपने सम्पूर्ण जीवन का लक्ष्य ही मुशीजी के कृतित्व पर कीचड उछालना बना लिया था। "एक लेख यह सिद्ध करने के लिए कि रगभूमि 'बेनिटी फेयर' की नकल है और दूसरा लेख यह सिद्ध करने के लिए कि 'प्रेमाश्रम' 'टालस्टाय' के 'रिजेक्सन' की नकल है। लेकिन जब इतने से इनका जी नही भरा तो कुछ समय बाद यह दिखाने की कोशिश की कि 'कायाकल्प' हालकेन के 'इटर्नलसिटी' की नकल है। इसे नियति का एक व्यग ही कहना चाहिये कि जिस समय 'प्रेमाश्रम' को 'रिजेक्सन' की छाया सिद्ध करने का यह यत्न हो रहा था उन्ही दिनो 'रिजेक्सन' के

लेखक टालस्टाय के देश मे प्रेमाश्रम का अनुवाद हो रहा था।"[६०] इस सदर्भ मे प्रेमचन्द ने स्पष्टीकरण देते हुए लिखा, "मेरे भावो और विचारो मे उच्चकोटि के लेखको जैसी बहुत सी बाते आवेगी आप जो अच्छी पुस्तक देखेगे वही मेरे किसी पुस्तक से मिलती–जुलती जान पडेगी कारण यही है कि मै अपने प्लाट जीवन से लेता हूँ पुस्तको से नही और जीवन सारे ससार मे एक है।"[६१]

**X X X X X**

"१९०१ मे जब प्रेमचन्द ने उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया उस वक्त समाज सुधार आन्दोलन राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अग था। इण्डियन नेशनल काग्रेस के अधिवेशन के साथ–साथ समाजसुधार सम्मेलन भी हुआ करता था। ये समाज सुधारक रिफार्मिस्ट पार्टी कहलाते थे इनके नेता महादेव गोविन्द रनाडे, गोपाल कृष्ण गोखले जैसे उदार नेता थे जो साथ ही काग्रेस के भी नेता थे, उपन्यासकार प्रेमचन्द भी इस रिफार्मिस्ट पाटी के समर्थक बन जाते है।"[६२] इस तरह प्रेमचन्द के शुरूआती उपन्यासो मे समाजसुधार को ध्यान मे रखा गया है। 'देवस्थान का रहस्य' (असरारे–मआविद) महन्तो के काले कारनामो, एव विधवा विवाह पर 'प्रेमा' (हमखुर्मा हमशबाब) उपन्यास लिखे गये। 'रूठी रानी' उपन्यास मे लेखको की महत्ता प्रेमचन्द ने स्थापित की। 'वरदान' की नायिका, 'सुवामा' देवी से ऐसे पुत्र को वरदान के रूप मे मॉगती है "जो अपने देश का उपकार करे"।[६३] अयोध्या सिह भी स्वीकार करते है, "उनका प्रथम कहानी सग्रह जो १९०८ मे प्रकाशित हुआ अपनी मातृभूमि की सेवा मे अर्पित प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति है। सासारिक प्रेम और देश प्रेम मे देश प्रेम का पलडा भारी होता है। वहॉ दुनिया का सबसे 'अनमोल रतन' कोहिनूर हीरा या प्रेमी–प्रेमिका के वियोग मे बने ऑसू नही वरन देश की रक्षा मे अपने प्राणो की बलि देने वाले सिपाही के खून का कतरा है। इस तरह प्रेमचन्द की आरम्भिक रचनाए बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय (वन्देमातरम्), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (भारत दुर्दशा), अल्ताफ हुसैन हाली (हुब्बेवतन) की परम्परा को अधिक सशक्तता के साथ आगे बढाने का प्रयास है।"[६४]

गॉधी जी को अपनी विचारधारा निर्मित करने मे जिन विचार सरणियो को मुख्य माना जाता है उनमे टालस्टाय भी है यह अजब "सयोग ही है कि प्रेमचन्द न केवल टालस्टाय से प्रभावित हुए वरन् उनका अनुवाद भी किया। सत्य–अहिसा–अपरिग्रह के जो आदर्श गॉधीजी देश के सामने रख रहे थे वे समग्रत उनके अपने मन के थे, क्योकि जिस रास्ते पर चलकर गॉधीजी ने उन्हे पाया था वह बहुत कुछ उसी रास्ते पर चलकर प्रेमचन्द भी उन्हे पा चुके थे। टालस्टाय की नीति कथाए उन्होने भी पढी थी उनका असर अपने लिखने मे लिया था और गॉधीजी के रगमच पर आने के पहले उनमे से तेईस कहानियो का भारतीय परिवेश के अनुसार रूपान्तर 'प्रेमप्रभाकर' के नाम से छाप चुके थे।"[६५] वैसे प्रेमचन्द अपने शुरूआती दौर मे जो विचार प्रगट किए है वे परवर्ती काल मे गॉधीवादी विचारधारा से

पूर्णरूप से मेल नही रखते। नवम्बर–दिसम्बर १९०५ मे उन्होने एक लेख गोखले पर लिखा, "कितनी अच्छी बात कही है तिलक ने 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसे मै ले कर रहूँगा'। कौन होते है आप यह कहने वाले कि हम अपने देश की जिम्मेदारी सभालने के काबिल हुये या नही, न होगे तो देखी जाएगी जो पडेगी हम पर भुगत लेगे आपसे कहने न जाएगे हुकूमत करने वाले सब एक से होते है गोखले ने खामखाह आस लगा रखी है उनसे कुछ होने जाने वाला नही है तिलक का रास्ता ठीक है आजादी हमेशा लड कर ली जाती है भीख मॉगने से आजादी नही मिला करती। मॉग तो रहे है भीख इतने दिनो से मिला कुछ, किसी को मिली है या आप ही को मिलेगी। कुर्बानी दरकार है उसके लिए, यह तो लडाई है बाकायदा इसमे कहॉ की रहम, कहॉ की मुरौवत सब बच्चो को बहलाने की बाते है। जिस दिन मुल्क कुर्बानी के रास्ते पर निकल पडेगा आजादी रखी हुई है।"[६६] इस तरह यह नही कहा जा सकता कि प्रेमचन्द आरम्भ से ही गॉधीवादी विचारधारा से सयुक्त रचनाएँ समाज को दे रहे थे। हॉ अमृत राय के इस दृष्टिकोण से सहमत हुआ जा सकता है कि, "गॉधीजी को जिन थोडे लोगो ने सबसे पहले समझा उनमे प्रेमचन्द भी एक है। बिरवा उनके मन मे पहले से लहलहा रहा था गॉधीजी को उसे रोपना नही पडा। हॉ, सीचा जरूर।"[६७] प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का नायक प्रेमशकर गॉधीवादी विचारधारा के अनुरूप ही कार्य करता है। प्रेमशकर अमेरिका से भारत आये है महात्मा गॉधी दक्षिण अफ्रिका से। प्रेमशकर कहते है, " मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्य अपनी मेहनत की कमाई को अपनी जीवन वृत्ति का आधार बनाए।"[६८] प्रेमशकर के बारे मे 'प्रेमाश्रम' उपन्यास का पात्र ज्वाला कहता है, "वह पूरे पन्द्रह दिन से देहातो मे दौरे कर रहे है एक दिन भी आराम से नही बैठते गॉव की जनता उन्हे पूजती है।"[६९]

महात्मा गॉधी भूमि उसी की स्वीकार करते है जो उसे जोतता है।[७०] यद्यपि गॉधी जी ने १९३१ मे द्वितीय गोलमेज परिषद की सघीय व्यवस्था समिति मे भाषण करते हुये कहा था "न तो काग्रेस की ही इच्छा है और न इन मूक भिखारियो की इच्छा है कि जमीदार से उनकी भूमि आदि छीन ली जाय किन्तु जमीदारो को उनके न्यासधारियों के रूप मे कार्य करना पडेगा।[७१] प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' मे ऐसे किसानो का चित्रण किया है जो प्रशासन के थोडे से अत्याचार के खिलाफ हिसा पर उतारू हो जाते है। 'चराई प्रथा' समाप्त करने पर मनोहर स्थानीय प्रशासक गौसखॉ की हत्या कर देता है, परन्तु न्यायालय मे सभी अभिजन बलराज के विरूद्ध काम करते है फलत बलराज और उसका सघर्ष परास्त हो जाता है। यद्यपि प्रकारान्तर मे, इर्फानअली, ज्वालासिह अभिजात्यवादी नागरिक होने के बावजूद अन्तत जन के पक्षधर होते है तभी जनवाद की जीत होती है। ऐसा करके प्रेमचन्द जैसे, अभिजात्य शक्तियो का आह्वान भी करते है कि वे जनवादी शक्तियो को प्रेरित करे यह प्रेमचन्द की शुरूआती

सीख है। अपने परवर्ती रचना 'गोदान' मे प्रेमचन्द जनवाद के पक्ष मे अभिजात्य शक्तियो को नही ला पाते फलत जनशक्ति परास्त हो जाती है। इस तरह प्रेमचन्द जनवाद को निरपेक्ष ढग से चित्रित नही कर पाते। उनके अनुसार जनशक्ति की विजय के लिए अभिजात्य शक्तियो का सहयोग आवश्यक है। साथ ही प्रेमचन्द के रचनात्मक रूझानो से यह भी उद्घाटित होता है कि प्रेमचन्द जहॉ अपने आरम्भिक साहित्यिक प्रयासो मे किसानो एव मजदूरो के उत्थान मे अभिजात्य वर्ग के सहयोग के प्रति आश्वस्त थे वही बाद मे इसी आश्वस्ति का खण्डन भी हो जाता है। 'प्रेमाश्रम' मे प्रेमशकर द्वारा प्रशिक्षित नया उत्तराधिकारी (जमीदार) यह घोषणा करता है "मै आप सब सज्जनो के सम्मुख उन अधिकारो एव सत्वो का त्याग करता हूॅ जो प्रथा नियम और समाज ने मुझे दिये है। मै अपनी प्रजा को अपने अधिकारो के बन्धन से मुक्त करता हूॅ। वह न मेरे आसामी है और न मै उनका तालुकेदार। वह सब सज्जन मेरे मित्र है, मेरे भाई है आज से वह अपने जोत के स्वय जमीदार है अब उन्हे मेरे करिन्दो के अन्याय और मेरी स्वार्थभक्ति की यन्त्रणाये न सहनी पडेगी। वह इजाफे, एखराज, बेगार की बिडम्बनाओ से मुक्त हो गये।"[७२]

महात्मा गॉधी द्वारा जनवरी १९२१ मे असहयोग आन्दोलन के शुरूआत की घोषणा की गयी। महात्मा गॉधी ने लिखा, "सक्रिय अहिसा का मतलब है स्वेच्छा से कष्ट सहन। इसका मतलब अन्यायी की इच्छा के आगे दीनतापूर्वक झुक जाना नही है, इसका मतलब तो अपनी आत्मा की समस्त शक्ति से अत्याचारी का विरोध करना है। हमारे अस्तित्व को सार्थक बनाने वाले इस नियम का अनुसरण करके कोई अकेला व्यक्ति भी अपने सम्मान, अपने धर्म और अपनी आत्मा की रक्षा के लिये एक अन्यायी साम्राज्य की समस्त शक्तियो को चुनौती दे सकता है और उस साम्राज्य के पतन या पुनरूद्धार का कारण बन सकता है।[७३] महात्मा गॉधी ने असहयोगी की निम्नलिखित विशेषताए बताईं, "लोकमत तैयार करना, विरोधियो के दुर्वचन एव दुर्व्यवहार सहन करने की शक्ति, कठोर सयमी, प्रेममूलक असहयोग साधन पर पूर्ण श्रद्धा, फल के प्रति उदासीन, प्रत्येक कार्य मे विवेक, विचार एव नम्रता।[७४] महात्मा गॉधी ने एक जगह यह भी लिखा, "इस राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल आधार है हिसा से असहयोग चाहे वह हिसा कलम की हो या तलवार की।"[७५] 'रगभूमि' उपन्यास का रचनाकाल अक्टूबर १९२२ से अप्रैल १९२४ के मध्य माना जाता है। इस उपन्यास का नायक अधा भिखारी है, जिसका नाम सूरदास है। उसके पास थोडी सी जमीन है जिसे प्राप्त करने की कोशिश मे एक अग्रेज (जानसेवक) को नाको चने चबाना पडता है। सूरदास अहिसक सघर्ष जारी रखता है। सूरदास कारखाने के खुल जाने से ही अपने ऊपर विपत्ति आने की बात ठाकुरदीन से करता है। सूरदास अपने लम्बे सघर्ष मे थकता नही। लोग उसके झोपडे मे आग भी लगा देते है। मिठुआ जो उसका दत्तक पुत्र है, पूछता है,

"दादा हम कहाँ रहेगे। सूरदास—दूसरा घर बनायेगे, मिठुआ— और कोई फिर आग लगा दे, सूरदास— तो फिर बनाएगे और कोई फिर सौ लाख बार लगा दे तो, सूरदास ने उसी बालोचित सरलता से उत्तर दिया तो हम सौ लाख बार बनाएगें।"[७६]

सूरदास एक गीत भी प्राय गाता है, "भई क्यौ रन से मुँह मोडै? / वीरो का काम है लडना कुछ नाम जगत मे करना/ क्यौ निज मरजादा छोडै / भई क्यौ रन से मुँह मोडै/ क्यो जीत की तुझको इच्छा/ क्यो हार की तुझको चिता/ क्यौ दु ख से नाता जोडै / भई क्यौ रन से मुख मोडै/ तू रगभूमि मे आया दिखलानी अपनी माया/ क्यौ धर्म की नीति को तोडै।"[७७] इस तरह सूरदास बिना आसक्ति के अपने हक के लिये सघर्ष करने के लिए लोगो का आह्वावन करता है। वह सघर्ष को एक खेल की तरह स्वीकार करता है। "नही मिस साहब यह खिलाडियो की नीति नही है। खिलाडी जीत कर हारने वाले की हँसी नही उडाता उससे गले मिलता है और हाथ जोडकर कहता है अगर हमने खेल मे तुमसे कोई अनुचित व्यवहार किया हो तो हमे माफ करना मेरा धर्म तो यही है कि जब कोई मेरी चीज पर हाथ बढाये तो उसका हाथ पकड लूँ वह लडे तो लडूँ और उस चीज के लिए प्रान तक दे दूँ। चीज मेरे हाथ आयेगी इससे मुझसे मतलब नही मेरा काम तो लडना है वह भी धर्म की लडाई लडना"।[७८]

'रगभूमि' का ही पात्र विनय कहता है "तुम्हारा यह विचार कि इन हत्याकाडो से अधिकारी वर्ग प्रजापरायण हो जाएगी मेरी समझ मे निर्मूल और भ्रमपूर्ण है।"[७९] सूरदास को समकालीन न्याय व्यवस्था मे भी विश्वास नही है। जब उसे सजा होती है तो वह कहता है, "मेरी अपील पचो मे होगी एक आदमी के कहने से मै अपराधी नही हो सकता चाहे वह कितना बडा आदमी हो। हाकिम ने सजा दी काट लूँगा, पर पचो का भी फैसला सुन लेना चाहता हूँ"।[८०] प्रेमचन्द कई हजार कठो से प्रतिध्वनि निकलवाते है, "हाँ अदालत बेईमान है"।[८१] यही नही प्रेमचन्द यह भी कहते है, "अदालत रूपये वालो की है"।[८२] सूरदास अहिसा की मान्यता को स्थापित करते हुए कहता है, "सरकार के हाथ मे मारने का बल है हमारे हाथ मे और कोई बल नही तो मर जाने का तो बल है"।[८३] ब्रिटिश सत्ता के समक्ष जनता के धैर्य का चित्रण करते हुये प्रेमचन्द कहते है, "क्लार्क को देखो कितनी निर्दयता से लोगो को हटर मार रहा है किन्तु कोई हटने का नाम भी नही लेता। जनता का सयम और धैर्य अब अन्तिम बिन्दु तक पहुँच गया है"।[८४]

असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया है महात्मा गाँधी द्वारा। एक तरह से यह भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की क्षणिक हार थी। सूरदास कहता है, "हम हारे तो क्या मैदान से भागे तो नही, धाधली तो नही की, फिर खेलेगे जरा दम ले लेने दो। हार हार कर तुम्ही से खेलना सीखेगे और एक

न एक दिन हमारी जीत होगी जरूर होगी''।[८५] इस उपन्यास के अन्त मे प्रेमचन्द कहते है, ''आप पशुबल से मुझे चुप कराना चाहते है इसलिए कि आप मे धर्म और न्याय का बल नही है। आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया जो गत ४० वर्षो से जमा हुआ था कि गवर्नमेण्ट हमारे ऊपर न्यायबल से शासन करना चाहती है आज उस न्याय बल की कलई खुल गई है, हमारी ऑखो से पर्दा उठ गया है और हम गर्वनमेण्ट को उसके नग्न आवरणहीन रूप मे देख रहे है। अब हमे स्पष्ट दिखाई पड रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिये, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिये, हमको अनन्त काल तक चक्की का बैल बनाए रखने के लिए हमारे उपर राज्य किया जा रहा है। अब तक कोई मुझसे ऐसी बात कहता था मै उससे लडने को तत्पर हो जाता था। मै रिपन, ह्यूम और बेसेण्ट आदि की कीर्ति का उल्लेख करके उसे निरूत्तर करने की चेष्टा करता था पर अब विदित हो गया  कि उद्देश्य सबका एक ही है केवल साधनो का अन्तर है''।[८६]

कमल किशोर गोयनका लिखते है, ''महात्मा गॉधी के असहयोग आन्दोलन, औद्योगिक नीति, सत्य एव अहिसा, सविनय अवज्ञा से अन्याय एव पराधीनता के विरूद्ध सघर्ष, स्वराज एव कृषि सस्कृति की रक्षा आदि विचारो का समाज और साहित्य पर जो प्रभाव पडा उसकी एक झॉकी हमे 'रगभूमि' से प्राप्त होती है। देश की राजनीति मे जो कार्य महात्मा गॉधी ने किया वही कार्य साहित्य की क्षेत्र मे प्रेमचन्द की 'रगभूमि' ने किया। अपने देश की मिट्टी सस्कार तथा सस्कृति से जुडने की जो मानसिक क्रिया 'सोजेवतन' से प्रारम्भ हुई थी उसका चरम विकसित रूप हमे 'रंगभूमि' मे दृष्टिगत होता है''।[८७] प्रेमचन्द पर गॉधीवाद के प्रभाव का अध्ययन करते समय इस दृष्टिकोण को ध्यान मे रखना चाहिये कि, ''गॉव, किसान, अछूत, हिन्दू मुस्लिम सद्भाव, नारी ये सब प्रेमचन्द के रचना ससार मे गॉधी जी के भारत की राजनीति में सक्रिय होने से पहले ही अपनी प्रधान जगह ले चुके थे''।[८८]

प्रेमचन्द ने 'कायाकल्प' नामक उपन्यास की रचना १९२४–२६ के मध्य की। मूलत प्रेमचन्द जनसमस्या के यर्थाथवादी रचनकार रहे है, जिसकी दिशा एक आदर्श की ओर होती है, लेकिन उन्हे जो भावभूमि कथा सन्दर्भ की मिली हुई थी इस उपन्यास मे उससे मुक्ति के लिये वे तडपते हुये प्रतीत होते है। देवप्रिया आख्यान उन्हे उसी भावभूमि से सयुक्त करती है जो पौराणिक कथाओ के अनुरूप यथार्थ से मुक्त लगती है पर यह छाया पूरे उपन्यास का अनिवार्य सदर्भ नही है। पारिवारिक सवेदनाये एव आर्थिक सरचना मनुष्य की राष्ट्रीय एव समाज सेवा भावना को किस सीमा तक प्रेरित एव बाधित करता है यह 'कायाकल्प' मे चित्रित है। 'कायाकल्प' का नायक चक्रधर गॉधीवादी मूल्यो का सवाहक प्रतीत होता है। साम्प्रदायिक हिंसा के उबलते ज्वार के सम्मुख निशस्त्र खडा होकर वह हिसा को

रोकता है और एक अनाथ लडकी को अपना जीवन साथी चुनता है तथा सुखद पारिवारिक आर्थिक जीवन को त्याग कर सुदूर क्षेत्रो मे जाकर जनसेवा का कार्य करता है। नायक चक्रधर कहता है, "हमारे नेताओ मे यही बडा ऐब है कि स्वय देहातो मे न जाकर शहरो मे जमे रहते है जिससे देहातो की सच्ची दशा उन्हे नही मालुम होती न उन्हे वह शक्ति ही हाथ आती है और न जनता पर उसका वह प्रभाव ही पडता है जिसके बगैर राजनीतिक सफलता हो ही नही सकती"।[५९] इसी उपन्यास का जमीदार (राजा) चाहकर भी प्रजाहित मे कुछ नही कर पाता यह विवशता भी प्रेमचन्द चित्रित करते है, "ईश्वर जानता है मेरे मन मे प्रजा हित के लिये कैसे–कैसे हौसले थे, मै अपनी रियासत मे 'रामराज्य' का युग लाना चाहता था पर दुर्भाग्य से परिस्थित कुछ ऐसी होती जाती है कि मुझे वे सभी कार्य करने पड रहे है जिनसे मुझे घृणा थी"।[६०] नायक चक्रधर नैतिकता की भी बात करता है, "अगर अपनी आत्मा की हत्या करके हमारा उद्धार भी होता हो तो हम आत्मा की हत्या न करेगे। ससार को मनुष्य ने नही ईश्वर ने बनाया है भगवान ने उद्धार के जो उपाय बताए है उनसे काम लो और ईश्वर पर भरोसा रखो"।[६१] 'गबन' प्रेमचन्द द्वारा रचित उपन्यास है जो अप्रैल १९२९ से जुलाई १९३० के बीच लिखा गया है। यह उपन्यास एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो आभूषणो से प्रेम करती है। इसी कारण उसके पति को एक गबन करना पडता है और वह भागकर कलकत्ता शरण लेता है। वहॉ कुछ क्रातिकारी कार्य करने वालो के खिलाफ गवाही देने के लिये वह इसलिये तैयार हो जाता है क्योकि बदले मे उससे उसको कुछ अधिक लाभ का लालच प्रशासन ने दिया था। नायक की पत्नी जालपा अपने पति के इस झूठे कृत्य से सिहर जाती है और पति से तब तक घृणा करती है जब तक वह बयान बदल कर क्रातिकारियो को बचा नही लेता। जालपा उनकी सेवा करती है जिनके परिवार के सदस्यो को फॉसी की सजा हो गई थी। अन्तत नायक का हृदय परिवर्तन राष्ट्र हित मे होता है। 'गबन' का पात्र देवीदीन स्वदेशी का पक्का भक्त है जो दो जवान बेटे इसी स्वदेशी के भेट चढा चुका है। दोनो बेटे अहिसक पिकेटिग मे पुलिस के डण्डे से मारे जाते है। देवीदीन कहता है, "सुराज मिलने पर दस–पाच हजार के अफसर नही रहगे, वकीलो की लूट नही रहेगी, पुलिस की लूट बन्द हो जाएगी"। देवीदीन प्रश्न करता है "साहब सच–सच बताओ जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारे ऑखो के सामने आता है? तुम भी बडी–बडी तलब लोगे, तुम भी अग्रेजो की तरह बगलो मे रहोगे, पहाडो की हवा खाओगे, अग्रेजी ठाट बनाये घूमोगे। इस सुराज से क्या देश का कल्यान होगा....अभी तुम्हारा राज नही है तब तो तुम भोगविलास पर इतना मरते हो जब तुम्हारा राज हो जाएगा, तब तो तुम गरीबो को पीसकर पी जाओगे"।[६२]

"असहयोग आन्दोलन के स्थगन के बाद स्थानीय मुद्दो को लेकर यदा–कदा होने वाले सत्याग्रहो के अतिरिक्त अपरिवर्तनवादियो ने १९२२–२७ के दौरान गॉवो मे रचनात्मक कार्य पर ध्यान केन्द्रित किया इसके अन्तर्गत बाढ इत्यादि सकटो मे प्रभावी राहत कार्य, राष्ट्रीय विद्यालयो का सचालन, खादी एव अन्य ग्रामीण हस्तकलाओ को बढावा देना, शराब विरोधी प्रचार और निम्न जातियो एव अछूतो के बीच समाज कार्य सम्मिलित थे।[६३] प्रेमचन्द का उपन्यास 'कर्मभूमि' का लेखन एव प्रकाशन 'गबन' के ठीक बाद स्वीकार किया जाता है। इस उपन्यास का नायक अमरकान्त नियमित रूप से चरखा चलाता है। "अमरकान्त ने गर्व से कहा चरखा रूपये के लिये नही चलाया जाता. यह आत्मशुद्धि का साधन है"।[६४] यही नही, उसे "सूद ब्याज से भी घृणा है"।[६५] अमरकान्त अपना घर बार छोडकर गॉव मे जनसेवा के लिये पहुँचता है, "वह ग्रामवासियो की सरलता और सहृदयता, प्रेम और सन्तोष से मुग्ध हो गया ऐसे सीधे साधे निष्कपट मनुष्यो पर आये दिन जो अत्याचार होते रहते है, उन्हे देख कर उसका हृदय खौल उठता है। घोर अन्याय का राज्य था, अमर की आत्मा इस राज्य के विरूद्ध झण्डा उठाये फिरती थी। अमर ने नम्रता से कहा मै जात–पात नही मानता माताजी जो सच्चा है वह चमार भी हो आदर के योग्य है जो दगाबाज झूठा लम्पट हो वह ब्राह्मण भी हो आदर के जोग नही"।[६६] शराब पीने पिलाने वालो के खिलाफ अमर कहता है, "जहॉ सौ मे से अस्सी आदमी भूखो मरते हो वहॉ दारू पीना गरीबो के रक्त पीने के बराबर है"।[६७] "कर्मभूमि मे प्रेमचन्द नगर एव ग्राम दोनो ही स्थानो मे जागृति फैलाने की बात करते है। नगर मे डा० शान्तिकुमार एव सुखदा कार्य कर रहे है तो गॉव मे अमरकान्त चेतना फैला रहा है। इस प्रकार प्रेमचन्द का दृष्टिकोण अधिक व्यापक दिखाई पडता है पराधीन देश की जनता के सम्मुख जो भी समस्याये थी उन्हे लेखक ने लिया है और समाधान प्रस्तुत किया है"।[६८] "प्रेमचन्द का स्पष्ट मत है कि राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के लिये समाजिक सुधार अनिवार्य है। स्वराज प्राप्ति के लिये लिये सर्वप्रथम जनता मे शक्ति उत्पन्न करनी होगी। सेवाश्रम के स्थापना के यही मूल उद्देश्य है"।[६९] कर्मभूमि के नायक अमरकान्त को आन्दोलन के हिसात्मक रूप पर पश्चाताप होता है पर सुखदा जागृति के एवज मे उसे उचित कहती है।

प्रेमचन्द का अन्तिम पूर्ण उपन्यास 'गोदान' है जो १९३६ मे प्रकाशित हुआ। 'गोदान' का नायक होरी एक ग्रामीण किसान है जो मृत्युपर्यन्त विभिन्न शोषणो एव त्रासदियो का शिकार होता है। प्रेमचन्द को अभी तक जैसे विश्वास था कि समाज के शक्तिशाली अभिजन, किसानो एव श्रमिको की समस्याओ की मुक्ति के लिये स्वय पहल करेगें, इस उपन्यास मे यह विश्वास खण्डित होता प्रतीत होता है। यद्यपि इस उपन्यास मे स्वराज या राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रत्यक्षत हवाला नही है। 'गोदान' के मुख्य प्रात्र होरी की सकटापन्न स्थिति का चित्रण करके और उसे शोषणचक्र का शिकार दिखाकर जैसे

प्रेमचन्द सभी ऐसी शक्तियो का ध्यान आकर्षित करना चाहते है जो उनके शोषण मे भागीदार है या उन्हे मुक्त देखना चाहते है साथ ही किसान से मुजदूर बनने की त्रासदीपूर्ण गाथा भी 'गोदान' का विषय है।

"महात्मा गॉधी के असहयोग आन्दोलन के समय गोरखपुर मे महावीर प्रसाद पोद्दार ने 'असहयोग माला' महात्मा जी के आज्ञा से प्रकाशित की जिसका उद्देश्य था घर – घर स्वराज सदेश पहुँचाना प्रेमचन्द की तीन कहानिया भी इन्ही दिनो असहयोग माला मे प्रकाशित हुई – 'पच परमेश्वर', 'लालफीता', 'लागडॉट'। 'स्वराज के फायदे' नाम से मुशी जी ने एक पम्पलेट इस पुस्तक माला के लिये अलग से लिखा 'अपने देश का पूरा–पूरा इन्तिजाम जब प्रजा के हाथो मे हो तो उसे स्वराज कहते है। जिन देशो मे स्वराज है वहा की प्रजा अपने ही चुने पचो द्वारा अपने उपर राज करती है। यहॉ यह नही हो सकता कि प्रजा लगान और करो की बोझ से दबी रहे और अधिकारी लोग दिनो दिन सेवा बढाते जाये। प्रजा भूखो मर रही हो, चारो ओर अकाल पडा हो और देश का अन्न दूसरे देशो को ढोया चला जाता हो, मरी, हैजा आदि रोग फैल रहे हो और अधिकारी लोग उसको रोकने का उचित प्रयत्न न करके सैर सपाटा किया करते हो। गरीब मुसाफिरों को रेल गाडियो मे बैठने की जगह न मिलती हो और अधिकारियो के वास्ते एक पूरी गाडी अलग खडी रहती हो"।[१००] 'पचपरमेश्वर' और 'लाग डॉट' कहानिया गॉधीवादी विचारधारा पर तैयार की गयी है। प्रेमचन्द कैसा स्वराज चाहते है यह भी स्पष्ट करते है – जहॉ प्रजा के चुने हुये पचो की सलाह से राजकाज किया जाता है और पचो की सम्मति के बिना शासक लोग कुछ भी नही करते"।[१०१] "स्वराज का मुख्य साधन स्वावलम्बन है अर्थात अपने देश की सब जरूरतो को पूरा कर लेना, जो प्राणी अपने खेत का अनाज खाता है, अपने काते हुए सूत का कपडा पहनता है और अपने झगडे–बखडे अपनी पचायतों मे चुका लेता है उसे हम स्वाधीन कह सकते है। स्वराज प्राप्ति का दूसरा साधन उन व्यवस्थाओ का त्याग करना है जो हमारी आत्मा को दबाती है और उसे पराधीन और परावलम्बी बनाती है। अदालते, सरकारी नौकरियॉ, सरकारी शिक्षा आदि हमारी आत्मा को कुचलने वाली, हमारे मन के पवित्र भावो का दमन करने वाली, हमे कौडी का गुलाम बनाने वाली, हमारी वासनाओ को भडकाने वाली सस्थाये है। यह भी याद रखना चाहिये कि हमारा देश कृषि प्रधान है। शिल्प और उद्योग सदैव यहॉ कृषि के नीचे रहेगा अतएव हम अपने यहॉ बहुत बडे कारखाने नही कायम कर सकते। हमे यह उद्योग करना चाहिये कि हमारा ग्रामजीवन नष्ट न होने पाये इसमे सदेह नही कि इस व्यवसायिक नीति से हम विदेशी वस्तुओ का मुकाबला न कर सकेगे लेकिन जब हम कर लगाकर विदेशी वस्तुओ को रोक देगे तो उनका मुकाबला करने का प्रश्न ही न रह जाएगा"।[१०२]

गॉधीवादी आन्दोलन एव उसक तकनीको का सुन्दर चित्रण प्रेमचन्द ने किया है। चौधरी कहता है "तो यह स्वराज कैसे मिलेगा? आत्मबल से, पुरूषार्थ से, मेल से। एक दूसरे से द्वेष करना छोड दो, अपने झगडे आप निपटा लो हमारे दादा, बाबा छोटे बडे सब गाढा गजी पहनते थे, हमारी दादियॉ, नानियॉ चरखा कातती थी, सब धन देश मे रहता था, हमारे जुलाहे भाई चैन की वशी बजाते थे अब हम विदेश के बने रगीन – महीन कपडे पर जान देते है। इस तरह दूसरे देश वाले हमारा धन ले जाते है। बेचारे जुलाहे कगाल हो गये अपने घर का बना हुआ गाढा पहिनो, अदालतो को त्यागो, नशेबाजी छोडो, अपने लडको को धर्म कर्म सिखाओ, मेल से रहो बस यही स्वराज है। जो लोग कहते है स्वराज के लिए खून की नदी बहेगी वह पागल है उनकी बातो पर ध्यान मत दो"।[१०३] प्रेमचन्द की कहानी 'बौडम', जिसका प्रकाशन अप्रैल १६२३ मे हुआ है, मे प्रेमचन्द एक पात्र खलील से कहलवाते है, "खिलाफत फण्ड की मदद करना अपना फर्ज समझता हूँ। क्यो साहब जब कौम पर, मुल्क पर और दीन पर चारो तरफ से दुश्मनो का हमला हो रहा है तब मेरा फर्ज नही है कि जाति के फायदे को कौम पर कुर्बान कर दूँ आप तो वह कह रहे जिसकी इस वक्त कौम को जरूरत है"।[१०४] 'पशु से मनुष्य' कहानी मे प्रेमशकर नामक पात्र कहता है, "जी नही मै सोशलिस्ट या डेमोक्रेट कुछ भी नही हूँ मै केवल न्याय और धर्म का सेवक हूँ मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यता पर विश्वास नही"।[१०५]

असहयोग आन्दोलन जब एक असफल आन्दोलन स्वीकार किया जाता है तब प्रेमचन्द 'वर्तमान आन्दोलन के रास्ते मे रूकावटे' शीर्षक से आन्दोलन मे उपस्थित बधाओ की चर्चा करते है, "यहॉ तो रूपये मे आना–दो–आना कामयाबी हो जाये वही बहुत है खासकर हिन्दुस्तान जैसे गरीब देश मे जहॉ सारा मामला आखिरकार रोजी रोटी पर आ कर रूक जाता है। फिर यहॉ बावजूद नेशनल काग्रेस को तीस साल लडाई के, कौम ने व्यावहारिक राजनीति मे अभी हाल मे कदम रखा है"।[१०६]

महात्मा जी के १६३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे भी प्रेमचन्द ने सक्रिय सहभागिता, अपनी लेखनी के द्वारा दर्शाइ और कभी–कभी तो आन्दोलन मे भी सरीक हुये। इसी समय उनकी पत्नी शिवरानी देवी ने कई बार जेल यात्राये भी की। "जब गॉधी जी ने नमक सत्याग्रह आरम्भ किया तब प्रेमचन्द स्वय अमीनाबाग पार्क मे स्वयसेवको को खादी की धोती और कुर्ता पहनाते और आश्वासन देत कि वे स्वय भी शीघ्र ही उनका अनुसरण करेगे"।[१०७] संयुक्त प्रान्त के कई क्षेत्रो मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन ग्रामीणो का आन्दोलन बन गया था और काग्रेस सगठन निश्चित रूप से अधिक विस्तृत, सुगठित एव अनुशासित हो गया था।[१०८]

इस समय प्रेमचन्द की कई कहानियो मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन का जीवन्त चित्रण है। मार्च १६३० के 'हस' मे प्रकाशित कहानी 'जुलूस' को ही देखिये, "पूर्ण स्वराज्य का जुलूस निकल रहा था,

कुछ बूढे कुछ बालक झण्डियॉ लिये वन्देमातरम गाते हुये निकले" मैकू जो निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है उच्च वर्गों के सहभागी न होने पर कहता है, "बडे आदमी क्यो जुलूस मे आने लगे। उन्हे इस राज मे कौन आराम नही है। बगलो और महलो मे रहते है, मोटरो पर घूमते है, साहबो के साथ दावने खाते है उन्हे कौन तकलीफ है। मर तो हम रहे है जिन्हे रोटियो का ठिकाना नही है"।[१०९] 'समरयात्रा' कहानी मे काग्रेस सत्याग्रहियो का चित्रण है जो गॉव–गॉव जाकर कार्य करते है, "आज सवेरे से ही गॉव मे हलचल मची हुयी है आज सत्याग्रहियो का जत्था गॉव मे आयेगा। जुलूस का चित्र देखिए दो – दो आदमियो की कतारे थी हर एक की देह पर खद्दर का कुर्ता था सिर पर गॉधी टोपी थी बगल मे थैला लटकता हुआ दोनो हाथ खाली मानो स्वराज का आलिगन करने को तैयार हो। ऐसा अवसर फिर शायद कभी न आये अगर इस वक्त चूके तो हमेशा हाथ मलते रहियेगा हम न्याय और सत्य के लिये लड रहे है इसलिए न्याय और सत्य के ही हथियारो से हमे लडना है हमे ऐसे वीरो की जरूरत है जो हिसा और क्रोध को दिल से निकाल डाले और ईश्वर पर अटल विश्वास रखकर धर्म के लिये सबकुछ झेल सके दरोगा ने कहा हट जाओ वर्ना फायर कर दूगा समूह ने इस धमकी का जवाब भारत माता की जय से दिया"। प्रेमचन्द गॉधीवादी विचारो को ही परिभाषित करते हुए स्वराज के अर्थ को समझाते है, "स्वराज चित्त की वृत्ति मात्र है ज्यो ही पराधीनता का आतक दिल से निकल गया आपको स्वराज मिल गया भय ही पराधीनता है निर्भयता ही स्वराज है"।[११०]

'पत्नी से पति' कहानी मे पत्नी पति को स्वदेशी अपनाने के लिए विवश करती है और जब पत्नी की सक्रिय भागीदारी की वजह से पति सरकारी सेवा से बर्खास्त कर दिया जाता है तो पत्नी कहती है, "मै तो खुश हूँ तुम्हारी बेडियॉ कट गई"।[१११] कहानी 'शराब की दुकान' मे शराब पर की गई पिकेटिग एव 'मैकू' कहानी मे शराब के प्रति हृदय परिवर्तन का चित्रण है। क्योकि काग्रेस का एक स्वय सेवक मैकू के थप्पड को बिना किसी विरोध के उदारता से सह लेता है। "काग्रेस वाले किसी पर हाथ नही उठाते चाहे उन्हे कोई मार ही डाले"।[११२] 'जेल' कहानी मे प्रेमचन्द सत्याग्रहियो की पुलिस मुठभेड का सजीव चित्रण करते है जिसमे पुलिस वाले सत्याग्रहियो पर अत्याचार करते है। परिणामत "काग्रेस कमेटी का सफाया हो गया था वह सस्था बागी बना डाली गई थी उसके दफ्तर पर पुलिस ने छापा मारा और उस पर अपना ताला डाल दिया महिला आश्रम पर भी हमला हुआ"।[११३] इसी तरह कहानी 'सुहाग की साडी' विदेशी वस्त्रो के बहिष्कार एव उसकी होली जलाने का मार्मिक चित्रण है। महिला पात्र गौरा अपने सुहाग की साडी अग्नि की भेट मे देने से इन्कार कर देती है पर उसका पति रतन उसे विदेशी होने के कारण अग्नि मे प्रज्जवलित करने की जिद करता है, "विदेशी कपडो की होली जलाई जा रही है स्वयसेवको के जत्थे भिखारियो की भॉति खडे होकर विलायती कपडो की

भिक्षा मॉगते थे और कदाचित ही ऐसा द्वार था जहॉ उन्हे निराश होना पडता हो खद्दर और गाढे के दिन फिर गये थे"।[११४]

प्रेमचन्द 'हस' मे लिखते हे "महात्मा गॉधी खद्दर का प्रचार दिलो जान से कर रहे है। इसमे मुसलमान जुलाहो का फायदा अगर हिन्दू कोरियो से ज्यादा नही तो कम भी नही। लेकिन जहॉ इस सूबे के छोटे से शहर ने महात्मा जी को थैलियॉ भेट की अलीगढ ने केवल ऐड्रेस देना ही काफी समझा यह मुस्लिम मनोवृत्ति है"।[११५] महात्मा गॉधी जब आन्दोन प्रारम्भ करते है तो प्रेमचन्द बडे उत्साह से उसका स्वागत करते हैं, "आजादी की लडाई शुरू हो गई है महात्मा गॉधी ने ६ अप्रैल को समुद्र तट पर डडी मे गुलामी की बेडी पर पहला हथौडा चलाया और उसकी झकार सारे देश मे गूँज उठी  हमारे नेता चुन–चुनकर जेल भेज दिये गये जैसे बच्चे हार जाते है तो दॉत काटने लगते हैं वही हाल नौकरशाही का हो रहा है। कही–कही निहत्थी जनता पर डण्डो और गोलियो की बौछार हो रही है कही जनता मे फूट डालने की कोशिश हो रही है। फिल्मो पर रोक लगाई जा रही है तार की खबरो का सेसर किया जा रहा है  हम इन बातो की शिकायत नही करते इन्ही अन्यायो से हमारी विजय है। हम तो महात्मा जी के सूझ के कायल है जो बात की, खुदा कसम लाजवाब की, न जाने कहॉ से नमक कर खोज निकाला उसने देखते –देखते देश मे आग लगा दी"।[११६] 'देहात मे प्रोपेगैडे की जरूरत' शीर्षक मे प्रेमचन्द लिखते है, "अब तक हमारे आन्दोलन शहरो तक ही महदूद रहे लेकिन नमक कर भग देहातो मे भी जा पहुँचा है। अगर देहातो मे यह आग लग गई फिर किसी के बुझाए न बुझेगी  हमे यह समझ लेना है कि इस स्वराज्य मे सबसे ज्यादा हित देहात वालो का सिद्ध होगा"।[११७] 'दमन' शीर्षक से हस के 'हसवाणी' स्तम्भ मे मई १६३० मे प्रेमचन्द ने लिखा, "अब तो स्त्रियो पर भी सख्ती होने लगी हम तो इतना ही जानते है कि दमन से वह और भी जोर पकडेगी"।[११८] नवम्बर १६३० के 'हस' मे प्रेमचन्द लिखते हैं, "जहा किसी नेता के पकडे जाने का समाचार आया, किसी शहर मे सौ पचास आदमियो के घायल होने की सूचना मिली और हमारे चेहरो पर मुर्दनी छायी  महात्मा गॉधी ने जब समर क्षेत्र मे पर्दापण किया था तो उन्होने खूब समझ लिया था कि मै पकड लिया जाऊँगा उन्होने अपने जानशीन भी चुन लिए थे अगर जेनरल की इच्छानुसार ही सग्राम चल रहा है तो वह जेनरल की हार है या जीत।[११९]

"नि शस्त्र सग्राम का मूल तत्व क्या है कि शत्रु को हम इतना दमन करने पर मजबूर कर दे कि वह खुद ही अपनी निगाह मे गिर जाय खुद उसकी आत्मा उससे घृणा करने लगे यहॉ तक कि उसकी पुलिस और सेना उसकी दमनकारी आज्ञाओ के पालन करने से इन्कार कर दे उसके साथ ही हम विनय के प्रत्येक अङ्ग का पालन करते रहे अविनय का एक भी शब्द हमारे मुँह से न निकले ऐसे

विनय के आदर्श के सामने पशुबल बहुत दिनो तक अपना जोर नही दिखा सकता आन्दोलन इतने दमन के बाद क्या बढता नही जा रहा है जिन शहरो मे १०–२० स्वय सेवक न मिलते थे उन्ही शहरो मे क्या १०–२० आदमी रोज जेल नही जा रहे है। मुझे यह शानदार फतेह मालुम हो रही है"।[१२०] आन्दोलनकारियो के प्रति प्रशासनिक नीति पर टिप्पणी करते हुये प्रेमचन्द लिखते है, "अभी वायसराय साहब ने फरमाया है सत्याग्रह आन्दोलन ने लोगो मे कानून के सम्मान और भय को निर्मूल कर जनता की कुप्रवृत्तियो को जागृत कर दिया है वे इसका उत्तर देते हैं "कानून के सम्मान को इस आन्दोलन ने निर्मूल नही किया है उसे निर्मूल किया है गैर कानूनी कानूनो ने पुलिस की लाठियो ने, जेल के डडो ने और फौज की गोलियो ने। हॉ, अब जनता उस कानून को कानून न मानेगी जो किसी व्यक्ति विशेष के दिमाग से निकले हो। वह उसी कानून को मानेगी जिसके निर्माण मे उसने निर्वाचन रूप से भाग लिया हो"।[१२१] प्रेमचन्द महात्मा गॉधी की प्रशसा करते हुये लिखते है कि, "कुशल सेनापति यही है जो थोडे से रक्तपात से बडी सी बडी विजय कर दिखाये। महात्मा गॉधी इन्ही कुशल सेनापतियो मे है। अहिसा सत्याग्रह का ऐसा अमोघ अस्त्र उन्होने देश हाथो मे दिया कि हम ब्रिटिश सरकार की मशीनगनो और हवाई जहाजो को तुच्छ समझ कर मैदान मे निकल पडे"[१२२]। इसी प्रकार दूसरी जगह भी कहते है, "देश मे इस समय आर्थिक सकट के कारण जो दशा उपस्थित हो गई है उसे जल्द न सॅभाला गया तो बडे भारी उपद्रव की आशका है। महात्मा गॉधी क्राति नही चाहते न क्राति से किसी जाति का उद्धार हुआ है महात्मा जी ने हमे जो मार्ग बतलाया है उससे क्राति की भीषणता के बिना ही क्राति के लाभ हो सकते है"।[१२३]

महात्मा गॉधी इर्विन समझौते के बाद गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने लन्दन जाते है, उस समय प्रेमचन्द टिप्पणी करते है, "महात्मा जी के रवाना होते ही समस्त भारत वर्ष की ऑखे लदन की तरफ फिर गई है, महात्मा जी ने दिखा दिया कि वे राजनीति मे भी उतने ही कुशल है जितने सग्राम मे"।[१२४] इस तरह प्रेमचन्द महात्मा गॉधी द्वारा चलाये जा रहे राजनीतिक, सामाजिक एव आर्थिक आन्दोलनो का बडे उत्साह के साथ समर्थन करते है। साथ ही उनके सिद्धान्तो मे भी आस्था रखते है। सकारात्मक उद्देश्य एव विनयपूर्ण आचरण से कैसे मनुष्य अपने विरोधी का हृदय परिर्वन अपने पक्ष मे कर लेता है यह प्रेमचन्द की कहानी 'चमत्कार' मे वर्णित है। 'सद्गति', 'ठाकुर का कुॅआ' आदि जैसी कई कहानियॉ अछूतोद्धार को विषय बनाकर लिखी गयी है।

प्रेमचन्द के साहित्य मे गॉधीवादी मान्यताओ के प्रतिफलन की समीक्षा करते हुये हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि गॉधी जी व्यवहारिक राजनीति के क्षेत्र मे कार्य कर रहे थे, जबकि प्रेमचन्द लेखन के द्वारा उसे दिशा दे रहे थे। अत दोनो की शैली मे थोडे बहुत विचलन की सम्भावना निरतर बनी रहती

है क्योकि साहित्य रचना के समय जनरूचि का भी ध्यान रखना आवश्यक था और प्रेमचन्द ऐसे समय मे रचनाधर्मिता से जुडे थे जब उन्हे एक नई भावभूमि के साहित्य के लिये पाठक भी तैयार करना था। गॉधीजी की अहिसा सैद्धान्तिक रूप मे जो होती थी निश्चित रूप से प्रमाणिक दस्तावेजो से सिद्ध हो चुका है वह व्यवहार मे उसी रूप मे सामने नही आती जबकि प्रेमचन्द यर्थाथ एव व्यवहारिक लेखन से जुडे थे। अत इस बिन्दु को भी हमे ध्यान मे रखना चाहिये। डा० वी० पट्टाभि सीतारमैया लिखते है, "भारत की इज्जत की रक्षा के लिये गॉधी जी ने कहा मै यह अधिक श्रेयष्यकर समझूँगा कि हमारा दश शस्त्र का सहारा ले बजाय इसके वह कायरो की तरह निस्सहाय होकर अपनी बेइज्जती होते हुए देखे"।[१२५] इस तरह प्रेमचन्द के साहित्य मे और गॉधीवादी आन्दोलनो के व्यावहारिक रूप मे जहॉ सत्याग्रहियो ने हिसक रूप धारण किया वहॉ यह तथ्य कार्य कर रहा था।

प्रेमचन्द गॉधीवाद मे आस्था इसलिए भी रखते थे कि उन्हे किसान एव मजदूरो की मुक्ति उनकी विचारधारा एव आन्दोलनो मे दिखाई पडती है। जैसा कि प्रेमचन्द ने हस मे लिखा, "महात्मा गॉधी ने स्पष्ट कह दिया है हम पद के लिए धन के लिए स्वराज नही चाहते हम स्वराज चाहते है उन गूँगे बेजबान आदमियो के लिये जो दिन–दिन दरिद्र होते जा रहे है। अगर आज सभी अग्रेज अफसरो की जगह हिन्दुस्तानी हो जॉये तब भी हम स्वराज से उतने ही दूर रहेगे जितने इस वक्त। हमारा उद्देश्य तो तभी पूरा होगा जब हमारी दरिद्र, क्षुधित, वस्त्रहीन जनता की दशा सुधरेगी . हमारी लडाई केवल अग्रेज सत्ताधारियो से नही, हिन्दुस्तानी सत्ताधारियो से भी है। हमे ऐसे लक्षण नजर आ रहे है कि यह दोनो सत्ताधारी इस अधार्मिक सग्राम मे आपस में मिल जाएगे और प्रजा को दबाने की और इस आन्दोलन को कुचलने की कोशिश करेगे लेकिन यह उन्ही के हक मे बुरा होगा"।[१२६] जैसा कि कुँवरपाल सिह भी प्रेमचन्द के बारे मे लिखते है, "वे यह सोचते थे कि गरीबी अन्याय और शोषण से पीडित किसान और मजदूर को गॉधीजी मुक्ति दिलाएगे"।[१२७] इन्ही सब कारणो से प्रेमचन्द ने जो कि स्वय किसानो, मजदूरो, गॉव, उपेक्षितो, पीडितो के रचनाकार थे गॉधीवाद मे अपनी आस्था दर्शाई पर पूर्णसमर्पण के साथ नही वे समानान्तर मे गॉधीवादी विचारधारा से अलग भी कार्य करते रहे।

**X X X X X**

प्रेमचन्द को यदि किसानो का साहित्यकार कहा जाय तो अतिश्योक्ति न होगी। उनकी सम्पूर्ण रचनाओ मे कुछ–एक को छोडकर किसान और उनकी समस्याऍ आच्छादित है। वास्तव मे उनकी परिवेशगत सरचना उन्हे किसानो की सस्कृति के नजदीक ले जाती है अत जितनी स्वाभाविकता से वे किसानो का चित्रण कर पाते है उतना मजदूरो का नहीं। प्रेमचन्द किसानो एव

मजदूरो की सस्कृति से परिचित थे वे लिखते है, "आने वाला जमाना अब किसानो और मजदूरो का है दुनियॉ की रफ्तार इसका साफ सबूत दे रही है हिन्दुस्तान इस रफ्तार से बेअसर नही रह सकता, हिमालय की चोटियॉ उसे इस हमले से नही बचा सकती जनता की इस ठहरी हुई हालत से धोखे मे न आइये इन्कलाब के पहले कौन जानता था कि रूस की पीडित जनता मे इतनी शक्ति छिपी हुई है"।[१२८] प्रेमचन्द आगे लिखते है, "यह बात ध्यान मे रखनी चाहिये कि मजदूर और किसान एक होकर चाहे जो कर सकते है उनकी शक्ति असीम है। वह जब बिखरे हुए है घास के टुकडे है एक होकर जहाज को खीचने वाले रस्से हो जाएगे। अब वह जमाना नही रहा कि पूँजीपति ७५ प्रतिशत मुनाफा बॉट ले और मजदूरो को जिंदगी की जरूरते भी नसीब न हो वह हवा और रोशनी से भी वचित रहे। पूँजीपति तो पेरिस और स्वीटिजरलैण्ड की सैर करे और मजदूर को सुबह से शाम तक सर उठाने की मोहलत न मिले जमीदार या ताल्लुकेदार साहब ऐश मनाएँ, शिकार खेले और दावते दे और किसानो को रोटिया भी नसीब न हो। उसकी कमाई नजराने, बेगार, हारी, डॉड, चुल्लई, खटिआई वैगरह की सूत्रो मे जमीदार के लिए ऐश का सामान जुटाएँ। बहरहाल इन वर्गों से काग्रेस को विरोध की बहुत अधिक आशका है और स्वराज के आन्दोलन मे उनका बाधा उपस्थित करना तय बात है"।[१२९]

किसानो और मजदूरो की मुक्ति के लिए प्रेमचन्द प्राय रूस की चर्चा करते है और वहॉ की प्रशसा भी। शिवरानी देवी के यह पूँछने पर कि क्या रूस वाले भी यहॉ ऑएगे? तो प्रेमचन्द कहते है, "रूस वाले नही आएगे बल्कि रूसवालो की शक्ति हम लोगो मे आयेगी .वही हमारे सुख का दिन होगा जब यहॉ काश्तकारो और मजदूरो का राज होगा"।[१३०] प्रेमचन्द इस बात से भी स्पष्टत परिचित है कि स्वराज आन्दोलन से सर्वाधिक लाभ किसानो का होगा इस सन्दर्भ मे प्रेमचन्द लिखते है, "स्वराज का मतलब है किसान मजदूर और जनता का राज कुछ वैसी ही चीजे जैसी कि वोल्शेविको ने अपने यहॉ कायम की है उसको हासिल करने की जो पहली शर्त है किसान और मजदूर की एकता उसका मतर भी हवा आकर उसके कान मे फूक गई है"।[१३१] अप्रैल १९३० मे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय प्रेमचन्द लिखते है, "गरीबो की छाती पर दुनियॉ ठहरी हुई है यह कठोर सत्य है हर एक आन्दोलन मे गरीब ही आगे–आगे है और उन्ही को रहना भी चाहिये क्योकि स्वराज से सबसे ज्यादा फायदा उन्ही को होगा लेकिन स्वराज हो जाने से समाज के किसी अग को कोई हानि नही पहुँच सकती लाभ ही लाभ होगे। हॉ उनको अवश्य हानि होगी जो खुशामद और लूट और अन्याय के मजे उडा रहा है"।[१३२] किसानो की वर्तमान स्थिति की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, "आज भारत के किसान इतने तबाह क्यो है इसलिए कि जब से अग्रेजी शासन शुरू हुआ है विदेशी हुकूमत ने सदैव किसानो के हितो की उपेक्षा की और जमीदारो के हितो का समर्थन किया। अन्य प्रान्तो की बात जाने दीजिए युक्त प्रान्त की

ही दशा लीजिए शायद ही किसी प्रान्त के किसान इतने पेरशान और दुखी हो शायद ही किसी प्रान्त के जमीदार, ताल्लुकेदार इतनी मनमानी कर सकते हो उन अभागो पर पुलिस का जमीदार ताल्लुकेदार का सेठ साहूकार का सक्षेप मे हर एक अधिकारी का जुल्म ज्या का त्यौ जारी है। युक्त प्रान्त कौशिल ने यदि कभी इन अभागो की सहायता करनी चाही तो प्रान्त की ताल्लुकेदारो की कौशिल ने जनमत को सदैव कुचल दिया"।[133] नवम्बर १९२८ मे लखनऊ मे वायसराय के आने पर स्वागत के लिए की गई आतिशबाजी पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द कहते है, "जिस मुल्क की आदमी की कमाई औसतन ६ पैसे रोज हो उस मुल्क मे किसी को क्या हक है कि एक-एक शहर मे ४०-४० और ५०-५० हजार आतिशबाजी मे फूका जाय जहॉ पर तन ठकने को कपडा न हो दोनो जून की रोटियॉ भी न मिले उस मुल्क मे इस बेरहमी से फूॅका जाय और इसलिए कि वायसराय खुश हो ओर इन मोटे आदमियो को खिताब देगे"। यही नही उनका आकडे देते हुए कहते है, "यहॉ ८० प्रतिशत काश्तकार है २० प्रतिशत और लोग जिसमे पढे-लिखे, मालदार, रोजगारी सब है। अगर इनमे इतनी ही शक्ति वृद्धि होती तो यह आज मुट्ठी भर अग्रेज हमारे देश मे डेढ सौ साल से राज न करते होते .और शायद मुल्क इसके लिए तैयार नही है"।[134]

रजनीपाम दत्त भी साम्राज्यवादी कारको को ही किसानो के दयनीय स्थिति के लिए उत्तरदायी ठहराते है, "भारतीय किसान की गरीबी का कारण उनका तथाकथित पिछडापन जिसकी वजह से उनका विकास नही हो पा रहा है। वस्तुत इस सकट का कारण साम्राज्यवाद है और साथ ही साम्राज्यवाद द्वारा पोषित वे सामाजिक सम्बन्ध है जिनकी वजह से कृषि पर आबादी का दबाव बढता जा रहा है कृषि के विकास में गतिरोध पैदा हो गया है उसमे गिरावट आने लगी है अधिकाश किसानो को दिनो-दिन परेशान रहना पडता है और आधा पेट खाकर किसी तरह गुजर बसर करना पडता है"।[135] प्रेमचन्द के पहले लोकप्रिय उपन्यास 'प्रेमाश्रम' मे किसानो की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुए अपने पात्र बलराज से कहलवाते है, "यह भी कोई खाना है कि एक आदमी खाय घर के सभी आदमी उपास करे, गॉव मे सुक्खु चौधरी को छोडकर और किसी के घर दोनो बेला चूल्हा जलता है? किसी को एक जून चबेना मिलता है कोई चुटकी भर सत्तु फॉक कर रह जाता है दूसरी बेला भी पेट भर रोटी नही मिलती"। इसी मे कादिर से कहलवाते है, "इस खेती मे कुछ नही रह गया है अब मेरे ही घर देखो कुल छोटे-बडे मिलाकर १० आदमी है पॉच-पॉच रूपये भी कमाते तो छ सौ रूपये साल भर के होते। खा-पीकर पचास रूपये बच ही जाते लेकिन इस खेती मे रात-दिन लगे रहते है फिर भी किसी को भरपेट खाना नही मिलता"।[136]

"कर्ज के बोझ का बढते जाना और इससे जुडी प्रक्रियाओ यानि गैर खेतिहर के हाथो जमीन को गिरवी रखने, बेचने या हस्तातरण करने का सिलसिला ही वह प्रमुख मापदण्ड है जिससे इस कृषि के क्षेत्र मे व्याप्त सकट को माप सकते है साइमन कमीशन रिपोर्ट के अनुसार किसानो की विशाल जनसख्या सूदखारो से मिले ऋण पर गुजारा करती है"।[१३७] "महान फ्रासीसी क्राति के पहले किसानो की स्थिति का वर्णन करते हुए 'कार्लाइल' ने लिखा था, 'विधवा मॉ अपने बच्चे की भूख शान्त करने के लिए जडे इकट्ठा कर रही है और अपने शानदार होटल के बरामदे मे नजाकत के साथ आराम करते हुए भद्र पुरूष के पास एक ऐसी कीमियागीरी है जिससे वह विधवा मॉ से हर तीसरी जड छीन लेगा और अपनी इस हरकत को नाम देगा लगान और कानून,' आज के ब्रिटिश भारत मे इससे भी ज्यादा रहस्यमय कीमियागीरी देखी गई है यहॉ किसान के पास तीन में से केवल एक जड छोडी जाती है और शेष दो जडे भद्र पुरूष के पास पहुॅच जाती है"।[१३८] इन उपर्युक्त सदर्भो मे ग्रामीण कृषको की ऋणग्रस्तता और उससे उत्पन्न त्रासदी का सजीव चित्रण प्रेमचन्द का उपन्यास 'गोदान' है। 'गोदान' की रचना तक पहुॅचते–पहुॅचते प्रेमचन्द को जैसे विश्वास हो गया था कि किसानो की मुक्ति जमीदारो और शासको के विरूद्ध किसानो के सघर्ष का चित्रण करके नही वरन उसकी यथार्थ दारूणगाथा प्रस्तुत करके हो सकती है इससे लोग यह सोचने के लिए बाध्य होगे कि किसानो (होरी) की सम्पूर्ण विपत्तियो मे मेरी हिस्सेदारी कहॉ तक है। होरी भी अन्तत ऋणग्रस्तता का शिकार होकर अपनी भूमि से बेदखल कर दिया जाता है उसका लडका 'गोबर' पहले ही सामाजिक एव आर्थिक दबावो की वजह से शहर मे मजदूर बन जाता है अन्तत होरी भी कृषक से मजदूर बन जाता है। होरी कहता है, "गॉव मे इतने आदमी तो है किस पर बेदखली नही आयी, किसपर कुडकी नही आई। जब दूसरो के पॉव तले गर्दन दबी हुई है तो उन पावो को सहलाने मे ही कुशल है"।[१३९] होरी की ऋणग्रस्तता का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, "यही तो होगा भोला बार–बार तगादा करने आयेगा बिगडेगा गालियॉ देगा लेकिन होरी को इसकी ज्यादा शर्म न थी। इस व्यवहार का वह आदी था। कृषक के जीवन का तो यह प्रसाद है"।[१४०] होरी को सन्तोष था तो केवल यह कि विपत्ति अकेले उसके सिर नही थी प्राय सभी किसानों का यही हाल था अधिकाश की दशा तो उससे भी बदतर थी। होरी के भाई "सोभा और हीरा को उससे अलग हुये अभी कुल तीन साल हुये मगर दोनो पर चार–सौ का बोझ लद गया था। झीगुर दो हल की खेती करता है उसपर एक हजार से बेसी का ही देना है जियावन महतो के घर भिखारी भीख नही पाता लेकिन कर्जे का कोई ठिकाना नही यहॉ कौन बचा है"।[१४१] होरी यह स्वीकार कर लेता है कि हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाये और बडो का घर भरे मूल का

दुगना सूद चुका पर मूल ज्यौ का त्यौ सवार है। महाजन के शोषण तकनीको का जिक्र करते हुये प्रेमचन्द अपने नाटक 'सग्राम' मे लिखते है।

"मुनीम – तो तुम्हे दो सौ रूपये चाहिये न पहिले पाच रूपये सैकडे नजराना लगता था अब दस रूपये हो गया है,

हलधर – जैसी मर्जी,

मुनीम – पहले दो रूपये सैकडे लिखाई पडती थी अब चार रूपये सैकडे हो गई है,

हलधर – जैसा सरकार का हुकुम,

मुनीम – स्टाम्प के पाच रूपये लगेगे,

हलधर – सही है,

मुनीम – मेरी दस्तूरी पाच रूपये होती है लेकिन तुम गरीब आदमी हो तुमसे चार रूपये ले लूँगा ,

हलधर – बडी दया है,

मुनीम – एक रूपया ठाकुर जी को चढाना होगा,

हलधर – चढा दीजिए ठाकुर तो सभी के है,

मुनीम – तो एक रूपये ठकुराइन के पान का खर्च

हलधर – ले लीजिए"।[१४२]

'बलिदान', 'पूस की रात' एव 'सवासेर गेहूँ' किसानो की ऋणग्रस्तता को आधार बनाकर लिखी गई कहानियॉ है। 'महाजन और किसान' शीर्षक से प्रेमचन्द जुलाई १६३३ मे लिखते है, "सूद की कोई सीमा होनी चाहिये और उसका कुछ दर भी निश्चित हो जाना चाहिये अभी तो यह हाल है कि किसानो से मूल का कई गुना ब्याज मे वसूल कर लिया जाता है। फिर भी मूल ज्यौ का त्यौ बना रहता है यह लूट बन्द होनी चाहिये"।[१४३]

सयुक्त प्रान्त क्षेत्र मे कृषक आन्दोलन का दबाव बढता जा रहा था, "गौरी शकर मिश्र, इन्द्र नारायण द्विवेदी और मदन मोहन मालवीय के प्रयासो से फरवरी १६१८ मे उत्तर प्रदेश किसान सभा का गठन हुआ उत्तर प्रदेश किसान सभा थोडे ही समय मे अपने को स्थापित कर लिया जून १६१६ तक सूबे की १७३ तहसीलो मे इसकी ४५० शाखाए गठित की गईं। फतेहपुर, इलाहाबाद, मैनपुरी, बनारस, कानपुर, जालौन, बलिया, रायबरेली, एटा और गोरखपुर जिले मे किसान सभा की अनेक बैठके हुईं.

१९१९ के अन्तिम दिनो मे किसानो का सगठित विद्रोह खुल कर सामने आया बाबा राम चन्द्र जिन्होने आन्दोलन की बागडोर ही नही सभाली बल्कि उसे और मजबूत और जुझारू बनाया २८ अगस्त १९२० को चोरी के झूठे आरोप मे बाबा रामचन्द्र और ३२ किसान गिरफ्तार कर लिये गये मेहता ने चोरी का झूठा मामला रफा दफा किया और जमीदारो पर दबाव डालने लगे कि वे अपने रवैये मे परिवर्तन लाये किसानो कि इस छोटी सी जीत ने उन्हे और उत्साहित किया''।[१४४] प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास मे भी किसानो के विद्रोह कि झलक मिलती है बलराज जब कहता है, ''एक – एक का सिर तोड कर रख दे यही न होगा कैद होकर चला जाऊँगा इससे कौन डरता है महात्मा गॉधी तो कैद हो आये है,''।[१४५] मनोहर कहता है, ''मै तो एक कौडी बेसी न दूँगा और न खेत ही छोडूँगा। खेतो के साथ जान भी जाएगी और दो चार को साथ लेकर जाएगी, बलराज कहता है, जमीदार कोई बादशाह नही है कि कोई जितनी ज्यादती करे और हम मुँह न खोले इस जमाने मे बादशाहो का भी इतना अधिकार नही जमीदार किस गिनती मे है। कचहरी दरबार मे कही सुनाई नही है तो (लाठी दिखाकर) यह तो कही नही गई है। और फिर तुम जमीदार के गुलाम बने रहो उस जमाने मे और कर ही क्या सकते थे? न अपने खेत मे काम करते किसी दूसरे के खेत मे मजूरी करते अब तो शहरो मे मजदूरो की मॉग है। रूपया रोज खाने को मिलता है रहने को पक्का घर अलग। अब हम जमीदारो की धौस क्यो सहे, क्यो भर पेट खाने को तरसे मेरे पास तो जो पत्र आता है उसमे लिखा है कि रूस देश मे काश्तकारो का राज्य है वह जो चाहते है करते है उसी के पास कोई और बलगारी है वहॉ अभी हाल की बात है काश्तकारो ने राजा को गद्दी से उतार दिया और अब किसानो और मजदूरो की पचायत राज करती है''।[१४६]

प्रेमचन्द्र अपनी कृतियो मे कई स्थानो पर कृषक असन्तोष की चर्चा करते है, ''हरिहरपुरा के इलाके मे बिल्कुल वर्षा नही हुई अब वहा के असामियो से लगान वसूल करना अत्यन्त कठिन हो रहा है। वह सोलहो आने छूट की प्रार्थना करते है। मैने जिलाधीश से इस विषय मे अनुरोध किया पर उसका कुछ फल न हुआ वह अवश्य छूट देगे यदि आप आकर जिलाधीश से मिले तो शायद सफलता हो असामियो के इस आन्दोलन से हलचल मची हुई है शका है कि छूट न हुई तो उत्पात होने लगेगा''।[१४७] ''यह दो पत्र बरहल और आमगॉव के करिन्दो के है दोनो लिखते है कि आसामी सभा का चन्दा देने से इन्कार करते है। गायत्री .क्या देहातो मे यह हवा फैलने लगी? करिन्दो को लिख दिजिये कि उन पाजियो के घर मे आग लगा दे और उन्हे कोडो से पिटवाये''।[१४८] गायत्री जो कि अभी जमीदारी का उत्तराधिकार ग्रहण की है कहती है, ''मै स्वय उन्हे आसामियो को मुश्के कसके पिटवाते देखा है जब कोई और उपाय न सूझता तो उनके घर मे आग लगवा देते और अब मुझे भी वही करना

पडता है"।[१४९] 'गोदान' मे एक पात्र गोबर का असन्तोष देखिए, "हम लोग दाने–दान के मोहताज है देह पर साबित कपडे नही है चोटी का पसीना एडी तक आता है तब भी गुजर नही होता। वे क्या मजे से गद्दी मसनद लगाए बैठे है सैकडो नौकर चाकर है, हजारो आदमियो पर हुकूमत है"।[१५०] सरकारी अधिकारियो का दौरा भी ग्रामीणो पर अतिरिक्त बोझ डालता है। "कादिर–हाकिमो का दौरा क्या है हमारी मौत है । मनोहर – यह लोग बडा अधेर मचाते है, आते है, इन्तिजाम करने इसाफ करने लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते है। इससे कही अच्छा तो यह था कि दौरे बन्द हो जाते यही न होता मुकदमे वाले को सदर जाना पडता। इस सॉसत से तो जान बचती"।[१५१]

ग्रामीण किसानो के लिए जमीदारो एव सरकारी कर्मचारियो द्वारा बेगार लिया जाना एक समस्या थी, "पॉच बडे–बडे घोडो के लिये हरी घास छीलना सहज नही था। गॉव के सब चमार इस काम मे लगा दिये गये। कई नोनिये पानी भर रहे थे चार आदमी नित्य सरकारी डाक लेने सदर दौडाए जाते थे। कहारो को कर्मचारियो की खिदमत से सिर उठाने की फुर्सत न थी। इसलिए जब दो बजे साहब ने हुक्म दिया कि मैदान मे घास छीलकर टेनिस कोर्ट तैयार किया जाय तो वे लोग भी पकडे गये जो अब तक अपनी वृद्धावस्था या जाति सम्मान के कारण बचे हुए थे"।[१५२] 'कायाकल्प' उपन्यास मे भी बेगार समस्या का चित्रण है, "वे मजदूर जो छाती फाड–फाड कर काम कर रहे थे भूखो मरते थे कोई आदमी उनकी खबर तक न लेता था। काम लेने को सब थे पर भोजन के लिये पूछने वाला कोई न था। चमार पहर रात रहे घास छीलने जाते, मेहतर पहर रात से सफाई करने लगते, कहार पहर रात से पानी खीचना शुरू करते मगर कोई उनका पुरसाहाल नही था। बेगारो से न सहा जाता था इसलिए कि उनकी आते जलती थी दिन भर धूप मे जलते रात भर क्षुधा की आग मे । एक युवक ने कहा हम लोग बिना खाये आठ दिन से घास दे रहे है घोडे क्या बिना खाये एक दिन भी न दौडेगे। क्या हम घोडे से भी गये गुजरे है। चौधरी डडा लेकर युवक को मारने दौडा पर उसके पहले ही ठाकुर साहब ने झपटकर उसे चार पाच हटर सडाप–सडाप लगा दिए। नगी देह चमडा फट गया खून निकल आया चौधरी ने युवक और ठाकुर साहब के बीच खडे होकर कहा हजूर क्या मार ही डालोगे? लडका है कुछ अनुचित मुख से निकल जाय तो क्षमा करना चाहिये। राजा को दयावान होना चाहिये। ठाकुर साहब आपे से बाहर हो गये एक चमार का यह हौसला कि उसके सामने मुँह खोल सके वही हटर तानकर चौधरी को जमाया बूढा आदमी उस पर कई दिन का भूखा खडा भी मुश्किल से हो सकता था हटर पडते ही जमीन पर गिर पडा। बाडे मे हलचल मच गई"।[१५३] 'गोदान' मे रायसाहब से चपरासी कहता है, "सरकार बेगारो ने काम करने से इकार कर दिया है कहते है जब तक हमे खाने को न मिलेगा हम काम न करेगे हमने धमकाया तो सब काम छोडकर अलग हो गये।

रायसाहब के माथे बल पड गया बोले चलो मै इन दुष्टो को ठीक करता हूँ जब कभी खाने को नही दिया तो यह आज नई बात क्यो''।[१५४] ए०आर० सरदेसाई कृषक मजदूरो के बारे मे लिखते है, ''कृषक आबादी के बीच विवेधीकरण की तीव्र प्रक्रिया के कारण खेत मजदूरो का वर्ग तेजी से बढ रहा था इस वर्ग के पास कोई सम्पत्ति नही थी ये गरीब थे अपने पिछडेपन की वजह से इनमे अब भी पूरी चेतना का विकास नही हो सका था लेकिन किसान आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलनो के चपेट मे ये भी आ रहे थे''।[१५५]

पूरनचन्द्र जोशी प्रेमचन्द के बारे मे लिखते है, ''प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था से उखडे हुऐ भारतीय किसानो की त्रासदी को प्रेमचन्द ने ऐसी मार्मिकता, गहराई, अनुभूति की तीव्रता के साथ पकडा जिसकी मिसाल किसी भी ऐतिहासिक रचना मे नही मिलती। प्रेमचन्द की रचनाओ मे औपनिवेशिक किसान एक प्रमुख नाटकीय व्यक्तित्व के रूप मे उभरता है जो एक औपनिवेशिक भारत की परिस्थितियो मे उनकी गहरी ऐतिहासिक अन्तर्दृष्टि का तो दूसरी ओर उनकी साहित्यिक कल्पनाशीलता की विरल प्रतिभा की देन है। साहित्यिक सवेदनशीलता और इतिहास बोध यही वे दो गुण है जो एक होकर प्रेमचन्द के गोदान मे औपनिवेशिक किसान के व्यक्तिकरण के रूप मे होरी जैंसे अमर किन्तु त्रासद चरित्र की रचना करते हैं यही वह अविस्मरणीय चरित्र है जो औपनिवेशिक आर्थिक व्यवस्था के भीतर घोर निराशा मे डूबे भारतीय किसान के जीवन सघर्ष और जीने के अदम्य मनोबल का जीवन्त प्रतीक है''।[१५६] प्रेमचन्द अपनी रचना के शुरूआती कालो मे आदर्शवादी यथार्थ के समर्थक रहे 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' आदि रचनाओ मे उनकी इसी भावभूमि का पता चलता है परन्तु परवर्ती काल मे वे सिर्फ यथार्थवादी होते गये। शायद उनकी समझ मे यथार्थ की दारूण गाथा ही लोगो मे परिवर्तन ला सकती है। 'गोदान', 'बलिदान', 'पूस की रात' उनकी इसी भावभूमि का सदेश देते है। निर्मल वर्मा लिखते है, ''प्रेमचन्द के अन्तिम उपन्यासो कहानियो की एक बडी उपलब्धि है अब वे हिन्दुस्तान के किसानो को सिर्फ औपनिवेशिक चौखटो मे नही देखते बल्कि वह उसे सीधे–सीधे आधुनिक स्थिति की विडम्बनाओ मे ले आते है। स्थिति अब भी औपनिवेशिक जडता और उत्पीडन में डूबी हुई है लेकिन प्रेमचन्द जब उसे एक ऐसे सकट के सन्दर्भ मे देखते है जो महज तीसरी दुनिया के बाहरी उपादानो द्वारा अनुशासित नही है बल्कि अब वह व्यक्ति और समाज के रिश्तो मे घुन की तरह चिपका है स्वय मनुष्य की आत्मा मे सॉप की तरह विराजमान है। लेकिन इस सॉप से डरने की जरूरत नही है 'कफन' तक आते–आते अचानक प्रेमचन्द के पात्रो को एहसास होता है जिसे वह सर्वग्रासी सॉप समझ बैठे है वह महज रस्सी है। सामाजिक मर्यादाओ और कर्तव्यो की कच्ची, जर्जरित, तार–तार होती हुई रस्सी जिसे एक झटके मे तोडकर मुक्त हुआ जा सकता है''।[१५७]

प्रेमचन्द अपने सम्पूर्ण रचनाक्रम मे कृषक से मजदूर बनने की कथा को एक त्रासदी के रूप मे देखते है। उनकी इस त्रासदी पर अकुश के लिए प्रेमचन्द उन्हे किसी सगठित क्राति की शिक्षा नही देते। प्रेमचन्द 'प्रेमाश्रम' मे कहते है, "आपकी कम्पनी धनवानो को और धनवान बनाएगी पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुचने की सभावना नही। निस्सदेह आप कई हजार कुलियो को काम मे लगा देगे पर यह मजूरे अधिकाश किसान ही होगे और मै किसानो को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूँ यूरोप मे जो इडस्ट्रियलिजम (औद्यिकता) की उन्नति हुई है उसके विशेष कारण थे वहॉ के किसानो की दशा उस समय गुलामो से गई गुजरी थी वह जमीदारो के बन्दी होते थे इस कठिन करावास को देखते हुए धनपतियो की कैद गनीमत थी, किसानो की आर्थिक दशा चाहे कितनी ही बुरी क्यो न हो पर वह किसी के गुलाम नही है अगर उनपर कोई अत्याचार करे तो अदालतो से उससे मुक्त हो सकते है। नीति की दृष्टि से जमीदार और किसान दोनो बराबर है"।[१५८] 'प्रेमाश्रम' के आदर्श पात्र प्रेमशकर से प्रेमचन्द कहलवाते है, भूमि उसकी है जो उसको जोते, शासक को उसके उपज मे भाग लेने का अधिकार इसलिये है कि वह देश मे शान्ति रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती हो ही नही सकती किसी तीसरे वर्ग का समाज मे कोई स्थान नही है"।[१५९] मायाशकर जो प्रेमशकर के सरक्षण मे शिक्षा ग्रहण करता है किसानो को अपनी जमीन का मालिकाना हक दे देता है इससे उसके पिता ज्ञानशकर प्रेमशकर पर आक्षेप लगाते है, "साम्यवाद का पाठ पढाकर आपने सरल बालक पर घोर अत्याचार किया है आपको अपने प्रजावाद के बीज किसी और खेत मे बोना चाहिये था"।[१६०] प्रेमचन्द की साम्यवाद मे आस्था केवल इसलिये थी कि किसान एव मजदूरो को इस व्यवस्था मे मुक्ति मिल जाती है। मराठी साहित्यकार टी०टिकेकर से एक मुलाकात मे प्रेमचन्द ने कहा था, "मै कम्युनिष्ट हूँ किन्तु मेरा कम्यूनिजम केवल यह है कि हमारे देश मे जमीदार, सेठ आदि जो कृषको के शोषक है न रहे"।[१६१] मायाशकर जैसे जमीदार जो उदीयमान है जिनपर गॉधी और मार्क्स का प्रभाव पड चुका है मे उनकी आस्था थी बाद मे वह भग होती है जैसा कि 'उपेन्द्रनाथ अश्क' लिखते है, "काश हमारे जमीदारो मे एक भी मायाशकर निकलता तो प्रेमचन्द को अपनी जीवन सध्या मे निराश होकर गोदान न लिखना पडता"।[१६२] 'कायाकल्प' के नायक चक्रधर से भी प्रेमचन्द कहलवाते हैं, "समाज की यह अवस्था अब थोडे दिनो की मेहमान है और वह समय आ रहा है जब या तो राजा प्रजा का सेवक होगा या होगा ही नही"।[१६३] 'कर्मभूमि' का नायक अमरकान्त क्राति मे ही देश का उद्धार समझता था, "ऐसी क्राति जो सर्वव्यापक हो, जीवन के मिथ्या आदर्शों का, झूठे सिद्धान्तो का, परिपाटियो का अन्त कर दे जो नये युग की प्रवर्तक हो"।[१६४] अमरकान्त की मन स्थिति को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, "अमर के अन्त.करण मे क्राति का तूफान उठ रहा था उसका बस चलता तो आज धनवानो का अन्त कर देता

जो ससार को नर्क बनाए हुए है"।[१६५] यही नायक गॉव मे जाकर कर मुक्ति का आन्दोलन चलाता है पर उसके हिसक स्वरूप पर पश्चाताप भी करता हे, "हमने अन्त तक हाथ–पाव जोडे आखिर मजबूर होकर हमे यह आन्दोलन शुरू करना पडा सभव है हमसे गलती हुई हो लेकिन उस वक्त हमे यही सूझ पडा"।[१६६]

'गोदान' मे भी प्रेमचन्द कहते है, "अगर आपकी धारणा है कि कृषको के साथ रियायत होनी चाहिये तो पहले आप खुद शुरू करे काश्तकारो को वगैर नजराना लिए पट्टे लिख दे, बेगार बन्द करे, इजाफा लगान को तिलाजलि दे दे, चरावर जमीन छोड दे मुझे उन लोगो से जरा भी हमदर्दी नही है जो बात करते है क्म्युनिष्टो सी मगर जीवन है रइसो सा उतना ही विलासमय उतना ही स्वार्थ से भरा हुआ. मै तो केवल इतना जानता हूँ हम या तो साम्यवादी है या नही है, है तो उसका व्यवहार करे नही है तो बकना छोड दे। मै नकली जिदगी का विरोधी हूँ मै इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी को भी दूसरे के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नही। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है कर्म करना प्राणिमात्र का धर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमे कुछ लोग पिसे और खपें कभी सुखद नही हो सकती। पूँजी और शिक्षा जिसे मै पूँजी का एक रूप समझता हूँ इनका किला जितनी जल्दी टूट जाय उतना ही अच्छा"।[१६७] प्रेमचन्द अपनी कहानी 'पशु से मनुष्य' मे सहकारिता की वकालत करते है, "कोई भी यह नही समझता कि मै किसी का नौकर हूँ सबके सब अपने को साझेदार समझते है और जी तोडकर मेहनत करते है। जहाँ कोई मालिक होता है दूसरा कोई नौकर तो उन दोनो मे द्वेष पैदा हो जाता है इस प्रतिद्वदिता का परिणाम आप देख रहे है मोटे और पतले आदमियो के पृथक–पृथक दल बन गये है और उनमे घोर सग्राम हो रहा है। कालचिन्हो से ज्ञात होता है कि प्रतिद्वंदिता कुछ ही दिनो की मेहमान है इसकी जगह अब सहकारिता का आगमन होने वाला है"।[१६८] कहानी 'डामुल का कैदी' मजदूर पूँजीपति सघर्ष और पूजीपति के हृदय परिवर्तन का सुन्दर चित्रण है। यह ध्यान रहे कि यह रचना १६३२ मे लिखी गयी है जबकि इस समय की मान्यता है कि "१६३०–३६ के बीच मजदूर वर्ग का आन्दोलन ढालान पर था"।[१६९] "जब से स्वदेशी आन्दोलन चला है मिल के माल की खपत दूनी हो गई है सेठजी ने कपडे की दर मे दो आने रूपये बढा दिये फिर भी बिक्री मे कोई कमी नही, परन्तु मजदूरो के वेतन मे कटौती कर दी जाती है जिसपर मजदूर कहते है मिल मे अगर घाटा हो तो हम आधी मजदूरी पर काम करेगे लेकिन जब लाखो का लाभ हो रहा हो तो किस नीति से हमारी मजदूरी घटाई जा रही है। हम अन्याय नही सह सकते प्रण कर लो कि किसी बाहरी आदमी को मिल मे घुसने न देगे चाहे वह अपने साथ फौज ही लेकर क्यो न आये कुछ परवाह नही चाहे हमारे ऊपर लाठियाँ बरसे गोलियाँ चले"।[१७०] इसी कहानी मे सेठजी की गोली से मजदूरो का नेता मर जाता है फलत·

"मजदूरो की दूसरी मिलो मे इस हत्याकाण्ड की सूचना भेज दी गई दम के दम सारे शहर मे यह खबर बिजली की तरह दौड गई और कई मिलो मे हडताल हो गई नगर मे सनसनी फैल गई किसी भीषण उपद्रव के भय से लोगो ने दुकाने बन्द कर दी विद्रोहियो ने कोठी के दफ्तर मे लेने–देन के बहीखातो को जलाना और तिजोरियो को तोडना शुरू कर दिया"।[७१] दमन भी किया गया "एक हजार मजदूरो का दल मिल की द्वार की ओर चला फौजी गारद ने गोलियॉ चलाईं"।[७२] 'गोदान' मे भी प्रेमचन्द मजदूरो की स्थिति का वर्णन करते है, "आपके मजूर बिलो मे रहते है गदे बदबूदार बिलो मे, जहॉ एक मिनट आप रह जाये तो कै हो जाय कपडे जो पहनते है उनसे आप जूते भी नही पोछेगे। खाना जो खाते है वह आपका कुत्ता भी न खाएगा मैने उनके जीवन मे भाग लिया है आप उनकी रोटियॉ छीनकर अपने रिश्तेदारो का पेट भरना चाहते है"।[७३]

'गोदान' मे सिर्फ शोषण को चुपचाप सहने के लिए अभिसप्त पात्र होरी ही नही असन्तोष का प्रतीक गोबर भी है, "गोबर ने बाप को डॉटा – कैसी चाकरी? और किसकी चाकरी? यहॉ तो कोई भी चाकर नही है सभी बराबर है अच्छी दिल्लगी है किसी को सौ रूपये उधार दे दिए और उससे सूद मे जिदगी भर काम लेते रहे मूल ज्यौ का त्यौं। यह महाजनी नही खून चूसना है...मुझे खूब याद है तुमने बैल के बीस रूपये लिए थे उसके १०० हुए और अब सौ के दो सौ हो गये इसी तरह तुम लोगो ने किसानो को लूट–लूट कर मजूर बना डाला और आप जमीन के मालिक बन बैठे बक वाले बारह आना सूद लेते है तुम एक रूपया ले लो क्या किसी को लूट लोगे"।[७४] ग्रामीण महाजनो मे प्रशासन के कानूनो के प्रति निर्भयता का चित्रण करते हुये प्रेमचन्द कहते है, "तुम्हे गरज पडेगी तो सौ बार हमसे रूपये उधार लोगे और हम जो ब्याज चाहेगे लेगे। सरकार अगर असामियो को रूपये उधार देने का बन्दोबस्त न करेगी तो हमे इस कानून से कुछ न होगा हम दर कम लिखाएगे लेकिन एक सौ पहले ही काट लेगे इसमे सरकार क्या कर सकती है"।[७५] प्रेमचन्द यह भी कहते हैं, "ससार मे गऊ बनने से काम नही चलता जितना दबो लोग उतना ही दबाएगे। थाना, पुलिस, कचहरी अदालत है सब हमारी रक्षा के लिए लेकिन रक्षा कोई नही करता चारो तरफ लूट है जो गरीब है बेकस है उसकी गरदन काटने के लिए सभी तैयार रहते है। भगवान न करे कोई बेइमानी करे यह बडा पाप है लेकिन अपने हक और न्याय के लिए न लडना उससे भी बडा पाप है"।[७६] यही नही ऋणग्रस्तता इतनी बढ गई है कि फसल कटने पर किसानो को जो खुशी होनी चाहिए वो नही हो रही है, "जेठ के दिन है अभी तक खलिहानों मे अनाज मौजूद है मगर किसी के चेहरे पर खुशी नही है, बहुत कुछ खलिहान मे ही तुलकर महाजनो और कारिन्दो की भेट हो चुका है जो कुछ बचा है वह भी दूसरो का है"।[७७] अन्त मे होरी कहता है, "मोटे वह होते है जिन्हे न रिन की सोच होती है न इज्जत की इस जमाने में मोटा

होना बेहयाई है। सौ को दुबला करके एक मोटा होता है ऐसे मोटेपन मे क्या सुख? सुख तो तब है जब सभी मोटे हो"।[१७८]

प्रेमचन्द यह भी स्वीकार करते है कि गरीबो के दमन पर आधारित राज्य स्थायी नही होता। 'कर्मभूमि' मे सुखदा कहती है, "जिस समाज का आधार अन्याय पर हो उसकी सरकार के पास दमन के सिवा और क्या दवा हो सकती है। लेकिन इससे कोई यह न समझे कि आन्दोलन दब जाएगा मुझे गिरफ्तार कर ले उन गरीबो को कहा ले जाएगे जिनकी आहे आसमान तक पहुँच रही है। यही आहे एक दिन किसी ज्वालामुखी की भाँति फटकर सारे समाज और समाज के साथ सरकार को विध्वस कर देगी"।[१७९] अमरकान्त मुट्ठीभर मरने-खपने वालो का हिसाब भी देता है, "ये बडे-बडे महल जान हथेली पर रखकर कौन बनाता है? इन कपडो की मिलो मे कौन काम करता है? प्रात काल द्वार पर दूध और मक्खन लेकर कौन आवाज देता है? मिठाइयाँ और फल लेकर कौन बडे आदमियो के नाश्ते के समय पहुँचाता है? शहर के तीन चौथाई आदमी एक चौथाई के लिये अपना रक्त जला रहे है"।[१८०]

इस तरह प्रेमचन्द किसान एव मजदूरो की न केवल समस्याओ का चित्रण करते है बल्कि उसके समाधान के लिये उपाय भी समझाते है। पहला उपाय तो यह है कि पूँजीपति एव जमीदार (शोषक वर्ग) स्वय किसानो एव मजदूरो (शोषित वर्ग) को वह अधिकार दे, ऐसा यदि वह नही करता तो किसान एव मजदूर अहिसक सघर्ष करके अपने अधिकार स्वय प्राप्त कर ले साथ ही यदि आवश्यक हो तो शोषित वर्ग हिसक क्राति भी कर सकता है। 'गोदान' ग्रामीण किसानो की समस्यात्मक स्थिति का दर्पण है जो दोनो वर्गों के समक्ष प्रश्न खडा करती है। शोषक यह सोचने के लिए बाध्य होता है कि क्या कृषको की दारूण स्थिति के लिए मै ही जिम्मेदार हूँ तथा शोषित वर्ग यह सोचने के लिए बाध्य होता है कि आखिर यह शोषण क्यो? उसका आधार क्या है?

प्रेमचन्द की सहानभूति किसान एव मजदूर दोनो से समान है यद्यपि परिवेश यहाँ कृषि प्रधानता का है तो वह स्वाभाविक रूप से प्रेमचन्द के साहित्य मे सहजता से चित्रित है। प्रेमचन्द सभी उपेक्षित पीडित जन के साहित्यकार थे चाहे वे किसान के रूप मे हो या मजदूर के रूप मे। उनका वे अलग – अलग विभाजन न कर सके क्योकि उन्हे उनका नेतृत्व नही करना था बल्कि उनकी समस्याओ को सवेदनात्मक ढग से चित्रित करके लोगो के समक्ष एक प्रश्न खडा करना था। मदन गोपाल 'गोदान' के बारे मे लिखते है, "प्रेमचन्द का गोदान सर्वोपरि ग्रामीण गौरव ग्रन्थ है इसमे सूदखोर महाजनो का जो हर गाँव मे दस – बारह होते है भण्डाफोड किया गया है। महाजन किस प्रकार किसानो को तबाह कर डालते है यह इस उपन्यास में बडे प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया गया है"।[१८१]

डा० रामविलास शर्मा लिखते है, ''प्रेमचन्द के लिए राष्ट्रीय स्वाधीनता का आन्दोलन तभी सफल हो सकता था जब वह करोडो किसानो की मागो का आन्दोलन बन जाय। वह जानते थे कि किसानो के आन्दोलन से स्वाधीनता का आन्दोलन कमजोर न पडेगा बल्कि उसे विजय की मजिल तक ले जायेगा। हिन्दुस्तान की सामन्ती ताकते विदेशी प्रभुत्व की आधार थी इसलिए प्रेमचन्द के लिए आजादी का मतलब था इस आधार को खत्म करना'' ।[१८२] गॉधी–इर्विन समझौते की पुष्टि के लिए हुई काग्रेस की प्रशसा करते हुये प्रेमचन्द ने मार्च १६३१ मे लिखा, ''अब काग्रेस का ध्येय राष्ट्र के सामने है वह गरीबो की सस्था है गरीबो के हितो की रक्षा उसका प्रधान कर्तव्य है। उसके विधान मे मजदूरो, किसानो और गरीबो के लिए वही स्थान है जो अन्य लोगो के लिये हम काग्रेस को इस प्रस्ताव के लिए बधाई देते है'' ।[१८३] सितम्बर १६३६ के अपने प्रसिद्ध लेख मे प्रेमचन्द लिखते है, ''मगर इस महाजनी सभ्यता मे तो सारे कामो की गरज महज पैसा होती है किसी देश पर राज किया जाता है तो इसलिये कि महाजनो और पूँजीपतियों को अधिक से अधिक लाभ हो। इस दृष्टि से मानों दुनियॉ मे महाजनो का ही राज है। मनुष्य समाज दो भागो मे बट गया है बडा हिस्सा मरने और खपने वालो का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगो का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बडे समुदायो को अपने वश मे किए हुए है। परन्तु अब नई सभ्यता का सूर्य सूदूर पश्चिम मे उदय हो रहा है जिसने इस नारकीय महाजनवाद या पूँजीवाद की जड खोदकर फेक दी है जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शरीर या दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है राज्य और समाज का सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरो की मेहनत या बाप दादो की जोडे हुए धन पर रईस बना फिरता है वह पतितम प्राणी है। उसे राज्य प्रबन्ध मे राय देने का हक नही, नागरिकता के अधिकारो का भी पात्र नही .धन्य है वह सभ्यता जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अन्त कर रही है और जल्दी या देर से दुनिया उसका पदानुसरण अवश्य करेगी'' ।[१८४]

इस प्रकार प्रेमचन्द किसान और मजदूरो की मुक्ति के लिए उस विचारधारा का भी समर्थन और आह्वान करते है जो रूस मे मजदूरो और कृषको को उनका हक दिला चुकी है। वे अपने किसान एव मजदूर भाईयो के लिये न्याय चाहते है चाहे वह जिन रास्तो पर चल कर मिले। इस तरह प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य मे किसान मजदूर और उनकी मुक्ति के लिए रास्तो की तलाश बडी शिद्दत से उपस्थित रहती है।

**X X X X X**

प्रेमचन्द जिस युग मे रचनाकर्म से जुडे थे उस युग में धार्मिक कट्टरता एव साम्प्रदायिक तनाव, राष्ट्रीय राजनीति को नकारात्मक रूप से प्राभावित कर रही थी। प्रेमचन्द जैसा संवेदनशील

रचनाकार इन धार्मिक कट्टर पथियो और साम्प्रदायिक शक्तियो के प्रभाव से अछूता नही रह सकता था। उन्होने अपने अन्तिम सास तक इन ताकतो से अपनी लेखनी के माध्यम से सघर्ष किया। यह एक विचित्र सयोग है कि हिन्दी साहित्य के सर्वोच्च कथाकार ने अपनी सभी आरम्भिक रचनाएँ उर्दू मे ही लिखी। बाद मे उन्होने हिन्दी को अपनाया। एक तरह से भाषा के रूप मे प्रेमचन्द ने हिन्दी और उर्दू को जिस तरह आत्मसात किया था उसी तरह वे हिन्दू–मुस्लिम सस्कृतियो को भी अपने साहित्य मे आत्मसात किए थे। प्रेमचन्द का पहला उपन्यास 'देवस्थान का रहस्य' उन हिन्दू महन्तो के काले कारनामो का खुलासा है जो धर्म के आड मे समाज से छलावा करते है। जरा महन्त जी का चित्रण प्रेमचन्द की कलम से देखिए, "यह जो आप महन्त जी के माथे पर लाल निशान देख रहे है यह चन्दन के निशान नही बल्कि इस बात को सिद्ध कर रहे है कि हजरत ने न्याय और धर्म का खून कर दिया है। आप जो उनके गले मे मोहन माला देख रहे है असल मे लोभ का फन्दा है जो आपको कस कर जकडे हुये है। सिर पर रखी हुई तिरछी टोपी आपके अकल के तिरछेपन को जाहिर कर रही है"।[१८५] इस तरह प्रेमचन्द उस प्रतीक पर आक्रमण करते है जिसपर साधारण जनता बिना तर्क के विश्वास करती है और ठगी जाती है।

प्रेमचन्द अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' मे उस हिन्दू मानसिकता पर चोट करते है जो सदियों से समुद्र पार यात्रा की वर्जना के कारण उन्हे कूप मडूक बनाए हुए है। वे ज्ञानशकर से कहलवाते हैं, "हिन्दुओ को तो आप जानते ही है कितने मिथ्यावादी होते है आपके लौटने का समाचार जब से मिला है सारी बिरादरी मे तूफान सा उठा हुआ है। मुझे स्वय विदेश यात्रा मे कोई आपत्ति नही है मै देश और जाति के उन्नति के लिये इसे जरूरी समझता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि इस नाकेबन्दी से हमको बडी हानि हुई है"।[१८६] 'सेवासदन' उपन्यास की पात्र सुमन जो कोशिश के बावजूद समाज मे सम्मानित जिदगी नही बिता पाती कहती है, "आपकी हिन्दू जाति इतनी हृदय शून्य है तो मै उसकी मर्यादा पालने के लिए क्यो कष्ट भोगूँ"।[१८७] 'प्रेमाश्रम' मे एक कृषक की धर्म से मोहभग को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द कहते है, "यह सब मन को समझाने का ढकोसला है कादिर मियॉ यह पत्थर का ढेला है निरा मिट्टी का पिण्डा मै अब तक भूल मे पडा हुआ था। समझता था इसकी उपासना करने से मेरे लोक–परलोक दोनो बन जाएगे आज आखो के सामने से वह पर्दा हट गया है. यह लो महराज जाओ जहॉ तुम्हारा जी चाहे तुम्हारी यही पूजा है। उनतालिस साल की भक्ति का तुमने मुझे जो बदला दिया है मै भी उसी का बदला देता हूँ। यह कहकर भगत ने शालीग्राम की प्रतिमा को एक तरफ फेक दिया"।[१८८] 'प्रेमाश्रम' मे ही तेजशकर और पद्मशकर की दैवी शक्ति जागृति करने की घटना की विभत्सता को चित्रित करके प्रेमचन्द ऐसा न करने की शिक्षा देते है।

'कायाकल्प' उपन्यास की रचना का उद्देश्य साम्प्रदायिक तनावो मे कमी करना भी है। उपन्यास आरम्भ ही ऐसे होता है, "लोग इतने उत्साह से त्रिवेणी के सॅकरे घाट की ओर गिरते पडते लपके चले जाते थे कि यदि जल की शीतल धारा की जगह अग्नि का जलता कुण्ड होता तो भी लोग उसमे कूदते हुए जरा भी न झिझकते कितने आदमी कुचल गये, कितने डूब गये, कितने खो गये कितने अपग हो गये इसका अनुमान करना कठिन था, धर्म का विकट सग्राम था"।[८९] 'कायाकल्प' मे ही सच्चे धर्म का अर्थ समझाते हुये प्रेमचन्द लिखते है, "जब तक हम सच्चे धर्म का अर्थ नही समझेगे हमारी यही दशा रहेगी मुश्किल यह है जिन महापुरूषो से अच्छी धर्म निष्ठा की आशा की जाती है वे अपने अशिक्षित भाईयो से बढकर उदण्ड हो जाते है। मै तो नीति को ही धर्म समझता हूँ और सभी सम्प्रदायो की नीति एक सी है अगर अन्तर है तो बहुत थोडा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते हैं। हमे कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओ का समान आदर करना चाहिए। ये मानव जाति के निर्माता है जो इनमे से किसी का अनादर करता है या उसकी तुलना करने बैठता है वह अपनी मूर्खता का परिचय देता है। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिये कि वह कैसा आदमी है न कि यह कि किस धर्म का आदमी है। ससार का भावी धर्म सत्य न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा और अगर ससार मे जीवित रहना है तो अपने हृदय मे इन्ही भावो का सचार करना पडेगा"।[९०]

किन छोटे–छोटे बेबुनियाद कारणो से साम्प्रदायिक उन्माद फैलता है उसका चित्रण करते हुये 'कायाकल्प' मे ही प्रेमचन्द लिखते हैं, "आगरे के हिन्दुओ और मुसलमानो मे आये दिन जूतियॉ चलती रहती है जरा–जरा सी बात पर दोनो दलो के सिरफिरे जमा हो जाते थे दो चार के अग–भग हो जाते। कही बनिये ने डडी मार दी और मुसलमानो ने उसकी दुकान पर धावा बोल दिया। कही किसी जुलाहे ने किसी हिन्दू का घडा छू लिया और मुहल्ले मे फौजदारी हो गई। एक मुहल्ले मे मोहन ने रहीम का कनकौआ लूट लिया इसी बात पर मुहल्ले भर के हिन्दुओ के घर लुट गये। दूसरे मुहल्लो मे कुत्तो की लडाई पर सैकडो आदमी घायल हुये क्योकि एक सोहन का कुत्ता था दूसरा सईद का। दोनो ही दल मजहब के नशे मे चूर थे। हिन्दुओ ने महावीर दल बनाया मुसलमानो ने अलीगोल सजाया ख्वाजा साहब ने फतवा दिया जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय उसे एक हजार हजो का सवाब होगा। यशोदानन्दन ने काशी के पडितो की व्यवस्था मगवाई कि एक मुसलमान का वध एक लाख गोदान से श्रेष्ठ है"।[९१] प्रेमचन्द इसी उपन्यास में साम्प्रदायिक हिसा की क्रूरता का चित्र खीचते हुए लिखते है, "हिन्दू मुहल्लो के द्वार बन्द हो गये बेचारे कोठरियो मे बैठ जान की खैर मना रहे थे कि यह सकट हटे। रास्ते मे जो हिन्दू मिला वह पिटा घर लुटने लगे हाय–हाय का शोर

मच गया, दीन के नाम पर ऐसे–ऐसे कर्म होने लगे जिनपर पशुओ को भी लज्जा आती है पिशाचो के भी रोए खडे हो जाते। लेकिन बाबू यशोदानन्दन की मरने की खबर पाते ही सेवादल के युवको का खून खौल उठा सेवादल के दौ सौ युवक तलवारे लेकर निकल पडे और मुसलमान मुहल्ले मे घुसे। दो चार पिस्तौल और बन्दूके भी खोज निकाली गईं। हिन्दू मुहल्ले मे जो कुछ मुसलमान कर रहे थे मुसलमान मुहल्ले मे वही हिन्दू करने लगे। अहिसा ने हिसा के आगे सिर झुका दिया। वे ही सेवाव्रतधारी युवक जो दीनो पर जान देते थे अनाथो को गले लगाते थे और रोगियो की सुश्रुषा करते थे इस समय निर्दयता के पुतले बने हुए थे। पाशविक वृत्तियो ने कोमल वृत्तियो का सहार कर दिया था। उन्हे न दीनो पर दया आती न अनाथो पर, हॅस–हॅसकर भाले और छुरे चलाते थे मानों लडके गुडिया पीट रहे हो। उचित तो यह था कि दोनो दलो के योद्धा आमने–सामने खडे हो जाते और खूब दिलो के अरमान निकालते लेकिन कायरो की वीरता और वीरो की वीरता मे बडा अन्तर है"।[१६२]

अपने 'रगभूमि' उपन्यास मे वे एक ऐसी ईसाई लडकी का चित्रण करते है जो पारम्परिक ईसाई मान्यताओ मे आस्था नही रखती। सोफिया कहती है, "उनके प्रति श्रद्धा रखने का आशय यह नही है कि भक्तो ने उनके उपदेशो मे जो असगत बाते भर दी है या उनके नाम से जो विभूतियॉ प्रसिद्ध कर रखी है उन पर भी इमान लाऊॅ धार्मिक विषयो मे मै अपने विवेक बुद्धि के सिवा किसी के आदेशो को नही मानती"।[१६३] सोफिया आगे कहती है, "मेरा विश्वास यह है कि मेरी मुक्ति, अगर मुक्ति हो सकती है तो मेरे कर्मों से होगी सोफिया सोचती है मैने देखे है हिन्दू घरानो मे भिन्न–भिन्न मतों के प्राणी कितने प्रेम से रहते है। बाप सनातन धर्मावलम्बी है तो स्त्री पाषाण पूजकों मे, सब अपने – अपने धर्म का पालन करते है। कोई किसी से नही बोलता। हमारे यहॉ आत्मा कुचली जाती है फिर भी यह दावा कि हमारी शिक्षा और सभ्यता विचार स्वातत्रय के पोषक है"।[१६४] हिन्दुओ की धार्मिक वैविध्यपूर्ण स्वतत्रता को समझाती हुई 'रगभूमि' की पात्र इन्दू कहती है, "नही कोई किसी को पूजा पाठ के लिये मजबूर नही करता, बाबूजी नित्य गगा स्नान करते है घटो शिव की उपासना करते है, अम्माजी कभी भूलकर गगा स्नान करने नही जाती न किसी देवता की पूजा करती है, पर बाबूजी कभी आग्रह नही करते। भक्ति तो अपने विश्वास और मनोवृत्ति पर निर्भर है हम भाई – बहन के विचारो मे आकाश पाताल का अन्तर है। मै कृष्ण की उपासिका हूॅ विनय ईश्वर के अस्तित्व को भी नही स्वीकार करता पर बाबूजी हम लोगो से कभी कुछ नही कहते और न हम भाई–बहन मे कभी इस विषय पर वाद– विवाद होता है"।[१६५]

इस तरह प्रेमचन्द हिन्दू धर्म की सकारात्मक स्थापनाओ को ईसाई धर्म की स्थापनाओ के समक्ष रखकर उसे श्रेष्ठ सिद्ध करते है। प्रेमचन्द इस बात से परिचित थे कि भारतीय जनमानस की

बुनावट मे धर्म की भूमिका कितना अधिक महत्व रखती है इसलिए ईसाई धर्म की सर्वोच्चता का भी प्रकारान्तर मे खण्डन करते चलते है। प्रेमचन्द कहते है, "हिन्दू , मुसलमान जिन्हे कुछ भी जातीय गौरव का ख्याल है अग्रेजो के साथ मिलना – जुलना सम्मान की बात नही समझते। यहॉ तक कि हिन्दुओ मे जो लोग अग्रेजो से खान – पान रखते है उन्हे लोग अपमान की दृष्टि से देखते है, शादी–विवाह का तो कहना ही क्या? राजनीतिक प्रभुत्व की बात और है। डाकुओ का एक दल विद्वानो की एक सभा को आसानी से परास्त कर सकता है लेकिन इससे विद्वानो का महत्व कुछ कम नही होता। प्रत्येक हिन्दू जानता है कि मसीह बौद्ध काल मे यहॉ आये थे यही उनकी शिक्षा हुई और जो ज्ञान उन्होने प्राप्त किया उसी का पश्चिम मे प्रचार किया फिर कैसे हो सकता है कि हिन्दू अग्रेजो को श्रेष्ठ समझे" ।[१६६] इस तरह प्रेमचन्द अग्रेजो की सर्वोच्चता का खण्डन धार्मिक रूप से भी करते है ।

साम्प्रदायिक समस्या दिन पर दिन राजनीति को भी उलझाती जा रही थी। विभिन्न स्थानों पर भीषण दगो ने दोनो समाज के समूहो को एक दूसरे का विरोधी बना दिया था और वे राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने लगे थे। अप्रैल १६३० मे प्रेमचन्द लिखते है, "भारतीय एकता के विरोधी कभी यह कहते नही थकते कि जब तक हिन्दुओ और मुसलमानो मे हिस्से का समझौता न हो जाय मुसलमान इस सग्राम मे शामिल नही हो सकते। इस कथन मे कितनी सच्चाई है इसे मुस्लिम जनता अब समझने लगी है वह यह कि जब तक एक तीसरी शक्ति इन दोनो जातियो के वैमनस्य से फायदा उठाने वाली रहेगी एकता का सूर्य कभी उदय न होगा हिस्से का निश्चय करने के लिए एक से अधिक बार कोशिश की गई यहॉ तक कि आज भी सर तेजबहादुर सप्रू सर्वदल सम्मेलन कराने में लगे हुए है मगर उन कोशिशो का फल क्या निकला? समझौता न हुआ । हिन्दुस्तान यदि इतने दिनो की गुलामी से कुछ सीख सका है तो वह यह है कि समाज के किसी अग को असन्तुष्ट रखकर राष्ट्र दुनिया मे उन्नति नही कर सकता. महात्मा गॉधी ने तो यहॉ तक कह दिया है कि मुसलमान जितना चाहे ले ले इसमे हिस्से का सवाल नही है। स्वराज्य के अधीन राजपद धन कमाने का साधन नही प्रजा की सेवा का साधन होगा" ।[१६७]

साम्प्रदायिक दगो और समकालीन राजनीति के सदर्भ मे टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, "एक तरफ काग्रेस गोलमेज की शर्तों पर विचार कर रही थी दूसरी ओर काशी मे विद्रोह की आग दहक रही थी और ठीक उस समय काग्रेस समझौते की स्वीकृति पर अपना फैसला सुनाने जा रही थी। कानपुर मे भीषण हत्याकाण्ड आरम्भ हो गया था एक मास के अन्दर काशी, मिर्जापुर, आगरा, कानपुर आदि स्थानो मे जातिगत वैमनस्य का इतना भयकर रूप धारण कर लेना अगर हमे कोई शिक्षा देता है तो यह कि मुस्लिम भाईयो को अपने साथ न ले चलने में हमने भूल की। यह सत्य है कि हमने

उनकी सहायता के लिये सदैव हाथ फैलाये रखा, सदैव उनकी सहानभूति की याचना करते रहे लेकिन यह भी मानना पडेगा कि बगैर आपस मे समझौता किए हुए सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात कर देना हमारे मुस्लिम भाईयो को अप्रिय ही न लगा उसने कुछ सदेह भी उत्पन्न किया। शायद आन्दोलन की सफलता ने उन्हे भयभीत कर दिया"।[१९८] "१९२० और १९३० के दशको मे जिन्ना के मच पर आने तक पराजित मुसलमानो का यह पतन और भी बढ चुका था। १९३४ तक मुसलमानो के मन मस्तिष्क पर हिन्दुओ का लगभग पूर्णरूपेण कब्जा हो चुका था विजेता हिन्दुओ के दल असगठित, भ्रमित और हतोत्साहित मुसलमानो के दलो को हिन्दुत्व के घेरे मे समेटने लगे थे"।[१९९] प्रेमचन्द भी लिखते है, "हमारे भाइयो मे अब भी एक ऐसा शक्तिशाली समूह है जो स्वराज से डरता है। उसे भय है कि स्वराज मे हिन्दू बहुमत उसे पीस डालेगा। इस समय हमारी सारी कोशिश अपने मुस्लिम भाईयो की सहानुभूति प्राप्त करने, उनके दिलो मे शका और अविश्वास को मिटाने मे लगानी चाहिये यही हमारे राजनीतिक उद्धार की कुजी है"।[२००]

ताराचन्द लिखते है, "गोलमेज सम्मेलन समिति के मुस्लिम सदस्य पक्के साम्प्रदायिक थे इसलिए वे वैमनस्य के कारण विपरीत दिशा मे खिचे जा रहे थे। उदारणार्थ वे सोचते थे हमारा भाग्य भारत मे है या भारत के बाहर, ऐसे स्वायत्त प्रान्तो मे जो भारतीय संघ की इकाइया होगी या स्वतत्र मुस्लिम राज्य मे, क्या सविधान मे दी हुई गारण्टी पर्याप्त होगी या और अधिक गारण्टी आवश्यक है? मुसलमानो के मन मे भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना शनै – शैनै तिरोहित हो गई थी उनकी राजनीति सत्ता की राजनीति और शक्ति सन्तुलन की कल्पनाओ से अधिकाधिक घिर गई थी। जब मुसलमानों और यूरोपियनो ने मिलकर दूसरे अल्पसख्यको को समझाया कि प्रधानमन्त्री पर यह दबाव डाला जाय कि यदि उनके हितो को सुरक्षित नही रखा गया तो ऐसा सविधान उन्हें स्वीकार्य नही होगा गॉधी और सर तेजबहादुर सप्रू जैसे व्यक्ति समझौते के लिए कठिन प्रयास कर रहे हैं परन्तु मुसलमान प्रतिनिधि टस से मस नही हो रहे हैं"।[२०१] मुस्लिमो की इस नैराश्यपूर्ण नीति से दु खी होकर प्रेमचन्द अक्टूबर १९३१ मे 'गोलमेज परिषद मे गोलमाल' शीर्षक से लिखते है, "महात्मा जी को यदि मालुम होता कि मुस्लिम मेबर वहॉ यह अडगा लगाएगे तो वह जाते ही क्यो । हिन्दू बहुमत मे है किसी हिकमत से भी उनकी सख्या घटाई नही जा सकती। उधर मुसलमान कोई ऐसी व्यवस्था मजूर न करेगे जिसमे बहुमत से किसी हानि की सभावना हो। इसलिए भारत को जन्म जन्मान्तर तक इसी पराधीनता की दशा मे रहना होगा। उनकी रक्षा के लिए भारत पर अग्रेजो का शासन अनिवार्य है तो क्या हिन्दू उस वक्त तक चुपचाप बैठे रहे जब तक उनका बहुमत घटते–घटते अल्पमत न हो जाय गोलमेज के मुस्लिम प्रतिनिधियो को हिन्दुओ पर विश्वास नही है, अग्रेजो पर विश्वास है। जिनसे उनका चोली दामन का

साथ है, जिनके साथ उनका भाईचारा है उनपर उन्हें विश्वास नही है"।[२०२] नवम्बर १६३१ मे प्रेमचन्द 'हिन्दू—मुस्लिम एकता' शीर्षक से लिखते है "जरूरत यह है जैसा हम पहले कह चुके है कि हम गलत इतिहास को दिल से निकाल दे और देश काल का भलीभॉति विचार करके अपनी धारणाऍ स्थिर करे तब हम देखेगे कि जिन्हे हम अपना शत्रु समझते थे उन्होने वास्तव मे दलितो का उद्धार किया है हमारे जात—पात के कठोर बन्धनो को सरल किया है और हमारी सभ्यता के विकास मे सहायक सिद्ध हुए है"।[२०३]

ब्रिटिश सरकार के साम्प्रदायिक नीति पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द कहते है, "साम्प्रदायिक भेदनीति आपत्तिजनक है। गवर्नमेण्ट भारत को राष्ट्र नही समझती हम अपने व्यवहार से ऐसा समझने का अवसर नही देते. हमे यह दिखाना है कि तुम चाहे हमे कितने टुकडो मे बाटो हम परवाह नही करते हम एक राष्ट्र है"।[२०४] "इसी तरह भारत सरकार के गृह विभाग ने सरकारी नौकरियो के बॅटवारे के सम्बन्ध मे जो विज्ञप्ति प्रकाशित की है उसमे उसकी नीयत का ठीक—ठाक पता लग जाता है। साम्प्रदायिकता के नाम पर मुसलमानो के लिए २५ प्रतिशत स्थान सुरक्षित कर दिये गये है। हमारी समझ मे तो इसका आशय यही है कि सरकार हमारी राष्ट्रीय प्रगति को कुचलने का प्रयत्न कर रही है"।[२०५]

प्रेमचन्द के 'कर्बला' नाटक मे सग्राम के समय हिन्दू योद्धाओ का हजरत हुसैन का पक्ष लेकर प्राणोत्सर्ग करने का चित्रण है। उनका उद्‌देश्य हिन्दु—मुस्लिम सहयोग को इतिहास मे स्थापित करके वर्तमान पीढी को शिक्षा देना था। यही नही उनके समकालीन आचार्य चतुरसेन शास्त्री जब 'इस्लाम का विषवृक्ष' लिखते है तो प्रेमचन्द उनसे प्रार्थना करते है कि, "ऐसी जटिल और द्रोह भरी रचनाऍ लिखकर अपनी प्रतिभा को और हिन्दी भाषा को कलकित न करे और राष्ट्र मे जो द्रोह और द्वेष पहले से फैला हुआ है, उस बारूद मे आग न लगावे"।[२०६] इस तरह प्रेमचन्द धर्म और साम्प्रदायिकता की जडो तक जाकर उसके स्वरूप को देखते है साथ ही उनकी शाखाऍ किस तरह सामज और राष्ट्र को प्रभावित करती है उसे भी देखते है। वे हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए उनके सहयोगिक क्रियाओ का विश्लेषण करते है तथा उसकी सर्वोच्चता ईसाई धर्म पर सिद्ध करते हुए यह कहना चाहते है कि कोई धर्म उनके धर्म से श्रेष्ठ नही है।

प्रेमचन्द ने अछूतोद्धार की समस्या को समझाते हुए बडे सवेदनात्मक ढग से इसका चित्रण किया, 'सद्‌गति', 'ठाकुर का कुँआ' इसी पृष्ठभूमि पर लिखी गई कहानियॉ है। 'कर्मभूमि' मे सुखदा एव डा० शान्तिकुमार मन्दिर प्रवेश आन्दोलन चलाते है सुखदा कहती है, "तुम तन—मन से दूसरो की सेवा करते हो पर तुम गुलाम हो तुम्हारा समाज मे कोई स्थान नहीं। तुम समाज की

बुनियाद हो तुम्हारे ही ऊपर समाज खडा है पर तुम अछूत हो तुम मन्दिरो मे नही जा सकते ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है। क्या तुम सदैव इसी भॉति पतित और दलित बने रहना चाहते हो। शान्तिकुमार कहते है  मन्दिर किसी एक समुदाय की चीज नही है वह हिन्दू मात्र की चीज है यदि तुम्हे कोई रोकता है तो यह उसकी जबरजस्ती है, मतटलो उस मन्दिर के द्वार से चाहे तुम्हारे उपर गोलियो की वर्षा ही क्यो न हो तुम जरा सी बात के पीछे अपना सर्वस्व गवॉ देते हो यह तो धर्म की बात है और धर्म हमे जान से भी प्यारा होता है। धर्म की रक्षा सदा प्राणो से हुई है और प्राणो से ही होगी"।[२०७] इस तरह हिसक सघर्ष के बाद मन्दिर प्रवेश आन्दोलन सफल हो जाता है, "मन्दिर खुल गया है जिसका जी चाहे दर्शन करने जा सकता है किसी के लिए रोक–टोक नही है। विजेताओ ने धर्म पर ही विजय नही पाई हृदयो पर भी विजय पाई है। सारा नगर उनका सम्मान करने के लिए उतावला हो उठा..वही हिन्दू समाज जो एक घटा पहले इन अछूतो से घृणा करता था उन अर्थियो पर फूलों की वर्षा कर रहा था। बलिदान मे कितनी शक्ति है"।[२०८]

'कर्मभूमि' का नायक जब गॉव जाता है वहॉ एक दलित बालक से उसकी शिक्षा के बारे में पूँछता है तो बालक कहता है, "कहॉ जाय हमे कौन पढाए मदरसे मे कोई जाने तो देता नही, एक दिन दादा हम लोगो को लेकर गये थे पण्डित जी नाम लिख लिया पर हमे सबसे अलग बैठाते थे। सब लडके हमे चमार – चमार कहकर चिढाते थे दादा ने नाम कटा लिया"।[२०९] इसीलिए प्रेमचन्द मन्दिर मे दान से ज्यादा अच्छा शिक्षा मे दान की वकालत करते है, "मन्दिर तो यो ही इतने हो रहे है कि पूजा करनेवाले नही मिलते। शिक्षा दान महादान है और वह भी उन लोगो मे जिनका समाज ने हमेशा बहिष्कार किया हो"।[२१०] इस तरह प्रेमचन्द अछूतो की समस्या और उनसे मुक्ति की बात करके हिन्दुओ मे व्याप्त कुरीति को समाप्त करने का प्रयास करते है। 'काशी मे मन्दिर प्रवेश बिल का समर्थन' शीर्षकसे मार्च १६३४ मे प्रेमचन्द लिखते है, "वर्णाश्रम स्वराज सघ को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि काशी जैसे सनातनी केन्द्र मे भी हरिजनो के मन्दिर प्रवेश बिल की विजय हुई है"।[२११] "२० सितम्बर १६३२ को गॉधीजी ने हरिजनो के लिए अलग निर्वाचक मण्डल के मुद्दे के विरूद्ध आमरण अनसन प्रारम्भ किया और अन्त मे सवर्ण हिन्दू और हरिजन नेताओ के बीच एक समझौता (पूना समझौता) कराने मे सफल रहे"।[२१२] गॉधीजी के अनसन और उसकी सफलता पर प्रेमचन्द ने क्रमश दो लेख 'महान तप' और 'हमारा कर्तव्य' लिखे जिसमे उन्होने सम्पूर्ण समस्या को रेखाकित करते हुए महात्मा गॉधी के कार्यों की प्रसशा की"।[२१३]

**X X X X X**

प्रेमचन्द ने अपने समय मे उपस्थित नारी प्रश्नो को अपने साहित्य मे बडी सजगता के साथ अत्मसात किया हैं। १६०६ मे प्रकाशित उपन्यास 'प्रेमा' विधवा पुनर्विवाह की वकालत करता है। इसका नायक विधवा से विवाह करने का निर्णय लेता हे जबकि उसके पास प्रेमा जैसी अविवाहित लडकी से विवाह करने का प्रस्ताव था, यद्यपि नायक भी विधुर था। उल्लेखनीय है कि प्रेमचन्द की दूसरी पत्नी शिवरानी देवी स्वय विधवा थी। प्रेमचन्द के उपन्यास 'सेवासदन' की नायिका सुमन, जिसे विवश होकर वेश्या बनना पडता है, प्रश्न करती है, "हम कोई भेड बकरी तो है नही मॉ बाप जिसके गले मढ दे बस उसी की हो रहे"।[२१४] सुमन हिन्दू जाति की जडता पर भी आक्षेप करती है, "जब हिन्दू जाति को खुद गरज नही है तो फिर हम जैसी अबलाएँ उसकी रक्षा कहॉ तक कर सकती है"।[२१५] अन्तत. प्रेमचन्द सुमन को समाज सेवा की राह पकडा देते है। ऐसे परिवार के सबन्धो पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है। सुमन की बहन शान्ता को भी युवक 'सदन' अपने परिवार से विद्रोह करके ही अपना पाता है। इस तरह प्रेमचन्द अपने युग के अनुरूप ही उसका समाधान कर पाते है। सारी व्यवस्थाए पुरूष द्वारा निर्मित एव पुरूष के लिए ही है। पुरूष की वासना का शिकार और पुन पुरूष द्वारा ही परित्यक्त और जलील किया जाना समाज के दोहरे चरित्र का उद्घाटन करता है।

प्रेमचन्द ने 'रगभूमि' मे जिन स्त्री पात्रो की सर्जना की है वे या तो पारम्परिक है या परम्परा से मुक्त होने की चाह रखते हुए भी मुक्त नही हो पाती। सोफिया समाज सेवा मे खुलकर हिस्सा लेती है। इन्दू की समाज सेवा उसके पति को पसन्द नही आती। जान्हवी वीर पुत्र की माता बनने मे ही गर्व करती है। कुल मिलाकर प्रेमचन्द नारी पात्रो को अपने शुरूआती रचनाओ मे सीधे आन्दोलन मे नही उतार पाते। यद्यपि 'प्रेमाश्रम' की विलासी, स्थानीय प्रशासक से इसलिए उलझ जाती है क्योकि वह उसके पशुओ को चरावर से निकलने के लिए कहता है। 'प्रेमाश्रम' मे श्रद्धा, गायत्री भी समाज या राष्ट्र सेवा से नही जुड पाती। गायत्री एक कुशल प्रशासक के रूप मे चित्रित तो है पर किसानो और मजदूरो के ऊपर अत्याचार करने से नही चूकती। 'गबन' की स्त्री पात्र जालपा समाज सेवा से जुडकर अपने पति के हृदय मे परिवर्तन लाती है। जैसा कि डा० रामविलास शर्मा लिखते है, "प्रेमचन्द ने उसे नारी समस्या का व्यापक चित्र बनाने के साथ–साथ इस समस्या को हिन्दी साहित्य मे पहली बार देश की स्वाधीनता की समस्या से भी जोड दिया है। जालपा को सच्चा सुख उनकी देखभाल करने मे मिलता है जिनके बेटो और पतियो को अग्रेजी राज फॉसी देने की तवजीज करता है सामाजिक जीवन और कथा साहित्य के लिए यह एक नई दिशा की तरफ संकेत था"।[२१६]

'कर्मभूमि' उपन्यास मे नारी पात्र राष्ट्र एव समाज की मुक्ति के लिए सक्रिय भूमिका निभाती हुई प्रस्तुत होती है। प्रेमचन्द मे यह परिवर्तन सभवत. देश की स्थिति को देखते हुए हुआ प्रतीत होता

है। जैसा कि ए०आर० देसाई नारी आन्दोलन के उभारो की चर्चा करते हुए लिखते है, ''बडी तादाद मे जन आन्दोलनो मे भाग लेती हुई, शराब की दुकानो पर धरना देती हुई, प्रदर्शनो मे मार्च करती हुई जेल जाती हुई, लाठी और गोलियो का सामना करती हुई स्त्रियो का दृश्य भारतीय इतिहास मे अभूतपूर्व था। एक ही बार मे भारतीय औरते अपनी सदियो पुरानी सीमाओ का अतिक्रमण कर आगे बढ गईं। पहले वे आज्ञाकारी घरेलू नौकरो जैसी थी लेकिन अब वे नागरिको के रूप मे उठ खडी हुई और उन्होने राजनीतिक कार्यक्रमो पर मत देना और बडे राजनीतिक आन्दोलनो मे भाग लेना शुरू किया। सरोजनी नायडू, कमलादेवी चट्टोपाध्याय, विजय लक्ष्मी पण्डित जैसी कुछ औरते तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध नेता हुईं''।[२१४] शिवरानी देवी अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द घर मे' मे नारी आन्दोलन के उभारो का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। वे खुद कई बार जेल गईं पिकेटिग मे हिस्सा लिया। शिवरानी देवी ने वेश्याओ के पुनर्वास एव कैदियो की स्थिति मे सुधार के लिए भी आन्दोलन किया। प्रेमचन्द वेश्याओ की समस्याओ के बारे मे शिवरानी देवी से एक बहस मे कहते है, ''गॉधी युग मे भी इसका सुधार न हुआ तो सौ वर्ष के लिए गया ही समझो''।[२१५] 'कर्मभूमि' की नायिका सुखदा मन्दिर प्रवेश आन्दोलन एव गरीबो की आवास समस्या के लिये आन्दोलन करती है। उसकी लोकप्रियता को चित्रित करते हुए प्रेमचन्द लिखते है, ''हजारो आदमी मोटर के पीछे दौड रहे है और सुखदा हाथ उठाकर उन्हे प्रणाम करती जाती है। यह श्रद्धा, यह प्रेम, यह सम्मान क्या धन से मिल सकता है? या विद्या से, इसका केवल एक ही साधन है वह सेवा है और सुखदा को इस क्षेत्र मे आये हुए ही कितने दिन हुए थे''।[२१६] 'कर्मभूमि' की ही पात्र मुन्नी अपने ऊपर हुए बलात्कार (अग्रेज सिपाहियो द्वारा) का बदला अग्रेज सिपाहियो की हत्या से लेती है और न्यायालय भी उसे बरी कर देता है। जनता उसे सर आखो पर बिठाती है पर वह नेतृत्व करने मे अपने को असहाय पाती है। मुन्नी भूमिकर न देने के आन्दोलन मे अपनी सहभागिता के कारण जेल जाती है। सबकी गिरफ्तारी के बाद मे सुखदा भी नेतृत्व की रिक्तता को बडी बहादुरी से पूर्ति करती है। इस तरह के चित्रण से प्रेमचन्द यह सिद्ध करना चाह रहे थे कि पुरूष वर्ग के सक्रियता के कारण उनकी गिरफ्तारी होने पर स्त्रियो को आन्दोलन का नेतृत्व करना चाहिए। यही नही 'कर्मभूमि' का नायक अपनी पत्नी सुखदा को तभी सम्मान के साथ देखता है जब वह मन्दिर प्रवेश आन्दोलन एव गरीबो की आवास समस्या के लिए जन आन्दोलन से जुडती है। यह पुरूष एव स्त्री की सोच मे एक नवीन आयाम जोडने जैसा लगता है।

शिवरानी देवी एक बार प्रेमचन्द से पूँछती है, ''स्त्रियो की आजादी पर आप क्या विचार रखते है''? तब प्रेमचन्द कहते है, ''मै दोनो मे समानता चाहता हूँ'' तब शिवरानी देवी पुन पूँछती है, ''समानता का आन्दोलन आप क्यो नही करते''? प्रेमचन्द कहते है, ''मै उन ताकतो को साहित्य मे

भरना चाहता हूँ"। एक प्रश्न के उत्तर मे नारी आन्दोलन के उभारो के बारे मे प्रेमचन्द कहते है, "तुम कैसे कहती हो कि समाज वैसे ही है। तुम्हारी अम्मा के भी ख्याल मे जेल जाना आया था? तुम क्यो जेल पहुँच गई? तुम्ही क्या २० हजार स्त्रियॉ जेल गई है और फिर कैसे समाज आगे बढता है मै देखता हूँ स्त्रियो मे काफी हलचल है यह समाज के शुभ लक्षण है"।[२२०] सुमित सरकार भी सविनय अवज्ञा आन्दोलन मे स्त्रियो के सम्मिलित होने की घटना को एक विशेषता के रूप मे स्वीकार करते है। "१५ नवम्बर १६३० को जो २६०५४ गिरफ्तारियॉ हुई उनमे ३५६ स्त्रियॉ थी"।[२२१]

प्रेमचन्द अपनी कई कहानियो मे स्त्रियो को राष्ट्र की सेवा करते हुए चित्रित करते है। 'अनाथ लडकी' कहानी मे "रोहडी अपनी मडली के साथ देश प्रेम मे डूबा हुआ गीत प्रस्तुत करती है"।[२२२] 'मॉ' कहानी मे मॉ अपने बेटे को सरकारी सेवा मे जाने से रोकती है। 'पच परमेश्वर' कहानी मे एक वृद्धा अपने आर्थिक अधिकारो की प्राप्ति के लिये पचायत का सहारा लेती है। इसी आधार पर 'ईश्वरीय न्याय' कहानी भी लिखी गई है जिसमे भानकुँवर अपनी सम्पत्ति की प्राप्ति के लिए न्यायालय की शरण लेती है। भानकुँवर कहती है, "बला से हार जाएगे हमारी चीज कोई छीन ले तो हमारा धर्म है कि उससे यथाशक्ति लडे हार कर बैठना कायरो का काम है"।[२२३] 'पत्नी से पति' कहानी मे पत्नी अपनी सक्रियता से पति को भी स्वदेशी आन्दोलन मे सहभागी बनाती है। 'शराब की दुकान' कहानी मे मिसेज खन्ना नाम की महिला पिकेटिंग करती हुई पुलिस ज्यादती का शिकार होती है। 'आहुति' कहानी मे नायिका रूपमणि दो मित्रो आनन्द और विशम्भर मे विशम्भर पर अधिक श्रद्धा करती है क्योकि उसने जन सेवा का मार्ग चुना और किसान आन्दोलन का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार हुआ। 'कातिल की मॉ' कहानी मे एक विधवा अपने बेटे (क्रातिकारी) को खुली अदालत मे खूनी होने की घोषणा करती है और बेटे की ही गोली का शिकार होती है। 'खूनी' कहानी मे मि० व्यास की पत्नी अपने पति के खून का बदला इसलिए नही लेती क्योकि उनका पति क्रातिकारियो के विरूद्ध जिरह किए था। बल्कि वह उनकी मदद करना चाहती है जो उसके पति की वजह से अनाथ हो गये थे। प्रेमचन्द ब्रिटिश सिपाहियो द्वारा स्त्रियो के प्रताडित किए जाने पर चकित भी होते है। जून १६३० मे प्रेमचन्द 'दमन' शीर्षक से लिखते है कि, "अब स्त्रियो पर भी सख्ती होने लगी"।[२२४] प्रेमचन्द स्त्रियो पर पुलिस अत्याचार को पचा नही पाते 'जेल' कहानी मे अहिसक सत्याग्रही भी हिसक हो जाते है जब एक प्रौढ महिला पर पुलिस चोट करती है।

प्रेमचन्द अपने साहित्य मे उस पारम्परिक समाज की व्याप्तियो का खण्डन करते है जो स्त्रियो को खोखला बना रही थी। 'निर्मला' उपन्यास बेमेल विवाह और दहेज प्रथा के त्रासदियो से अभिसप्त नारी जीवन का सुन्दर चित्रण है जिसने निश्चित रूप से पुरूष समाज के समक्ष प्रश्न खडा

किया होगा। 'नया विवाह' मे भी प्रेमचन्द कुछ दूसरे तरीको से अपने इसी बात को सिद्ध करना चाहते है। प्रेमचन्द नारी समाज मे व्याप्त उन सभी नकारात्मक स्थापनाओ से सघर्ष करते प्रतीत होते है जो उनके विकास पथ मे काटो की तरह चुभ रहे थे। 'नेराश्य' कहानी मे समाज के पुत्र प्राप्ति के आग्रहो पर प्रेमचन्द ने खूब चुटकी ली है। प्रेमचन्द कहते है, "मनुष्य का उद्धार पुत्र से नही अपने कर्मों से होता है"।[२२५] प्रेमचन्द शिवरानी देवी से एक बहस मे स्त्रियो के द्वारा नौकरी करने को अच्छा नही मानते क्योकि "पुरूषो की बेकारी बढ रही है"।[२२६] क्या प्रेमचन्द अपनी इसी मान्यता के कारण स्त्रियो को उन क्षेत्रो मे आगे बढाना अनौचित्य पूर्ण स्वीकार करेगे कि इससे पुरूषों की समस्याए बढ जाएगी। वे स्त्रियों के लिए स्वीकार करते है, "जब तक सब स्त्रियॉ शिक्षित नहीं होगी और सब कानूनी अधिकार उनको बराबर न मिल जायेगे तब तक महज बराबर काम करने से ही काम नही चलेगा"। इस तरह प्रेमचन्द उनकी शिक्षा और अधिकार की बराबरी पर जोर देते है क्योकि ऐसा न होने पर "वे शोषण की शिकार हो सकती है"।[२२७] यही नही प्रेमचन्द स्त्रियो का आह्वान भी इस रूप मे करते है कि "उनको अपनी उन्नति खुद करनी चाहिए"।[२२८] प्रेमचन्द इस मत के समर्थक थे राष्ट्र को स्त्रियो की सहभागिता की आवश्यकता है, "जब घर – घर की स्त्रियॉ और पुरूष हिन्दुस्तान की तरक्की मे लगेगे तभी कल्याण होगा"।[२२९] इस तरह प्रेमचन्द अपने युग मे न केवल नारी समस्याओ का खुलासा करते है अपितु राष्ट्र की मुक्ति के लिए उनकी भागीदारी को अनिवार्य मानते है। साथ ही राष्ट्रीय चेतना मे उनकी न केवल सहभागिता को चित्रित करते है बल्कि उनकी भूमिका को महत्वपूर्ण स्वीकार करते हुए एक नयी दिशा देने का प्रयत्न करते है।

**X X X X X**

प्रेमचन्द के काल मे भाषा का प्रश्न न केवल राष्ट्र को उद्वेलित कर रहा था बल्कि प्रेमचन्द को भी। प्रेमचन्द ने हिन्दी भाषा को अपने पूर्वजो (देवकी नन्दन खत्री आदि) से अलग हिन्दी को यथार्थवादी भूमि पर उतार कर उसे जनोन्मुख बनाने का भगीरथ प्रयास किया। अमृतराय (कलम का सिपाही) एव शिवरानी देवी (प्रेमचन्द घर मे) के सस्मरणो एव स्वय प्रेमचन्द के पत्रो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द अपने को 'कलम का मजदूर' कहते थे और इसी से इनकी रोजी रोटी चलती थी। यहॉ उल्लेखनीय है प्रेमचन्द ने साहित्य के क्षेत्र मे पदार्पण उर्दू भाषा के माध्यम से किया था पर उर्दू मे पाठको की कमी एव तंगहाली की वजह से उन्होने हिन्दी भाषा मे कार्य करना आरम्भ किया। २२ मई १९१४ को अपने मित्र दयाराम निगम को प्रेमचन्द ने लिखा, "उर्दू की हवा आजकल बिगडी हुई है। जितने मौजूदा रिसाले है उनमे किसी को फरोग नही सब कुत्ते की जिदगी जीते हैं"। पुन पहली दिसम्बर १९१५ को मुंशीजी ने निगम साहब को लिखा, "अब हिन्दी लिखने का भी अश्क कर रहा हूँ

उर्दू मे अब गुजर नही है यह मालुम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मै भी हिन्दी लिखने मे जिदगी सर्फ कर दूँगा। उर्दू नवीसी मे किस हिन्दू को फैज हुआ है जो मुझे हो जाएगा"।[230] इस तरह यह सदर्भ सकेत करता है कि उस समय उर्दू भाषा की स्थिति दयनीय होती जा रही थी। साथ ही ये भाषाए अलग–अलग सम्प्रदायो की भाषाए बनती जा रही थी। यह तथ्य समकालीन पत्रिकाओ के अध्ययन से भी स्पष्ट होता है। भाषाओ का यह अन्तराल उनके दिलो (हिन्दू मुस्लिम) मे भी अन्तराल पैदा करने वाला सिद्ध हुआ पर प्रेमचन्द अन्त तक हिन्दी – उर्दू एकता के पक्षधर बने रहे। लाहौर के अपने एक भाषण मे उन्होने कहा, "हमारे लिए इतना जानना काफी है कि आज हिन्दुस्तान के पन्द्रह सोलह करोड लोगो के सभ्य व्यवहार और साहित्य की यही भाषा है हॉ यह लिखी जाती है दो लिपियो मे और उसी ऐतबार से हम उसे हिन्दी या उर्दू कहते है। पर है वह एक ही, बोलचाल मे तो बहुत कम फर्क है हॉ लिखने मे वह फर्क बढ जाता है भाषा के विकास मे हमारी सस्कृति की छाप होती है और जहॉ सस्कृति मे भेद होगा वहॉ भाषा मे भेद होना स्वाभाविक है"।[231]

प्रेमचन्द अग्रेजी भाषा के बढते प्रयोग पर भी आक्षेप प्रस्तुत करते है। सितम्बर १९३१ मे उन्होने लिखा, "किसी कमेटी की बैठक मे चले जाइये आप खद्दरधारी महाशयो को फर्राटे से अग्रेजी झाडते हुये पाएगे अग्रेजी भाषा का यह जादू कब तक हमारे सिरो पर रहेगा? कब तक अग्रेजी के गुलाम बने रहेगे? इससे तो यही टपकता है कि हमारी राष्ट्रीयता अभी हृदय की गहराई तक नही पहुँचने पाई है। महात्मा गॉधी के सिवाय हम किसी नेता को हिन्दी भाषा के प्रचार पर जोर देते नही देखते। यह विदित रहे कि जब तक हमारी राष्ट्रभाषा का निर्माण न होगा भारतीय राष्ट्र का निर्माण ख्वाब और ख्याल है"।[232] रामविलास शर्मा लिखते है, "अग्रेजी बनाम भारतीय भाषाए – यह प्रश्न अट्ठारह सौ सत्तावन के बाद भारत के विभिन्न प्रदेशो मे बुद्धिजीवियो के सामने आया। प्रश्न का उत्तर इस पर निर्भर था कि अग्रेजी राज की तरफ उनका रूख क्या है जो लोग अग्रेजी राज से सन्तुष्ट थे वे अग्रेजी भाषा के अपनाने के पक्ष मे थे जो भारत को अग्रेजी शोषण से मुक्त करना चाहते थे वे भारतीय भाषाओ का पक्ष लेते थे"।[233] इस तरह प्रेमचन्द भारतीय भाषा (हिन्दी) का पक्ष लेकर अग्रेजी शोषण से मुक्त करने वाले खेमे मे रहे।

दिसम्बर १९३२ के एक लेख मे प्रेमचन्द प्रान्तीयता की बढती मनोवृत्ति पर चिता जताते है। फरवरी १९३४ मे इस मनोवृत्ति से मुक्ति के लिए साहित्यिक आदान प्रदान को आवश्यक मानते है, "यह कौन नही जानता कि भारत मे प्रान्तीयता का भाव बढता जा रहा है। इसका कारण यह भी है कि हर एक प्रान्त का साहित्य अलग–अलग है। इसका आदान – प्रदान और विचार विनिमय ही है जिसके द्वारा प्रान्तीयता के सघर्ष को रोका जा सकता है"।[234] हिन्दी – उर्दू भाषा की एकता को बल देते हुये

उन्होने कहा, "घटनाओ का कुछ ऐसा क्रम चला कि एक ही मॉ के पेट से पैदा होने वाली ये दो बहने सौते बन गईं और यह सारी करामात फोर्ट विलियम की है जिसने एक ही जबान के दो रूप मान लिए जिन हॉथो ने यहॉ की जबान के उस वक्त दो टुकडे कर दिये उसने हमारी कौमी जिदगी के भी दो टुकडे कर दिये"।[२३५] प्रेमचन्द किसी लिपि को समाप्त करने के पक्ष मे नही थे, "हम तो किसी भी लिपि को मिटाना नही चाहते। हम तो इतना ही चाहते है अर्न्तप्रान्तीय व्यवहार नागरी मे हो"।[२३६] प्रेमचन्द इस मान्यता के प्रबल समर्थक थे कि, "जब तक आपके पास राष्ट्र भाषा नही आपका राष्ट्र नही"।[२३७] २४ अप्रैल १६३६ को नागपुर यूनिवर्सिटी मे भारतीय साहित्य परिषद का पहला अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता महात्मा गॉधी ने की। वहॉ हिन्दी, उर्दू, हिन्दी – हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानी का खूब विवाद रहा उस पर प्रेमचन्द, जो कि स्वय उस सम्मेलन मे थे लिखा, "हिन्दी को हिन्दुस्तानी चाहे उतना प्रिय न हो पर उर्दू को हिन्दुस्तानी के स्वीकार करने मे कोई बाधा नही है। क्योकि वह उसे अपनी परिचित सी लगती है। मगर परिषद ने अपनी हिन्दुस्तानी को अपना माध्यम न बनाना स्वीकार करके हिन्दी हिन्दुस्तानी को स्वीकार किया उर्दू वालो को हिन्दी हिन्दुस्तानी का मतलब न समझ मे आया शायद वह समझे कि हिन्दी हिन्दुस्तानी केवल हिन्दी का ही दूसरा नाम है"।[२३८] भारतीय साहित्य परिषद ने नागपुर के पहले अधिवेशन मे यह फैसला किया कि एक ऐसी पत्रिका का प्रकाशन हो जिसमे प्रत्येक प्रान्त की भाषा के लेख राष्ट्रभाषा द्वारा सबको मिले। इस फैसले से प्रेमचन्द बहुत खुश होते है और अपनी पत्रिका 'हस' को साहित्य परिषद को सौप देते है। इस तरह प्रेमचन्द का वह उद्देश्य पूरा हो जाता है कि सभी भारतीय साहित्यो मे आदान प्रदान होना चाहिए।

प्रेमचन्द अपने समकालीन विकसित की गई शिक्षा व्यवस्था से भी दुखी थे। 'कर्मभूमि' उपन्यास के प्रारम्भ मे प्रेमचन्द शिक्षा के व्यावसायीकरण पर टिप्पणी करते हुये लिखते है, "हमारे स्कूलो मे जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती कचहरी मे भी पैसे का, हमारे स्कूल मे भी पैसे का राज है उससे कही कठोर कही निर्दय, देर से आये तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाय तो जुर्माना, शिक्षालय क्या है? जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है, जिसकी तारीफो के पुल बाधे जाते है। यदि ऐसे शिक्षालयो से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबो का गला काटने वाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले – छात्र निकलते है तो आश्चर्य क्या है"।[२३९] 'कायाकल्प' उपन्यास के नायक चक्रधर से उसका पिता पूछता है, "आजाद रहना था तो एम०ए० क्यो किया? चक्रधर उत्तर देता है इसलिए कि आजादी का महत्व समझॅू"।[२४०] चक्रधर से एक जगह प्रेमचन्द यह भी कहलवाते है कि, "हमारी शिक्षा ने हमे पशु बना दिया है"।[२४१] प्रेमचन्द ऐसी शिक्षा चाहते थे जिसमे भारतीयता समग्रता के साथ हो, "युनिवर्सिटी तो

भारत मे कोई नही है हॉ ग्रेजुएट बनाने के कई कारखाने है जहॉ युवको को दुर्व्यसन और फिजूल खर्ची विलासिता और झूठे अभिमान की शिक्षा दी जाती है। किसी यूनिवर्सिटी मे चले जाइये वहॉ आपको भारतीयता की कही गध भी नही मिलेगी। वहॉ अग्रेजी भाषा का, अग्रेजी भेष का, अग्रेजी आचार का ही आधिपत्य है। त्याग और प्रेम के आदर्श का एक सिरे से वहिष्कार कर दिया गया है। वहॉ वही विद्वान है जो इग्लैण्ड से कोई बडी सी उपाधि लाया है"।[२४२]

प्रेमचन्द आरम्भिक शिक्षा को ही अधिक सुधरीकृत रूप मे देखना चाहते थे। प्रेमचन्द आरम्भिक शिक्षा से काफी दिनो तक शिक्षक एव अधिकारी के रूप मे जुडे रहे। उन्होने अपने एक लेख मे कहा, "हमारी आरम्भिक शिक्षा के सुधार एव उन्नति के लिए  सबसे बडी जरूरत योग्य शिक्षको की है योग्य आदमी आठ रूपये और नौ रूपये के माहवार के वेतन पर दुनियॉ के पर्दे मे कही नही मिल सकते जिस आदमी को पेट की फिक्र से आजादी ही नसीब न होगी वह तालीम की तरफ क्या खाक ध्यान देगा"।[२४३] एक तरह से वे अग्रेजी शिक्षा पद्धति का विरोध करते हुये आर्य समाज की शिक्षा पद्धति की प्रशसा करते है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के सन्दर्भ मे वे लिखते है, "मेरे विचार से राष्ट्रीय शिक्षा के पुनरूत्थान मे उन्होने जो काम किया है उसकी कोई नजीर नही मिलती। ऐसे युग मे जब अन्य बाजारी चीजो की तरह विद्या बिकती है वह स्वामी जी का ही दिमाग था जिसने प्राचीन गुरूकुल प्रथा मे भारत के उद्धार का तत्व समझा"।[२४४]

समग्रत प्रेमचन्द की भाषा और शिक्षा के सम्बन्ध मे दृष्टिकोण भारतीयता के अनुकूल था। भाषा को वे स्वाधीनता से भी जोडते है, "यह समझ लीजिए कि जिस दिन आप अग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड देगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेगे उसी दिन आपको स्वराज के दर्शन हो जाएगे। मुझे याद नही आता कि कोई भी राष्ट्र विदेशी भाषा के बल पर स्वाधीनता प्राप्त किया हो। राष्ट्र की बुनियाद राष्ट्र की भाषा है"।[२४५]

X X X X X

समग्रत प्रेमचन्द भारतीय सस्कृति एव मिट्टी से जुडे ऐसे रचनाकार थे जिन्होने न केवल ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ जनमानस मे चेतना जगाई वरन उन आधारो का भी खण्डन किया जिनसे ब्रिटिश शक्ति का पोषण होता था। उनके लिए यह शक्तियॉ केवल विदेशी ही नही वरन भारतीय भी थी। अत  उनका सघर्ष इन दोनो शक्तियो से लगातार चलता रहा। वे समकालीन समाज को विभाजित करने वाली शक्ति–साम्प्रदायिकता की निरन्तर अपनी लेखनी से शल्य चिकित्सा करते रहे। किसान एव मजदूर पहली बार उन्ही के लेखन से नायक बने और उनकी महत्ता एव शक्ति को

प्रेमचन्द ने लोगो से बताया साथ ही उनकी दारूण कथा का सटीक चित्रण करके समाज के सवेदनशील समूहो का ध्यान आकर्षित किया।

प्रेमचन्द न तो पूरी तरह गॉधीवादी रहे न तो पूरी तरह साम्यवादी। वे गॉधीवादी विचारधारा मे इसलिए आस्था रखते थे कि वे महात्मा गॉधी को जहॉ तक जानते थे वहॉ तक वे अपनी विचारो के अनुरूप ही पाते थे। शिवरानी देवी अपने सस्मरणो मे कई ऐसी बहसो का खुलासा करती है जिनसे पता चलता है कि वे महात्मा गॉधी की काफी इज्जत करते थे और उन्ही के माध्यम से राष्ट्र की समस्याओ का समाधान होगा–ऐसा वे मानते थे। "मै महात्मा गॉधी को सबसे बडा मानता हूँ उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हो। वह इन लोगो को आगे बढाने के लिये आन्दोलन मचा रहे है मै लिखकर उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गॉधी हिन्दू मुसलमानो की एकता चाहते है तो मै भी हिन्दी और उर्दू को मिला करके हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ"।[२४६] तात्पर्य यह है कि प्रेमचन्द जिन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए लेखन विधा से जुडे थे उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए गॉधीजी भी व्यावहारिक राजनीति से जुडे थे ऐसी समझ प्रेमचन्द की थी इसी कारण आजीवन उनपर श्रद्धा रही।

साम्यवाद को वे उसी सीमा तक मानते थे जहॉ तक वह मजदूरो, किसानो एव उपेक्षितो को सम्मान का जीवन दिला सकता है। कहने का आशय यह है कि प्रेमचन्द उस प्रत्येक आदर्श विचारधारा के अनुयायी रहे जिनसे उन समस्याओ से मुक्ति मिले जिनसे प्रेमचन्द अपनी लेखनी के माध्यम से जूझ रहे थे। कुछ विद्वान 'गोदान' को और उनकी सम्पूर्ण परवर्ती कालीन साहित्यिक रचना को मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित सिद्ध करते है और साथ ही यह भी कहते है कि उनका इस समय गॉधीवाद से मोह–भग हो गया था। गोदान की रचना कालावधि १९३२ से १९३५ के मध्य मानी जाती है। नवम्बर १९३५ मे 'हस' मे महात्मा गॉधी के बारे मे प्रेमचन्द लिखते है, "गॉधीजी राजनीतिक नेता के रूप मे महान है और व्यक्ति के रूप मे उससे भी महान। परन्तु एक अत्यन्त प्रखर सामूहिक बल के सृष्टिकर्ता के रूप मे तो वे उससे भी अधिक महान है। अभी तक तो अहिसा एक व्यक्तिगत बल रहा और अब गॉधी जी के प्रयास से वह सामूहिक बल हो गया है। आज राष्ट्रीयता की प्राप्ति स्वाधीनता की साधना और आर्थिक पुन सगठन मे भी इसी बल का प्रयोग हो सकता है इस बात का भान हमे हो गया है"।[२४७] क्या यह उद्धरण यह नही सिद्ध करता है कि महात्मा गॉधी मे उनकी आस्था मरते दम तक बनी रही।

प्रेमचन्द अपने उपन्यासो, कहानियो मे आदर्शोन्मुख यथार्थवाद, के नियम का पालन कर रहे थे यद्यपि अपने परवर्ती रचनाओ मे धीरे–धीरे और चुपचाप यथार्थ की ओर झुकते जाते है। यह यथार्थ की

तरफ झुकाव (गोदान, कफन) लोगो को उनमे मार्क्सवाद का बीज दिखाई देता है परन्तु ऐसा नही है। प्रेमचन्द अपने साहित्य मे यथार्थवादी होकर साहित्य की भूमि को सवेदनात्मक स्तर पर एक नई भावभूमि दे रहे थे, और किसानो, मजदूरो और उपेक्षितो की पीडा के लिए उत्तरदायी शक्तियो के समक्ष पीडादायक प्रश्न खडा कर रहे थे।

प्रेमचन्द अग्रेज एव अग्रेजियत दोनो के कडे दुश्मन थे तथा धर्म को अपने से अलग प्रत्येक उस समय करने को तैयार थे जबकि उससे समाज या राष्ट्र का हित जुडा हो। इन दोनो सदर्भों में वे अपने समकालीन राजनीतिज्ञो से अधिक प्रगतिशील ठहरते है। समीक्षात्मक रूप से शैलेश जैदी ने स्वीकार किया है कि, "प्रेमचन्द की देश भक्ति हिन्दू राष्ट्रवाद के निर्माण की साम्प्रदायिक बुनियाद नही रखती। वह प्रत्येक प्रकार की परतत्रता और शोषण के विरूद्ध खडी होती है। वह एक न्यूनतम मानवीय क्षितिज की रचना मे तल्लीन दिखाई देती है। वह अपने चारो ओर तथाकथित देशभक्तो को सकीर्ण स्वार्थों मे लिप्त होकर पीडित हो उठती है"।[२४८]

प्रेमचन्द प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति पर लिखते है, "सचमुच जनता का इतना गौरव इस युद्ध से पहले कभी नही था यहॉ तक धाधली होती थी कि दहेजो मे राष्ट्रो के वारे न्यारे हो जाते थे परन्तु इस दुरावस्था का सशोधन हो रहा है। अब भविष्य मे राष्ट्रो के साथ वस्तुओ या पशुओ के समान व्यवहार नही किया जाएगा। प्रत्येक जाति को इस बात का अधिकार होगा कि वह अपने भाग्य का आप निर्णय करे जिस साम्राज्य के अधीन रहना चाहे और उसकी इच्छा हो तो स्वय अपना राज्य शासन करे।.. उसका फल यह होगा कि राज्य विस्तार की कुचेष्टा का लोप हो जाएगा निर्बल जातियॉ भी निश्शक अपना जीवन निर्वाह कर सकेगी"।[२४९] इस तरह प्रेमचन्द प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति को छोटे और कमजोर राष्ट्रो की जीत के रूप मे स्वीकार करते है। प्रेमचन्द अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे परिवर्तनो को बडी सजगता के साथ देखते हुए लिखते है, "तुमने उस युग मे जन्म लिया है जब पृथ्वी के हर एक भाग मे गुलामी की बेडियॉ टूट रही है। परम्परा के बन्धन ढीले हो रहे है। अन्याय एडिया रगड रहा है सत्य और न्याय की विजय हो रही है मगर भारत कहॉ है? वही जहॉ था दीन, दुःखी, दरिद्र इसलिए कि क्षत्रियो ने धर्म का पालन छोड दिया"।[२५०]

सत्ता के हस्तातरण के प्रश्न पर प्रेमचन्द ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीतियो को जनता के समक्ष खोलते है, "डोमिनियन स्टेट्स मे गोलमेज काग्रेस का उलझाव है इसलिए वह भारत को इस उलझावे मे डालकर बहुत दिनो तक राज कर सकती है"।[२५१] इसलिए गोलमेज सम्मेलन मे सम्मिलित राष्ट्र नेताओ से प्रेमचन्द कहते है, "गोलमेज वालो को समझ लेना चाहिये कि नुमाइशी सुधारो को स्वीकार करके वे भारत मे शान्ति स्थापना नही कर सकेगे हम उनसे अनुरोध करते है वे सबसे ज्यादा जोर दे

कि काफ्रेस की पहली शर्त डोमिनियन स्टेट्स की स्वीकृति हो। जब सरकार इस शर्त को मान ले तब वे आगे बढे अन्यथा अपनी आबरू लेकर भारत लौट आवे और राष्ट्र सग्राम मे सम्मिलित हो जावे"।[२५२] राष्ट्र सग्राम को विस्तार देने के लिए प्रेमचन्द उसे गावो और युवको से जोडने की बात करते है, "बूढे चन्द दिनो के मेहमान है जब युवक ही स्वराज का सुख भोगेगे तो क्या इसाफ की बात न होगी कि वह दबकर बैठे न रहे ससार के युवको ने जो कुछ किया है वह तुम भी कर सकते हो क्या तुम स्वराज का सदेश गॉव नही पहुँचा सकते? क्या तुम गॉवो के सगठन मे योग नही दे सकते"।[२५३] द्वितीय गोलमेज सम्मेलन की असफलता पर वे राजनीतिज्ञो की शैली पर टिप्पणी करते है, "गोलमेज सभा जिस तरह पहली बार गप–सप करके समाप्त हो गयी उसी तरह दूसरी बार भी गप–शप करके समाप्त हो गई। समाप्त क्यो हुई अभी और गप–शप होगी और यह सिलसिला शायद दो चार साल चलेगा। कमेटियो और तहकीकातो से असली बात को टालते रहना राजनीति की पुरानी चाल है। वह इस वक्त भी चली आ रही है"।[२५४]

प्रेमचन्द ने साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के गठबन्धन की पहचान की और दोनो को आम जनता का बराबर का शत्रु बताया। यही नही वे समकालीन राजनीतिज्ञो से भी असन्तुष्ट थे उनके समक्ष साम्राज्यवाद के लक्ष्यो को खोलते हुए 'रगभूमि' मे क्लार्क से कहलवाते है, "अग्रेज जाति भारत को अनन्त काल तक अपने साम्राज्य का अग बनाए रखना चाहती है। कजर्वेटिव हो या लिबरल, रेडिकल हो या लेबर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट इस विषय मे सभी एक ही आदर्श का पालन करते है"।[२५५] एक दूसरी जगह क्लार्क से ही कहलवाते है, "हमारा साम्राज्य तभी तक अजेय रह सकता है जब तक प्रजा पर हमारा आतक रहे जब तक वह हमे अपना हितचितक, अपना रक्षक, अपना आश्रय समझती रहे, जब तक हमारे न्याय पर उसका अटल विश्वास हो, जिस दिन प्रजा के दिल से हमारे प्रति विश्वास उठ जाएगा उसी दिन हमारे साम्राज्य का अत हो जायेगा"।[२५६] इस तरह प्रेमचन्द ने साम्राज्यवाद के सम्पूर्ण अधिष्ठानो को शका के घेरे मे लाने का प्रयास किया चाहे वह अर्थव्यवस्था का मामला हो या राज्य व्यवस्था का सभी पर उन्होने हमला किया यहॉ तक कि ईसाई सर्वोच्चता के सिद्धान्त पर भी साथ ही भाषा के प्रति मोह का विखण्डन भी प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के माध्यम से किया।

प्रेमचन्द के लिए स्वराज से आशय केवल राजनीतिक स्वतत्रता से न था जैसा कि शिवप्रसाद मिश्र स्वीकार करते है, "स्वराज को कभी भी उन्होने महज राजनीतिक स्वराज के रूप मे नही ग्रहण किया। उसका सम्बन्ध वे बराबर देश की बहुसख्यक मनुष्यता की आर्थिक और सामाजिक मुक्ति से जोडते रहे। इस बहुसख्यक मनुष्यता मे भी उन्होने किसान, मजदूर, नारी और अछूत को बार – बार

रेखाकित किया है। कहने का मतलब यह है राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन उनके लिए सदैव आर्थिक, सामाजिक मुक्ति के सन्दर्भ मे ही प्रासगिक रहा और इसी बिन्दु पर उनके विचार राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतावर्ग से टकराये भी है"।[२५७] प्रेमचन्द अपनी कहानी 'आहुति' मे यही प्रश्न करते है, "अगर स्वराज आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रभुत्व रहे और पढा लिखा समाज यो ही स्वार्थान्ध बना रहे तो मै कहूँगी ऐसे स्वराज का न आना ही अच्छा। अग्रेजी महाजनो की धनलोलुपता और शिक्षितो का स्वहित आज हमे पीसे डाल रहा है जिन बुराइयो को दूर करने के लिए आज हम प्राणो को हथेली पर लिए हुए है उन्ही बुराइयो को क्या प्रजा इसलिए सिर चढाएगी कि वे विदेशी नही स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे लिए तो स्वराज का यह अर्थ नही है कि जान के बदले गोविन्द बैठ जाय मै समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिल सके"।[२५८] इसीलिए सभवत जुलाई १९३७ मे प्रकाशित कहानी 'क्रिकेट मैच' मे प्रेमचन्द हिन्दुस्तान की नई टीम तैयार करने की बात करते है, "हम उससे आखिरी मैच खेलेगे और खुदा ने चाहा तो सारी शिकस्तो का बदला चुका देगे"।[२५९]

इस तरह प्रेमचन्द का दृष्टिकोण राष्ट्रीय मुक्ति के सदर्भ मे अपने समकालीनो से अलग था पर वे आखिरी मैच के लिए टीम ही तैयार करते – करते चल बसे, खेलकर शिकस्त न दे सके। राष्ट्र मुक्त तो हुआ पर सिर्फ अग्रेज यहाँ से चले गये उनकी सम्पूर्ण सस्थाए और व्यवस्थाए यही रही और उनके सचालको के लिए वे आदर्श बनी रही। आज भी राष्ट्र को उनसे मुक्ति चाहिये परन्तु उस व्यवस्था पर सटीक प्रश्न उठाने वाले रचनाकार अब नही है, शायद।

# संदर्भ सूची


१ अमृत राय, कलम का सिपाही, हस प्रकाशन इलाहाबाद १९६२, पृष्ठ–५

२ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, आत्माराम एण्ड सस दिल्ली १९८३, पृष्ठ–१

३ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–५

४. वही

५ वही

६ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ–३

७ अमृत राय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–२४, २५

८ वही पृष्ठ–२६

९ वही पृष्ठ–३०

१० वही पृष्ठ–३२

११ वही पृष्ठ–३४

१२ वही पृष्ठ–३५

१३ वही पृष्ठ–४०

१४ वही पृष्ठ–४२

१५. वही पृष्ठ–५०

१६ वही पृष्ठ–५२

१७ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ–११

१८. अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–१०६

१९ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ–१६

२०. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशाये, साहित्य निधि दिल्ली १९८१, पृष्ठ–६३

२१. वही

२२ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–१११

२३ वही पृष्ठ–११२

२४ वही पृष्ठ–११३

२५ कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशाए, पृष्ठ–६२

२६ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–११९

२७ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ—२४

२८ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ—१२७

२९ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ २८

३० वही पृष्ठ—५२

३१ वही पृष्ठ—५३

३२ वही पृष्ठ—५५

३३ सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, १९९५, पृष्ठ ३३९

३४ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ २८६

३५ वही पृष्ठ—२८८

३६ वही पृष्ठ—२८९

३७ वही पृष्ठ—४१७

३८ वही पृष्ठ—४१८

३९ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ'६३

४० वही पृष्ठ—६४

४१ वही पृष्ठ—११८, ११९

४२ वही पृष्ठ—१२६

४३ हस, मार्च १९३०, सरस्वती प्रेस पृष्ठ—६३

४४ हस, जुलाई १९३० के साथ चस्पा एक पर्चे से, श्री सीता प्रेस,

४५ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ—५४१

४६ हस, सितम्बर १९३१ पृष्ठ—७५

४७ हस, अगस्त, सितम्बर, १९३५, पृष्ठ—१००

४८ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ—५१०

४९ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ—१७२

५० अमृतराय, कलम का रिपाही पृष्ठ—५८०

५१ वही पृष्ठ—६००

५२ शैलेश जैदी, प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा – नवमूल्याकन, नवयुग प्रेस अलीगढ १९७८ पृष्ठ—११

५३ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ ११०

५४ रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, नेशनल प्रिटिग वर्क्स दिल्ली १९५२, पृष्ठ—१८

५५. कमल किशोर गोयनका, प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशाएँ पृष्ठ—१५.

५६ अमृत राय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–५२६

५७ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ–८६

५८ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–४०२

५९ वही पृष्ठ–३८०

६० वही पृष्ठ–३८३

६१ वही पृष्ठ–३८५

६२ चन्द्रबली सिह (सम्पादक) प्रेमचन्द एक इतिहास एक वर्तमान, कलम प्रकाशन कलकत्ता, १९८०, पृष्ठ–३५

६३ प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१ सम्पादक राम आनन्द जनवाणी प्रकाशन दिल्ली,१९९६ पृष्ठ–३९६

६४ अयोध्या सिह, भारत का राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन ओर प्रेमचन्द, प्रेमचन्द एक इतिहास एक वर्तमान सम्पादक चन्द्रबली सिह पृष्ठ–३४.

६५ अमृतराय, कलम का सिपाही पृष्ठ–१६५

६६ वही पृष्ठ–६६

६७ वही पृष्ठ–२६१

६८ प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द, हस प्रकाशन, १९६२ पृष्ठ–१६३

६९ वही पृष्ठ–१६८

७० हरिजन मार्च १९४६ उद्धृत वी०पी० वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन, आगरा १९५६ पृष्ठ–२५७

७१ यग इण्डिया, २ अक्टूबर १९३१, उद्धृत, वही

७२ प्रेमाश्रम पृष्ठ–४४१

७३ यग इडिया, ११ ०८ १९२० उद्धृत रगभूमि नये आयाम, कमल किशोर गोयनका, नचिकेता प्रकाशन दिल्ली–१९८१ पृष्ठ–१४

७४ नवजीवन १३ ०४.१९३४, उद्धृत वही पृष्ठ–१५

७५ यग इडिया, ०८ १२ १९३१ उद्धृत वही

७६. रगभूमि, प्रेमचन्द, हस प्रकाशन इलाहाबाद–१९९३, पृष्ठ–११८

७७ वही पृष्ठ–१८८

७८ वही पृष्ठ–२०५, २०६

७९ वही पृष्ठ–१७२

८०. वही पृष्ठ–३१४

८१ वही पृष्ठ–३१५

८२ वही पृष्ठ–४६०

८३ वही पृष्ठ–४१६

८४ वही पृष्ठ–४४५

८५ वही पृष्ठ–४६८

८६ वही पृष्ठ–४८७

८७ कमल किशोर गोयनका, 'भूमिका', रगभूमि के नये आयाम, पृष्ठ–५

८८ शिव प्रसाद मिश्र, प्रेमचन्द विरासत का सवाल, सर्वोदय प्रकाशन, १९९२ पृष्ठ–१२

८९ कायाकल्प, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–४, पृष्ठ–२९२

९० वही पृष्ठ–२३२.

९१ वही पृष्ठ–२२५

९२ गबन, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–५ पृष्ठ–१२३

९३ सुमित सरकार, आधुनिक भारत पृष्ठ–२९६, २९७

९४ कर्मभूमि, प्रेमचन्द, हस प्रकाशन १९८१ पृष्ठ–१७

९५ वही पृष्ठ–२२

९६ वही पृष्ठ–१२२

९७. वही पृष्ठ–१३२

९८ नन्द दुलारे वाजपेई, प्रेमचन्द का साहित्यिक विवेचन, हिन्दी भवन जालन्धर–१९५६ पृष्ठ–११७

९९ वही पृष्ठ–११६

१००. अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–२५८

१०१ वही पृष्ठ–२५९

१०२ वही पृष्ठ २५९, २६०, २६१

१०३ लागडॉट, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१२ पृष्ठ–२७६, २७७

१०४. बौडम, प्रेमपच्चीसी, हस प्रकाशन, इलाहाबाद १९९२ पृष्ठ–२२

१०५ पशु से मनुष्य, प्रेमपच्चीसी पृष्ठ–७०

१०६ प्रेमचन्द, विविध प्रसग भाग–२, हस प्रकाशन इलाहाबाद १९९२, पृष्ठ–२२

१०७. मदन गोपाल, अमर कथाकार प्रेमचन्द, राजपाल एण्ड सस दिल्ली १९८१ पृष्ठ–८४

१०८ ज्ञान पाण्डेय, एसेडेसी आफ काग्रेस इन यूपी, उद्धृत सुमित सरकार, आधुनिक भारत पृष्ठ–३४७

१०६ जलूस, हस, मार्च १६३० पृष्ठ–४२

११० समर यात्रा, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१४ पृष्ठ–३४१, ३४३, ३४५, ३४७, ३४६

१११ पत्नी से पति, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१४ पृष्ठ–३४१

११२ शराब की दुकान, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१४, पृष्ठ–३७६

११३ जेल, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१४ पृष्ठ–३४६, ३५०

११४ सुहाग की साडी, प्रेम पच्चीसी, पृष्ठ–२१

११५ पहले हिन्दुस्तानी फिर और कुछ, हस मार्च १६३० पृष्ठ–६७

११६ आजादी की लडाई, हस अप्रैल १६३० पृष्ठ–६१, ६२

११७ हस, अप्रैल १६३० पृष्ठ–६५

११८ हस, मई १६३० पृष्ठ–६५

११६ हस, नवम्बर १६३० पृष्ठ–१७

१२० वही

१२१ हस, जनवरी १६३१ पृष्ठ–१४२

१२२ हस, फरवरी १६३१, पृष्ठ–६७

१२३ हस, जून १६३१ पृष्ठ ६६

१२४ हस, सितम्बर १६३१ पृष्ठ–७४

१२५ डा० बी०पट्टाभि सीतारमैया, गॉधी और गॉधीवाद, हिन्दी अनुवाद आगरा–१६५७, पृष्ठ–४७

१२६ हस, मार्च १६३० पृष्ठ–६७–६८

१२७ कुॅवरपाल सिह, प्रेमचन्द और गॉधीवाद, प्रेमचन्द एक इतिहास एक वर्तमान पृष्ठ–६२

१२८ अमृतराय, कलम का सिपाही पृष्ठ–२०१

१२६ वही पृष्ठ–२६८, २६६

१३० शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ–१११

१३१ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–३४२

१३२ हस, अप्रैल १६३० पृष्ठ–६

१३३ प्रेमचन्द विविध प्रसग भाग–२ पृष्ठ–४४३

१३४ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ–१०६

१३५ रजनी पामदत्त, आज का भारत (इण्डिया टुडे), मैकमिलन १६७७ पृष्ठ–२३८

१३६ प्रेमाश्रम, प्रेमचन्द पृष्ठ–५१

१३७ रजनी पामदत्त, आज का भारत (इण्डिया टुडे), पृष्ठ–२६२

१३८ वही पृष्ठ–२७२

१३६ गोदान, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–६ पृष्ठ–११

१४० वही पृष्ठ–१५

१४१ वही पृष्ठ–३६

१४२ प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१० पृष्ठ–२७

१४३ प्रेमचन्द विविध प्रसग–२ पृष्ठ–४६३

१४४. विपिन चन्द्र, भारत का सवतत्रता सघर्ष हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय १६६२, पृष्ठ १४६, १४७

१४५ प्रेमाश्रम पृष्ठ–१३

१४६. वही पृष्ठ–५०, ५१, ५२

१४७. वही पृष्ठ–७६

१४८. वही पृष्ठ–२८७, २८८

१४६. वही पृष्ठ–८७

१५० गोदान, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–६ पृष्ठ–२३

१५१ प्रेमाश्रम पृष्ठ–५५

१५२ वही पृष्ठ–१६४

१५३ कायाकल्प, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–४ पृष्ठ–२१६, २१७

१५४ गोदान, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–४ पृष्ठ–२०

१५५ ए०आर०देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन १६६१ पृष्ठ–१५६

१५६ पूरनचन्द्र जोशी, प्रेमचन्द और भारतीय गॉव बदलते परिप्रेक्ष्य, प्रेमचन्द और मार्क्सवादी आलोचना, सम्पादक जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी, चन्द्रा पाण्डे, सस्कृति प्रकाशन, कलकत्ता १६६४ पृष्ठ–५६

१५७ प्रेमचन्द की उपस्थिति, निर्मल वर्मा, ढालान से उतरते हुए, राजकमल प्रकाशन दिल्ली १६८८ पृष्ठ–५६

१५८. प्रेमाश्रम, पृष्ठ–६१, ६२

१५६ वही पृष्ठ–६३, ६४

१६० वही पृष्ठ–४४०

१६१ राजेश्वर गुरू, प्रेमचन्द के विचार, गोदान, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली १६६७–पृष्ठ–३२

१६२ उपेन्द्रनाथ अश्क, प्रेमचन्द और देहात, हस, प्रेमचन्द स्मृति अक मई १६३७, पृष्ठ–८१८

१६३ कायाकल्प, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–४ पृष्ठ–२२१

१६४ कर्मभूमि, प्रेमचन्द, पृष्ठ–८१

१६५ वही पृष्ठ–१०४

१६६ वही पृष्ठ–३३७

१६७ गोदान, प्रेमचन्द रचनावली–६ पृष्ठ–५४, ५५

१६८ प्रेमपच्चीसी, प्रेमचन्द पृष्ठ–७०

१६६ विपिनचन्द्र, भारत का स्वतत्रता सग्राम पृष्ठ–१६७

१७०. मानसरोवर–२, हस प्रकाशन इलाहाबाद १६८५ पृष्ठ–२३६, २३७

१७१ वही पृष्ठ–२४२, २४३

१७२ वही पृष्ठ–२५५

१७३ गोदान, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–६ पृष्ठ–२६३

१७४ वही पृष्ठ–२०३, २०४

१७५. वही पृष्ठ–२२६

१७६ वही पृष्ठ–३१६

१७७ वही पृष्ठ–३२१

१७८ वही पृष्ठ–३२६

१७६ कर्मभूमि, पृष्ठ–२२४

१८० वही पृष्ठ–३१४

१८१ मदन गोपाल, अमर कथाकार प्रेमचन्द, पृष्ठ–६७

१८२ रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ–४१

१८३ हस, मार्च १६३१ पृष्ठ–६३.

१८४ हस, मार्च १६३६ पृष्ठ–५१, ५४, ५६

१८५ असरारे मआविद, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१, पृष्ठ–२८

१८६ प्रेमाश्रम, पृष्ठ–१२१

१८७ सेवासदन, प्रेमचन्द, हस प्रकाशन १६६२, पृष्ठ–६६

१८८. प्रेमाश्रम, पृष्ठ–२०१

१८६. कायाकल्प, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–४, पृष्ठ–१३१

१६० वही पृष्ठ–२७५, २७६

१६१ वही पृष्ठ–२६५, २६६

१९२ वही पृष्ठ—२९६

१९३ रगभूमि, प्रेमचन्द पृष्ठ—२९, ३०

१९४ वही पृष्ठ—३३, ३४

१९५ वही पृष्ठ—४०

१९६ वही पृष्ठ—१५०

१९७ हस अप्रैल, १९३० पृष्ठ—६५

१९८ हस मार्च १९३१ पृष्ठ—६१

१९९ विपिनचन्द्र, आधुनिक भारत मे साम्प्रदायिकता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय १९९६ पृष्ठ—१७३

२०० हस सितम्बर १९३१, पृष्ठ— ७३, ७४

२०१ ताराचन्द, भारतीय स्वतत्रता आन्दोलन का इतिहास—IV प्रकाशन विभाग—१९८४, पृष्ठ—१९४, १९५

२०२ हस अक्टूबर १९३१, पृष्ठ—६१, ६२

२०३ हस नवम्बर १९३१, पृष्ठ—६६

२०४ प्रेमचन्द विविध प्रसग भाग—२, पृष्ठ—३८०

२०५ हस जुलाई १९३४ पृष्ठ—६६

२०६ प्रेमचन्द विविध प्रसग भाग—२ पृष्ठ—४१५, ४१६

२०७ कर्मभूमि, पृष्ठ—१७३

२०८ वही पृष्ठ—१७९, १८०

२०९. वही पृष्ठ—१२५

२१० वही पृष्ठ—१९४

२११ प्रेमचन्द रचनावली खण्ड—९ पृष्ठ—६८

२१२ सुमित सरकार, आधुनिक भारत पृष्ठ— १७१

२१३ प्रेमचन्द विविध प्रसग भाग—२ पृष्ठ—४३७, ४४०

२१४ सेवासदन, प्रेमचन्द पृष्ठ—६२

२१५ वही पृष्ठ—६६

२१६. रामविलास शर्मा, प्रेमचन्द और उनका युग, पृष्ठ—७८.

२१७ ए०आर०सरदेसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ—२२२

२१८ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ—१३८.

२१६ कर्मभूमि, पृष्ठ–२२६

२२० शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे, पृष्ठ–१५०, १५१

२२१ सुमित सरकार, आधुनिक भारत पृष्ठ–३३१

२२२ अनाथ लडकी गुप्तधन–१, हस प्रकाशन १६६२, पृष्ठ–१७२

२२३ ईश्वरीन्याय, प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–११ पृष्ठ–४१२

२२४ हस जून १६३०, पृष्ठ–५३

२२५ प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–४ पृष्ठ–२८५

२२६ शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ–१६२

२२७ वही पृष्ठ–१६३

२२८ वही पृष्ठ–६२

२२६ वही पृष्ठ–१२५

२३० अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–१५२

२३१ वही पृष्ठ–६२३

२३२ हस सितम्बर १६३१ पृष्ठ–७४

२३३ रामविलास शर्मा, स्वाधीनता आन्दोलन के बदलते परिप्रेक्ष्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय १६६२, पृष्ठ–१६७

२३४ हस फरवरी, १६३४ पृष्ठ–६४

२३५ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–६२४

२३६ हस जनवरी १६३५, पृष्ठ–६२

२३७ वही पृष्ठ–६०

२३८ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–६२८

२३६ कर्मभूमि, प्रेमचन्द, पृष्ठ–६

२४० कायाकल्प, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–४ पृष्ठ–१३३, १३४

२४१ वही पृष्ठ–२१४

२४२ हस दिसम्बर, १६३१ पृष्ठ–६६

२४३ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–१६०

२४४ वही पृष्ठ–३६१

२४५ वही पृष्ठ–५८४

२४६. शिवरानी देवी, प्रेमचन्द घर मे पृष्ठ–६५

२४७ हस नवम्बर १६३५, पृष्ठ–११४

२४८ शैलेश जैदी, प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा – नवमूल्याकन, पृष्ठ ४४५

२४६ अमृतराय, कलम का सिपाही, पृष्ठ–२१६

२५० वही पृष्ठ–४४५

२५१ हस मार्च, १६३० पृष्ठ–६४

२५२ हस नवम्बर, १६३० पृष्ठ–६६

२५३ हस अप्रैल, १६३० पृष्ठ–६५

२५४ हस दिसम्बर, १६३१ पृष्ठ–६५

२५५ रगभूमि, प्रेमचन्द पृष्ठ–३५४

२५६ वही पृष्ठ–२५७

२५७ शिवप्रसाद मिश्र, प्रेमचन्द विरासत का सवाल, पृष्ठ–४

२५८ प्रेमचन्द रचनावली खण्ड–१४, पृष्ठ–३६०

२५६ प्रेमपच्चीसी, पृष्ठ–२५४

अध्याय–३

# राष्ट्र, साहित्य और अतीत के बिम्ब: जयशंकर प्रसाद

"मुझे सचमुच अच्छे लगे लेकिन जैसा कहा निकट नही लगे। खुले नही लगे जैसे कि प्रेमचन्द पहली मुलाकात मे लग सके"।[1] प्रख्यात साहित्यकर्मी 'जैनेन्द्र', जो जयशकर प्रसाद के कनिष्ठ समकालीन भी थे, का यह प्रथम अनुभव जो उनके प्रसाद के पहले साक्षात्कार की उपज है, जयशकर प्रसाद के न केवल जीवन अपितु सम्पूर्ण साहित्य को समझने मे मदद करता है। यह एक विडम्बना है कि जयशकर प्रसाद का कोई जीवनीकार नही बन सका, उनके पुत्र भी नही। शायद उनके स्वभाव की अन्तर्मुखिता किसी को ऐसा साहस करने से रोकती हो। प्रेमचन्द ने सन् १९३२ मे 'हस' का आत्मकथाक निकाला उसके लिए प्रसादजी से भी आत्मकथा मॉगी पहले तो प्रसादजी तैयार न हुये किन्तु जब प्रेमचन्दजी ने बहुत आग्रह किया कि तो जयशकर प्रसाद ने अपनी आत्मकथा के नाम पर एक कविता भेज दी जिसकी अन्तिम दो पक्तियॉ है, "छोटे से जीवन की कैसी बडी कथाऍ आज कहूँ?/ क्या यह अच्छा नही की औरो की सुनता मै मौन रहूँ?/ सुनकर तुम क्या भला करोगे मेरी भोली आत्मकथा?/ अभी समय भी नही–थकी सोई है मेरी मौन व्यथा"।[2] उनकी सम्पूर्ण कविता प्रतीकात्मक और ठोस तथ्यो से मुक्त है। ऐसी स्थिति मे उनके जीवन सन्दर्भ मे कुछ भी उद्धृत करना और उससे उनकी रचनाओ के बारे मे समझ विकसित करना एक दुष्कर प्रयास होगा। फिर भी जयशकर प्रसाद का जन्म १८८९ ई० मे वाराणसी मे हुआ था जिनका परिवार काशी मे सुँघनी शाहू के नाम से प्रसिद्ध था। "इसमे शाहू शब्द वैश्य का समानार्थी है तथा 'सुँघनी' पण्डितो और विद्यार्थियो को निशुल्क वितरण के कारण या एक विशेष प्रकार की सुँघनी के निर्माण के कारण। इस धनी–मानी परिवार को लक्ष्मी के साथ उदार हृदय भी मिला था। प्रसिद्ध है कि उनके यहॉ से कोई खाली हाथ नही लौटता था इन गुणो के कारण, यो तो काशी मे धन की दृष्टि से और भी बडे लोग थे पर 'जय–जयशकर' या 'हर–हर महादेव' कहकर अभिवादन या तो काशीराज का किया जाता था या फिर इनके परिवार वालो का"।[3] "प्रसादजी के पूर्वज मूलत कन्नौज के रहने वाले थे। वहॉ से किसी कारणवश कई पीढी पूर्व ये लोग गाजीपुर जिले के सैदपुर कस्बे मे चले गये थे और वही चीनी का व्यापार करने लगे। बाद मे रोजगार मे घाटा लगने पर इनके पूर्वजो की एक शाखा काशी मे गोवर्धन सराय के मोहल्ले मे जाकर बस गई। वहॉ जाकर वे लोग इत्र, तम्बाकू, जर्दा, सुर्ती तथा सुँघनी आदि का काम करने लगे। इस काम मे

इनकी पर्याप्त उन्नति हुई और ये धीरे–धीरे काशी के उच्च श्रेणी के धनी मानी लोगो मे गिने जाने लगे"।[४]

प्रसाद के लेखकीय रूझान के सन्दर्भ मे एक कथा प्रचलित है, "अन्नप्रासन सस्कार के बाद उसी पूजा विधि मे पुस्तक, बही, मसिपात्र, लेखनी तथा बच्चे के मन को लुभाने वाली अन्य बहुत सी सतरगी वस्तुओ तथा खेलने के योग्य लाल पीली पदार्थवालियो के बीच शिशु प्रसाद को अपने मन की चीज चुन लेने के लिए छोड दिया गया, लोगो के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सब कुछ छोडकर प्रसाद ने केवल लेखनी उठा ली"।[५] "उनकी आरम्भिक शिक्षा (छठवीतक) स्थानीय क्वीस कालेज मे हुई"।[६] "इसी समय १६०१ ई० मे प्रसाद जी के पिता देवी प्रसाद की मृत्यु हो गयी। तत्पश्चात गृह कलह आरम्भ हो गया। अन्त मे प्रसाद के चाचा और बडेभाई मे मुकदमेबाजी हुई जो लगभग तीन–चार वर्षों तक चलती रही यद्यपि शभुरत्नजी (प्रसाद के बडे भाई) की विजय हुई पर समस्त सम्पत्ति का बॅटवारा हो गया। दुकान के साथ लाखो का ऋणभार शभुरत्नजी पर आ पडा। एक–एक करके सम्पत्ति विक्रय की जाने लगी। बनारस की भारी इमारत बेच देनी पडी। प्रसाद इस पतन को देख रहे थे। इसी समय प्रसाद जी के माता का देहान्त हो गया। प्रसाद ने जीवन पर्यन्त माता का स्नेह भाभी को दिया माता की मृत्यु के लगभग दो वर्षों पश्चात शभुरत्नजी का देहान्त हो गया. प्रसाद की अवस्था इस समय १७ वर्ष थी। केवल ५–६ वर्षों के भीतर ही तीन अवसान देखे–पिता, माता और भाई। वे अकेले रह गये निस्सहाय। ऐसे सघर्ष के क्षणो मे भारतीय दर्शन ने प्रसादजी को बडा सहारा दिया"।[७]

इन थपेडो के बीच प्रसाद की शिक्षा घर पर ही पारम्परिक ढग से जारी रही "हिन्दी, अग्रेजी और सस्कृत के परम्परा प्राप्त विद्वानो से घर पर ही काव्य और साहित्य की ठोस प्रारम्भिक शिक्षा पाई"।[८] इसी समय "उन्होने कविता करनी भी शुरू कर दी थी शभुरत्नजी को यह कवि कर्म पसन्द न था इसके लिए प्रसाद को कई बार डॉटा भी डॉट का इतना ही प्रभाव पडा कि प्रसादजी चुपके – चुपके गुप्त रूप से कविता लिखने लगे इस प्रकार प्रोत्साहन शून्यता बहानो और दु ख आदि के बीच हिन्दी के अमर काव्य का बीज धीरे–धीरे अपनी ऑख खोलता रहा"।[९]

कवि प्रसाद एकाग्र चित्त के व्यक्ति थे। व्यापार के साथ सफल साहित्य स्रष्टा बनना जटिल कार्य है किन्तु प्रसाद इन्ही दशाओ मे आगे बढे। रत्नशकर प्रसाद ने एक विवरण देते हुये कहा है, "अरूणोदय के पूर्व ही प्रात कालीन कृत्यो से निवृत्त हो निकट बेनिया बाग मे टहलने जाया करते उस समय वहॉ कुछ और लोगो का भी साथ हो जाता जिनमे अधिकतर साहित्यिक होते। मुशी प्रेमचन्द और श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड भी नियमित टहलने वालो मे थे। वहॉ से लौटकर थोडा दूध पीकर सुर्ती जर्दा

के अपने आनुवशिक व्यापार की देख–रेख मे लग जाते। अपने कर्तव्यो के प्रति साहित्यिक हो अथवा व्यावसायिक, वे समान रूप से सचेष्ट थे"।[१०] प्रसाद जी बहुत स्वस्थ, रूपवान और आकर्षक थे। उनका स्वभाव सरल तथा सकोची था। उनका जीवन बडा ही नियमित, साफ और व्यसन शून्य था, "यद्यपि भॉग का सेवन कभी–कभी कर लेते थे ("उस दिन छनी भी कुछ गहरी थी"[१२])। "प्रसाद जी को अपना विवाह भी स्वय करना पडा और वह भी तीन, इस प्रकार जीवन मे उन्हे दो बार मृत्यु के कारण अपने प्रणय को खण्डित होते देखना पडा"।[१३]

"प्रसाद मुक्त हस्त नही थे। यह ठीक है कि कर्ज चुकाने मे उन्हे अपना बहुत ही व्यवस्थित क्रम बनाना पडा। उनके पूर्वजो ने दान की महिमा चरितार्थ की थी अतएव उनका द्वार सदैव अभाव ग्रसितो का तीर्थ केन्द्र बना"।[१४] "लगभग १६३०–३१ मे अपनी मृत्यु के ५–६ वर्ष पूर्व वे ऋण मुक्त हो सके थे"।[१५] इस तरह जयशकर प्रसाद और मुशी प्रेमचन्द अपने जीवन की यन्त्रणाओ के बीच अपनी साहित्यिक रूचि को अभिव्यक्ति प्रदान की। यह एक सयोग है कि हिन्दी साहित्य की ये दोनो विभूति वाराणसी जनपद के ही थे और समकालीन भी। इन दोनो विभूतियो का साहित्यिक उद्देश्य भले ही एक रहा हो पर साहित्य की सरचना और स्वरूप तथा स्रोत मे उत्तर–दक्षिण का अन्तर था। प्रसाद जहॉ प्राय ऐतिहासिक प्रतीको के माध्यम से वर्तमान समस्याओ का अन्वेषण करते थे वही प्रेमचन्द प्राय वर्तमान प्रतीको का सहारा लेते थे। प्रेमचन्द ने अपने युग मे ही अपनी ख्याति देख ली थी परन्तु प्रसाद नही। उनके समकालीन निकटस्थ मित्र विनोदशकर व्यास लिखते है, "प्रसाद जी का सिद्धान्त बडा अटल था वह मौन तपस्वी की भॉति अपना कार्य पूर्ण करते गये कभी प्रचार और ख्याति के लिए लालायित नही हुए 'अभी तुम घबडा क्यो जाते हो आनेवाला युग निर्णय करेगा"।[१६]

प्रेमचन्द की भॉति प्रसाद के जीवन मे उनकी सबसे बडी अभिलाषा पत्र पत्रिका निकालने की थी पर इसका कारण भी उपलबध हो गया। उस समय की ख्यातिलब्ध पत्रिका 'सरस्वती', जिसके सपादक महावीर प्रसाद द्विवेदी थे प्रसाद की एक रचना को लौटाते हुये उन्होने उन्हे इतना चिढा दिया था कि प्रसाद ने जीवन भर 'सरस्वती' मे अपनी कोई रचना प्रकाशित नही कराई यद्यपि उन दिनो 'सरस्वती' की अवहेलना बडे साहस का कार्य था और स्वतत्र रूप से 'इन्दु' का प्रकाशन आरम्भ किया"।[१७] यद्यपि उन्होने इसका सम्पादन स्वय नही किया "उन्ही की प्रेरणा से उनके भॉजे अम्बिका प्रसाद गुप्त ने 'इन्दु' नामक मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया जिसकी वे न केवल साहित्यिक अपितु आर्थिक सहायता भी करते थे। बाद मे उन्ही की प्रेरणा से विनोदशकर व्यास ने 'जागरण' नाम का पाक्षिक पत्र भी निकालना शुरू किया। 'हस' की प्रेरणा भी उन्हे उन्ही से मिली थी। इन तीनो का नामकरण भी उन्होने ही किया था"।[१८] "इन्दु' १६०६ मे आरम्भ होकर बीच–बीच मे रूककर किसी प्रकार

१६२७ तक प्रकाशित होती रही। ११ फरवरी १६३२ से 'जागरण' पाक्षिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ इसके सम्पादक शिवपूजनसहाय जी थे"।[१९]

"प्रसाद के घनिष्ठो की सख्या कम थी"।[२०] इसका कारण शायद उनका आत्मगत स्वभाव भी था। जीवनभर कोई उनके अनुसार उनके नजदीक नही पहुँच सका। उनके साहित्य पर भी "आत्मरूपता"[२१] का आक्षेप लगाया जाता है। अपने कविता सग्रह 'लहर' मे प्रसाद कहते है, "मुझको न मिला रे कभी प्यार"।[२२] 'प्रेम पथिक' मे भी "सच्चा मित्र कहाँ मिलता है"[२३] "हृदय खोलकर मिलने वाले भाग्य से मिलते है"[२४] आदि जैसे उद्धरण उनकी पीडा को व्यक्त करते प्रतीत होते है।

विनोदशकर व्यास के कुछ पत्रो से यह भी सकेत मिलता है कि उनका स्वास्थ्य उनके जीवन के उत्तरार्द्ध मे खराब ही रहा। "कॉलरा"[२५] के भी वे शिकार हुये, पर साहित्यिक मित्रो के प्रति प्रसादजी की सजगता बनी रहती थी। अप्रैल १६२६ मे लिखे गये पत्र का अश उल्लेखनीय है, "स्वास्थ्य ठीक नही है लिखने मे भी कष्ट हो रहा है, निरालाजी क्या कर रहे है"।[२६] प्रेमचन्द और प्रसाद मे अन्दर–अन्दर द्वन्द चलता रहता था भले ही वह की भी खुला न हो। प्रेमचन्द उनके अतीत प्रतीको के इस्तेमाल पर 'गडे मुर्दे उखाडने' का आक्षेप भी लगाते है यद्यपि जब प्रसाद 'ककाल' रचना लेकर सामने आते है तो प्रशसात्मक टिप्पणी भी प्रेमचन्द करते है "यह प्रसादजी का पहला ही उपन्यास है पर आज हिन्दी मे बहुत कम ऐसे उपन्यास है जो इसके सामने रखे जा सके"।[२७] प्रसाद 'ककाल' के बाद समकालीन समाज के चित्रण पर आधारित 'तितली' उपन्यास लिखे। तदुपरान्त पुन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे बुने कथा वस्तु की ओर चले गये और 'इरावती' उपन्यास लिखे जो कि अधूरा है पर बेहद कसावपूर्ण एव सजीव चित्रण। ऐसा लगता है जैसे प्रसाद अपने आलोचको का सिर्फ मुँह बन्द करने के लिए समकालीन समाज पर आधारित उपन्यास लिखे। विनोद शकर व्यास प्रेमचन्द और प्रसाद के सम्बन्धो पर टिप्पणी करते हुये लिखते है "उनके मन मे प्रसाद के प्रति कुछ खिचाव अवश्य था"[२८] या "हस के बाद प्रसाद और प्रेमचन्द मे द्वन्द की प्रवृत्ति समाप्त हो रही थी"।[२९]

प्रसादजी कवि सम्मेलनो, गोष्ठियो एव समारोहो मे भाग नही लेते थे। इसके लिए शायद उनका व्यवसाय, स्वभाव एव पारिवारिक उत्तरदायित्व कारण रहा हो। "नागरी प्रचारणी सभा मे कोषोत्सव के अवसर पर उन्होने खडे होकर पहली और अन्तिम बार 'नारी और लज्जा' कविता पढी"।[३०] "प्रसाद ने अपने जीवन मे तीन प्रमुख यात्राए की। ५ वर्ष की अवस्था मे जौनपुर, मिर्जापुर (अहरौरा की पहाडी), नौ वर्ष की अवस्था मे चित्रकूट, नैमिषारण्य, मथुरा, पुष्कर, धाराक्षेत्र उज्जैन आदि की यात्रा की तथा परिवार के साथ मृत्यु के ५ वर्ष पूर्व जगन्नाथपुरी कलकत्ता आदि गये।"[३१] "जीवन के अन्तिम चरण मे प्रसाद जी लखनऊ मे एक प्रदर्शनी देखने गये। वहाँ से लौटने के कुछ ही दिनो बाद २२

जनवरी १९३६ को बीमार पडे। डाक्टरो ने जॉचकर के बताया कि राज्यक्ष्मा है। प्रसादजी राज्यक्ष्मा के परिणाम से परिचित थे। उनकी पूर्व पत्नी इसी से मर चुकी थी। हालत दिन पर दिन गिरती गई डाक्टरो ने बाहर जाने की सलाह दी किन्तु प्रसाद ने बाहर जाना व्यर्थ समझा और काशी न छोडी। अन्त मे १५ नवम्बर १९३७ को उन्होने इहलीला समाप्त की।"[३२]

इस तरह प्रसाद अपने जीवनकाल मे ही अपने परिवार के वैभव और पराभव दोनो को देखा ही नही प्रत्युत उससे सफल सघर्ष भी किया साथ ही साहित्य के क्षेत्र मे मानक कार्य प्रस्तुत किए। जीवन के आवश्यक दायित्वो के उपरान्त साहित्य ही उनका सच्चा साथी था। उनके अकेलेपन का चित्रण करते हुये महादेवी वर्मा लिखती है, "प्रसाद का व्यक्तित्व अकेलेपन की जैसी अनुभूति देता है वैसी हमे किसी समसामयिक साहित्यकार के जीवन के अध्ययन से नही प्राप्त होती"।[३३] इस तरह प्रसाद अपने सच्चे साथी साहित्य को समाज के सन्दर्भ मे अलग–अलग रूपो मे प्रस्तुत करके न केवल उसका चित्रण किया अपितु एक स्वस्थ समाज का निर्माण कैसे होना चाहिये इसका रास्ता भी दिखाया। प्रसाद ने 'इन्दु' मे लिखा, "जब तक समाज के उपकार के लिये कवि की लेखनी ने कुछ कार्य न किया हो तब तक केवल उसकी उपमा और शब्द वैचित्र्य तथा अलकारों पर भूलकर हम उसे एक ऐसे कवि के आसन पर नही बिठा सकते जिसने कि अपनी लेखनी से समाज की प्रत्येक कृतियो को स्पन्दित करके उसमे जीवन डालने का उद्योग न किया हो"।[३४]

**X X X X X**

जयशकर प्रसाद अपने समकालीन साहित्यकर्मियो से कई अर्थो मे भिन्न रहे। उनके साहित्य का सदर्भ स्रोत प्राय समकालीन न होकर ऐतिहासिक रहा, वह भी प्राचीन इतिहास न कि मध्यकालीन या आधुनिक इतिहास। प्रसाद द्वारा अतीत (सुदूर) के स्रोतो से साहित्य रचना के सन्दर्भ मे हमे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह युग नवोत्थान का युग भी था जिसमे प्राचीन गौरव की स्थापना की बात प्राय सभी भारतीय राजनयिक एव समाजशास्त्री कर रहे थे जिसमे लोकमान्य बालगगाधर तिलक एव स्वामी दयानन्द सरस्वती का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आर्य सस्कृति के प्रति अभिभूतता राजनैयिको एव समाज एवं धर्म सुधारको मे भी थी। ऐसे पृष्ठ भूमि मे प्रसाद का साहित्य स्रोत यदि समकालीन समाज नही है तो आश्चर्य नही है क्योकि समकालीन समाज को लेकर एक प्रकार की हताशा भारतीय मानस मे छायी हुई थी जिसके सन्दर्भ मे सुदूर अतीत की ओर उन्मुखता स्वाभाविक एव अनिवार्य मान ली गई थी। जैसा की विद्या खण्डेलवाल लिखती है, "सास्कृतिक पराभव आर्थिक राजनैतिक विपन्नता और सामाजिक स्थापनाओ एव मूल्यो मे क्षरण के चलते प्रसाद का कलाकार मन दु खी और क्षुब्ध था। साथ ही अतीतकालीन आदर्शो के प्रति अनुराग और श्रद्धा की भावुकता भी

प्रसाद मे प्रचुर परिमाण मे थी। इस कारण अपने राष्ट्रीय आदर्शों का चित्र प्रस्तुत करते समय वे न तो अपने युग के पराभूत जीवन को भूल पाते और न सस्कृति की उस शालीनता को जो विविध दर्शनो के माध्यम से फैलकर समस्त राष्ट्र का जीवन स्पन्दन बनी चुकी थी"।[३५] इसी तरह प्रेम शकर कहते है, "प्रसाद का जन्म ऐसे समय मे हुआ था जब पाश्चात्य सभ्यता देश पर अपना प्रभाव डाल रही थी उन्होने राष्ट्र इतिहास से उज्जवल दृष्टात लेकर उन्नत परम्परा सम्मुख रखी इतिहास के भग्नावशेषो से उन्होने कथावस्तु ग्रहण की, उसके माध्यम से देश–गौरव स्थापित किया"।[३६]

हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रसाद साहित्यकार थे न कि इतिहासकार। 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध' मे प्रसाद लिखते है, "साहित्यकार न तो इतिहासकार है और न धर्मशास्त्र प्रणेता इन दोनो के कर्तव्य स्वतत्र है साहित्य इन दोनो की कमी को पूरा करने का काम करता है। साहित्य समाज की वास्तविक स्थिति क्या है इसको दिखाते हुये उसमे आदर्शवाद का सामजस्य स्थिर करता है"।[३७] लगभग इसी तरह अवधेश प्रसाद सिह भी विचार करते है, "प्रसाद जिस अतीत का चित्रण कर रहे थे वह विकास दिशा के निर्धारण हेतु भारतवासियो को आत्मबल प्रदान कर रहा था। प्रसाद विशुद्ध इतिहास नही लिख रहे थे अपितु इतिहास और सस्कृति को समन्वित कर पूरा युगबोध स्पष्ट कर रहे थे। हम इस तथ्य को केन्द्र मे रखकर ही उनकी इतिहास दृष्टि को समझ सकते है क्योकि प्रसाद की इतिहास दृष्टि मूलत· राष्ट्रीय चेतना पर केन्द्रित है और अपनी रचनाओ के माध्यम से वे भारतीय इतिहास के जिन पृष्ठो की खोज, पहचान और पुर्नव्याख्या करते है उसका लक्ष्य मात्र अतीत गौरव नही बल्कि पुर्नजागरण के परिप्रेक्ष्य मे भारतीय ऐतिहासिक सकट का रेखाकन करना है"।[३८]

मुक्तिबोध प्रसाद की इतिहास दृष्टि का अन्वेषण करते हुये लिखते है, "प्रसाद जी को समाज एव जाति ने अर्थात आधुनिक जीवन जगत ने जो दृष्टि प्रदान की वह थी राष्ट्रवादी सास्कृतिक अभ्युत्थान से प्रेरित। प्रसाद ने अतीत के गौरवमयी चित्र उपस्थित करके इस राष्ट्रीय सास्कृतिक अभ्युत्थान मे योग दिया। किन्तु उन्होने राष्ट्रवाद और उस वाद की आर्थिक सामाजिक भूमि अर्थात पूँजीवादी समाज रचना पर भी दृष्टिपात किया। प्रसाद जी के पास मानव सभ्यता के इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन न था। वे इस राष्ट्रवाद और उसके आर्थिक मूलाधार पूँजीवाद का उसी तरह विरोध करने लगे जिस प्रकार पश्चिम के आदर्शवादी विचारक करते रहे। इन विचारको का प्रभाव बगाल से होते हुये भारत पर भी पडा और पश्चिम की ओर से राष्ट्रवादी भारत को यह कहा जाने लगा कि पश्चिम की गलती भारत मे न दुहराई जाय प्रथम विश्वयुद्ध के अनन्तर का यह काल था"।[३९] रमेशचन्द्र शाह समीक्षात्मक रूप से स्वीकार करते है कि, "प्रसाद की व्यक्तिगत मनीषा पर भारतीय मनीषा का बोझ था जो उन्होने स्वेच्छा से आग्रहपूर्वक धारण किया था उसके साथ अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को

उन्होने तथाकार कर लिया था। मेरा अन्धविश्वास है बीसवी सदी के किसी भारतीय कवि ने इस बोझ को इतना और इस तरह वहन नही किया होगा जितना कि प्रसाद ने। प्रसाद की भारतीयता निराला, अज्ञेय और रवीन्द्रनाथ की अपेक्षा कही अधिक जिम्मेदार और विशाल थी। वे ब्राह्मणो के भी ब्राह्मण और बौद्धो के भी बौद्ध थे''।[४०]

प्रसाद अपनी रचनाओ मे प्राचीन इतिहास का ही अधिक उपयोग क्यो करते है? यद्यपि प्रसाद की 'गुलाम', 'जहाँआरा', 'ममता', कहॉनियॉ एवम् 'महाराणा का महत्व', 'वीर बालक' आदि कविताओ का आधार जहाँ मध्यकाल है वही कहानी 'गुण्डा' तथा उपन्यास 'ककाल' एव 'तितली' की आधारभूमि ब्रिटिश काल है। फिर भी अधिकाश प्रसाद साहित्य सुदूर अतीत की भावभूमि को ही अच्छादित करती है। इसके उत्तर में प्रसाद कहते है ''इसके आगे का जो समय और समाज है जिसमे विदेशी धर्म और सस्कृति एक दूसरे रूप मे प्रबल है जिसके सत्य का उद्घाटन किसी के मर्म पर आघात भी कर सकता है और भी आगे चलकर उत्तरमुगल कम्पनी काल आता है जिसे चित्रित करने मे कारावास भी हो सकता है, इस वृहत कारा की छोटी जेलो को बसाने मे नही, तोडने मे विश्वास करता हूँ इस लिये मैने अपनी सीमा बना ली है''।[४१] अवधेश प्रसाद, जयशकर प्रसाद की इतिहास दृष्टि को परिभाषित करते हुये लिखते है, ''प्रसाद ने मध्यकालीन इतिहास पर लेखनी नही चलाई। इसका कारण यह था कि प्रसाद मध्य युग को पतन का काल मानते थे। उनकी दृष्टि मे मध्यकालीन समाज अपने स्वार्थों मे इतना लिप्त था कि राष्ट्र या जाति के प्रति उसमे गौरव भाव आ ही नही सकता था। परिणामत उस काल के सघर्ष के पीछे लोकशक्ति का अभाव है और उस अभाव ने पूरे मध्य युग को अधकार युग बनाकर रख दिया है''।[४२]

प्रसाद की इतिहास दृष्टि इस पृष्ठभूमि मे भी समझी जानी चाहिये जबकि साम्राज्यवादी इतिहासकार भारत भूमि के इतिहास को एक वैचारिक हथियार के रूप मे उपयोग कर रहे थे। आर्य सस्कृति के गौरव को इस रूप मे खण्डित करने का प्रयास किया गया कि ''हम इस भूमि के सतान नही अपितु हमारे पूर्वज एक बर्बर अक्रान्ता रहे जिन्होने उन्नत द्रविड सस्कृति को ध्वस्त कर उनकी भूमि को अपहृत किया। वे प्रताडित द्रविड दक्षिण भारतीय है इत्यादि के प्रचार मे देखा जा सकता है कि भेदनीति की कैसी प्रच्छन्न अव्यक्त और आरम्भिक भूमिका इस भूमि पर पदार्पण करते ही उन विदेशी शासको ने बनाई थी जिस भूमि पर उनके द्वारा आरोपित वर्गद्वेष के कालकूट की विष लहरी आज भी इस महाजाति को प्राय मूर्छित किया करती है। वे दक्षिण भारत के आर्य केवल अपनी वर्ण श्यामलता से अनार्य बता दिये गये''।[४३] अवधेश प्रसाद सिह भी चन्द्रगुप्त द्वारा सेल्युकश की पराजय के चित्रण मे इतिहासकारो के वर्णन को भेदपूर्ण मानते है। वे इस सदर्भ मे उद्धृत करते है कि, ''ग्रीक

इतिहासकार एपिएनस लिखता है, 'सेल्युकश ने सिन्ध पार किया भारतीय राजा सेड्रोकट्स से युद्ध किया और अन्त मे सन्धि कर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया'। प्यूटार्क ने लिखा है, 'सेण्ड्रोकट्स ने सेल्युकश को ५०० हाथी दिए। यूनानी यहॉ की गजवाहिनी से प्रभावित थे और सीरिया तथा सेण्टिगोनस के आसन्न आक्रमण को देखते हुये सेल्युकश को इसकी आवश्यकता थी'। स्मिथ ने 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया' मे लिखा है इस सन्धि मे सेल्युकश ने चन्द्रगुप्त को काबुल, हिरात, कधार और मकरान आदि राज्य दिये। इन टिप्पणियो से स्पष्ट है कि किस प्रकार इन इतिहासकारो ने पराजित सेल्युकश को गरिमा मण्डित किया और ऐतिहासिक सच्चाइयो को अपने राष्ट्र या जाति के हित मे प्रस्तुत किया''।[४४] यहॉ हमे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रसाद बार–बार लिख रहे है कि मै इतिहास नही लिख रहा हूँ और इन इतिवृत्तियो मे मेरी कल्पना का भी समावेश है। अत. ऐसी स्थिति मे उन पर इतिहास को अपने हित में (देश के हित मे) उपयोग करने का आक्षेप नही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जब इतिहासकार ऐसा कर सकता है जबकि एक ईमानदार इतिहासकार को ऐसा नही करना चाहिए फिर प्रसाद तो साहित्यकार थे, केवल साहित्यकार, इतिवृत्तियो के उपयोग करने वाले साहित्यकार वह भी राष्ट्रीय चेतना के निर्माण मे। अयोध्या सिह लिखते है, ''इतिहास के प्रसिद्ध पात्रो को नवीन रूप देकर उनके और घटनाओं के माध्यम से उन्होने देशवासियो के अन्दर देश प्रेम को जगाया और देश की स्वतत्रता के लिये लडने वाले को उन्होने सम्मान और गर्व का पात्र बताया''।[४५] हमे यह भी ध्यान रखना चाहिये कि साम्राज्यवादी शक्तियो द्वारा यह भेद नीति राष्ट्रीय आन्दोलन के समय मे भी हिन्दू मुस्लिम एव सिक्ख समुदायो के सन्दर्भ मे धडल्ले से अपनायी जा रही थी।

प्रसाद ने अपनी साहित्यिक कृतियो मे मिथको एव प्रतीको का खूब प्रयोग किया है। सभवत प्रसाद यह समझते थे कि मिथक ही लोकस्तर तक प्रचारित होते है। दरअसल प्रसाद ऐसे मिथक चाहते थे जहॉ उनकी साहित्यमयी कल्पना स्वय के अनुसार घुल–मिल सके अवधेश प्रसाद सिह लिखते है, ''प्रसाद मिथको को इतिहास का व्यापक स्रोत मानते थे और उसकी रचनात्मक भूमिका को अच्छी तरह पहचानते थे इसलिए मिथको को गभीरता से ग्रहण करते हुये उन्होने उसके भीतर इतिहास और जीवन के सत्यो का उद्घाटन किया''।[४६] अत प्रसाद अपनी रचनाधर्मिता मे किसी भी मिथक को इतिहास की परिभाषा मे सत्य ठहराने की अनिवार्यता स्वीकार नही करते थे। इसीलिए प्रसाद अपने प्राचीन साहित्यिक धरोहरो को इतिवृत्ति के रूप मे प्रस्तुत करने के लिये अपने साहित्य का आधार मान लेते है। प्रसाद लिखते है, ''आदिम युग के मनुष्यो के प्रत्येक दल ने ज्ञानोन्मेष के अरूणोदय मे जो भावपूर्ण इतिवृत्त सग्रहीत किए थे उन्हे आज गाथा या पौराणिक उपाख्यान कहकर अलग कर दिया जाता है क्योकि उन चरित्रो के साथ भावनाओ का बीच–बीच मे सम्बन्ध लगा हुआ सा दिखता है।

घटनाएँ कही–कही अतिरजित सी जान पडती है किन्तु उनमे भी कुछ सत्याश घटना से सम्बद्ध है ऐसा तो मानना ही पडेगा इसीलिए हमको अपनी प्राचीन श्रुतियो का निरूक्त के द्वारा अर्थ–ग्रहण करना पडा जिससे कि उन अर्थों को अपनी वर्तमान रूचि से सामजस्य किया जाय''।[४७]

प्रसाद ने प्रतीको का उपयोग भी बडे धडल्ले से किया है। कभी–कभी सामान्य पाठक उन प्रतीको के माध्यम से प्रसाद क्या कहना चाहते है, समझने की भूल कर बैठता है। अत प्रसाद के प्रतीको को भी समझने की सही दृष्टि और समझ चाहिये ''सीधा तना हुआ अपनी प्रभुत्व की साकार कठोरता अग्रभेदी उन्मत्त शिखर, इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओ और पौधो को इसके चरण मे लोटना ही चाहिए न''।[४८] ध्यान रहे प्रसाद का यह चित्रण हिमखण्ड पर लोटती लताओ का ही चित्रण नही है बल्कि यहॉ स्त्री–पुरूष के सम्बन्ध मे उनकी दृष्टि भी साथ–साथ काम कर रही है। यही नही यौवन, हरीतिमा, प्रेमिका से मिलने की इच्छा या कुछ देरी सब का उपयोग वे राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ मे करते हुए प्रतीत होते है। इसलिए उनके साहित्य के सतही अध्येता उन पर आत्मगत होने का आरोप लगा बैठते है। जबकि प्रसाद अपने साहित्य मे आत्मगतता एव वस्तुगतता को एकाकार करते हुये चलते है। जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी भी स्वीकार करते है, ''कुछ गीतो में व्यक्तिगत प्रणय एव राष्ट्र जागरण के भाव एक दूसरे से घुलमिल गये है''।[४९]

रामस्वरूप चतुर्वेदी छायावादी काव्य जिसमे प्रसाद साहित्य रच रहे थे, की विशेषता मानते हुए कहते है, ''छायावादी काव्य मे पुनर्जागरण की चेतना सीधे लहराती है गीतो के अतिरिक्त कविताओ के खण्डो मे जागरण का स्वर गूँजता है शक्ति के आह्वान का एक और रूप इस युग के जागरण गीतो मे मिलता है। पुनर्जागरण चेतना की बडी सूक्ष्म और प्रीतिकर अभिव्यक्ति इन गीतो मे हुई है। प्रकृति की और मनुष्य की सुप्त चेतना जगाने का उपक्रम यहॉ कवि ने सामान्यत प्रशमित और कभी–कभी ओज की मुद्रा मे किया है''।[५०]

प्रसाद पर अतीतजीविता का भी आक्षेप प्रस्तुत किया जाता है पर जैसा कि शिवकुमार मिश्र स्वीकार करते है, ''अपने समान धर्माओ मे वे सबसे अधिक अतीतोन्मुख भी लगते है गोकि उनके अनुसार अतीत का उनका सारा मथन वर्तमान के प्रयोजनो के तहत ही है''।[५१] रमेशचन्द्र शाह भी ऐसा ही विचार रखते है, ''उनकी रचनाओ मे अतीत इस तरह स्पन्दित और सृजित है मानो वह वर्तमान की ही बात हो''।[५२] प्रसाद अतीत की घटनाओ प्रतीको मे अपनी सुघड कल्पना का सुन्दर प्रयोग करते हुये समकालीन समाज की सभी आवश्यकताओ को पूरा करते प्रतीत होते है और उस प्रत्येक मोर्चे पर खडे होते है जिसपर उनके समकालीन समानधर्मी व्यक्तित्व खडे होने से बचते है चाहे वह राष्ट्रीय चेतना के एकीकरण एव उसे प्रेरित करने की बात हो या नारी प्रश्नो की या कृषको की समस्याओ की। हॉ

उनकी शैली काफी मौलिक और लोगो से भिन्न जरूर थी और कठिन भी जैसा कि उनके समकालीन प्रेमचन्द स्वय स्वीकार करते थे, "साहित्य के सब अगो मे ऐतिहासिक नाटक लिखना सबसे मुश्किल है तीन हजार वर्ष पहले के चरित्रो, परिस्थितियो भावो की कल्पना करना लोहे के चने चबाना है" ।[५३]

X X X X X

जयशकर प्रसाद जिस समय साहित्य कर्म से जुडे, राजनीति के क्षेत्र मे महात्मा गॉधी का पदार्पण नही हुआ था। कम से कम उनकी एक राष्ट्रीय छवि तो नही बनी थी जो किसी साहित्यकार को प्रभावित करने के लिए विवश करती यद्यपि गॉधीजी और प्रसाद की कर्मभूमि और उसके सामने उपस्थित प्रश्नो का स्वरूप एक ही है। गाँधीजी अपनी रणनीति के लिए जहॉ भारत के साथ – साथ पश्चिमी विचारको (टालस्टाय आदि) की ओर भी ताकते हुये प्रतीत होते है, वही प्रसाद पूरी तरह से भारतीय शास्त्रो से शिक्षा ग्रहण करते हुए प्रतीत होते है। यद्यपि प्रसाद एव गॉधीजी दोनो को अपनी–अपनी रणनीति का प्रयोग एक ही भूमि पर करना था, एक ही शत्रु के विरूद्ध भारतीय शास्त्रो के आधार ग्रन्थ गीता एव रामायण गॉधी के भी हमसफर रहे। जैसा कि सुमित सरकार लिखते है, "गॉधीजी की लोकप्रियता बढाने मे उनकी राजनैतिक शैली भी पर्याप्त सहायक हुई तीसरी श्रेणी मे यात्रा करना, आसान हिन्दुस्तानी मे बोलना, १९२१ के पश्चात केवल लगोटी पहनकर रहना और तुलसीदास के विम्बविधान को प्रयुक्त करना जो उत्तरी भारत के हिन्दू जनमानस मे गहन रूप से पैठा हुआ था।"[५४]

प्रसाद अपने साहित्य के माध्यम से कही भी हिसा का समर्थन करते हुये प्रतीत नही होते। यही नही प्राय वे निरर्थक हिसा के विरोध मे खडे प्रतीत होते है पर अहिसा के प्रति प्रसाद का अधिक या दृढ आग्रह नही है। कहने का आशय यह है कि मानवता का अहित होता रहे और अहिसा का राग अलापा जाय प्रसाद इसके समर्थक नही है। १९१४ मे प्रकाशित 'महाराणा का महत्व' मे वे अकबर और महाराणा प्रताप मे, जो दोनो वीर है युद्ध का आह्वान नही करते अपितु सधि की बात करते है "और हो सके तो मिलकर सम्राट से/ राणा से शुभ सन्धि करा दीजिए" ।[५५] अपनी कविता 'अशोक की चिता' मे प्रसाद कहते है 'इन प्यासी तलवारो से/ इनकी पैनी धारो से/ निर्दयता की मारो से/ उन हिसक हुँकारो से/ नतमस्तक आज हुआ कलिग/ यह सुख कैसा शासन का/ शासन रे मानव मन का/ कर चुका महाभीषण रव/ सुखदे प्राणी को मानव/ जय विजय पराजय का कुढग" ।[५६] 'कामायनी' मे भी जयशकर प्रसाद हिसा के विरोध मे खडे प्रतीत होते है, "लग गया रक्त था उस मुख मे हिसा सुख लाली से ललाम/ यह हिसा इतनी प्यारी है जो भुलवाती है देह गेह" ।[५७]

प्रसाद अपने 'तितली' उपन्यास मे हिसा का विरोध करते हुये कहते है, "मनुष्य को जानबूझकर उपद्रव न मोल लेना चाहिये। विनय और कष्ट सहने का अभ्यास रखते हुये भी अपने से किसी को छोटा न समझना चाहिए और बडा बनने का घमण्ड भी अच्छा नही होता"।[५८] अपने नाटक 'कल्याणी परिचय' मे चन्द्रगुप्त से प्रसाद यह कहलवाते है क्यो ग्रीक सम्राट! "क्या युद्ध पिपासा अभी नही मिटी भारत को क्या आप लोगो ने मृगया का स्थान समझ लिया है"।[५९] उल्लेखनीय है कि 'कल्याणी परिचय' सर्वप्रथम १९१२ मे ही लिखा गया है। १९१४ मे प्रकाशित अपने नाटक 'राज्यश्री' मे भी हर्ष वही तक साम्राज्यवादी विस्तार चाहता है जहॉ कुशासन है। दक्षिणापथ के शासक पुलकेशिन से वह युद्ध नही करना चाहता क्योकि "महाराष्ट्र सुशासित और वीर निवास है"।[६०] यही नही प्रसाद अपने नाटक 'अजातशत्रु' मे भी बचपन मे दिए गये हिसक सस्कारो का विरोध करते है। इसी तरह 'जन्मेजय का नाग यज्ञ' एव 'चन्द्रगुप्त' नाटक भी अन्तत· हिसा की वकालत नही करता। जहॉ तक हो सके उससे बचना चाहिये।

साथ ही प्रसाद अहिसा के प्रति अधिक आग्रही भी नही है जितने कि महात्मा गॉधी। 'तितली' मे प्रसाद कहते है, "सहनशील होना अच्छी बात है परन्तु अन्याय का विरोध करना उससे भी उत्तम"।[६१] यही नही प्रसाद राष्ट्र की सुरक्षा की कीमत पर अहिसा नही चाहते। अपने अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' मे कहते है "धर्म विजय के सामने शस्त्र विजय को गौड बनाते रहने का यह अवश्यम्भावी फल है"।[६२] इसी उपन्यास मे एक जगह इसे और परिभाषित करते हुये कहते है, "सर्वसाधारण आर्यों मे अहिसा अनात्म और अनित्यता के नाम पर जो कायरता, विश्वास का अभाव और निराशा का प्रचार हो रहा है उसके स्थान पर उत्साह और आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करनी होगी"।[६३] इसी तरह राज्य की सुरक्षा की कीमत पर धार्मिक अनुदान का भी प्रसाद विरोध करते है, "सैनिको मे असन्तोष है उनके लिए महामात्य के कोष मे द्रव्य नही। वे बराबर धर्म महामात्र की आवश्यकताओ से छुट्टी नही पाते। विहारो मे दिये जाने वाले राजानुग्रह अपरिमाण हो रहे है। युद्ध काल मे मौर्य साम्राज्य की नीति सेना को ही देवता मानती रही है किन्तु अब तो वे आवश्यक अग न होकर शोभामात्र रह गये है"।[६४] इसी तरह 'राज्यश्री' मे हर्ष एव 'चन्द्रगुप्त' मे चन्द्रगुप्त राष्ट्र की सुरक्षा प्रत्येक कीमत पर प्राप्त करना चाहते है चाहे उसके लिए हिसा का ही सहारा लेना पडे पर अनावश्यक हिसा नही।

प्रसाद सत्य, क्षमा त्याग आदि सद्‌गुणो की स्थापना अपने साहित्य मे समानान्तर रूप से करते चलते है जो निश्चित रूप से महात्मा गॉधी की धरोहर मात्र नही है हॉ यह जरूर हो सकता है कि महात्मा गॉधी द्वारा इन गुणो के समर्थन से प्रसाद को प्रोत्साहन मिला हो। 'महाराणा का महत्व' कविता मे प्रसाद वीरता को एक गुण मानते है, "परम सत्य को छोड न हटते वीर है"।[६५] इसी तरह 'कामायनी'

मे "क्यो इतना आतक ठहर जाओ गर्वीले/ जीने दो सबको फिर तू भी सुख से जीले"।[६६] अपने नाटक 'विशाख' मे भी प्रसाद कहते है, "सत्य को सामने रखो आत्मबल पर भरोसा रखो"।[६७] इसी नाटक मे प्रसाद शिक्षात्मक उपदेश देते हुए एक कविता पाठ करते है, "सीधी राह पकडकर सीधे चलो/ छले न जाओ औरो को भी मत छलो/ निर्बल हो सत्य पक्ष मत छोडना/ शुचिता से इस कुहुक जाल को तोडना"।[६८] 'जन्मेजय के नाग यज्ञ' नाटक मे प्रसाद सत्य और उसके परिणामो पर व्यास के द्वारा यह कहते है, "सत्य महान धर्म है। .अन्त मे वही विजयी होता है जो सत्य को परम ध्येय समझता है"।[६९] इस नाटक का प्रमुख पात्र माण्डवक सम्राट की हिसा का जवाब प्रतिहिसा से नही बल्कि पौरव कुलवधु की रक्षा से देता है। यही नही प्रसाद प्रतिहिसा को "पाशववृत्ति"[७०] स्वीकार करते है।

प्रसाद क्षमा को भी सर्वोत्तम मानवीय गुण के रूप मे परिभाषित करते चलते है। उसके द्वारा हृदय परिवर्तन की सभावना भी दिखाते हुये चलते है। 'कामायनी' मे श्रद्धा मनु को क्षमा करती है और मनु श्रद्धा के आदर्शों पर चलने के लिए सकल्प लेते है, "श्रद्धा आगे मनु पीछे थे/ साहस् उत्साही से बढते"।[७१] 'महाराणा का महत्व' मे भी महाराणा प्रताप क्षमा के द्वारा ही मैत्री स्थापित कर पाते है अकबर का हृदय परिवर्तित होता है। 'अजातशत्रु' क्षमा और प्रेम के द्वारा हृदय परिवर्तन पर लिखा गया एक विस्तृत नाटक है जिसमे गौतम, जिनकी लोकप्रियता समकालीन समाज के महात्मा गॉधी सदृश है, कहते है, "शीतलवाणी और मधुर व्यवहार से क्या वन्य पशु भी वश मे नही हो जाते. वाक सयम विश्व मैत्री की पहली सीढी है"।[७२] इसी नाटक का एक पात्र देवदत्त गौतम की लोकप्रियता से द्वेष रखता है, "राष्ट्र का उद्धार इस भिक्षु के हाथ से करना ही होगा। जब राजा ही उसका अनुयायी है फिर प्रजा क्यो भाड मे न जाएगी। यह गौतम बडा कपट मुनि है, देखते नही कितना प्रभावशाली होता जा रहा है"।[७३] प्रसाद यह भी दिखलाते है कि क्षमा कितनी कारगर होती है मनुष्य पर नियन्त्रण के लिए मल्लिका प्रसेनजित को क्षमा कर देती है इस पर प्रसेनजित कहते है, "इस दुराचारी के पैरो मे तुम्हारे उपकारो की वेणी हाथो मे क्षमा की हथकडी पडी है जब तक तुम कोई आज्ञा देकर इसे मुक्त नही कराओगी यह कही जाने मे असमर्थ है"।[७४] इसी नाटक मे अजातशत्रु का काशी की राजकुमारी के प्रेम से हृदय परिवर्तन होता है, "सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है आज विश्वास भी हो गया तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया"।[७५] इसी नाटक मे मल्लिका पात्र से प्रसाद कहलवाते है क्षमा से बढकर दण्ड नही है और आपकी राष्ट्र नीति इसी का अवलम्बन करे"।[७६] 'स्कन्दगुप्त' नाटक मे नायक कहता है, "मै तुम्हे मुक्त करता हूँ क्षमा करता हूँ तुम्हारे अपराध ही तुम्हारे मर्मस्थान पर सैकडो बिच्छुओ के डक की चोट करेगे"।[७७] 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे विदेशी पात्र कार्नेलिया

से भी प्रसाद कहलवाते है, ''ग्रीक लोग देशो की विजय करके समझ लेते है कि लोगो के हृदय पर भी अधिकार कर लिया।''

इसी तरह प्रसाद त्याग एव सेवा को भी समानान्तर मे स्थापित करते हुए चलते है। 'राज्यश्री' नाटक मे जब नायिका कर्म के अभाव मे सती को उद्यत थी (बौद्धभिक्षु) 'दिवाकर मित्र' उससे युद्ध मे घायल सैनिको की सेवा मे लगने को कहता है। 'पाप की पराजय' कहानी जहॉ अकाल पीडितो की सेवा करने की प्रेरणा देती है वही 'व्रतभग' बाढपीडितो की सेवा की। 'ममता' कहानी की नायिका ''आजीवन सबके सुख दु ख की सहभागिनी रही''।[७९] 'ककाल' उपन्यास मे प्रसाद एक पात्र से कहलवाते है, ''जाओ सेवा मे लग जाओ समाज सेवा करके अपना हृदय शुद्ध बनाओ''।[८०] 'तितली' मे भी प्रसाद लिखते है, ''मै तो समझता हूँ गॉवो का सुधार होना चाहिये। कुछ पढे लिखे सम्पन्न और स्वस्थ लोगो को नागरिकता के प्रलोभनो को छोडकर देश के गॉवो मे बिखर जाना चाहिए। उसके सरल जीवन मे, जो नागरिको के ससर्ग से विषाक्त हो रहा है, विश्वास प्रकाश और आनन्द का प्रचार करना चाहिये। उनके छोटे–छोटे उत्सवो मे वास्तविकता उनकी खेती मे सम्पन्नता और चरित्र मे सुरूचि उत्पन्न करके उनके दारिद्रय एव अभाव को दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए इसके लिए सम्पत्तिशालियो को स्वार्थत्याग करना अत्यन्त आवश्यक है''।[८१] 'जन्मेजय के नाग यज्ञ' नाटक मे मणिमाला कहती है, ''तो चलो बुआ इन घायलो की शुश्रुषा करे''[८२] 'स्कन्दगुप्त' नाटक का नायक कहता है, ''ससार मे जो सबसे महान है वह क्या है? त्याग । त्याग का ही दूसरा नाम महत्व है प्राणो का मोह त्याग करना वीरता का रहस्य है''।[८३] यही नही स्कन्दगुप्त सम्राट पद का त्याग करता है ''तात विपत्तियो के बादल घिर रहे है। अन्तर्विरोध की ज्वाला' प्रज्जवलित है इस समय मै केवल एक सैनिक बन सकूँगा सम्राट नही''।[८४]

प्रसाद अपने साहित्य मे तकली (चरखा) का भी खूब उपयोग करते है जबकि आम तौर पर वे समकालीन सामाजिक सदर्भ से जुडी कथा से बहुत कम जुडते है। 'कामायनी' की नायिका श्रद्धा से प्रसाद प्राय· तकली चलवाते रहते है। ऐसा करके प्रसाद न केवल चरखा आन्दोलन को गति दे रहे है बल्कि उसको अपनी परम्परा और इतिहास मे स्थापित करके गौरवान्वित भी कर रहे है।'' चीजो का सग्रह और उधर चलती है तकली भरी गीत/ यो सोच रही मन मे अपने हाथो मे तकली रही घूम/ . आशा के कोमल ततु–सदृश तुम तकली मे हो रही झूल''।[८५] ''तुम दूर चले जाते हो जब – तब लेकर तकली, यहॉ बैठ/ मै उसे फिराती रहती हूँ अपनी निर्जनता बीच पैठ/ मै बैठी गाती हूँ तकली के प्रतिवर्तन स्वर विभोर/ चल री तकली धीरे–धीरे प्रिय गये खेलने को अहेर/ जीवन का कोमल ततु बढे तेरी ही मजुलता समान/ चिर नग्न प्राण उनमे लिपटे सुदरता का कुछ बढे मान/ किरनो सी तू बुन दे उज्जवल मेरे जीवन का प्रभात/ अब वह आगन्तुक गुफा बीच पशु सा न रहे

निर्वसन नग्न"।[८६] प्रेमशकर स्वीकार करते है कि, "श्रद्धा के इस तकली गीत मे गॉधीवाद का स्वर है। इसके पूर्व उसने मनु को अहिसा का सदेश दिया था। वह पशु पक्षी को भी कष्ट नही देना चाहती। 'कामायनी' का समाजवाद मानवता के कल्याण की कामना करता है। श्रद्धा की तकली, उसी के साथ बुनी जाने वाली ऊन की पट्टियॉ सर्वोदय की प्रतीक है। सारस्वत नगर निवासियो ने देश को वैभवशाली बनाया था वर्ग और वर्णभेद के कारण मनु के नगर मे वैमनस्य बढा। कामायनी वर्ग सघर्ष का समर्थन नही करती। इस क्षेत्र मे कामायनी युग के सर्वोकृष्ट व्यक्तित्व गॉधी की अहिसा स्वावलम्ब से प्रभावित है"।[८७] 'कामना' नाटक की पात्र लीला कहती है "तेरा चरखा चुपचाप मन मारे बैठा है तेरी कलसी खाली पडी है तेरा बुना हुआ कपडा अधूरा पडा है"।[८८] खादी वस्त्र के गौरव को स्थापित करते हुये 'तितली' उपन्यास मे प्रसाद कहते है, "छपे हुए किनारे की सादी खादी धोती हाथो मे दो चूडियॉ और सुनहले कडे माथे मे सौभाग्य का सिदूर चादर की आवश्यकता नही अपनी सलज्ज गरिमा को ओढे हुए वह उन स्त्रियो की रानी सी दिखाई पडती थी"।[८९]

महात्मा गॉधी अपने सिद्धान्तो के अनुपालन के लिए आत्मबल होने की अनिवार्यता बताते है। प्रसाद कहते है, "कौन कसौटी पर ठहरेगा किसमे प्रचुर मनोबल है"।[९०] इसी तरह प्रसाद शराब बन्दी का समर्थन 'मधुआ' कहानी मे करते है जिसमे मधुआ अपने आश्रयी के सहानभूतिपूर्ण व्यवहार से शराब पीना छोड देता है। पर प्रसाद इसे बडे पैमाने पर नही उठा पाते, यह उनकी सीमा थी। दरअसल प्रसाद जिस भावभूमि को आधार मानकर साहित्य रच रहे थे मदिरा सेवन एक सामान्य शिष्टाचार के अन्तर्गत आता था अत वे न उसका विरोध कर सके और न ही समर्थन।

प्रसाद गॉधीवादी आन्दोलन की शैली एव रणनीति का समर्थन करते हुए कहते है, "होड लगाओ नही न दो उत्तेजना चलने दो मलयानिल की शुचि चाल से/ हृदय हमारा नही हिलाने योग्य है"।[९१] यही नही गॉधी द्वारा आन्दोलन चलाने और पुन उस पर अकुश लगाने का भी समर्थन प्रसाद करते है, "हा सारिथे रथ रोक दो विश्राम दो कुछ अश्व को/ यह कुज था आनन्ददायक इस हृदय के विश्व को।..अज्ञात से पद्चिन्ह का कर अनुसरण आया यहॉ/ निज नाभि सौरभ भूल फूलो का सुरस पाया यहॉ"।[९२] प्रसाद इस जन जागृति से उत्साहित भी है, "नया हृदय है, नया समय है, नया कुज है/ गाओ नव उत्साह से, रूको न पलभर के लिये"।[९३] साम्राज्यवादी दमनचक्र को वे इस रूप मे चित्रित करते है, "किसी स्वार्थी मतवाले हाथी से हा! पददलित हुयी/. पडी कण्टका कीर्ण मार्ग में कालचक्र गति न्यारी है"।[९४] नेतृत्व एव जन को उत्साहित करते हुए प्रसाद लिखते है, "रणविमुख होगे, बनोगे वीर से कायर कहो?/ मरण से भारी अयश क्यो दौडकर लेना चहो उठ खडे हो अग्रसर हो कर्मपथ से मत टरो/ क्षत्रियोचित धर्म जो है युद्ध निर्भय हो करो"।[९५]

'कामायनी' मे प्रसाद राष्ट्रीय आन्दोलन के सघर्ष को भी चित्रित करते हुये प्रतीत होते है, "यह सतत सघर्ष विफलता कोलाहल का यहॉ राज है/ अधकार मे दौड लग रही मतवाला यह सब समाज है"।[९६] सिर नीचा कर किसकी सत्ता सब करते स्वीकार/ यहॉ सदा मौन हो प्रचवन करते जिसका अस्तित्व कहॉ । शक्ति और जागरण चिन्ह सा लगा धधकने अब फिर से/ उस एकान्त नियतिशासन मे चले विवश धीरे–धीरे । इस अनन्त काले शासन का वह जब उच्छृखल इतिहास"।[९७] नेतृत्व की हताशा पर प्रसाद कहते है, "आह तुम कितने अधिक हताश बताओ यह कैसा उद्वेग"।[९८] यही नही प्रसाद अपनी कविताओ और नाटको तथा उपन्यासो मे यान्त्रिक सभ्यता के खिलाफ खडे प्रतीत होते है। अपनी कविता 'ऑसू' मे कहते है, "इस यान्त्रिक जीवन मे क्या/ ऐसी थी कोई क्षमता"[९९] अपनी अन्तिम काब्य रचना 'कामायनी' मे भी प्रसाद पूरी तरह से यान्त्रिक सभ्यता के खिलाफ खडे प्रतीत होते है। रामस्वरूप चतुर्वेदी 'कामायनी' को मानव संस्कृति के विकास का आख्यान मानते है। उनके अनुसार "सस्कृति के विकास मे कवि दिखाता है कि मनुष्य मृगया युग और कृषि युग को पार करता हुआ यान्त्रिक युग मे आ पहुॅचा है और इस यात्रिक युग के क्या खतरे है तथा उनका अतिक्रमण कैसे सभव है। श्रद्धा से मिलने के पूर्व मनु मृगया युग मे जीवन यापन कर रहे है श्रद्धा की आत्मीयता कृषि युग के साथ है जबकि इडा यान्त्रिक युग की अधिष्ठात्री है जो जितनी समस्याओ का हल करती है उससे कही अधिक उत्पन्न करती है"।[१००] शान्तिप्रिय द्विवेदी 'कामायनी' पर गॉधी प्रभाव का मूल्याकन करते हुये लिखते है, "कामायनी मे मनु की उच्छृखलता और जनता की अराजकता का जो सघर्ष है वह गॉधीयुग के पूर्व की हिसात्मक क्राति की याद दिलाता है – श्रद्धा के प्रभाव मे जनता शान्त हो जाती है और मनु प्रकृतिस्थ हो जाते है। वे श्रद्धा के साथ वानप्रस्थ ले लेते है"।[१०१]

रत्नशकर प्रसाद 'प्रसाद वागमय' की भूमिका मे प्रसाद के ग्राम सुधार दृष्टिकोण पर महात्मा गॉधी के प्रभाव की समीक्षा करते हुए कहते है, "गॉव की प्रवृत्ति और उसका समाज प्रसाद के लिए एक इकाई है और इस इकाई का सुधार प्रसाद का लक्ष्य है महात्मा गॉधी की आवाज इस इकाई मे सुनाई पडती है"।[१०२] प्रेमशकर लिखते हैं, "अपने राजनीतिक जीवन मे प्रसाद देशभक्त थे। उन्होने स्वय राजनीति मे सक्रिय भाग नही लिया किन्तु अपने विचारो मे वे देश प्रेमी थे गॉधीजी के व्यक्तित्व ने उन्हे अधिक प्रभावित किया था जीवन मे दीर्घ समय तक वे खादी पहनते रहे काशी मे अखिल भारतीय काग्रेस अधिवेशन के अवसर पर उन्होने गॉधीजी के दर्शन किये। शक्ति के उपासक होते हुये भी वे अहिसा के पुजारी थे। उनकी धारणा थी कि करूणा ही मानव कल्याण कर सकती है"।[१०३]

**X X X X X**

प्रसाद के सम्पूर्ण साहित्य मे धर्म, राष्ट्रीयता, नारी प्रश्न की तुलना मे कृषक एव मजदूर कम स्थान प्राप्त करते हुए दिखाई पडते है। इसके पीछे चाहे उनका अभिजात्य परिवार मे जन्म रहा हो या व्यापारिक परिवेश से जुडाव रहा हो। यद्यपि उनके साहित्य मे किसानो एव मजदूरो का उल्लेख तो कई बार आता है पर वृहद् पैमाने पर उनकी समस्याओ के चित्रण पर आधारित एक ही बडा उपन्यास है 'तितली' यद्यपि छुटपुट रूप मे कहानियो, नाटको एव कविताओ मे कृषक मजूदर अपना स्थान बनाते है। १६१३ मे प्रकाशित 'करूणालय' मे किसानो के खेतो का वर्णन करते हुये प्रसाद लिखते है, "हरे शालि के खेत पुलिन मे रम्य है/ सुन्दर बने ये सिधु से/ लहराते जब वे मारूतवश झूम के"।[१०४] भारतीय कृषक परम्परा को सुदूर आर्य सस्कृति से जोडते हुये प्रसाद कहते है, "आर्य – पूर्व – पुरूषो की यह कीर्ति है/ जो अब ये उद्यान सजे फल–फूल से"। किसानो को प्रेरित करते हुए इसी कविता मे प्रसाद कहते है, "चलो सदा चलना ही तुमको श्रेय है/ खडे रहो मत कर्म मार्ग विस्तीर्ण है/ सुनो ग्रीष्म के पथिक न ठहरो फिर यहॉ/ चलो बढो, वह रम्य भवन अति दूर है"।[१०५]

स्टीफन हेनिगम ने अपने एक ताजा लेख मे उस सशक्त कृषक आन्दोलन का विश्लेषण किया है जो १६१६–२० के दौरान दरभगा राज की जागीरो मे विकसित हो गया था ..बढी कीमतो ने उन सब लोगो को बुरी तरह प्रभावित किया था जिन्हे खाद्यान्न पूर्णत या आशिक रूप से खरीदने पडते थे। बढती हुई जनसख्या के दबाव के कारण भूमि चारागाह और लकडी को लेकर सघर्ष होते रहते थे। इसके साथ ही दरभगा रियासत ने चरागाहो का किराया लेना आरम्भ कर दिया था"।[१०६] इसी तरह कपिल कुमार और माजिद सिद्दीकी १६२०–२१ के काल मे सयुक्त प्रान्त मे अवध के प्रतापगढ, रायबरेली, सुल्तानपुर और फैजाबाद के जिलो मे विकसित किसान आन्दोलन को सबसे अधिक विख्यात मानते है जिसका नेतृत्व किसमी काश्तकार झिगुरी सिह' और बाबारामचन्द्रदेव कर रहे थे जो फिजी मे अनुबन्धित श्रमिक रह चुकने के बाद उस जिले मे आये थे।[१०७] इस तरह उत्तर भारत के क्षेत्रो मे गॉधीवादी उभारो के पूर्व या उसके समकालीन किसान आन्दोलन भी उफान पर था। काग्रेसी मत्रीमण्डल, जिसमे किसान सभाओ के नेता भी शामिल थे, इन आन्दोलनो को भुलावा दे रहे थे। जैसा कि डा० रामविलास शर्मा अपने लेख मे स्वीकार करते है कि, "इस सघर्ष का फल यह हुआ कि झगडा जमीदारो और किसानो के बीच न रहकर बहुत कुछ काग्रेस और किसान सभाओ के बीच हो गया। यद्यपि किसान सभाओ के नेता भी काग्रेस के सदस्य है, परन्तु काग्रेस के हाईकमाण्ड की नीति से मतभेद होने के कारण वे जैसे उससे अलग हो गये दोनो दलो मे गहरा मतभेद हो गया"।[१०८] इन कृषक आन्दोलनो के उभारो के बीच प्रसाद अपने साहित्य के माध्यम से तालमेल बना पाते है पर पूरी तरह नही या उनकी प्रतीकात्मकता आडे आती है। १६३३ मे अपनी कविता 'लहर' मे जयशकर प्रसाद कहते

है, ''उसके सूखे अधर मॉगते/ तेरे चरणो की लाली को/ वही दे रहा था सावनघन /वसुधा की इस हरियाली को'' ।[१०९] जाहिर है कृषक – मॉग बहुत कम थी उपज न होने पर कर माफी की, बेगार से मुक्ति की और अनावश्यक कर के बोझ से मुक्त होने की, पर शासक वर्ग उसे यह भी नही देना चाहता। क्या प्रसाद ग्रामीण पृष्ठभूमि के किसानो की जागृति की बात नही कहते प्रतीत होते, ''अब जागो जीवन के प्रभात/ रजनी की लाज समेटो तो/ कलरव से उठकर भेटो तो अरूणाचल मे चल रही बात'' ।[११०] जाहिर है प्रसाद कृषक आन्दोलन और उनकी समस्याओ से प्रभावित थे क्योकि जो रचनाकार १९१० मे 'प्रेमपथिक' कविता मे कृषको के खुशहाली का चित्रण करते प्रतीत होते है, ''कृषक समूह जहॉ सध्या को ग्राम्य गीत सुख से गाते/ वे सीमा के खेत शस्य से श्यामल हो लहराते थे'',[१११] ''दूर यहॉ से एक जमीदारी मेरी है, शान्ति वहॉ – ।[११२] वही १९३० के आस–पास प्रकाशित रचनाओ मे कृषक असन्तोष को आवाज देते हुये प्रतीत होते है। 'कानन कुसुम' कविता सग्रह मे 'गान' मे नेतृत्व उसे ही प्रदान करने की बात करते है जो कृषक मजदूर वर्ग से सहानभूति रखता हो, ''जो अछूत का जगन्नाथ हो कृषक करो का दृढ हल हो/ दुखिया की ऑखो का ऑसू और मजूरो का कल हो'' ।[११३]

'तितली' उपन्यास मे जमीदार किसान सम्बन्धो और उनकी समस्याओ का विस्तृत चित्रण है। यह आश्चर्यजनक है कि प्रसाद के पहले उपन्यास 'ककाल' मे जहॉ कृषको की समस्या अनुपस्थित है वही 'तितली' मे एक बडे फलक मे कैसे कृषक और उनकी समस्याये उपस्थित होती है। स्वाभाविक है कृषक आन्दोलन के उभारो की उपेक्षा अब प्रसाद नही कर सकते। 'तितली' मे प्रसाद कृषक समस्या की जड जमीदारो या शासको को न मानकर उन मध्यस्थो को मानते है जो इन्ही के द्वारा नियुक्त है। अपनी इस मान्यता की अभिव्यक्ति 'छाया' कहानी सग्रह मे सकलित कहानी 'ग्राम' (१९१२) और 'प्रतिध्वनि' कहानी सग्रह मे 'दुखिया' (१९२६) मे प्रसाद दे चुके थे, वह भी उसके नये उत्तराधिकारियो के द्वारा। 'तितली' उपन्यास मे भी युवक जमीदार इन्द्रदेव कृषक समस्या एव ग्राम सुधार के लिये बहुत कुछ करना चाहता है पर उसकी सीमा भी है। इसलिए वह कलेक्टर वाट्सन एव विदेशी शैला दोनो का सहयोग करता है। ''शैला की तत्परता से धामपुर का ग्राम सगठन अच्छी तरह हो गया था इन्ही कई वर्षो मे धामपुर कृषि प्रधान एक छोटा सा नगर बन गया था। सडके साफ सुथरी, नालो पर पुल, करघो की बहुतायत, फूलो के खेत तरकारियो की क्यारियॉ, अच्छे फलो के बाग – वह गॉव कृषि प्रदर्शनी बन रहा था'' ।[११४] इस तरह प्रसाद उच्च वर्गो के सहयोग से एक आदर्श स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे जो गॉधीजी के ट्रस्टीशिप जैसा प्रतीत होता है। इसी सहयोग का एक चित्रण और देखिए, ''रानी साहब आपके ताल्लुके मे नमूने के गॉव बसाने का बन्दोबस्त किया जाएगा। इसमे

बडी–बडी खेतियॉ, किसानो के बक और सहकार की सस्थाए खुलेगी। सरकार भी मदद देगी"।[११५] प्रसाद किसानो के हित सोचने वालो की प्रशसा भी करते है।[११६]

यही नही प्रसाद इस सहयोग के बाद भी विकास के प्रति अधिक आश्वस्त नही है, "मै तो अपनी धर्म और सस्कृति से भीतर ही भीतर निराश हूँ। मै सोचता हूँ कि मेरा सामाजिक बन्धन इतना विश्रृखल है कि उसमे मनुष्य केवल ढोगी बन सकता है। दरिद्र किसानो से अधिक से अधिक रस चूसकर एक धनी थोडा सा दान कही–कही दया और कभी–कभी छोटा–मोटा उपकार करके सहज ही आप जैसे लोगो का विश्वासपात्र बन सकता है। इससे तो अच्छी है पश्चिम की आर्थिक और भौतिक समता जिसमे ईश्वर के न रहने पर भी मनुष्य की सब तरह की सुविधाओ की योजना है"।[११७] सामन्तशाही के पतन और उसके जगह नये जमीदारो के अभ्युदय को भी प्रसाद चित्रित करते है, "शेरकोट के कुलीन जमीदार मधुबन के पास अब तीन बीघे खेत और वही खण्डहर सा शेरकोट है। इसके अतिरिक्त और कुछ चाहे न बचा हो किन्तु पुरानी गौरव गाथाए आज भी सजीव है"।[११८] "देवनन्दन जिसकी सारी भूसम्पत्ति नीलाम हो गई धूर–धूर बिक गई। दो सन्तानो का शरीरान्त हो गया तब बची हुई कन्या को लेकर स्त्री के साथ वह परदेश मे भीख मॉगने चले थे"।[११९] इसका कारण प्रसाद सत्ता हस्तातरण भी मानते है, "सब उलट–पलट हो गया मिरजा, आज देहली का का सिहासन मुगलो के हाथ से बाहर है"।[१२०]

कृषक असन्तोष के कारण स्थानीय स्तर पर अलग – अलग रहे। कही चराई मैदानो पर रोक, कही स्थानीय करो का बोझ, तो कही बेगार की अधिकता, तो कही अनुपयोगी भूमि पर किसानो के विस्तार पर भी कर आरोपित करना। जयशकर प्रसाद इसका चित्र उपस्थित करते हुये कहते है, "इन्द्रदेव का दरबार लगा हुआ है आराम कुर्सी पर लेटे हुए वह कोई कागज देख रहे थे। एक बडी सी दरी बिछी थी उस पर कुछ किसान बैठे थे तहसीलदार साहब मै कल से यहॉ बैठा हूँ मुझे क्यो तग किया जा रहा है .तहसीलदार ने चश्मे मे भीतर से ऑख तरेरते हुए कहा – रामनाथ हो न, तग किया जा रहा है! बैठो अभी। दस बीघे की जोत बिना लगान दिए हडप किए बैठे हो और कहते हो मुझे तग किया जा रहा है। क्या कहा दस बीघे! अरे तहसीलदार साहब क्या अब जगल परती मे भी न बैठने दोगे? और वह न जाने कब से कृष्णार्पण मे लगी हुई बनजरिया है। वही तो बची है और सब आप लोगो के पेट मे चल गया उसे जैसे वनजरिया की कायापलट होने के साथ ही अपना भविष्य उत्पातपूर्ण दिखाई देने लगा"।[१२१] इसकी प्रतिक्रिया भी किसानो मे होती है, "मै किसी दिन इसकी (तहसीलदार) नस तोड दूँ तो मुझे चैन मिले"।[१२२] "अपमान सहने के लिए उसके पास किसी तरह की

दुर्बलता न थी। पुकारते ही दस लाठियॉ निकल सकती थी तहसीलदार समझ बूझ कर धीरे से प्रस्थान किया"।[१२३]

कृषक असन्तोष का दूसरा कारण कर मे वृद्धि भी है, जमीदार के लगान का कॅपा देने वाला भय। दैव को अत्याचारी समझकर ही जैसे वह सन्तोष से जीवित है। फसल की क्षति होने पर भी किसानो से लगान की वसूली, कृषक असन्तोष का कारण बनता है, "धामपुर के कई गॉव मे पाला ने खेती चौपट कर दी थी, किसान व्याकुल हो उठे थे। तहसीलदार की कडाई और भी बढ गई थी जिस दिन रामजस का भाई पथ्य के अभाव मे मर गया और उसकी मॉ भी पुत्राशोक मे पागल हो रही थी उसी दिन जमीदार की कुर्की पहुँची। पाला से जो कुछ बचा था वह जमीदार के पेट मे चला गया। खडी फसल कुर्क हो गयी। महगूँ भी इसी ताक मे बैठा था उसका कुछ रूपया बाकी था। आजकल करते बहुत दिन बीत गये। रामजस के बैलो पर उसकी डीठ लगी थी"।[१२४] इसकी प्रतिक्रिया भी रामजस मे होती है, "देखूँ कौन मेरा खेत काटता है मै तो आज से प्रतिज्ञा करता हूँ कि बिना इसका सर फोडे नही जाता। पैसे के बल पर धर्म और सदाचार का अभिनय करना भुलवा दूँगा। मैने जो कुछ पढा लिखा है सब झूठा था आजकल क्या सभी युगो मे लक्ष्मी का बोलबाला था। भगवान भी इसी के संकेतो पर नाचते है। मै तुम्हारे इस पाप पुण्य की दुहाई नही मानता"।[१२५] रामजस कहता है, "ससार पाजी है तो हम अकेले महात्मा बनकर मर जाएगे"।[१२६] कुर्की हुए फसल को रामजस कच्चा ही उखाडने लगता है, जमीदार के कारीन्दे चौबेजी के रोकने पर रामजस कहता है, "यह खेत तुम्हारे बाप का है? मैने इसे छाती का हाड तोडकर जोता–बोया है। मेरा अन्न है मै लुटा देता हूँ तुम होते कौन हो"।[१२७] इसके बाद पीडित किसान रामजस द्वारा जमीदार के सहायक चौबेजी की पिटाई तथा छावनी से आये लट्ठेबाजो और रामजस मधुबन के बीच सघर्ष होता है और पूरे धामपुर मे सनसनी फैल जाती है।

प्रसाद–प्रेमचन्द दोनो ने कृषको को अपने शोषण से प्रताडित होकर मजदूर बनते दिखाया है, "मधुबन और रामदीन दोनो उस गार्ड की दया से लोको आफिस मे कोयला ढोने की नौकरी पा गये"।[१२८] इतने सघर्ष के बाद प्रसाद अपने आदर्शवादी शैली के कारण उनकी (कृषक, मजदूर) विजय भी चित्रित करते है, "गॉव मे किसी की दाल नही गलती किसान लोगो के पास लम्बी चौडी खेती हो गई वे अब भला कानूनगो और तहसीलदारो की बात क्यो सुनेगे गॉव की हवा भी अब बदलने लगी है, पहले का समय होता तो कभी गॉव से बाहर कर दी गई होती"।[१२९] प्रसाद अपने 'तितली' उपन्यास मे राजनीतिक मुक्ति की बात या सघर्ष की बात सीधे–सीधे नही कर पाते यह अवश्य है कृषक असन्तोष और ग्राम सुधार के प्रति सजगता उनके सम्पूर्ण उपन्यास मे दिखाई पडती है।

किसानो के प्रति उपेक्षा से उपजे असन्तोष का चित्रण प्रसाद 'कामायनी' मे भी करते है। यान्त्रिक सभ्यता की प्रतीक इडा के सरक्षण मे जब मनु चले जाते है, "उधर धातु गलते बनते है आभूषण और अस्त्र नये"।[130] तो प्रजा जो कि किसान या मजदूर है असन्तुष्ट होकर विद्रोह कर देती है, "शक्ति तरगो के आन्दोलन रूद्ध क्रोध भीषणतम था/ वर्गों की खाई बन फैली कभी नही जो जुडने की/प्रकृति आज उत्पाद कर रही मुझको बस सोने देना"।[131] यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रसाद किसानो के असन्तोष को प्रकृति का असन्तोष कहते है। प्रसाद सहज, सरल एव समरस के साहित्यकार थे और इन गुणो के करीब वे किसानो को ही पाते है। अत- कृषियुग की अजेयता ही अन्त मे उनकी सिद्धि बनती है। प्रसाद साहित्य मे श्रमिक एव कृषक का वर्गगत विभाजन नही है। दोनो की समस्याये लगभग एक सी है। कृषक भी एक तरह का श्रमिक ही है हॉ उसके क्षेत्र अलग–अलग है। प्रसाद साहित्य रच रहे थे फलत उनका विभाजन उनके लिए आवश्यक नही था क्योकि वे नेतृत्व लाभ नही लेना चाहते थे यद्यपि विशुद्ध श्रमिक की अपेक्षा कृषको का जीवन उनके अनुसार आदर्शमय है। 'पुरस्कार' कहानी की नायिका मधूलिका का प्रसाद गौरवपूर्ण चित्रण करते है "राजकुमार मै कृषक बालिका हूँ। आप नन्दन बिहारी और मै पृथ्वी पर परिश्रम कर जीने वाली। आज मेरे स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मै दुख से विकल हूँ मेरा उपहास न करो"।[132] मधूलिका राजद्रोही से देश की रक्षा कराती है और पुन उसकी रक्षा अपने प्रेम के लिए करती है वह त्याग की मूर्ति है। कहानी 'ग्रामगीत' मे परिश्रम की नई परिभाषा तैयार करते हुये नायिका का चित्रण करते है, "रोहिणी आई वह उसके यौवन का प्रभात था परिश्रम करने से उसकी एक–एक नसे और मासपेशिया जैसे गढी हुई थी"।[133] "कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रमकणो की कमी न थी वे सब बरौनियो मे गुथे जा रहे थे"।[134]

प्रसाद अपने नाटक 'अजातशत्रु' मे अत्याचारी शासक को कर न देने की भी प्रेरणा देते है, "समुद्रगुप्त – और हम लोग उस अत्याचारी राजा को कर न देगे जो अधर्म के बल से पिता के जीते ही सिहासन छीनकर बैठ गया है और जो प्रजा की रक्षा भी नही कर सकता उनके दुखो को नही सुनता"।[135] शासक वर्ग के निर्ममता पूर्ण अत्याचारो का चित्रण करते हुये प्रसाद कहते है, "देवनन्दन की कोई विनती नही सुनी गयी वार्टिली ने कहा कालेखॉ इसको इस कोठरी मे बन्द कर दो और तीन घण्टे मे रूपये न मिले तो बीस हटर लगा कर तब मुझसे कहना वार्टिली की ठोकर से जब देवनन्दन पृथ्वी चूमने लगा तब वह चाय पीने लगा"।[136]

प्रसाद किसानो के गॉव का सकारात्मक चित्रण करते है जब कि समकालीन नगरो की नकारात्मक प्रस्तुति करते है, "यह है कलकत्ता भाई यहॉ तो छीना झपटी चल रही है"।[137] यद्यपि

अपने ऐतिहासिक नाटको एव अपूर्ण उपन्यास (इरावती) मे नगरो का भी वैभवपूर्ण चित्रण प्रसाद करते है। 'तितली' उपन्यास की नायिका ग्राम्य जीवन ही व्यतीत करती है सीधी एव सरल उसके सुखो के समक्ष शैला एव अनवरी जो नगर मे भी निवास करती है पानी भरती प्रतीत होती है। 'कामायनी' की नायिका श्रद्धा कृषि कार्य मे लिप्त रहते हुये एक कुटी मे रहती है। ममता एव मधूलिका जैसी प्रसाद की नायिकाये ग्राम्यवासिनी ही है। चन्द्रगुप्त का नायक प्रणेता चाणक्य सुशासन स्थापित करने के बाद जगल मे एकान्त वास करता है। 'तितली' उपन्यास ग्राम्य जीवन के प्रबन्ध का प्रेरक हो सकता है। डा० राम प्रसाद मिश्र समीक्षात्मक रूप मे स्वीकार करते है, "इस उपन्यास मे ग्राम जीवन के तत्कालीन शोषण, प्रपीडन, अनाचार, अधविश्वास, जीवनाशा, सुधार इत्यादि अनेक पक्षो का चित्रण किया गया है"।[१३८] पद्मसिह शर्मा कमलेश 'तितली' की समीक्षा मे लिखते है, "सामन्तीय व्यवस्था के पतन की सूचना के साथ प्रसाद ने ग्राम्य जीवन के और भी चित्र दिए है। उनमे ग्रामो की दयनीय दशा का चित्र खीचते हुये प्रसाद ने जमीदारो एव उनके कारिन्दो के अत्याचारो तथा महाजनो के शोषण की ओर सकेत किया है"।[१३९]

इस तरह प्रसाद ने कृषक एव मजदूरो की न केवल समस्याओ का चित्रण किया है अपितु राष्ट्रीय आन्दोलन के समय मे जो कृषक असन्तोष क्षेत्रीय स्तर पर जारी था उसकी ओर भी सकेत किया है। साथ ही इस बात के लिए भी प्रेरित किया है कि किसानो को स्वय अपनी समस्या के समाधान के लिए आगे आना चाहिए। जमीदारो एव प्रशासन के सहयोग का भी प्रसाद ने आह्वान किया है तथा उनके द्वारा इस वर्ग (कृषक मजदूर) को ठगे जाने का खुलासा भी किया है।

**X X X X X**

प्रसाद धर्म के प्रश्न को लेकर सर्वाधिक जद्दोजहद करते है। धर्म का स्वरूप कैसा होना चाहिए, उसमे लोगो की आस्था कैसी होनी चाहिए, धार्मिक ढोग से मुक्ति एव धर्म राजनीति से कितना अलग रहे, साथ ही प्रतीकात्मक ढग से साम्प्रदायिकता के खिलाफ भी खडे होते हैं। प्रसाद निजी रूप मे हिन्दू धर्म के शैव शाखा के अनुयायी थे पर अपने सम्पूर्ण साहित्य मे कही भी इसका विज्ञापन नही किया है। प्रसाद धर्म के आरम्भिक रूप को ही सत्य स्वीकार करते है और उसे पुन. स्थापित करने का यत्न करते है, "आर्य धर्म का आरम्भिक उल्लासमय स्वरूप यद्यपि अभी एक बार भी नष्ट नही हुआ है फिर भी उसे जगाना पडेगा। वह अलस, अवसाद ग्रस्त, अपनी कायरता के कारण विवेक का ढोग करने लगा है. मुझे ऐसा मालुम होता है कि प्राचीन आर्य वीर सस्कृति को लौटाने के लिये प्राचीन कर्मों को फिर से करना होगा। जिन्हे विवेक के अतिवाद के कारण मानवता के लिए हमने हानिकर समझ लिया था"।[१४०] यही नही इस सस्कृति की स्थापना के लिए 'ककाल' उपन्यास मे 'भारत सघ'

जैसी सस्था की स्थापना की बात प्रसाद करते है, "भारत सघ राम, कृष्ण, बुद्ध की आर्य सस्कृति का प्रचारक वर्तमान कष्ट के दिनो मे श्रेणीवाद, धार्मिक पवित्रतावाद, अभिजात्यवाद इत्यादि अनेक रूपो मे/ फैले हुए सब देशो के / भिन्न प्रकार के जातिवाद की अपेक्षा करते है। भारत सघ ऋषिवाणी को दुहराता है, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता'"।[१४१] प्रसाद हिन्दू समाज के अत्यधिक धार्मिक आग्रह पर भी चोट करते है, "देखो यह बीसवी शताब्दी मे तीन हजार बी०सी० का अभिनय, समग्र ससार अपनी स्थिति रखने के लिये चचल है। रोटी का प्रश्न सबके सामने है फिर भी मूर्ख हिन्दू अपनी पुरानी सभ्यताओ का प्रदर्शन कराकर पुण्य सचय किया चाहते है"।[१४२] प्रसाद मूर्तिपूजा की अनावश्यकता भी प्रमाणित करते है, "हिन्दू समाज तुमको मूर्तिपूजा करने के लिये बाध्य नही करता . तुम अपने को उपयुक्त समझते हो तो उससे उच्चतर उपासना प्रणाली मे सम्मिलित हो जाओ"।[१४३] प्रसाद रूढियो को हिन्दू समाज के पैरो की बेडिया मानते है। प्रसाद धार्मिक आडम्बर का भी विरोध करते है, "मै आडम्बर नही चाहता, व्यक्तिगत श्रद्धा से जितना जो कर सके उतना ही पर्याप्त है"।[१४४]

प्रसाद युवाशक्ति को सन्यास धर्म धारण करने और मानव प्रवृत्ति के प्रतिकूल ब्रह्मचारी बनने की भी आलोचना करते है। 'देवरथ' कहानी मे प्रसाद सुजाता से कहलवाते है, "पवित्र ग्राहस्थ्य बन्धनो को तोडकर तुम लोग भी वासना तृप्ति के अनुकूल ही तो एक नया घर बनाते हो जिसका नाम बदल देते हो। तुम्हारी तृष्णा तो साधारण सरल गृहस्थो से भी तीव्र है क्षुद्र और निम्न कोटि की है तुम्हारा यह काल्पनिक आडम्बरपूर्ण धर्म भी मरेगा। मनुष्यता का नाश करके कोई धर्म खडा नही रह सकता"।[१४५] प्रसाद अपने उपन्यास 'तितली' मे नायक से महन्त की हत्या करवाने का प्रयास करते है यद्यपि वह बच जाता है पर नायक को सजा हो जाती है। 'इरावती' उपन्यास मे बौद्ध विहारो के ढोग का खुलासा करते हुये वे कहते है, "तुम्हारे इस कुहर मे मनुष्य अपने जीवन को भी नही प्राप्त कर रहा है न जाने कब इस कुक्कुटाराम की प्राचीर गिरेगी और बन्दिनी मानवता मुक्त होगी"।[१४६] 'ककाल' उपन्यास का युवा ब्रह्मचारी अपने बचपन की एक मित्र से मिलने पर अपनी इन्द्रिय पर सयम नही रख पाता। 'विशाष' नाटक मे प्रेमानन्द कहते है, "वैराग अनुकरण करने की वस्तु नही है जब वह अन्तरात्मा मे विकसित हो, जब उलझन की गॉठ खुल सुलझ जाय उसी समय हृदय स्वत आनन्दमय हो जाता है जब तक सुख भोगकर चित्त को उनसे नही उपराम होता मनुष्य पूर्ण वैराग्य नही पाता"।[१४७] इस तरह प्रसाद धर्म को उसकी समानान्तर मे जुडी रूढियो से मुक्त कर प्राचीन आर्य धर्म की स्थापना की बात करते है जैसा कि रत्नशकर प्रसाद भी लिखते है, "प्रसाद की प्रमुख चिन्ता दिव्य आर्य सस्कृति की स्थापना है। यह सस्कृति व्यक्तित्व के स्वतत्र विकास को मानकर चलती है और विधि निषेध के बन्धनो

से मुक्त रहती है। आर्य  समाज से प्रभावित होते हुये भी प्रसाद आर्य समाज की शुष्कता से रहित है'' ।[१४८]

प्रसाद राज्यनीति का तो एक धर्म मानते है पर धर्म की राजनीति करने का विरोध करते है या धर्म और राजनीति का घालमेल नही चाहते। प्रसाद के अन्तिम अपूर्ण उपन्यास 'इरावती' मे सम्राट बौद्ध विहार मे अधिक रूचि लेते है, ''कहो तो धर्म महामात्र की स्थविर से कैसी पटती है ? सम्राट इरावती को रगशाला मे देखना चाहते है। धर्म महामात्र ने स्थविर से कहा कि किसी आपत्ति दोष से उसे सघ से बाहर कर दिया जाय फिर तो उसे रगशाला मे ले जाने की सुविधा होगी'' ।[१४९] शासक की धर्म पर अधिक निर्भरता की भी प्रसाद आलोचना करते है और शायद यही भारत की दासता का कारण भी मानते है, ''धर्मशाला पूछते है आप? समूचा मगध धर्मशाला ही तो है। जहॉ चाहिये पूँछना क्या यही सुनकर तो सुदूर यवन देश से बहुत अतिथि आ गये हैं'' ।[१५०] प्रसाद इस दृष्टिकोण के समर्थक है कि धर्म राजनीति को बचाती है न कि राजनीति धर्म को, ''धर्म को बचाने के लिये तुम्हे राजशक्ति की आवश्यकता हुयी, धर्म इतना निर्बल है कि वह पाशव बल के द्वारा सुरक्षित होगा'' ।[१५१]

गुप्त काल मे हूणो के आक्रमण के समय श्रमण अपनी सुरक्षा को महत्व देते हुये हुणो से साठ–गॉठ कर ली थी, इसका सम्बन्ध समकालीन राष्ट्रीय आन्दोलन से स्थापित करते हुये डा० जगदीश चन्द्र जोशी कहते है, ''बौद्धो ने देश द्रोह कर हूणो का स्वागत केवल इसलिए किया कि वे भी आचार रूप मे बौद्ध धर्म को मानते थे। देश द्रोह के लिए ठीक यही बहाना मुस्लिम लीग ने ढूँढ निकाला। मुसलमान और अग्रेज दोनो एक ही खुदा और एक रसूल को मानते थे। हजरत मूसा भी दोनो को मान्य है। मुस्लिम लीग का कहना था की मुसलमान और अग्रेज मे धार्मिक समानता है और हिन्दू काफिर और बुत परस्त है अत  मुसलमानो को हिन्दुओ के विरोध मे अग्रेजो की सहायता करनी चाहिये। इस प्रकार के देश द्रोही मुस्लिम लीग मे ही नही काग्रेस मे भी भरे पडे थे। देश मे ऐसे लोगो की कमी न थी, सामन्तवर्ग, जमीदार और विदेशी उपाधिकारी सभी इसी श्रेणी मे थे'' ।[१५२] प्रसाद अपनी कविता 'महाराणा का महत्व' मे हिन्दू – मुस्लिम एकता की बात करते है, ''दो महत्वमय हृदय जब एक हो गये / फैलेगा फिर यह महान सौरभ यहॉ/ जिसके सुखमय गध प्रेम मे मत्त हो/ भारत के नर गावेगे यश आपका'' ।[१५३] 'वीर बालक', 'शिल्प सौन्दर्य' एव 'जहॉआरा' आदि रचनाओ मे प्रसाद मुस्लिम शासको के अत्याचारो की चर्चा करते है, ''हाय धर्म का प्रबल भयानक रूप यह/ महापाप को भी उल्लघन कर गया/ कितने गये जलाए कितने वध हुये/ निर्वासित कितने कब – कब नही/ बलि चढ़ गये धन्य देवी धर्मान्धते'' ।[१५४] प्रसाद की 'शिल्प सौन्दर्य' कविता मे प्रतिहिसा का समर्थन नही है और शिल्प (कला) ही प्रतिहिसा पर अकुश स्थापित करती है, ''सूर्यमल भी रूक गये हृदय भी रूक

गया/ भीषणता रूककर करूण सी हो गयी/ कहॉ नष्ट कर देगे यदि विद्वेष से – / इसको तो फिर एक वस्तु ससार की/ सुन्दरता से पूर्ण/ सदा के लिए ही/ हो जाएगी लुप्त''।[१५५] अपने निबन्ध सग्रह 'काव्य कला तथा अन्य निबन्ध' मे प्रसाद मध्यकालीन भारत को आतक और अस्थिरता का युग बताते है। साम्प्रदायिक विद्वेष के लिए प्रशासन (ब्रिटिश कालीन) को दोषी ठहराते हुये प्रसाद कहते है, ''तुम दोनो देखो राष्ट्र नीति/ शासक बन फैलाओ न भीत''।[१५६] कहानी 'अशोक' मे बौद्धो द्वारा जैन समूह पर अत्याचार का मार्मिक चित्रण है जो समसामयिक हिन्दु – मुस्लिम साम्प्रदायिक हिसा की ओर सकेत करता है। कहानी 'दासी' और 'चक्रवर्ती का स्तम्भ' का विषय भी मुस्लिम शासन का नकारात्मक चित्रण है। पर ध्यान रहे उनके नकारात्मक प्रवृत्ति के बावजूद प्रसाद अपनी कहानी 'ममता' मे हिन्दू नायिका को अपने पिता की हत्या करने वाले को शरण देते हुये दिखाते है, ''तुम चाहे कोई हो मै तुम्हे आश्रय देती हूँ मै ब्राह्मण कुमारी हूँ सब अपना धर्म छोड दे तो मै भी क्यो छोड दूँ''।[१५७] कहानी 'स्वर्ग के खण्डहर' मे चगेज खॉ के आक्रमण और आतक का चित्रण है, ''तलवार के बल पर शान्ति स्थापित कर पृथ्वी पर स्वर्ग बनाना चाहता है। पृथ्वी को केवल वसुन्धरा होकर मानव जाति के लिए जीने दो। अपनी आकाक्षा के लिये, कल्पित स्वर्ग के लिये इस महती को, इस धरणी को नरक न बनाओ जिसमे देवता बनने के प्रलोभन मे पडकर मनुष्य राक्षस न बन जाय शेख''।[१५८] प्रसाद सच्चे मुसलमानो की प्रशसा भी करते है, ''सच्चे तुर्क न होते कभी कृतघ्न है''।[१५९] 'विशाख' नाटक मे भी राज्य के आश्रयी धर्म विहार की आलोचना करते हुए प्रसाद कहते है, ''कानीर के विहार का बौद्ध महन्त जिसे राज्य की ओर से बहुत सी सम्पत्ति मिली है प्रमादी हो गया है। दीन दु खियो की कुछ नही सुनता – मोटे निठल्लो को एकत्र करके विहार मे विहार कर रहा है''।[१६०]

इस तरह प्रसाद हिन्दू – मुस्लिम धर्म की विकृतियो का परिष्करण करके एक मानवतावादी धर्म की स्थापना का प्रयास करते है उनके नाटको पर कुछ लोग हिन्दुवादी मान्यताओ को स्थापित करने का आरोप लगाते है पर जैसा कि विद्या खण्डेलवाल अपने निष्कर्ष मे कहती है, ''प्रसाद जी के नाटको की राष्ट्रीयता को हिन्दुत्व अथवा किसी सम्प्रदाय अथवा जाति के खूँटे से बँधा हुआ नही कहा जा सकता''।[१६१] रत्नशकर प्रसाद 'ककाल' उपन्यास की महत्ता स्थापित करते हुये इस सन्दर्भ मे लिखते है, ''ककाल उस युग का एक मात्र ऐसा बोल्ड उपन्यास है जो धार्मिक आडम्बर का न केवल पर्दाफास करता है बल्कि उसे सामाजिक सडन का प्रमुख कारण मानता है''। शभूनाथ स्वीकार करते है, ''प्रकृति हो या इतिहास प्रसाद का मुख्य सरोकार था अपने समय और समाज को बदलना। जितना सवेदनशील वे प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति थे उतना ही सचेत राजनीति के प्रति थे। उनका साहित्य

राजनीतिक घटनाओ की सीधी प्रतिक्रिया नही है पर जातीय स्वतत्रता, स्त्री मुक्ति, साम्प्रदायिक सप्रीति, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, समरसता की प्रतिध्वनियाँ उनकी रचनाओ मे नही है यह कौन कहेगा''।[१६२]

प्रसाद समकालीन समाज मे व्याप्त अस्पृश्यता का ऐतिहासिक समाधान ढूढते है। 'अजातशत्रु' नाटक मे प्रसेनजीत दासी पुत्र को सिहासन के अयोग्य बताते है तो गौतम उन्हे शिक्षा देते है, ''यह दम्भ तुम्हारा प्राचीन सस्कार है। क्यो राजन क्या दास – दासी मनुष्य नही है? . यह छोटे बडे का भेद क्या अभी इस सकीर्ण हृदय मे इस तरह घुसा है कि निकल नही सकता। क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अन्धविश्वासो को जो न जाने किस कारण होते आये है तुम बदलने के लिये प्रस्तुत नही हो''।[१६३] क्या इस चित्रण से समकालीन समाज मे अशपृश्यो के प्रति दृष्टिकोण मे परिवर्तन की बात प्रसाद नही कर रहे? 'स्कन्दगुप्त' मे प्रसाद कहते है, "हम लोग एक ही मूल धर्म की दो शाखाए है। आओ हम दोनो विचार के फूलो से दुख दग्ध मानवो का कठोर पथ कोमल करे''।[१६४] 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे प्रसाद शासको की भेदनीति का खुलासा करते हुये कहते है, ''केवल शस्त्र और कूटनीति के द्वारा सदाचारो के सिर पर ताण्डव नृत्य कर रहा है। वह सिद्धान्तहीन नृशस कभी बौद्धो का पक्षपाती कभी वैदिको का अनुयायी बनकर दोनो मे भेद नीति चलाकर बल सचय करता रहता है। मूर्ख जनता धर्म की ओट मे नचाई जा रही है''।[१६५] यही नही भारत की मत विभिन्नता को ध्यान मे रखते हुये प्रसाद 'सालवती' कहानी मे वैचारिक भिन्नता का विस्तृत चित्र प्रस्तुत करते है जिसमे सभी राष्ट्रीय नीति के सन्दर्भ मे एकमत रखते है, ''क्यो नही वज्जियो का एक तो स्थिर सिद्धान्त है ही अर्थात् हम लोग वज्जि सघ के सदस्य है राष्ट्र नीति मे हम लोगो का मतभेद तीव्र नही होता''।[१६६]

यही नही प्रसाद अपनी एक कहानी 'विराम चिन्ह' (१९३६) मे उस समय जगह – जगह फैले मन्दिर प्रवेश आन्दोलन का भी चित्रण करते है। वे कहते है, ''मन्दिर मे सब अछूत जाएगे''।[१६७] प्रसाद मन्दिर मे सभी उपेक्षित अछूत को प्रवेश करने की वकालत अपने आरम्भिक साहित्यिक रचनाओ मे ही करते है। प्रसाद 'मन्दिर' कविता मे कहते है, ''जिस पचतत्व से यह दिव्य देह मन्दिर/ उनमे से ही बना है दिव्य देह मन्दिर/ हर एक पत्थरो मे वह मूर्ति छिपी है/ शिल्पी ने स्वच्छकर दिखला दिया वही है/ मस्जिद, पगोडा, गिरजा किसको बनाया तूने/ सब भक्त भावना के छोटे बडे नमूने''।[१६८] इतना ही नही प्रसाद उसी मन्दिर को 'नमस्कार' करते है जिसमे, ''जिस मन्दिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है/ जिस मन्दिर मे रक, नरेश समान रहा है''।[१६९] इस तरह प्रसाद धार्मिक अस्पृश्यता के हर मुद्दे पर विमर्श करते हुए प्रतीत होते है और उसे इतिवृत्त प्रस्तुतीकरण के माध्यम से परम्परा से जोडने की पूरी कोशिश करते है। जैसा कि रामदरश मिश्र समीक्षात्मक रूप से स्वीकार करते है, ''प्रेमचन्द की तुलना मे कही अधिक गभीर और बहुत अधिक अध्ययन सम्पन्न होने के कारण प्रसाद सामाजिक दोषो

के लिये किसी वर्ग को दोषी ठहराने की भोडी भूल नही करते। मानव प्रकृति और इतिहास के गहरे पारखी होने के कारण वे दुर्बलताओ के उच्छेद का व्यर्थ परिणाम आग्रह न करके उनके उदात्तीकरण का प्रतिपादन करते है जो अधिक समाचीन है। हिन्दू धर्म की सर्वाधिक हानिकारिणी विकृत अस्पृश्यता के उच्छेद मे उनकी तीव्र रूचि है किन्तु वे यह भी जानते है कि ऐसी विकृति इस या उस रूप मे सर्वत्र विद्यमान है क्योकि दुर्भाग्यवश मनुष्य इतना सभ्य नही हो पाया है कि अपने जैसो से अपना जैसा व्यवहार कर सके"।[१९०]

**X X X X X**

नारी प्रश्न पर विमर्श प्रसाद अपने साहित्य मे बडे ही प्रखरता एव समग्रता के साथ करते है। 'ध्रुवस्वामिनी' उनके द्वारा लिखा गया नाटक न केवल उस समय के नारी प्रश्नो की अपितु आज के नारी प्रश्नों के उत्तर देने की पूरी कोशिश करता है। प्रसाद नारी को दया, क्षमा, करूणा आदि कोमल गुणो का प्रतीक मानते है और यह स्वीकार करते है कि समाज मे सकारात्मक मूल्यों की स्थापना एव प्रेरणा की स्रोत नारी ही है। उनके उपन्यास 'इरावती', 'तितली' तथा काव्यकृति 'कामायनी' एव नाटक 'राज्यश्री' नायिका प्रधान भावभूमि पर चित्रित है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक मे नायिका कहती है, "आज यह निर्णय हो जाना चाहिये कि मै कौन हूँ"।[१९१] बिना किसी अपराध को किये ही नारी जाति यन्त्रणा की शिकार होती है। ध्रुवस्वामिनी कहती है "कहते क्यो नही कि मेरा यही अपराध है कि मैने कोई अपराध नही किया है"।[१९२] इसका कारण प्रसाद बताते हुये कहते है, "पराधीनता की एक परम्परा सी उनकी नस–नस मे उनकी चेतना मे न जाने किस युग से घुस गई है"।[१९३] इस पराधीनता को घुसाने वाले कौन है पुरूषवर्ग, "पुरूषवर्ग, उन्हे उतना ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते है जितना उनके स्वार्थ मे बाधक न हो"।[१९४] 'कलावती की शिक्षा' कहानी मे प्रसाद कहते है, "लज्जा कभी न करना यह पुरूषो की चालाकी है जो उन्होने इसे स्त्रियो के हिस्से मे दिया है"।[१९५] ध्रुवस्वामिनी कहती है "पुरूषो ने स्त्रियो को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है। वह मेरे साथ नही चल सकता, यदि तुम मेरी रक्षा नही कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नही बचा सकते तो मुझे बेच भी नही सकते"।[१९६] अन्त मे ध्रुवस्वामिनी कहती है, "मेरा कोई रक्षक नही मै अपनी रक्षा स्वय करूँगी। मै उपहार मे देने की वस्तु शीतलमणि नही हूँ"।[१९७] विवाह धर्म स्त्रियो को बन्धन मे बाँधता है। उस धर्म का विरोध करते हुये 'ध्रुवस्वामिनी नाटक की एक पात्र मन्दाकिनी कहती है "आप धर्म नियामक है जिन स्त्रियो को धर्म बन्धन मे बाँधकर उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते है तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार कोई सरक्षण नही रख छोडते जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति मे अवलम्ब माँग सके। क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हे सतुष्ट

रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते है"?[१७८] 'चन्द्रगुप्त' नाटक की पात्र कार्नेलिया सुवासिनी से पूॅछती है, "तुम विवाहिता स्त्रियो को क्या समझती हो, सुवासिनी उत्तर देती है, धनियो के प्रमोद का कटा छटा हुआ शोभावृक्ष कोई डाली उल्लास से आगे बढी कुतर दी गई"।[१७९] 'ककाल' उपन्यास मे पुरूषो के व्यवहार का सामान्यीकरण करते हुये प्रसाद कहते है, "पुरूष स्त्रियो पर सदैव अत्याचार करते है कही नही सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरूष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया"।[१८०] इसी उपन्यास मे प्रसाद आगे कहते है, "पद्मिनी के समान जल मरना स्त्रियॉ ही जानती है और पुरूष केवल उस जली हुयी राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते है"। 'ककाल' उपन्यास मे ही एक स्त्रीपात्र कहती है, "स्त्री कुछ भी नही केवल पुरूषो की पूॅछ है विलक्षणता यही है कि यह पूॅछ कभी–कभी अलग भी की जा सकती है"।[१८१]

प्रसाद नारी प्रश्नो को बराबरी के दर्जे से सुलझाना चाहते है। 'आजातशत्रु' नाटक मे शक्तिमती कहती है, "यदि पुरूष इन कामो को कर सकता है तो स्त्रियॉ क्यो न करे? क्या उन्हे अन्त करण नही है? क्या उनका जन्मसिद्ध कोई अधिकार नही है? क्या स्त्रियो का सब कुछ पुरूषो की कृपा से मिली हुयी भिक्षा मात्र है? मुझे इस तरह पदच्युत करने को किसी का क्या अधिकार था"।[१८२] करायण उसका उत्तर देते हुये कहता है, "स्त्रियो के सगठन मे उनके शारीरिक एव प्राकृतिक विकास मे ही एक परिवर्तन है जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती है किन्तु अपने हृदय पर, वे अधिकार जमा सकती है उन मनुष्यो पर – जिन्होने समस्त विश्व पर अधिकार किया है। वे मनुष्य पर राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती है। तब उन्हे इस दुरभिसधि की क्या आवश्यकता है? जो केवल सदाचार और शान्ति को ही नही शिथिल करती किन्तु उच्छृखलताओ को ही आश्रय देती है। तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है और पुरूष वर्ग की सकीर्ण, कठोरता का उदाहरण है पुरूष और कोमलता की विशेषण है स्त्री जाति। पुरूष क्रूरता है तो स्त्री करूणा जो अन्तर्जगत का उच्चतम विकास है जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुये है। क्रूरता अनुकरण योग्य नही है उसे नारी जिस दिन स्वीकार कर लेगी उस दिन समस्त सदाचारो मे विप्लव होगा। फिर कैसी स्थिति होगी कौन कह सकता है"।[१८३] इसी नाटक मे मल्लिका नारी गुणो की परिभाषा करते हुये कहती है, "स्त्रियो का कर्तव्य है कि पाशववृत्ति, वाले क्रूरकर्मा पुरूषो को करूणाप्लुत करे। कठोर पौरूष के अनन्तर उन्हे जिस शिक्षा की आवश्यकता है उस स्नेह शीतलता और सदाचार का पाठ उन्हे स्त्रियो से सीखना होगा व्यर्थ स्वतत्रता और समानता का अहकार करके उस अपने अधिकार से हमको वचित न होना चाहिए"।[१८४]

नारी – पुरूष सम्बन्ध के सन्दर्भ मे नारी मुक्ति के प्रश्न पर प्रसाद के दृष्टिकोण को हमे समझ लेना चाहिए। प्रसाद उस आर्य सस्कृति की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे जिसके व्याख्याता मनु जैसे शास्त्रकार थे जो नारियो पर पुरूष के सरक्षण को अनिवार्य स्वीकार करते है। ऐसे मे ध्रुवस्वामिनी भले ही रामगुप्त जैसे कायर, राष्ट्रद्रोही, क्लीव पुरूष से मुक्त हो जाती है पर उसे पूर्ण मुक्ति भी नही चाहिए वह वीर, राष्ट्रनायक और कुलगौरव चन्द्रगुप्त का अधिकार बडी सहजता से स्वीकार कर लेती है । अत नारी मुक्ति पुरूष सरक्षण मे ही आभासित है उसका स्वरूप जरूर बदल जाता है सकारात्मक दृष्टिकोण रखने वाला पुरूष, पर नारी जाति की पात्रता किसी के अधिकार मे रहने मे ही है वह भी पुरूष। 'अजातशत्रु' नाटक मे प्रसाद कहते है, "कुलशील पालन ही तो आर्य ललनाओ का परमोज्जवल आभूषण है स्त्रियो का वही मुख्य धन है"।[१८५] इसी नाटक मे बासवी कहती है, "आर्यपुत्र की सेवा करके नारी जन्म सार्थक कर लेना यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्‌गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है तो पुरूषार्थ का ढोग क्यो करती" ।[१८६] इसी तरह 'कामायनी' मे श्रद्धा का मनु के साथ और 'तितली' मे तितली का मधुबन के साथ मिलने मे ही नारी मुक्ति है, यद्यपि यह मिलन बराबरी के स्तर पर और प्रेम पर आधारित होता है। इस तरह प्रसाद की नारी मुक्ति दृष्टि उनके युग और दृष्टि के साथ – साथ चलती है अतिक्रमण बहुत कम कर पाती है। फिर भी राजकिशोर स्वीकार करते है, "एक सस्था के रूप मे विवाह मे उनकी अटूट आस्था है लेकिन विवाह यदि यन्त्रणापूर्ण हो जाये तो उससे मुक्ति का कुछ उपाय होना चाहिए। प्रसाद ने स्त्री–पुरूष सम्बन्ध के इस पहलू के बारे मे तब सोचा जब तलाक को हिन्दू समाज मे मान्यता नही मिली थी। हिन्दू स्त्री को कानूनी रूप से सुविधा मिली १९५६ मे जब हिन्दू कोड बिल स्वीकार किया गया उस वक्त इसका प्रचण्ड विरोध हुआ था किन्तु प्रतिक्रियावादी शक्तियो को अन्तत झुकना पडा। लेकिन प्रसाद बहुत पहले ही यह सघर्ष छेड चुके थे। ध्रुवस्वामिनी का महत्व इसी मे है वह भारतीय साहित्य मे स्त्री के अधिकारो का सभवत पहला स्पष्ट घोषणा पत्र है" ।[१८७]

नारी के कोमल गुणो को परिभाषित करते हुये प्रसाद कहते है, "नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पग तल मे/ पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल मे" ।[१८८] प्रसाद यह भी दिखलाने की कोशिश करते है यदि नारी मे सकारात्मक गुणो का अभाव हो जाय या इन गुणो से पुरूषो को प्रशिक्षित न करे तो सृष्टि मे नकारात्मक प्रवृत्तियॉ बलवती होकर विनाशलीला रच सकती है। 'अजातशत्रु' नाटक मे बासवी और मल्लिका दया, क्षमा एव करूणा की प्रतीक है पर रानी छलना नकारात्मक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन देती है फलत सबकुछ गडबडा जाता है और काशी की राजकुमारी वज्जिरा ही अजातशत्रु मे अपने कोमल गुणो से हृदय परिवर्तन करा पाती है। छलना अन्त मे प्रायश्चित

करती है। 'कामायनी' मे मनु जब श्रद्धा से अलग होते है तो विप्लव को आमत्रित करते है। उन्हे अन्त मे पश्चाताप होता है और वे श्रद्धा, जो प्रसाद द्वारा रचित भारतीय नारी का आदर्श चरित्र है, के अनुगामी हो जाते है। 'जन्मेजय का नाग यज्ञ' नाटक मे मनसा प्रसाद द्वारा अनुमानित नारी सुलभ गुणो से मुक्त हो जाती है फलत भीषण नरसहार होता है। इसी नाटक की एक पात्र मणिमाला उस पर व्यग करती है, "तुम त्रिशूल लिए हुये वज्र कठोर चरणो से इन शवो पर रण चण्डी का नृत्य करो। ससार भर की रमणीयता और कोमलता वीभत्स क्रन्दन करे, और तुम्हारे रमणीसुलभ मातृभाव की धज्जियाँ उड जाय। विश्व भर मे रमणियो के नाम का आतक छा जाय। सेवा, वात्सल्य, स्नेह तथा इसी प्रकार की समस्त दुर्बलताओ के कही चिन्ह तक न रह जाय क्योकि सुनती हो इन सब बिडम्बनाओ से केवल स्त्रियॉ ही कलकित है। हा! बुआ एक बार विकट हुकार भर दो। मनसा–बस बेटी बस मेरी भूल थी पर वह आज समझ आ गयी। यदि स्त्रियॉ अपने इगित की आहुति न दे तो विश्व मे क्रूरता की अग्नि प्रज्जवलित ही नही हो सकती। बर्बर रक्त को खौला देना इन्ही दुर्बल रमणियो की उत्तेजनापूर्ण स्वीकृति का कार्य है। उनकी कातर दृष्टि मे जो बल कर्तव्य शक्ति है वह मानव शक्ति का सचालन करने वाली है जब अनजान मे उसका दुरुपयोग होता है तब तत्काल ही इस लोक मे दूसरा ही दृश्य उपस्थित हो जाता है"।[१८९] 'कामायनी' मे भी प्रसाद कहते है, "अवशिष्ट रह गई अनुभव मे अपनी अतीत असफलता सी/ लीला विलास की खेत भरी अवसाद मयी श्रम दलिता सी/ यह आज समझ तो पाई हूँ मै दुर्बलता मे नारी हूँ/ अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मै सबसे हारी हूँ"।[१९०] यही नही प्रसाद नारी आन्दोलन के खतरे भी उपस्थित कर देते है, "मै जभी तोलने को करती उपचार स्वय तुल जाती हूँ"।[१९१]

प्रसाद साहित्य मे नारी केवल कोमल गुणो (त्याग, क्षमा, दया आदि) की ही धात्री नही है वरन सकारात्मक वीरता की प्रेरक है। वह वीरता जिसका उपयोग राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा आदि के लिये आवश्यक माना जाता है। 'अजातशत्रु' नाटक की नायिका मल्लिका, 'स्कन्दगुप्त' नाटक की पात्र देवसेना, जयमाला, अनन्तदेवी, कमला, 'चन्द्रगुप्त' नाटक की पात्र अलका, 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की पात्र ध्रुवस्वामिनी आदि उस वीरता की प्रेरक है जिसकी राष्ट्र को आवश्यकता है। इसी तरह 'तितली' उपन्यास की नायिका तितली, शैला और 'ममता' कहानी की पात्र ममता और 'पुरस्कार' कहानी की पात्र मधुलिका सामाजिक सुधार की प्रेरक नारी पात्र है। कमला स्कन्दगुप्त को प्रेरित करती है, "कौन कहता है कि तुम अकेले हो समग्र ससार तुम्हारे साथ है। सहानुभूति को जागृत करो यदि भविष्य से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है तो तुम उस अनिवार्य स्रोत से लड जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वासपूर्ण आघात से विध्य के समान कोई शैल उठ खडा होगा जो उस विघ्न स्रोत को लौटा देगा।

राम और कृष्ण के समान क्या तुम भी अवतार नही हो सकते हो? समझ लो जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझकर करता है वही ईश्वर का अवतार है। उठो स्कन्द आसुरी वृत्तियो का नाश करो, सोनेवालो को जगाओ रोनेवालो को हँसाओ। आर्यावर्त तुम्हारे साथ होगा और उस आर्य पताका के नीचे समग्र विश्व होगा वीर''।[१६२] इसी नाटक की पात्र जयमाला कहती है, ''वीर! स्त्रियो की, ब्राह्मणो की, पीडितो की और अनाथो की रक्षा मे प्राण विसर्जन करना क्षत्रिय का धर्म है। एक प्रलय की ज्वाला अपने तलवार से फैला दो। भैरव के श्रृगीनाद के समान प्रबल हुँकार से शत्रु हृदय कँपा दो! वीर! बढो गिरो तो मध्यान्ह सूर्य के समान आगे पीछे सर्वत्र आलोक और उज्जवलता रहे''।[१६३] यही नही वीर पुत्र की माँ बनने मे ही नारी का गौरव प्रसाद समझते है। इसी नाटक मे कमला कहती है कि, ''मुझे इस बात का दु ख है कि मै मर क्यो नही गई मै अपने कलक पूर्ण जीवन को क्यो पालती रही भटार्क, तेरी माँ को एक ही आशा थी कि पुत्र देश का सेवक होगा म्लेच्छो से पददलित भारत भूमि का उद्धार करके मेरा कलक धो डालेगा मेरा सिर ऊँचा होगा। परन्तु हाय''। तब गोविन्दगुप्त ऐसी माताओ पर गर्व करते हुये कहता है, ''तुम जैसी जननियाँ जब तक उत्पन्न होगी तब तक आर्य राष्ट्र का विनाश असम्भव है''।[१६४]

प्रसाद नारी के वैधव्य को भी सम्मानित करते है। 'ककाल' उपन्यास मे हिन्दू विधवा कैसे कुचक्र का शिकार होती है इसका वर्णन करते हुये प्रसाद लिखते है, ''विधवा का नाम रामा है बरेली की एक ब्राह्मण वधू है। दुराचार का लाछन लगाकर उसके देवर ने उसे यहाँ लाकर छोड दिया इसके पति के नाम कुछ भूमि थी उस पर अधिकार जमाने के लिये उसने यह कुचक्र रचा है''।[१६५] चरित्रवादी दोष के सन्दर्भ मे पुरूष प्रधान समाज के दोहरे दृष्टिकोण का खुलासा करते हुये 'विशाख' नाटक मे तरला कहती है, ''हम लोगो ने दूसरे की ओर हँसकर देखा कि प्रलय मचा व्यभिचारिणी हुई और तुम्हारे ऐसे साठ वर्ष के खपट्टो को प्रेम वाले दूध के दाँत जमे''।[१६६] समाज सुधार का व्रत और उस पर भाषण एक बात है और उस पर अमल करना दूसरी बात ऐसा अर्न्तविरोध राष्ट्रीय आन्दोलन के समय मे राष्ट्रीय नेताओ के सन्दर्भ मे भी प्रकाश मे आता रहा है और प्रसाद के साहित्य मे भी 'ककाल' का नायक मगलदेव एक अज्ञात कुल की अनाथ कन्या से विवाह की पूरी तैयारी के बाद पलायन कर जाता है यद्यपि प्रसाद का आदर्शवादी दृष्टिकोण अन्त मे उससे क्षमा मँगवाता है। ममता और मल्लिका जैसे प्रसाद के पात्र अपने वैधव्य को अभिशाप नही मानती बल्कि समाज सेवा राष्ट्र सेवा मे जुटी रहती हैं 'चित्तौर उद्धार' कहानी मे विधवा राजकुमारी को राजा हम्मीर सहर्ष स्वीकार करता है और कहता है, ''आओ तुम्हे मुझसे समाज ससार – कोई भी नही अलग कर सकता''।[१६७]

प्रसाद बाल विवाह, सतीप्रथा, वेश्यावृत्ति, बहुपत्नी विवाह आदि का भी विरोध करते है तथा सहमति पर आधारित प्रेम विवाह का समर्थन करते है । 'चित्तौर का उद्धार' कहानी मे राजकुमारी कहती है, "सात वर्ष की अवस्था मे व्याह हुआ आठवे वर्ष विधवा हुई"।[१९८] ध्रुवस्वामिनी, मणिमाला, अलका, शैला, कार्नेलिया, देवसेना, सुवासिनी आदि स्त्रियॉ व्यस्क और राजनीति मे सक्रियता के बाद भी अविवाहित रहती है और उसी से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा रखती है जिससे प्रेम है। सती प्रथा का भी विरोध प्रसाद अपने साहित्य मे करते है। राज्यश्री को सती होने के पूर्व बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र सती होने से बचाता है और समाज सेवा के लिए प्रेरित करता है। चन्द्रगुप्त कार्नेलिया को आत्महत्या से बचाता है। यद्यपि 'प्रलय की छाया' कविता मे कमला अपने को सती न करके पश्चाताप करती है क्योकि मुस्लिम सरक्षण उसे यन्त्रणापूर्ण लगता है। प्रसाद इस बात को प्राय स्वीकार करते है कि पराधीनता सहन से उत्तम मार्ग जीवन त्याग है। इसी तरह 'प्रतिध्वनि' कहानी मे नारी वैधव्य का दारूणपूर्ण चित्रण है और 'सदेह' कहानी मे वैधव्य का आदर्शीकरण किया गया है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक, 'प्रलय की छाया' कविता 'अजातशत्रु' आदि मे स्त्रियो का द्वन्द्व दिखाकर बहुपत्नी विवाह का विरोध करते है। कहानी 'सालवती' वेश्यावृत्ति से उत्पन्न समस्या तथा उसकी समाप्ति के लिये लिखी गयी अत्यन्त मार्मिक एव त्यागपूर्ण कहानी है। सालवती घोषणा करती है कि आज से कोई स्त्री वैशाली राष्ट्र मे वेश्या न होगी।

रत्नशकर प्रसाद, प्रसाद की नारी दृष्टि का वर्णन करते हुये स्वीकार करते है "प्रसाद ने आरम्भ मे स्त्रियो का प्रयोग आदर्शीकृत रूप मे किया। 'जन्मेजय का नाग यज्ञ' से लेकर 'चन्द्रगुप्त' तक स्त्रियो का एक आदर्शीकृत स्वरूप मिलता है, जिसमे स्थिर चरित्रो का उपयोग किया गया है परन्तु 'ध्रुवस्वामिनी' मे यह समस्या भिन्न रूप मे आती है। वस्तुत 'प्रतिध्वनि' से स्त्रियो का आदर्शीकृत स्वरूप बदला है और यह बदलाव नेतृत्व के स्तर पर भी है। 'ध्रुवस्वामिनी', 'कामायनी' और 'तितली' मे स्त्रियॉ प्रतिनिधित्व करती है"।[१९९] निश्चित रूप से यह परिवर्तन राष्ट्रीय आन्दोलन मे स्त्रियो के व्यापक स्तर पर आन्दोलन मे सहभागिता का परिणाम हो सकता है। प्रसाद नारी आन्दोलन के उभारो और उनकी समस्याओ को चित्रित करते हुये भी अपनी एक सीमा तय कर लेते है। 'तितली' मे प्रसाद शैला से कहलवाते है, "जो विदेशी है और जिसका माडल स्त्रियो को अधिक प्रेरित करता है 'स्त्री–स्त्री ही रहेगी कठिन पीडा से उद्विग्न होकर आज का स्त्री समाज जो कुछ करने जा रहा है वह क्या वास्तविक है? वह तो विद्रोह है सुधार के लिये इतनी उद्दण्डता ठीक नही"।[२००] 'ककाल' मे प्रसाद कहते हैं "उनकी पूर्णता की शिक्षा के साथ वे उस योग्य बनाई जाएगी कि घरो मे पर्दो मे दिवारो के भीतर नारी जाति के सुख स्वास्थ्य और सयत स्वतत्रता की घोषणा करे"।[२०१] प्रसाद स्वीकार करते है,

"सीता का निर्वासन इतिहास विश्रुत महान सामाजिक अत्याचार है"।[२०२] गगा प्रसाद पाण्डेय 'ककाल' उपन्यास की समीक्षा नारी सदर्भ मे करते हुये कहते है, "ककाल का मुख्य सदेश है स्त्रियो का सम्मान करना उनकी समानता को स्वीकर करना और धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारो को सक्रिय विरोध के द्वारा रोकना। जातिवाद, वर्गवाद और धार्मिक सकीर्णता के ऊपर स्त्री – पुरूष के नैतिक अभिजात्य उसके व्यक्ति स्वातत्रय का समर्थन पानी मे तेल की तरह उतराता है वास्तव मे ककाल जागरण युग की श्रेष्ठ साहित्यिक कृति है"।[२०३]

**X X X X X**

क्रातिकारी आन्दोलन के सन्दर्भ मे प्रसाद साहित्य का मूल्याकन करते हुए हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि वे सामान्यत हिसा प्रतिहिसा मे विश्वास नही करते थे यद्यपि राष्ट्रहित ही उनका प्राथमिक और अन्तिम दोनो रूपो मे ध्येय है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे चाणक्य कहता है "चाणक्य यह नही मानता कि कुछ भी असभव है...मै क्रूर हूँ केवल वर्तमान के लिये भविष्य के सुख और शान्ति के लिए, परिणाम के लिए नही, श्रेय के लिए मनुष्य को सब त्याग करना चाहिये"।[२०४] वीर चन्द्रगुप्त अपने शत्रु की घायलावस्था मे सुरक्षा करता है। यद्यपि शकटार नन्द के शासन के अत्याचार से ऊबकर अवसर पाने पर, "छुरा निकालकर नन्द की छाती मे घुसेड देता है"।[२०५] पर यह उसकी निजी शत्रुता थी राष्ट्र के सन्दर्भ मे ऐसे कृत्यो के खिलाफ है प्रसाद । 'जन्मेजय का नागयज्ञ' मे माण्डवक कहता है, "मैने इस प्रतिहिसा का आज से परित्याग कर दिया है"।[२०६] यही नही सरमा अपने पुत्र द्वारा गुप्त रूप मे हत्या करने की आलोचना करती है, "हत्या – तू सरमा का पुत्र होकर गुप्त रूप से हत्या करना चाहता है यह कलक मै नही सह सकती। तू उनसे लडकर वही मर जाता या मार डालता वह मुझे स्वीकार था"।[२०७] 'अजातशत्रु' नाटक मे भी मल्लिका विरूद्धक को इसलिए धिक्कारती है क्योकि उसने छल से हत्या की थी। 'इरावती' उपन्यास, जो कि प्रसाद द्वारा लिखित अधूरी रचना है, मे एक गुप्त सगठन 'स्वास्तिक' की चर्चा है पर प्रसाद की उसके प्रति कोई सहानभूति नही है दरअसल वह शासन की कमजोरियो का लाभ उठाकर ऐसे गतिविधियो मे लिप्त रहता है।

'तितली' उपन्यास मे मधुबन मन्दिर के महन्त की गला दबाकर हत्या कर देता है पर उसके बाद वह एक वेश्या के शरण मे कलकत्ता पलायन कर जाता है जहॉ गिरफ्तार होकर जेल की सजा काटता है। प्रसाद उसकी इस गतिविधि को कही भी महिमान्वित नही करते प्रतीत होते बल्कि वह उसकी भूल जैसा चित्रित करते है। हॉ इतना होने के बाद भी महन्त जीवित रहता है जैसे मधुबन के कृत्य पर वयग करता है। 'तितली' जो मधुबन की पत्नी थी अकेली जीवन पथ पर सघर्ष करते हुये ग्राम सुधार एव सगठन मे जुटती है। 'तितली' उपन्यास मे ही कृषक असन्तोष का चित्रण जरूर है पर

उनको हिसात्मक गतिविधि के लिए कही भी प्रेरित नही किया गया है। 'ककाल' उपन्यास मे समाज का नग्न चित्रण करते हुये प्रसाद उसका उत्तर किसी क्रातिकारी सगठन द्वारा नही अपितु 'भारत सघ' सस्था एव सुधार द्वारा ढूढने का प्रयत्न करते प्रतीत होते है। यद्यपि प्रसाद जिस आधार भूमि मे अपनी रचना तैयार करते है जहॉ हिसा की यथार्थता सत्य के रूप मे स्थापित थी पर प्रसाद उसके प्रशसक नही बल्कि आलोचक के रूप मे अपने साहित्य को लेकर उपस्थित होते है।

प्रसाद ने अपनी कहानियो मे आमतौर पर क्रातिकारी हिसात्मक गतिविधियो का समर्थन नही किया है पर उनकी कहानी 'गुण्डा' प्रसाद के आम सिद्धान्त के प्रतिकूल बुनावट लिए हुये है। पर इस "गुण्डा सस्कृति" के अभ्युदय का प्रसाद तर्क सम्मत कारण भी प्रस्तुत करते है। जब नया प्रशासनिक ढॉचा अपनी जगह ले रहा था और पारम्परिक ढॉचे से उसकी अनबन भी होती रहती थी "रेजीडेण्ट साहब से महराज जी कि अनबन चल रही है। उस समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद के शस्त्र बल के सामने झुकते देखकर काशी के विच्छिन्न एव निराश नागरिक जीवन ने एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की, वीरता जिसका धर्म था। अपनी वीरता पर मर मिटना, सिह वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण भिक्षा मॉगने वाले कायरो तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्दी पर शस्त्र न उठाना, सताए हुये निर्बलो को सहायता देना, प्रत्येक क्षण प्राणो को हथेली पर लिए घूमना उसका बाना था इन्हे लोग काशी मे गुण्डा कहते थे"।[२०८] इस कहानी के द्वारा जैसे प्रसाद देश के राजतत्र की रक्षा तथा ब्रिटिश सत्ता का विरोध करना चाहते थे। पर प्रसाद ने इनके सगठन और उसके नेतृत्व को सही ढग से परिभाषित नही किया जिससे यह समकालीन राजनीति मे सक्रिय क्रातिकारी आन्दोलन का प्रतिबिम्ब नही बन पाया है। यहॉ उल्लेखनीय है कि काशी प्रसाद की मूल नगरी भी थी जिसकी भूमि पर बुनी यह यथार्थवादी कहानी जैसे एक सत्य को उद्घाटित करते हुये प्रतीत होती है, जिसमे ब्रिटिश सत्ता की असफलता (सुरक्षा के सदर्भ मे), काशी का गौरव एव समकालीन समाज का भय बडे ही बेबाकीपन एव सूक्ष्मता से चित्रित है। प्रसाद अपनी कविता मे भी चाहे 'महाराणा का महत्व' हो या 'कामायनी' सभी मे हिसात्मक चित्रण के बाद भी अन्तत उसके विरोध मे खडे प्रतीत होते है। प्रसाद देश प्रेम एव क्राति की प्रेरणा सीधे न देकर प्रतीकरूप मे अप्रत्यक्ष ढग से देते है जैसा कि अयोध्यासिह स्वीकार करते है, "यह सच है कि प्रसाद की रचनाओ मे सीधे ब्रिटिश शासको के खिलाफ वह सच नही सुनाई पडता जो उस जमाने के कितने ही लेखको की कृतियो मे पाया जाता है। यह भी सच है कि उन्हे ब्रिटिश शासको का कोपभाजन भी नही होना पडा था जैसा कि उस समय के कितने ही लेखको को होना पडा था लेकिन इसके बावजूद प्रसाद ने अपनी रचनाओ द्वारा देशवासियो के अन्दर देश प्रेम की भावना पैदा करने और स्वतत्रता की प्राप्ति के लिए सघर्ष की प्रेरणा देने का जो प्रयास किया वह सराहनीय है"।[२०९] विद्या

खण्डेलवाल समीक्षात्मक रूप से स्वीकार करती है, "राजनीतिक विक्षोभ या प्रचण्ड उग्रविद्रोहवाद का दर्शन उनकी रचनाओ मे बहुधा प्रश्रय नही पाता। दुख और असन्तोष के बादल प्रसाद के नाटको मे अधड और तूफान की क्रान्ति नही सृष्ट कर पाता अपितु सर्जनात्मक, रचनात्मक साधना की सरस रिमझिम बनकर बरस जाते है सस्कृति और आदर्शवादी चेतना का विवेक सगत अनुशासन है वहाँ"।[२१०]

प्रसाद अपनी रचना दृष्टि एव उसकी सृष्टि की सीमा के कारण स्वदेशी आन्दोलन से जो उनके समय मे राष्ट्रव्यापी रूप मे चल रहा था पूरी तरह जगह नही बना पाता यद्यपि अपनी सीमा के बावजूद प्रसाद स्वदेशी आन्दोलन के विरोध मे कही नही खडे दिखाई देते बल्कि अवसर और जगह मिलने पर उनकी लेखनी उसकी प्रेरणा के लिए चल ही देती थी। प्रसाद अपने देश से सर्वाधिक प्रभावित थे और उससे समर्पण के स्तर पर प्रेम करते थे और समकालीन समाज मे फैले अनाचारो एव लम्बी दासता से विक्षुब्ध थे फिर भी उसकी सर्जना और सकारात्मक मूल्यों की स्थापना के लिए प्रसाद हमेशा प्रयास करते रहे। 'कामायनी' मे तकली का विज्ञापन एव राणाप्रताप आदि वीरतापूर्ण आख्यानो का विज्ञापन प्रसाद के स्वदेश प्रेम को ही दिखाता है। हॉ यह जरूर है कि प्रसाद अपने स्वदेशी विचारधारा को वह आर्थिक स्वरूप नही दे पाये जो समकालीन सृजन के लिए आवश्यक था। 'ककाल' मे इसकी उपलब्धता न होना निश्चित रूप से खलता है। 'तितली' उपन्यास मे इसका (खादी) उल्लेख मात्र है। 'कामना' नाटक मे तकली उदास है। अपने अन्तिम उपन्यास (अपूर्ण) 'इरावती' मे स्वदेश मे निर्मित प्रसिद्ध वस्तु केन्द्रो का विज्ञापन करते चलते है। "काशी का बना स्वर्ण तारो से खचित नीला लॅहगा मरकत का हार"[२११] तथा इसी तरह "कोमल काश्मीरी कम्बलो"[२१२] का उल्लेख उनके स्वदेश प्रियता को ही दर्शाता है।

भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य एव प्राचीन वैचारिक एव भौतिक वैभव का चित्रण प्रसाद ने जितनी सहजता से और सौन्दर्यपूर्ण ढग से किया है अन्यत्र दुर्लभ है यह चित्रण किसी भी भारतीय को आत्मविश्वास से जहॉ भर देता है वही किसी विदेशी को अभिभूत करता है या इर्ष्या का कारण बनता है। प्रसाद भारतीय मूल से तो इसकी प्रशसा करवाते ही है विदेशी राजकुमारी कार्नेलिया से भी यह गीत गाने को विवश करते है, "अरूण यह मधुमय देश हमारा जहॉ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा"।[२१३] इस तरह प्रसाद स्वदेशी के समर्थक है पर उनकी दृष्टि एव स्वरूप भिन्न शैली मे सामने आती है।

**X X X X X**

प्रसाद भारतीय समाज की लम्बी दासता के लिए उत्तरदायी साम्राज्यवाद के खिलाफ अपने साहित्य को सीधे-सीधे न खडा करके ऐतिहासिक सदर्भ मे खडा करने का यत्न करते है ।

यूनानी और हूण आक्रमण के विरोध मे समकालीन भारतीय शक्ति अन्तर्विरोध के बावजूद कैसे लडकर उनपर विजय प्राप्त करती है, इसका सजीव चित्रण प्रसाद नाटको मे करते है, क्योकि प्रसाद का मत था, "मनुष्य अपनी दुर्बलता से भली भॉति परिचित रहता है, परन्तु उसे अपने बल से भी अवगत होना चाहिए"।[२१४] प्रसाद ऐतिहासिक आख्यानो को साहित्यिक बाना पहनाकर भारतीय जनता को उस गौरव से परिचित कराकर उसमे आत्मविश्वास डालना चाहते है जो लम्बी दासता के कारण भारतीय जनता खो चुकी थी । भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के पूर्व यह मान्यता प्रचलित थी कि भारत आध्यात्मिकता का देश है और पाश्चात्य देश भौतिकता के देश है और इन धुर विरोधी शक्तियो मे सघर्ष चल रहा है जबकि इनका एक दूसरे से मेल होना चाहिये। दोनो का सगम दोनो के हित मे है । कार्नेलिया से जयशकर प्रसाद, 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे कहलवाते है, "सिकन्दर ने भारत से युद्ध किया है और मैने भारत का अध्ययन किया है । मै देखती हूँ कि यह ग्रीक और भारतीयो के अस्त्र का ही नही, इसमे दो बुद्धियॉ भी लड रही है । यह अरस्तु और चाणक्य की चोट है सिकन्दर और चन्द्रगुप्त उसके अस्त्र है"।[२१५] कार्नेलिया भारत से प्रभावित है, वह कहती है, "मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहॉ के श्यामल कुज, घने जगल, सरिताओ का माला पहने हुए शैल श्रेणी, हरी–भरी वर्षा, गर्मी की चॉदनी, शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरला कृषक बालिकाए काव्य काल की सुनी हुई कहॉनियो की जीवित प्रतिमाएँ है। यह स्वप्नो का देश, यह त्याग और ज्ञान का पालना यह प्रेम की रग भूमि – भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नही। अन्य देश मनुष्यो की जन्मभूमि है यह भारत मानवता की जन्मभूमि है"।[२१६] "सिकन्दर कहता है," आर्यवीर मैने भारत मे हरक्यूलिस, एचिलिस की आत्माओ को भी देखा है और देखा है डिमास्थनीज को, सभवत प्लेटो और अरस्तु भी होगे । मै भारत का अभिनन्दन करता हूँ। .. मै तलवार खीचे हुये भारत मे आया हृदय देकर जाता हूँ। विस्मय विभुग्ध हूँ जिनसे खड्ग परीक्षा हुई थी, युद्ध मे जिनसे तलवारे मिली थी, उनसे हाथ मिलाकर–मैत्री के हाथ मिलाकर जाना चाहता हूँ"।[२१७]

यही नही साम्राज्यवादी शक्तियॉ कैसे अत्याचार फैलाती है उसके सदर्भ मे चन्द्रगुप्त कहते हैं, "यवन आतक फैलाना जानते है और उसे अपनी राजनीति का प्रधान अग मानते है। निरीह साधारण प्रजा को लूटना, गॉव को जलाना उनके भीषण किन्तु साधारण कार्य हैं"।[२१८] यही नही हूण सेनापति भी ऐसे अत्याचार करते है, "इन बालको को तेल से भीगा हुआ कपडा डालकर जलाओ और स्त्रियो को गरम लोहे से दागो"।[२१९] यही नही साम्राज्यवादी विस्तार की लिप्सा की भी प्रसाद आलोचना करते है। 'राज्यश्री' नाटक मे हर्ष कहता है,"मै अकारण दूसरो की भूमि हडपने वाला दस्यु नही हूँ. हम लोग साम्राज्य नही स्थपित किया चाहते थे। मगध के सम्राटो की दुर्बलता से उत्तरापथ हूणो से अरक्षित था

आपतत मुझे करना पडा"।[२२०] 'चन्द्रगुप्त' मे अपनी सीमा सुरक्षित कर लेने के बाद सिकन्दर से सधि करके उसकी पुत्री से विवाह करके सम्बन्ध को स्थायी मैत्री का रूप चन्द्रगुप्त दे देता है न कि अपनी सीमा बढाने को उद्यत रहता है।

साम्राज्यवादी शासन के कारण देश की स्थिति क्या हो गयी इसका चित्रण प्रसाद करते हुये कहते है, "ससार मे छल प्रवचना और हत्याओ को देखकर कभी–कभी मान ही लेना पडता है कि यह जगत ही नरक है। कृतज्ञता और पाखण्ड का साम्राज्य यही है। छीना झपटी, नोच खसोट, मुख मे से आधी रोटी छीन कर भागने वाले विकट जीव यही तो है। श्मशान के कुत्तो से बढकर मनुष्यो की पतित दशा है"।[२२१] "देश पर भीषण आतक है"।[२२२] 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे विदेशी सकट के सन्निकटता का चित्रण करते हुये प्रसाद चाणक्य से कहलवाते है, "यवनो की विकट वाहिनी निषाद पर्वतमाला तक पहुँच गई है। तक्षशिलाधीश की भी उसमे अभिसधि है सभवत समस्त आर्यावर्त पदाक्रान्त होगा। उत्तरापथ मे बहुत से छोटे–छोटे गणतत्र है वे उस सम्मिलित पारसीक यवन बल को रोकने मे असमर्थ होगे। अकेले पर्वतेश्वर ने साहस किया है, इसलिए मगध को पर्वतेश्वर की सहायता करनी चाहिए"।[२२३]

जयशकर प्रसाद साम्राज्यवादी विदेशी सत्ता के समक्ष राष्ट्र को खडा करने की कोशिश अपने साहित्य के माध्यम से करना चाहते है। साम्राज्यवाद का सहयोग करने पर आम्भीक पश्चाताप करता है। ऐसा करके जैसे समकालीन ब्रिटिश सत्ता के समस्त सहयोगियो पर चोट करते हुये प्रतीत होते है। ऐसा ही प्रायश्चित वे अपने नाटक 'प्रायश्चित' मे जयचन्द द्वारा चित्रित कर चुके थे पर 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे उन शक्तियो के द्वारा साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीय एकीकरण की भी बात करते है। साथ ही प्रसाद आह्वान भी करते है, "आज आर्य जाति का प्रत्येक बच्चा सैनिक है सैनिक छोडकर कुछ भी नही। आर्य कन्याए अपहरण की जाती है हूणो के विकट ताण्डव से पवित्र भूमि पदाक्रान्त है कही देवता की पूजा नही होती। सीमा की बर्बर जातियो का राक्षसी वृत्ति का प्रचण्ड आतक फैला है। इसी समय आर्य जाति तुम्हे पुकारती है – सम्राट होने के लिये नही उद्धार युद्ध मे सेनानी बनने के लिये – सम्राट"।[२२४] 'चन्द्रगुप्त' मे अलका कहती है, "जन्मभूमि मे भक्तो का आज जागरण है। देखते नही आज प्राच्य मे सूर्योदय हुआ है। स्वय सम्राट चन्द्रगुप्त तक इस महान आर्य साम्राज्य के सेवक है। स्वतत्रता के युद्ध मे सैनिक और सेनापति का भेद नही"।[२२५]

साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिये प्रसाद प्रत्येक साधन का समर्थन करते है। चाणक्य कहता है, "चाणक्य सिद्धि देखता है साधन चाहे कैसे हो"।[२२६] यही नही अलका पर्वतेश्वर की प्रणयिनी तक बनने की भी इस शर्त पर स्वीकृति देती है कि वह यवनो से सम्बन्ध विच्छेद कर ले। यही नही प्रसाद साम्राज्यवाद से सन्धि बराबरी के आधार पर चाहते है। चन्द्रगुप्त कहता है, "मै मगध का उद्धार

करना चाहता हूँ परन्तु यवन लुटेरो की सहायता से नही''।[२२७] यद्यपि प्रसाद साम्राज्यवादी शक्तियो से स्थायी शत्रुता नही चाहते है। युद्ध को अपनी जगह रखते है पर सधि–मैत्री भी आवश्यक मानते है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे स्थायी मैत्री की वकालत प्रसाद करते है, ''चाणक्य – किन्तु सधिपत्र स्वार्थो से प्रबल नही होते। हस्ताक्षर तलवारो को रोकने मे असमर्थ होगे। तुम दोनो ही सम्राट हो, शस्त्र व्यवसायी हो फिर भी सघर्ष हो जाना कोई आश्चर्य की बात नही होगी अतएव दो बालुकापूर्ण कगारो के बीच एक निर्मल स्रोतवाहिनी (कार्नेलिया) का रहना आवश्यक है''।[२२८] 'स्कन्दगुप्त' नाटक मे स्कन्दगुप्त हूण को क्षमा कर मुक्त कर देता है। 'जन्मेजय का नाग यज्ञ' मे आस्तीक कहता है, ''दो भयकर जातियॉ क्रोध से फुफकार रही है, उनमे शान्ति स्थापित करने का बीडा हमने उठाया है''।[२२९] प्रसाद 'महाराणा का महत्व' कविता मे सधि की आवश्यकता प्रदर्शित करते प्रतीत होते है। 'राज्यश्री' नाटक मे हर्षवर्धन पुलकेशिन से मैत्री स्थापित करता है। इस प्रकार जैसी विदेशी (हूण) आक्रमण के समय प्रसाद यहॉ भी राष्ट्रीय एकीकरण (उत्तर–दक्षिण) की वकालत कर रहे होते है जिसकी आवश्यकता राजनीतिज्ञों द्वारा बाद मे समझी गई और उसे व्यावहारिक रूप दिया गया।

विदेशी साम्राज्यवाद को प्रसाद एक अतिथि प्रतीक के रूप मे भी चित्रित करते है। अपने 'अतिथि' कविता मे प्रसाद लिखते है, ''अतिथि आ गया एक/ नही पहचाना/ हुए नही शब्द/ न मैने जाना/ अतिथि रहा वह किन्तु न घर बाहर था/ लगा खेलने खेल अरे नाहर था''।[२३०] ''परदेशी की प्रीति उपजती अनायास ही आय/ नाहर नख से हृदय लडाना और कहे क्या हाय?''[२३१] ''धूल का खेल लगे खेलने/ किन्तु वह क्रीडा ही नही रही बोझ हो गया सरल आनन्द/ मिलेगा फिर अब हमे कही''।[२३२] प्रसाद अपने नाटक 'कामना' मे भी जो कथा बुनते है वह भी इसी प्रकार की है। एक अबोध, सरल, प्रकृतिमय द्वीप मे एक सामुद्रिक यात्री अतिथि के रूप मे आता है और द्वीप का स्वामी बन बैठता है। उसे अपने देश के कूटनीति, बुराइयो, मदिरा, सोना, हत्या अपराध, भय, दास शासन, सैनिक न्याय आदि आधुनिक कुप्रवृत्तियों से परिचित कराता है और द्वीप के निवासी पुन उससे मुक्त होने का प्रयास करते है।

प्रसाद शासको से जनता से घुलमिलकर उनके हृदय पर शासन करने का आग्रह करते है, ''राजा बनकर अलग न बैठो बनो नही अनमेल/ वही भाव फिर लेगी जनता भूल जाएगी सारी समता''।[२३३] 'विशाख' नाटक मे प्रेमानन्द कहता है, ''नरदेव आज तुम सच्चे राजा हुए, तुम्हारे हृदय पर आज ही तुम्हारा अधिकार हुआ। तुम्हारा स्वराज तुम्हे मिला। हृदय राज्य पर जो अधिकार नही कर सका उसमे पूर्ण शान्ति न ला सका, शासन करना एक ढोग करना है''।[२३४]

प्रसाद नागरिको की स्वतत्रता का क्या स्वरूप होना चाहिय, उसकी क्या सीमा होना चाहिए यह भी अपने साहित्य मे चिन्हित करते हुये चलते है। "क्या सुना नही कुछ अभी सोते हो/ क्यो निज स्वतत्रता की लज्जा खोते हो"।[२३५] 'जन्मेजय का नाग यज्ञ' नाटक का यह गीत यह सिद्ध करता है कि सोना परतत्रता है और जागना ही परतत्रता से मुक्ति। इसी नाटक मे नाग जाति जो अभी स्वतत्र ही हुई है, कहती है "जिस स्वतत्रता के लिए इतना रक्त बहाया गया वह स्वतत्रता हाथ से न जाने पावे"।[२३६] 'चन्द्रगुप्त' मे अलका पराधीनता को सबसे बडी विडम्बना मानती है तथा कहती है, "यवनो के हाथ स्वाधीनता बेचकर उसके दान से जीने की शक्ति मुझमे नही है"।[२३७] प्रसाद नागरिको की स्वतत्रता को सीमाकित भी करते है। 'चन्द्रगुप्त' नाटक मे नन्द के प्रशासन से जनता को मुक्त करने के बाद चाणक्य कहता है "मगध के स्वतत्र नागरिको को बधाई है .स्मरण रखना होगा कि ईश्वर ने सब मनुष्यो को स्वतत्र उत्पन्न किया है परन्तु व्यक्तिगत स्वतत्रता वही तक दी जा सकती है जहॉ तक दूसरो की स्वतत्रता मे बाधा न पडे। यही राष्ट्रीय नियमो का मूल है। वत्स चन्द्रगुप्त स्वेच्छाचारी शासन का परिणाम तुमने देख लिया है। अब मन्त्रिपरिषद की सम्मति से मगध और आर्यावर्त के कल्याण मे लगो"।[२३८] प्रसाद राज्य को सर्वोपरि मानते है धर्म भी उसके सरक्षण मे रहे ऐसी वकालत करते है। अपने अधूरे नाटक 'अग्निमित्र' मे सेनापति कहता है, "आर्य मुझे तो यह नही मालुम था कि राज्यशक्ति से उपर भी किसी कि शक्ति माननीय है चाहे वह सघ ही क्यो न हो"।[२३९] यही नही ऐसे धार्मिक सगठन के पतन की कामना भी करते है जो मानव व्यवहार पर किसी प्रकार का अकुश रखती है, "न जाने कब तुम्हारे इस कुक्कुटाराम की प्राचीर गिरेगी और उसमें बन्दिनी मानवता मुक्त होकर अपने कर्तव्य पालन के लिए स्वतत्र होगी"।[२४०] स्कन्दगुप्त भी अपनी सैन्य सफलता के बाद पुरूगुप्त को युवराज बनाता है कहता है कि "देखना मेरे बाद इस जन्मभूमि की दुर्दशा न हो"।[२४१]

प्रसाद स्वतत्रता की रक्षा के लिए और राष्ट्र की सुरक्षा के लिए कोई भी कीमत देने की प्रेरणा देते है। 'स्कन्दगुप्त' नाटक मे पर्णदत्त कहता है, "मुझे जय नही चाहिये भीख चाहिये । अपने प्राण जो जन्मभूमि के लिए उत्सर्ग कर सकता हो वैसे वीर चाहिए, कोई देगा भीख मे"।[२४२] "जिए तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष/ निछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष"।[२४३] 'चन्द्रगुप्त' मे चाणक्य सार्वजनिक जीवन के हित मे व्यक्तिगत आवेगो का शमन कर लेता है, सुवासिनी के प्रति प्रेम का त्याग कर देता है। मालविका अपने प्राण देकर सम्राट चन्द्रगुप्त की रक्षा करती है। विजया अपना रत्नगृह ही स्कन्दगुप्त को सौपती है, देश की आर्थिक सकट के समय। 'अजातशत्रु' मे मल्लिका त्याग की प्रतिमूर्ति सदृश है राष्ट्र सेवा के सन्दर्भ मे। तितली, श्रद्धा, ममता, मधूलिका राष्ट्रीय वैभव से अलग रहकर राष्ट्र सेवा मे सलग्न रहती है। 'सिकन्दर की शपथ' कहानी मे भारतीय सैनिक

पर दया करके भर्ती करने की सूचना ग्रीक सैनिक भारतीय सैनिको को देता है इस पर एक भारतीय युवक बोल उठता है, "इस दया के लिए हम लोग कृतज्ञ है पर अपने भाईयो पर अत्याचार करने मे ग्रीको का साथ देने के लिये हम लोग प्रस्तुत नही है"।[२४४] इसी कहानी मे उन सभी सैनिको ने वीरतापूर्ण ढग से आत्मोत्सर्ग किया पर नेतृत्व विदेशी होने के कारण भारतीय लोग उन भारतीय सैनिक का नाम भी नही जानते। प्रसाद की इस प्रस्तुतीकरण से सम्राज्यवाद का साथ दे रहे भारतीय सैनिको के समक्ष एक प्रश्न खडा होता है। प्रसाद अपने कई गीतो मे वीरता और स्वतत्रता का उद्‌बोधन करते है। यह गीत उनका काफी लोकप्रिय भी है, "हिमाद्रि तुगश्रृग से प्रबुद्धशुद्ध भारती – स्वय प्रभा समुज्जवला स्वतत्रता पुकारती – अर्मर्त्य वीर पुत्र हो दृढ प्रतिज्ञ सोच लो/ प्रशस्त पुण्य पथ है – बढे चलो बढे चलो। असख्य कीर्ति रश्मिया विकीर्ण दिव्य दाह सी/ सपूत मातृभूमि के रूको न शूर साहसी/ आरति सैन्य सिधु मे सुबाडवाग्नि से जलो/ प्रवीर हो जयी बनो बढे चलो बढे चलो"।[२४५] कितना वीरतापूर्ण और समग्रतापूर्ण उद्‌बोधन है। यही नही राष्ट्र मे बिखरे हुए सभी शक्तियो के एकीकरण की बात करते हुये प्रसाद कहते है "शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त विकल है निरूपाय/ समन्वय उसका करे समस्त विजयनी मानवता हो जाय"।[२४६]

दरअसल प्रसाद के स्वतत्रता सम्बन्धी दृष्टिकोण काफी व्यापकता लिए हुए है। वे यह स्थापित करना चाहते है कि स्वतत्रता ही जीवन है और दासता मृत्यु। व्यक्ति एव समाज के विकास के लिए यह पहली शर्त है कि वह स्वतत्र हो। यही नही प्रसाद समस्त नकारात्मक उद्वेलनो को दासता से सम्बद्ध करके ही देखते है । मानव की उच्छृखल स्वतत्रता पर राष्ट्रीय हित मे अकुश लगाया जा सकता है पर उसकी एक सीमा होनी चाहिये अवधि एव मात्रा दोनो की। इस तरह दासता से सुघड मृत्यु को स्वीकार कर प्रसाद उनमे हलचल भी पैदा करना चाहते है जो दासता को स्वाभाविक मान चुके है या मानने की प्रक्रिया मे है। यही नही प्रसाद स्त्रियो की परतत्रता किसी विशेष राष्ट्र की सीमा मे बाधने की मान्यता के खिलाफ है, "जहॉ स्वतत्रता नही है वहॉ पराधीनता का आन्दोलन और जहॉ ये सब माने हुये नियम है वहॉ कौन सी अच्छी दशा है। यह झूठ है कि किसी विशेष समाज मे स्त्रियो को कुछ विशेष सुविधा है"।[२४७] इसी तरह गरीबो की आर्थिक स्वतत्रता पर भी उनका दृष्टिकोण कुछ इस प्रकार है, "इतना अकूत धन विदेशो से ले आकर क्या इन साहसी उद्योगियो ने अपने देश की दरिद्रता का नाश किया?"[२४८] "नही पूरे ससार मे दरिद्रो की तो एक ही जाति होती है"।[२४९] इस तरह प्रसाद सामाजिक एव आर्थिक परतत्रता की कोई भौगोलिक सीमा नही तय करते प्रतीत होते है।

**X X X X X**

प्रसाद जिस विधा (साहित्य) से जुडे थे उसे कला का एक अग स्वीकार करते थे और यह विश्वास करते थे कि यह विधा मानव हृदय को सवेदनात्मक रूप से परिवर्तित करके विध्वसात्मक प्रवृत्ति से रचनात्मकता की ओर ले जाने की क्षमता रखता है। अपने इस दृष्टिकोण को उन्होने अपनी कविता 'शिल्प सौन्दर्य' मे ही स्थापित कर दिया था, "आज काम वह किया शिल्प सौन्दर्य ने / जिसे न करती सहस्रो क्रूरता"।[२५०] प्रसाद अपने निबन्ध सग्रह मे कहते है, "मध्यकालीन भारत मे जिस आतक और अस्थिरता का साम्राज्य था उसने यहाँ की सर्व साधारण प्राचीन रगशालाओ को तोड दिया। धर्मान्ध आक्रमणो ने जब भारतीय रग मच के शिल्प का विनाश कर दिया तो देवालयो मे सलग्न मण्डपो मे छोटे–छोटे अभिनय सर्वसाधारण के लिए सुलभ रह गये। उत्तरी भारत मे तो औरगजेब के समय मे ही साधारण सगीत का जनाजा निकाला जा चुका था"।[२५१] इस तरह प्रसाद मध्यकालीन समाज मे कला के पतन के लिये मुगल शासको को उत्तरदायी ठहराते है, "मुगल दरबारो मे जो थोडी सी सगीत पद्धति तानसेन की परम्परा मे बची रही थी उसमे भी बाह्य प्रभाव का मिश्रण होने लगा था। अभिनयो मे भॉड ही मुगल दरबार मे स्वीकृत हुआ था वह भी केवल मनोरजन के लिये"।[२५२] प्रसाद नाट्य साहित्य विधा से अधिक जुडे थे जो अभी हिन्दी साहित्य मे उपेक्षित पड था साथ ही नवीन भी यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र उसकी नीव डाल चुके थे। उनके समकालीन विनोदशकर व्यास स्वीकार करते है कि, "अजातशत्रु के प्रथम सस्करण की सभी प्रतियॉ रखे–रखे नष्ट हो गई,"[२५३] कारण जयशकर प्रसाद कई गिनाते है "जैसे रगमच की अकाल मृत्यु हिन्दी मे दिखाई पड रही है कुछ मण्डलियॉ कभी–कभी साल मे एकाध बार वार्षिकोत्सव मनाने के अवसर पर कोई अभिनय कर लेते है"।[२५४] "साथ ही. साहित्यिक सुरूचि पर सिनेमा ने ऐसा धावा बोल दिया है कि कुरूचि को नेतृत्व करने का अवसर मिल गया है"।[२५५] पर उनके समकालीन विनोद शकर व्यास इसका एक कारण और बताते है, "क्लिष्ट भाषा के कारण उनकी रचित पुस्तको की प्रति साधारण पाठको की रूचि न थी"।[२५६] "साथ ही प्रसाद के नाटक रगमच पर खेले जाने योग्य नही है, ऐसी धारणा सभी निर्देशको की बन गई थी"।[२५७]

कई साहित्यकार प्रसाद की भाषा को क्लिष्ट मानते है। गुलाब राय स्वीकार करते है, "प्रकृति स्थिति ने उन्हे भाषा की बहुत उच्च कक्षा मे आरम्भ से ही पहुँचा दिया था"।[२५८] रमेशचन्द्र शाह भी यह स्वीकार करते है कि, "प्रसाद उन कवियो मे है जो अपेक्षाकृत जल्दी वयस्क हो जाते है"।[२५९] यही नही शिवप्रसाद सिह तो यहॉ तक कह देते है, "प्रसाद की भाषा कभी भी हिन्दी मे कथा साहित्य की भाषा नही बनेगी"।[२६०] जबकि प्रसाद कहते है, "भाषा की स्वतत्रता नष्ट करके कई तरह की खिचडी भाषा का प्रयोग हिन्दी नाटको के लिए ठीक नही"।[२६१] जैसा कि रामस्वरूप चतुर्वेदी स्वीकार करते हैं, "जब उन्होने (प्रसाद) लिखना प्रारम्भ किया उस समय ब्रज भाषा बनाम खडी बोली का द्वद्व निपटा नही

था'' ।[262] 'प्रेमपथिक' की भूमिका मे प्रसाद लिखते है, ''यह काव्य ब्रज भाषा मे आठ वर्ष पहले लिखा था यह उसी का परिवर्तित, परिवर्द्धित, तुकान्त विहीन हिन्दी रूप है'' ।[263] और यह हिन्दी रूप एकदम सस्कृत निष्ठ एव ब्रज – अवधी जैसी बोलियो से मुक्त मानक हिन्दी की ओर प्रयाण था, फिर प्रसाद ने पीछे मुडकर नही देखा। उनकी भाषा आज भी पाठको को उस सहजता से ग्राह्य नही होती जितनी उनके समकालीन प्रेमचन्द या अन्य की। प्रसाद इन कारणो से अपने युग मे उपेक्षित जरूर रहे पर यह जानते थे कि आने वाला युग उनके पक्ष मे होगा, आज है भी।

अपने युग मे हिन्दी दिशा एव दशा से प्रसाद सतुष्ट नही थे, ''एक तरह से हिन्दी काव्यो का यह युग सदिग्ध और अनिश्चित सा है। इसमे न तो पौराणिक काल की महत्ता है और न काव्य काल का सौन्दर्य। चेतना राष्ट्रीय पतन के कारण अव्यवस्थित थी। धर्म की आड मे नये–नये आदर्शों की सृष्टि, भय से त्राण पाने की दुराशा ने इस युग के साहित्य मे अवधवाली धारा मे मिथ्या आदर्श और ब्रज की धारा मे मिथ्या रहस्यवाद का सृजन किया'' ।[264]

प्रसाद यह भी स्वीकार करते है कि, ''साहित्य किसी परतत्रता को सहन नही कर सकता इसीलिए प्रसाद ने भाषा एव साहित्य को एकदम नई भावभूमि पर खडा किया। भले ही अपने युग मे इसके कारण अधिक लोकप्रिय नही हुये पर अपने द्वारा नियत मार्ग से विचलित नही हुये। हॉ यह सत्य है कि भाषा के प्रश्न को लेकर निराला ने जितना द्वद्व किया उतना किसी ने नही किया'' ।[265] प्रेमचन्द ने भी इस प्रश्न को लेकर व्यापक बहस की इस सदर्भ मे कई सगठन से जुडे और दक्षिण भारत तक की यात्राए की। वहॉ प्रसाद अपने कर्म मे सलग्न एकान्त योगी की तरह हिन्दी भाषा एव साहित्य के उत्थान के लिये प्रयास करते रहे। उनकी रचनाए प्राय एक बडे वैचारिक पृष्ठभूमि मे लिखी गयी है और हर समस्या का दार्शनिक पृष्ठभूमि मे समाधान ढूढते हुये वे आगे बढते है। जैसा कि डा० रामविलास शर्मा स्वीकार करते है, ''उनके दार्शनिक विचारो की सबसे बडी विशेषता यह है कि वे धरती को छोडकर कल्पना के आकाश मे उडान नही भरते, जैसे उनकी 'कामायनी' जगत की मगल कामना से जुडी है वैसे ही उनका दार्शनिक दृष्टिकोण लोक मगल को कभी भी ओझल नही होने देता'' ।[266]

**X X X X X**

प्रसाद अपने सम्पूर्ण साहित्यिक विमर्श मे प्राय सभी समस्याओ पर विमर्श करते हुये एक आदर्शवादी दृष्टिकोण को सामने रखते है । उनका सम्पूर्ण प्रयास व्यक्ति को उस शक्ति से परिचय कराना था जिसके अभाव मे वह राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक दासता का शिकार बना था। जैसा कि नन्द दुलारे वाजपेयी भी स्वीकार करते है, ''शक्ति का परिचय करा देना ही दु ख का उच्छेद कर डालना है'' ।[267] हॉ यह जरूर है कि यह शक्ति उन्हे इतिवृत्तियो मे ही मिली। दरअसल प्रसाद वर्तमान

समाज की नकारात्मक प्रवृत्तियो का यथार्थवादी चित्रण करके किसी विवाद मे नही पडना चाहते थे यद्यपि जब दबाव वश उन्हे ऐसा करना ही पडा तो समाज का 'ककाल' लोगो के सामने रख दिया। उनकी इस कृति से कितने लोग समाज की नगई से भयभीत हुए होगे खुद प्रेमचन्द भी चमत्कृत हुए। जैसा कि नन्द दुलारे वाजपेयी स्वीकार करते है, "ककाल के लेखक का प्रयोजन प्रचलित समाज, उसके विश्वासो, उसकी कार्य प्रणालियो और उसके अनर्थकारी बन्धनो के विरूद्ध जबर्दस्त प्रोपेगेण्डा करना है। समाज की एक भी मान्यता उसमे स्वीकार नही की गई है, सब की जडे हिला दी गई है। साथ ही निवृत्ति प्रधान सस्कृति को प्रसाद जी आदि से अन्त तक अव्यवहार्य और आज के लिये हानिकर सिद्ध करते है"।[२६८]

डा० किशोरी लाल गुप्त ने सम्राट सत्तम एडवर्ड की मृत्यु पर सन् १६१० मे 'शोकोच्छवास' पुस्तिका के प्रकाशन का उल्लेख किया है। इसके दो भाग है 'अश्रुप्रवाह' और 'समाधिसुमन'।[२६९] अपनी इस रचना मे वे एडवर्ड की मृत्यु पर शोक प्रकट करने के साथ ही साथ उन्हे फूलो की सेज उपलब्ध होने की बात करते है। उनकी इस कविता के सदर्भ मे हमे दो बात ध्यान में रखना चाहिये, पहला, यह उनकी पहली रचना है जिसमे प्रसाद अवयस्क रचनाकार लगते है; दूसरा, साम्राज्यवादी दबाव भी ऐसे प्रस्तुतीकरण के कारण के रूप मे माना जा सकता है जिसकी चर्चा की जा चुकी है। यद्यपि उनके बाद के सम्पूर्ण साहित्य मे साम्राज्यवादी दबाव के बावजूद साम्राज्यवाद के पक्ष मे कोई रूझान नही दिखाई पडता। यद्यपि प्रसाद मानवतावादी एव विश्व मैत्री के प्रर्वतक होने के कारण अपने साहित्य मे कई ऐसे विदेशी पात्रो की भी सृष्टि की है जो भारतीय सन्दर्भ मे सकारात्मक दृष्टि रखते है जैसे 'तितली' मे शैला एव वाट्सन 'चन्द्रगुप्त' मे कार्नेलिया आदि। यद्यपि नकारात्मक दृष्टि रखने वाले विदेशी पात्रो की भी भरमार है चाहे वह 'ककाल' का पादरी और बॉथम हो या 'तितली' की बार्टली या 'स्कन्दगुप्त' के हूण और 'कामना' का विवेक एव 'चन्द्रगुप्त' का सेल्युकश और सिकन्दर। साथ ही हमे प्रसाद के इस दृष्टिकोण को समझने के लिए उस समय के राजनैतिक मच पर चल रहे द्वन्द्व को भी सामने रखना चाहिए ।

प्रसाद के साहित्यिक विकास क्रम को युग बोध से जोडते हुये शभूनाथ लिखते है, "उनकी प्रारम्भिक तथा परवर्ती कृतियो मे विचारधारा का स्तर समान नही है। सामन्ती पिछडेपन उपनिवेशवाद, विखण्डता और ह्रास से प्रसाद का सघर्ष जैसे – जेसे तेज होता है उनका साहित्य विचारधारा की ओर से उतनी ही मजबूती की ओर बढता है। एक नितान्त कोमल अनुभूति से चलकर प्रसाद 'मधुआ' तथा 'ध्रुवस्वामिनी' तथा 'कामायनी' मे अपने समय की एक ऐसी विचारधारा तक पहुँचे जहॉ तमाम ऐतिहासिक दार्शनिक सीमाओ के बावजूद स्वतत्रता अखण्डता तथा स्वत स्फूर्त सृजनशीलता का एक

जबर्दस्त सास्कृतिक आह्वान है'' ।[२७०] साथ ही शम्भूनाथ उनके साहित्यक रूझानो पर अपने परिवेशगत दबाओ से आत्मसातीकरण को स्वीकार करते हुये कहते है, ''निसदेह प्रसाद के सौन्दर्यबोध मे कोई सचेत वर्ग चेतना नही है और वह मुख्य रूप से नवजागरण तथा राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन मे सक्रिय उत्थानशील पूँजीपति वर्ग के मूल्यबोध से जुडे हुये थे। लेकिन जैसे – जैसे राष्ट्रीय जागरण मे साधारण मजदूर और किसान वर्ग अपनी हिस्सेदारी बढा रहा था – १९२६ मे 'मधुआ' और 'ककाल' के काल तक काफी बढ चुका था वैसे – वैसे प्रसाद का भी सौन्दर्यबोध अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा मूल्यबोध से भी थोडा बहुत प्रेरित होने लगा था। 'कामायनी' की समरसता तथा अपने मे भर सबकुछ कैसे व्यक्ति विकास करेगा की चेतना १९२६ के पहले प्रसाद साहित्य मे नही है'' ।[२७१]

प्रसाद सिर्फ आर्थिक चेतना के विकास को एकागी विकास मानते थे जैसा कि नन्द दुलारे वाजपेयी भी स्वीकार करते है, ''कामायनी काव्य मे उन्होने एकागी भौतिक प्रगति और सघर्ष का विरोध अवश्य किया है प्रसाद कम्युनिष्ट उपचारो को कट्टरपन के साथ ग्रहण नही करते किन्तु अपने युग की प्रगति मे वे पिछडे हुये नही थे'' ।[२७२] अन्त मे जैसा कि डा० रामविलास शर्मा स्वीकार करते है, ''प्रसाद साहित्य हिन्दीभाषा जनता की मूल्यवान विरासत है। उसके आधार पर हम कह सकते है कि इस ससार को सत्य समझना, पीडित जनता का समर्थन करना, अन्याय का सक्रिय विरोध करना, साहित्य मे उदासीन और तटस्थ न रहकर सामाजिक विकास मे सक्रिय योग देना यह सब भारतीय सस्कृति के अनुकूल ही है, उसका सहज विकास है। प्रसाद जी कि रचनाए दु खवाद, मायावाद, शुद्धकलावाद, भारतीय इतिहास मे वर्गों को अस्वीकार करने आदि के विरोध मे लेखक के हाथो मे सबल अस्त्र है वे भारतीय जनता की विजय मे विश्वास दृढ करती है क्योकि उनके मधुबन, रामजस, तितली आदि अपना स्वत्व, पहचान चुके है और उनका पोषण करते जाना अब किसी के लिए सभव नही है। प्रसाद साहित्य के मूल्यो को पहचान कर आज का हिन्दी साहित्य और भी साहस से जनता की सेवा कर सकेगा'' ।[२७३]

इस तरह प्रसाद अपने साहित्य के युगीन अन्तर्विरोध ओर अपनी प्रतिबद्धताओ मे रूढता के वावजूद समकालीन राष्ट्रीय चेतना के गौरवपूर्ण व्याख्याता रहे। जैसा कि गोविन्दचातक भी स्वीकार करते है, ''प्रसाद के नाटक उस युग की देश प्रेम और राष्ट्रीय भावनाओ का सही अकन ही नही करते वरन् भारतीय जनता की स्थिति तथा स्वतत्रता आन्दोलन के गतिविधियो का भी परिचय देते है'' ।[२७४]

# सन्दर्भ सूची


१ जैनेन्द्र 'वे और वे' १९५४ उद्धृत नाटककार जयशकर प्रसाद, सपादक सत्येन्द्र कुमार तनेजा, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली–१९६७ पृष्ठ–४५

२ प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली १९६८ पृष्ठ ४३

३ भोलानाथ तिवारी, प्रसाद की कविता, साहित्य भवन, इलाहाबाद १९७४ पृष्ठ १७

४ वही

५ राजेन्द्र नारायण शर्मा, सुमित्रा पत्रिका, जुलाई १९१५, उद्धृत वही पृष्ठ १८

६ जयशकर प्रसाद, लहर, नया सस्करण १९८० प्रसाद प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ ३

७. प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य पृष्ठ–३१–३२

८ जयशकर प्रसाद, लहर, पृष्ठ–३

९. भोलानाथ तिवारी, प्रसाद की कविता, पृष्ठ–१९

१० मत्स्येन्द्र शुक्ल, प्रसाद जीवन और साहित्य, साहित्य लोचन, इलाहाबाद १९७१, पृष्ठ–६

११ भोलानाथ तिवारी, प्रसाद की कविता पृष्ठ–१९

१२ मत्स्येन्द्र शुक्ल, प्रसाद जीवन और साहित्य पृष्ठ–६

१३ भोला नाथ तिवारी, प्रसाद की कविता पृष्ठ–१९

१४ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन, हिन्दी साहित्य कुटीर सवत २०१७, पृष्ठ–१४

१५ प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, पृष्ठ–३३

१६ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन, पृष्ठ–३६

१७ रामरतन भटनागर, प्रसाद का जीवन और साहित्य सरस्वती प्रेस दिल्ली,१९६२ पृष्ठ–१८

१८ भोलानाथ तिवारी, प्रसाद की कविता पृष्ठ–२५

१९ प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य पृष्ठ–७५

२० विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन पृष्ठ–३६

२१ मुक्तिबोध, कामायनी एक पुर्नविचार, राजकमल प्रकाशन दिल्ली १९९१ पृष्ठ–१५

२२ जयशकर प्रसाद, लहर पृष्ठ–३४

२३ जयशकर प्रसाद, प्रेम पथिक, भारती भण्डार काशी, सवत १९८५, पृष्ठ–९

२४ वही पृष्ठ–१०

२५ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन, पृष्ठ—३८

२६ वही पृष्ठ—३७

२७ प्रेमचन्द, साथी नाटककार, ककाल समीक्षा १६३०, उद्‌धृत, नाटककार जयशकर प्रसाद, सपादक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, पृष्ठ—४७६

२८ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन, पृष्ठ—६५

२६ वही पृष्ठ—५६

३० भोलानाथ तिवारी, प्रसाद की कविता, पृष्ठ—१६

३१ वही पृष्ठ—२१

३२. वही पृष्ठ—२५

३३ महादेवी वर्मा, पथ के साथी १६५६, उद्‌धृत, नाटककार जयशकर प्रसाद, सपादक, सत्येन्द्र कुमार तनेजा, पृष्ठ—३१

३४ इन्दु कला—३, किरण—५, अप्रैल १६१२ पृष्ठ—४०२

३५ विद्या खण्डेलवाल, प्रसाद के नाटको मे राष्ट्रीय भावना, भारत बुक डिपो पटना, 1986 पृष्ठ—८६

३६ प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, पृष्ठ—३२४

३७ जयशकर प्रसाद, काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, गीताप्रेस गोरखपुर १६३६, पृष्ठ—१४६

३८ अवधेश प्रसाद सिह, प्रसाद की इतिहास दृष्टि, समकालीन सृजन, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद, सयुक्ताक ४—६ अक्टूबर'८८ — जून'८६ सपादक शभुनाथ पृष्ठ—३२५

३६ गजानन माधव मुक्तिबोध, कामायनी एक पुनर्विचार, साहित्य भारती दिल्ली १६७३ पृष्ठ—११

४० रमेश चन्द्र शाह, गीत सृष्टि, प्रसाद की प्रतिभा, सपादक डा० इन्द्रनाथ मदान, नेशनल पब्लिशिग हाउस, १६७१ पृष्ठ—३०

४१. प्रसाद वागमय, सपादक रत्नशकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, १६८५ पृष्ठ—६१

४२ अवधेश प्रसाद सिह, प्रसाद की इतिहास दृष्टि, समकालीन सृजन, पृष्ठ—३३५

४३. प्रसाद वागमय, रत्न शकर प्रसाद (सपादक) प्राक्कथन, पृष्ठ—८८

४४ अवधेश प्रसाद सिह, प्रसाद इतिहास दृष्टि, समकालीन सृजन, पृष्ठ—३२६

४५ अयोध्या सिह, प्रसाद कृतित्व और विचाराधार, समकालीन सृजन, पृष्ठ—११२, ११३

४६ अवधेश प्रसाद सिह, प्रसाद इतिहास दृष्टि, समकालीन सृजन, पृष्ठ—३३०

४७ जयशकर प्रसाद, कामायनी, आमुख, प्रकाशन सस्थान, नई दिल्ली—१६६३, पृष्ठ—३

४८ जयशकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, लोकप्रिय प्रकाशन, इलाहाबाद १६६४, पृष्ठ—६, १०.

४६ रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९६७ पृष्ठ–१८

५० वही

५१ शिवकुमार मिश्र, राष्ट्रीय नवजागरण के आलोक मे प्रसाद, समकालीन सृजन पृष्ठ–६५

५२ रमेशचन्द्र शाह, गीत सृष्टि, प्रसाद की प्रतिभा, सपादक इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ–१२

५३ प्रेमचन्द, साथी नाटककार, नाटककार जयशकर प्रसाद, सपादक सत्येन्द्र कुमार तनेजा पृष्ठ–४७८

५४ सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन दिल्ली–१९९५, पृष्ठ–२१४

५५ जयशकर प्रसाद, महाराणा का महत्व, भारती भण्डार काशी सवत १९८५, पृष्ठ–१७

५६. अशोक की चिता, लहर, पृष्ठ ४६, ४७

५७ कामायनी, पृष्ठ ५८, ५६

५८ तितली, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय, खण्ड–३, पृष्ठ–३२६

५६ कल्याणी परिचय , जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–७८

६० राज्यश्री, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–१३७

६१ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–३३७

६२ प्रसाद वागमय खण्ड–३, इरावती, पृष्ठ–४५७

६३ वही पृष्ठ–४४६

६४ वही पृष्ठ–४५७

६५ महाराणा का महत्व, पृष्ठ–१२

६६ कामायनी, पृष्ठ–६४

६७ विशाख, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–१६५.

६८ वही पृष्ठ–१६७

६६ जन्मेजय का नाग यज्ञ, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–३५२

७० विशाख, पृष्ठ–१६५

७१ कामायनी पृष्ठ–२२१

७२ अजातशत्रु, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–२१६

७३ वही पृष्ठ–२१७

७४ वही पृष्ठ–२५३

७५. वही पृष्ठ–२६७

७६ वही पृष्ठ–२७६

७७ स्कन्दगुप्त, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–५०६

७८ चन्द्रगुप्त, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–६५४

७६ ममता, जयशकर प्रसाद, आकाशदीप, (कहानी सग्रह) प्रसाद प्रकाशन वाराणसी, सवत २००१ पृष्ठ–२३

८० ककाल, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–१११

८१ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–३७६

८२ जन्मेजय का नाग यज्ञ, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–३४७

८३ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–४८८

८४ वही पृष्ठ–५०७

८५. कामायनी, पृष्ठ–५६, ६०

८६. वही पृष्ठ–६२

८७. प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, पृष्ठ–२६८

८८ कामना, जयशकर प्रसाद, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–३६६

८६ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–३४१

६० कसौटी, झरना (कविता सग्रह), जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार बनारस सवत ६१ पृष्ठ–६६

६१ झरना, प्रत्याशा, जयशकर प्रसाद, पृष्ठ–३६

६२ हा सारिथे रथ रोक दो, कानन कुसुम, जयशकर प्रसाद हिन्दी पुस्तक भण्डार बिहार १६२६ पृष्ठ–५३

६३ कोकिल, कानन कुसुम पृष्ठ–३४

६४ दलित कमुदिनी, कानन कुसुम पृष्ठ–३६

६५ कुरुक्षेत्र, कानन कुसुम, पृष्ठ–८७

६६ कामायनी, पृष्ठ–१२६

६७ वही पृष्ठ–१७, १६, २०, २१

६८ वही पृष्ठ–२५

६६ ऑसू, जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद सवत २००० पृष्ठ–४३

१०० रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद निराला, अज्ञेय, पृष्ठ–३८, ३६

१०१ शान्तिप्रिय द्विवेदी, प्रसाद का साहित्य, प्रसाद, सपादक, निर्मला तलवार, साहित्य प्रतिष्ठान आगरा, १६७६ पृष्ठ–५७

१०२ रत्नशकर प्रसाद, प्राक्कथन, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–३०

१०३ प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, पृष्ठ–३६

१०४ करूणालय (कविता सग्रह), जयशकर प्रसाद, भारती भण्डार काशी सवत १६६६, पृष्ठ–२, ३

१०५ वही पृष्ठ–६

१०६ सुमित सरकार आधुनिक भारत पृष्ठ–३३६

१०७ वही पृष्ठ–३३७

१०८ रामविलास शर्मा, स्वाधीनता सग्राम के बदलते परिप्रेक्ष्य हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली १६६२ पृष्ठ–४६

१०६ लहर पृष्ठ–४२

११० वही पृष्ठ–२४.

१११ प्रेमपथिक, (कविता सग्रह) जयशकर प्रसाद, पृष्ठ–७

११२ वही

११३ गान, कानन कुसुम पृष्ठ–१६४

११४ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–४२७.

११५. वही पृष्ठ–२४७

११६ वही पृष्ठ–३१६.

११७ वही

११८ वही पृष्ठ–२५५

११६ वही पृष्ठ–२६४

१२० ककाल, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–१५१

१२१ तितली प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–२४३, २४६

१२२ वही पृष्ठ–२६८

१२३ वही पृष्ठ–२२४.

१२४ वही पृष्ठ–३३६.

१२५ वही पृष्ठ–३५२

१२६ वही पृष्ठ–३५४

१२७ वही पृष्ठ–३५६

१२८ वही पृष्ठ–३६१

१२६ वही पृष्ठ–४२३, ४२४

१३० कामायनी पृष्ठ–८०

१३१ वही पृष्ठ–८३, ८५

१३२ पुरस्कार, जयशकर प्रसाद, ऑधी (कहानी सग्रह) प्रसाद प्रकाशन वाराणसी,१६२६ पृष्ठ–१०६

१३३ ग्रामगीत, जयशकर प्रसाद, ऑधी (कहानी सग्रह) पृष्ठ–८४

१३४ पुरस्कार, जयशकर प्रसाद, ऑधी (कहानी सग्रह) पृष्ठ–१०७

१३५ अजातशत्रु, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–३३४

१३६ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–२६२

१३७. वही पृष्ठ–३६५

१३८. रामप्रसाद मिश्र, प्रसाद आलोचनात्मक सर्वेक्षण, पल्लव प्रकाशन दिल्ली १६७६, पृष्ठ–२७४

१३६ पद्मसिह शर्मा कमलेश, तितली, प्रसाद की प्रतिभा, सपादक इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ–२११

१४०. इरावती, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–४४६

१४१ ककाल, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–१८२, १८४, १६८

१४२ वही पृष्ठ–७२

१४३ वही पृष्ठ–५७

१४४ वही पृष्ठ–१३१

१४५ देवरथ, जयशकर प्रसाद, इन्द्रजाल (कहानी सग्रह), लीडर प्रेस इलाहाबाद, १६३६ पृष्ठ–११६

१४६ इरावती, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–४८३

१४७ विशाख, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–१६६

१४८ रत्नशकर प्रसाद, प्राक्कथन, प्रसाद वागमय, खण्ड–३, पृष्ठ–११

१४६ इरावती, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–४६६

१५० वही पृष्ठ–४६०

१५१ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–५७३

१५२ जगदीशचन्द्र जोशी, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, सरस्वती पुस्तक सदन आगरा सवत २०१६ पृष्ठ–७६

१५३. महाराणा का महत्व पृष्ठ–१२४

१५४ वीर बालक, झरना पृष्ठ—६०

१५५ शिल्प सौन्दर्य, झरना पृष्ठ—८१

१५६ कामायनी, पृष्ठ—११६

१५७ ममता, आकाशदीप, पृष्ठ—२३

१५८ स्वर्ग के खण्डहर मे, आकाशदीप पृष्ठ—३६

१५९ महाराणा का महत्व पृष्ठ—१६

१६० विशाख, प्रसाद वागमय खण्ड—२, पृष्ठ—१६२

१६१ विद्या खण्डेलवाल, प्रसाद के नाटको मे राष्ट्रीय भावना पृष्ठ—८७

१६२ शभूनाथ, सपादकीय, समकालीन सृजन, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन और प्रसाद पृष्ठ—११.

१६३. आजातशत्रु, प्रसाद वागमय, खण्ड—२ पृष्ठ—२७७

१६४ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय, खण्ड—२, पृष्ठ—५७३

१६५ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड—२, पृष्ठ—६३३

१६६ सालवती, इन्द्रजाल (कहानी सग्रह) पृष्ठ—१३२

१६७ विराम चिन्ह, इन्द्रजाल (कहानी सग्रह) पृष्ठ—१२१

१६८ मन्दिर, कानन कुसुम पृष्ठ—६

१६९ नमस्कार, कानन कुसुम पृष्ठ—४

१७० रामप्रसाद मिश्र, प्रसाद आलोचनात्क सर्वेक्षण पृष्ठ—२८१

१७१ ध्रुवस्वामिनी, जयशकर प्रसाद, पृष्ठ—५१

१७२ वही पृष्ठ—५१

१७३ वही पृष्ठ—४६

१७४ ककाल, प्रसाद वागमय खण्ड—३, पृष्ठ—२०१

१७५ कलावती की शिक्षा, जयशकर प्रसाद, प्रतिध्वनि (कहानी सग्रह), लीडर प्रेस प्रयाग, सवत २००७, पृष्ठ—५०

१७६ ध्रुवस्वामिनी, जयशकर प्रसाद, पृष्ठ—२१

१७७ वही पृष्ठ—२३

१७८ वही पृष्ठ—४५, ४६

१७९ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड—२ पृष्ठ—४२८

१८० ककाल, प्रसाद वागमय, खण्ड—३ पृष्ठ—१७६

१८१ वही पृष्ठ—१२२

१८२ अजातशत्रु, प्रसाद वागमय खण्ड—२ पृष्ठ—२७२

१८३ वही पृष्ठ—२७२, २७३

१८४ वही पृष्ठ—२७४

१८५ वही पृष्ठ—२२६

१८६ वही पृष्ठ—२६५

१८७ राजकिशोर, ध्रुवस्वामिनी का सच, समकालीन सृजन, सपादक शम्भूनाथ, पृष्ठ—३६०.

१८८ कामायनी, जयशकर प्रसाद, पृष्ठ—४७

१८९ जन्मेजय का नाग यज्ञ, प्रसाद वागमय भाग—२, पृष्ठ—३४६, ४७

१९० कामायनी, पृष्ठ—४६

१९१ वही पृष्ठ—४७

१९२. स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड—२ पृष्ठ—५४१

१९३ वही पृष्ठ—४८६

१९४ वही पृष्ठ—५०५

१९५ ककाल, प्रसाद वागमय खण्ड—३ पृष्ठ—६

१९६ विशाख, प्रसाद वागमय, खण्ड—२ पृष्ठ—१७२

१९७ चित्तौर का उद्धार, छाया (कहानी सग्रह), लीडर प्रेस, इलाहाबाद सवत,१९७४ पृष्ठ—४२

१९८ वही पृष्ठ—४२

१९९ रत्नशकर प्रसाद, प्राक्कथन प्रसाद वागमय, खण्ड—३ पृष्ठ—२७

२००. तितली, प्रसाद वागमय, खण्ड—३ पृष्ठ—४१०.

२०१ ककाल, प्रसाद वागमय, खण्ड—३ पृष्ठ—२०३

२०२ वही पृष्ठ—२०५

२०३ गगा प्रसाद पाण्डेय, ककाल, प्रसाद की प्रतिभा सपादक इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ—२००

२०४ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड—२ पृष्ठ—७२३

२०५ वही पृष्ठ—७०४

२०६ जन्मेजय का नागयज्ञ, प्रसाद वागमय खण्ड—२ पृष्ठ—३५३

२०७ वही पृष्ठ—३१०

२०८ गुण्डा, जयशकर प्रसाद, इन्द्रजाल (कहानी सग्रह), पृष्ठ—६१, ६२

२०६ अयोध्या सिह, प्रसाद कृतित्व एव विचारधारा, समकालीन सृजन, सपादक शभूनाथ पृष्ठ–११५

२१० विद्या खण्डेलवाल, प्रसाद के नाटको मे राष्ट्रीय भावना पृष्ठ–८६, ८७

२११ इरावती, प्रसाद वागमय खण्ड–३ पृष्ठ–४६७

२१२ वही पृष्ठ–५१३

२१३ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय, खण्ड–२ पृष्ठ–६५४

२१४ वही पृष्ठ–६८५

२१५ वही पृष्ठ–६८७

२१६ वही पृष्ठ–६८६

२१७ वही पृष्ठ–६८६

२१८ वही पृष्ठ–६७७

२१६ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–४८३

२२० राज्यश्री, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–१३७

२२१ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–४८७

२२२ वही पृष्ठ–५२६

२२३ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–६३६

२२४ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–५०७

२२५ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–७२१

२२६ वही पृष्ठ–६६०

२२७. वही पृष्ठ–६५८

२२८ वही पृष्ठ–७३६

२२६ जन्मेजय का नाग यज्ञ, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–३५३

२३० अतिथि, जयशकर प्रसाद, झरना पृष्ठ–७१

२३१ बिन्दु, जयशकर प्रसाद, झरना पृष्ठ–७७

२३२ धूल का खेल, जयशकर प्रसाद, झरना पृष्ठ–७६

२३३ कामना, प्रसाद वागमय, खण्ड–२ पृष्ठ–४३१

२३४ विशाख, प्रसाद वागमय, खण्ड–२, पृष्ठ–१६५

२३५ जन्मेजय का नाग यज्ञ, प्रसाद वागमय खण्ड–२, पृष्ठ–३४४

२३६ वही पृष्ठ–३५६

२३७ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–६५१

२३८ वही पृष्ठ–७०५

२३९ अग्निमित्र, प्रसाद वागमय, खण्ड–२ पृष्ठ–७८६

२४० वही पृष्ठ–७८५

२४१ स्कन्दगुप्त, प्रसाद वागमय, खण्ड–२ पृष्ठ–५५६

२४२ वही पृष्ठ–५५२

२४३ वही पृष्ठ–५५५

२४४ सिकन्दर की सपथ, जयशकर प्रसाद, छाया (कहानी सग्रह) पृष्ठ–३६

२४५ चन्द्रगुप्त, प्रसाद वागमय खण्ड–२ पृष्ठ–७२०

२४६ कामायनी पृष्ठ–२८

२४७ ककाल, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–१६८

२४८ तितली, प्रसाद वागमय खण्ड–३, पृष्ठ–२२६

२४९ भिखारिन, जयशकर प्रसाद, आकाशदीप (कहानी सग्रह) पृष्ठ–४६

२५० शिल्प सौन्दर्य, जयशकर प्रसाद, कानन कुसुम पृष्ठ–८१

२५१ काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ–१११

२५२ वही पृष्ठ–११२

२५३ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन पृष्ठ–५८

२५४ काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ–११५

२५५ वही पृष्ठ–११५

२५६ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन, पृष्ठ–५८

२५७ वही पृष्ठ–५६

२५८ गुलाब राय, प्रसाद जी की कला, साहित्यरत्न भण्डार आगरा, पृष्ठ–२१६

२५९ रमेशचन्द्र शाह, गीत सृष्टि, प्रसाद की प्रतिभा, सम्पादक इन्द्रनाथ मदान पृष्ठ–६

२६० शिवप्रसाद सिह उद्धृत प्रदीप तिवारी, स्थापित मानको को लॉघने की चुनौती, आजकल जुलाई, १९९६ पृष्ठ–३५

२६१ काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृष्ठ–११६

२६२ रामस्वरूप चतुर्वेदी, प्रसाद, निराला, अज्ञेय पृष्ठ–२३

२६३ निवेदन, प्रेम पथिक, प्रथम सस्करण सवत १९७० वैशाख

२६४ काव्य कला एव अन्य निबन्ध पृष्ठ—१३२

२६५ विनोद शकर व्यास, प्रसाद और उनके समकालीन पृष्ठ—३५

२६६ रामविलास शर्मा, प्रसाद, सपादक निर्मला तलवार पृष्ठ—५६

२६७ नन्ददुलारे वाजपेयी, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस प्रयाग सवत् २००४ पृष्ठ—१५६

२६८ वही पृष्ठ—६१

२६६ किशोरी लाल गुप्त, प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, पृष्ठ—३०

२७० शभूनाथ, सपादकीय समकालीन सृजन, पृष्ठ—१०

२७१ वही पृष्ठ—११, १२

२७२ नन्ददुलारे वाजपेई, जयशकर प्रसाद समकालीन सृजन, सपादक शभूनाथ, पृष्ठ—४६

२७३ रामविलास शर्मा, साहित्य मे लोक जीवन की प्रतिष्ठा और जयशकर प्रसाद, समकालीन सपादक शभूनाथ पृष्ठ—७३

२७४ गोविन्द चातक, प्रसाद के नाटक स्वरूप और सरचना, तक्षशिला प्रकाशन दिल्ली पृष्ठ—२३

## अध्याय–४

# सृजन एवं विद्रो. : सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' {१८९६–१९६१} अपनी रचनाओ के माध्यम से अपने परिवेश से समग्रत न केवल परिचय कराने मे अपितु उसे एक दिशा देने मे सफल रहे है। सयोग से जिस समय राष्ट्रीय चेतना का स्वरूप जनवादी होने के लिए अभिजात्य शिकन्जो से मुक्ति के लिए प्रयास कर रहा था, उसे एक ऐसा रचनाकार मिला जो तमाम मार्गों से गुजरते हुये अन्तत जनवादी मूल्यो की स्थापना के प्रति कटिबद्ध रहा। डा० राम विलास शर्मा लिखते है, "प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के बाद स्वाधीनता आन्दोलन के उभार का समय हिन्दी साहित्य मे कवि निराला का अभ्युदय काल भी है। सन्'२० से ४७ तक स्वाधीनता प्राप्ति की आकाक्षा उनके साहित्य की मौलिक प्रेरणा है"।[1] इस समय राष्ट्र ही नही साहित्य ने भी अभी तक व्याप्त पारम्परिक नियमो के खण्डन का मुखर एव सार्थक प्रयास किया जिसमे निराला का आन्दोलन अविस्मरणीय है। उन्होने साहित्य को छन्दो एव तुकबन्दियो से मुक्ति दिलाने के प्रयास मे अपने सहकर्मियो की उपेक्षा भी झेली और सघर्ष भी किया और अन्तत अजेय भी रहे। निराला जिस युग मे रचनाधर्मिता से जुडे उस युग को हिन्दी साहित्य मे छायावाद के नाम से जाना जाता है। नन्द किशोर नवल अपने एक समीक्षात्मक लेख मे लिखते है, "छायावाद मुक्ति चेतना का काव्य था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने स्पष्टत· उसके पीछे प्रथम विश्वयुद्ध की प्रेरणा मानी है जिसमे भारत मे उपनिवेश विरोधी भावना का प्रसार हुआ था। ऐसी स्थिति मे सर्वथा स्वाभाविक था कि छायावादी कविता स्वाधीनता आन्दोलन से अन्तरग सम्बन्ध बना कर चलती। यह सम्बन्ध प्राय अप्रकट है पर यह कभी–कभी प्रकट भी हो उठता है। छायावाद मे कनक–किरण का अन्तराल ही नही स्वय प्रभा समुज्जवला स्वतत्रता की पुकार भी है"।[2]

निराला न केवल अपने लेखन कर्म से ही राष्ट्रीय चेतना से सम्बद्ध हुये वरन अपने युगीन समस्त अन्तर्विरोधो से वे व्यावहारिक रूप मे जुडे। महादेवी वर्मा, जो उनकी समकालीन भी थी कहती हैं, "किसी अन्याय के प्रतिकार के लिए उनका हाथ लेखनी से पहले उठ सकता था"।[3] निराला के जीवनीकार नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते है, "जब महात्मा गॉधी का आन्दोलन गॉव मे भी जोर पकड चुका था तो मुझे उनके राजनीतिक स्वरूप का भी परिचय मिला। हमारे गॉव मे ही राजनीतिक सभाएँ हुआ करती थी। उनमे सक्रिय काग्रेसी कार्यकर्ताओ के साथ निराला और मै प्राय· उपस्थित रहते थे।

इस अवसर पर उनके भाषण भी उत्तेजक और जोरदार हुआ करते थे। उनका मुख्य विषय अग्रेजी राज मे ग्रामीणो की दुर्दशा का रहा करता था और यहाँ वह आर्थिक पक्ष पर अधिक बल दिया करते थे"।[४]

निराला की रचनाओ का मूल्याकन करते समय हमे यह ध्यान रखना होगा कि उनका जीवन पथ किन–किन जटिलताओ से सघर्ष करते हुये आगे बढा। निराला का व्यक्तित्व भारत की वैविध्यपूर्ण सस्कृति के सश्लेषण का परिणाम था। यदि जन्म के पूर्व एव पिता के सरक्षण को जीवन का पर्यावरण माना जाय तो निराला मूलत गढाकोला जनपद उन्नाव के रहने वाले थे, जो अवध क्षेत्र मे पडता है। आर्थिक उलझनो के फलस्वरूप उनके पिता महिषादल जनपद मेदिनीपुर गये जो बगाल मे स्थित है और वही एक देशी राजा के यहाँ सिपाही की नौकरी मिली, यही पर निराला का जन्म हुआ। बचपन मे ही उनकी माता का देहान्त हुआ और बचपन मे ही विवाह। १९२० के समय तक उनकी पत्नी, पिता एव कई स्नेहिल पारिवारिक सदस्य उनसे प्रकृति के निर्मम अत्याचार के द्वारा छीने जा चुके थे। इसी समय उन्होने नौकरी भी छोडी, इसके बाद वे कलकत्ता, लखनऊ एवं इलाहाबाद मे लम्बा प्रवास मृत्यु पर्यन्त किये। भारतीय साहित्यविद् कमलारत्नम् लिखती है, "उनके चरित्र, व्यक्तित्व एव विचारो का गठन बगाल के सास्कृतिक पुनरूत्थान के प्रभाव मे हुआ"।[५] नीलाभ लिखते है, "निराला की मूल मानसिक बनावट किसान की है और अवध के किसान के सहज भावबोध से ही वे अपने आतरिक एव बाहरी परिवेश पर अपनी प्रतिक्रियाये रचनाओ मे अकित करते चलते है"।[६]

निराला की रचनाओ का राष्ट्रीय चेतना के सन्दर्भ मे मूल्याकन करते समय हमे यह भी ध्यान मे रखना होगा कि निराला अपने समकालीन युग मे सचालित राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न विचारधाराओ मे से किस विचाराधारा का प्रतिनिधित्व करते है। निराला अपनी कविता 'बापू के प्रति' मे उन साहित्यकारो की कडी भर्त्सना करते है जो गॉधीवादी विचारधारा के अन्ध–समर्थक होकर उनके सामने सर के बल खडे रहते है।[७] रूसी लेखक चेलिसेव अपनी पुस्तक 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' मे स्वीकार करते है, "वे उन महान साहित्यकारो मे से है जिन्होने उस समय भारतीय समाज के जीवन के सभी क्षेत्रो मे फैली हुई गॉधीवादी विचारधारा को निराक्षेप स्वीकार नही किया। औपनिवेशिक दासता से भारत को मुक्ति दिलाने के उपायो, साधनो और मार्गो सम्बन्धी मूल–भूत प्रश्न पर गॉधी से उनका स्पष्ट मतभेद था। गॉधी जी तो सघर्ष के क्रातिकारी मार्ग को अस्वीकार करते थे"।[८] उदाहरणस्वरूप जब निराला अपनी कविता 'महाराजा शिवाजी का पत्र' (१९२६) मे यह कहते है, "ईंट का जवाब हमे पत्थर से देना है" तो उन समस्त गॉधीवादी मान्यताओ को ध्वस्त कर रहे होते है जिसकी वकालत गॉधीजी अपने सिद्धान्तो मे करते है। "अहिसा का उपदेश देनेवाले महात्मा गॉधीजी का प्रभाव बढता जा रहा था

तब की रचित निराला की यह कविता विशेष महत्व रखती है क्योकि दासता के विरूद्ध जन्मभूमि की प्रतिष्ठा – मुक्ति और स्वतत्रता के लिये सशस्त्र सघर्ष की उसमे खुली अपील की गई है" ।[9]

इसी तरह निराला वामपथी विचारधारा के अन्धभक्त कभी नही रहे। उसे उसी सीमा तक निराला ने अपने साहित्य मे जगह दिया जहाँ तक वह भारतीय परिवेश के लिये उपयोगी हो सकता था। जैसा कि दूधनाथ सिह अपनी पुस्तक, 'आत्महन्ता आस्था निराला' मे लिखते है, "सभव है साम्यवाद के सिद्धान्तो के आलोक मे उन्होने अपनी ही जनसामान्य के प्रति अपरम्पार निष्ठा की पुर्नपहचान की हो उन्हे इतिहास के सही नुक्ते को समझने मे मदद मिली हो इससे अधिक कोई प्रभाव साम्यवाद का उनके ऊपर बताना पूर्णतया अनुचित होगा क्योकि निराला की यह जनमुक्ति चिता उस समय से उनकी कवितओ का अग रही है जब हिन्दुस्तान मे कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना भी नही हुई थी। निराला की इस सास्कारिक गहरी निष्ठा को किसी बाह्य विचार दर्शन से जोडना गलत होगा" ।[10]

अत. निराला को रामविलास शर्मा की तरह पूर्णत मार्क्सवादी खेमें मे डालकर अध्ययन करना, उनके विचारो को समझने मे एक बाधा होगी। जबकि निराला स्वय कहते है, "मैंने मै शैली अपनायी/ देखा एक दुखी निज भाई/ दुख की छाया पडी हृदय पर/ झट उमड वेदना आई" ।[11] जैसा कि 'दूधनाथ सिह' अपनी समीक्षा मे कहते है, "निराला का विराट अह किसी भी विचार दर्शन को तद्वत स्वीकार कर लेने वाला नही है" ।[12] वस्तुत साहित्यकार मे उसकी निजी अनुभूति रचनाओ से जुडी होती है और इसी कारण विचारधारा एव समाज का प्रतिनिधि होते हुये भी अनुभूति के स्तर पर उसकी अनुभूति प्रचलित विचारधारा से पृथक हो सकती है। रेमण्ड विलियम्स अपनी पुस्तक 'मार्क्सिज्म एण्ड लिटरेचर' मे रचना के इसी अनुभूति पर जोर देते है" ।[13]

निराला को समझने के लिए उनके रचना कर्म को युगीन परिस्थितियो मे सन्दर्भित करते हुये उनके निजी आग्रहो एव जटिलताओ को समझना आवश्यक है। डा० रामविलास शर्मा उनकी रचना के विविध सन्दर्भो पर टिप्पणी करते है, "नये मानवतावाद के प्रतिपादक निराला के साहित्य मे मनुष्य वीर क्रातिकारी, योद्धा, कवि निरन्तर सघर्षशील साथ ही अन्तर्द्वन्द्व, ग्लानि और पराजय से पीडित साधारण मनुष्य भी है। निराला सौन्दर्य और उल्लास के कवि है और दुख एव मृत्यु के भी" ।[14] अत समीक्षात्मक रूप से 'नन्ददुलारे वाजपेयी' के शब्दो मे, "निराला जी के उपन्यासो, कहानियो का अध्ययन एव विवेचन करते समय भावना की उस कोमल भूमि मे उतरना होगा जिस पर स्थित होकर वे प्रणीत हुई है अन्यथा समीक्षा अपने अर्थ से वचित रहेगी" ।[15]

निराला के उपलब्ध सम्पूर्ण रचनाकर्म एव विचारो के अध्ययन से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि उन्होने अपने परिवेश एवं युग मे व्याप्त या अतीत के किसी भी मूल्य या सिद्धान्तो का पूर्णत

अनुसरण नही किया। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि आज जब हम उनका मूल्याकन करते है तो सर्वमान्य रूप से उन्हे प्रतिक्रियावादी या परिवर्तनवादी या इसी तरह के किसी दूसरे खेमे मे हमेशा–हमेशा के लिये नही रख पाते। निराला की रचनाधर्मिता से ही आज के लेखको ने उन्हे अपने –अपने खेमो मे सुविधानुरूप रखा है। यह उनकी रचना की जल जैसी उदारता ही मानी जायेगी। गगाप्रसाद पाण्डेय के अनुसार, "उन्हे समझने के लिये जिस मात्रा मे बौद्धिकता चाहिये उसी मात्रा मे सवेदनशीलता भी अपेक्षित रहती है। ऐसा सन्तुलन न होने के कारण उन्हे पूर्णता से समझने वाले विरले मिलते है"।[१६]

रामविलास शर्मा लिखते है, "तुलसीदास के बाद निराला की सी काव्य प्रतिभा का दूसरा कवि हिन्दी मे नही हुआ। यह भी सही है कि तुलसीदास के बाद हिन्दी मे ऐसी रचनात्मक क्षमता का दूसरा युग नही हुआ"।[१७] निराला की साहित्यिक कृतियो का मूल्याकन करते समय मैने इसे विभिन्न खण्डो मे बॉटकर उसका अध्ययन नही किया है। यह केवल अपनी सुविधा के लिए किया गया कार्य नही है बल्कि निराला की मौलिकता का विखण्डन रोकने के लिये किया गया है। सामान्यतः रचनाकार सिर्फ वर्तमान की ही उपज नही होता बल्कि अतीत और भविष्य के प्रति उसका दृष्टिकोण भी उसकी रचना को प्रभावित करता है। इस इसलिए निराला की सम्पूर्ण रचना को समग्रता के साथ देखने की आवश्यकता है।

**X X X X X**

निराला की कविताए अपने निजी सस्कारो एव परिवेश से प्रायः सयुक्त रहती है। इसी कारण उन पर कई आक्षेप लगाए जाते रहे है। चूँकि आक्षेपो का सम्बन्ध राष्ट्रीय चेतना से भी है अत यदि इन आक्षेपो को स्वीकार कर लिया जाय तो उसका आशय यह होगा कि निराला राष्ट्रीय चेतना के प्रसार मे न केवल बाधक रहे अपितु आज भी उन्ही सन्दर्भों मे वे अप्रासगिक सिद्ध होगे। अत एक क्रम से इन आक्षेपो के सन्दर्भ मे निराला की रचनाओ का विश्लेषण करना होगा। प्रथम आक्षेप हिन्दी के चर्चित कवि विष्णु खरे ने निराला पर साम्प्रदायिक रचनाकार होने का लगाया है।[१८]

मेरा विचार है कि निराला की रचनाओ मे कही–कही पर जो हिन्दू आग्रहो का प्रतिफलन हुआ है वह सभवत उनकी सस्कारगत अभिव्यक्ति है। व्यावहारिक जीवन मे मुसलमानो के प्रति उनका दृष्टिकोण समकालीन परिवेश मे सदैव उदार रहा है। निराला लिखते हैं, "हिन्दू और मुसलमान अब दगाबाजो को खूब समझ गये है। अब वे दिन लद गये जब आप लोग फाखता उडाते थे, अब वे दिन आ रहे है जब आप लोगो को भी बोरिया–बिस्तर बॉधना समेटना होगा"।[१९] यही नही निराला इस बात का प्रकारान्तर मे उल्लेख करते दिखाई पडते है कि 'अग्रेजो की नीति हुई भारत के इतिहास को विकृत

कर दो"।[20] स्पष्ट है कि निराला साम्राज्यवादी चालो से कूटनीति के स्तर पर बखूबी परिचित थे। निराला अपने चरित्र उपन्यास 'कुल्लीभाट' मे अपने नायक का विवाह एक मुस्लिम महिला से करने का उल्लेख करते है और उसकी प्रशसा भी करते है। "ये जिनते काग्रेसवाले है अधिकाश ये मूर्ख और गवार है, फिर कुल्ली सबसे आगे है खुल्लम–खुल्ला मुसलमानिन बैठाए है"।[21] यही नही कुल्ली के मुस्लिम महिला से विवाह करने पर उसका सामाजिक बहिष्कार लोग करते है इस पर निराला के नायक 'कुल्ली' कहते है, "हिन्दू बडे नालायक है"।[22] कुल्ली की मृत्यु पर अन्तिम सस्कार के लिए कोई पुरोहित न मिलने पर निराला जो इस कथा के एक पात्र स्वय लगते है, कहते है, "वह न आयेगे तो मै हवन करा दूँगा"।[23] 'कमला' कहानी मे हिन्दू–मुस्लिम दगो का चित्रण करते हुये निराला बडे तटस्थ भाव रखते है, "दोनो तरफ के अनेक घर लुटे–फुॅके और ढहा दिये गये। हजारो आदमी काम आये जो हिन्दू मुसलमानो की बस्ती मे थे उनके घर फूॅककर माल लूटकर आदमियो को मारकर या जख्मीकर अपने घरो मे डाल दिया। ऐसा ही हिन्दुओ ने भी किया"।[24]

निराला न केवल हिन्दू–मुस्लिम सौहार्दता की वकालत अपनी रचनाओ मे करते है अपितु भारत के बहुसख्यक हिन्दू से प्रश्न भी करते हैं कि "मुसलमानो को उपदेश देने से पहले हमे अपने ही यहॉ तलाश करके देखना चाहिये कि हमने मुसलमानो के साथ सहयोग करने की कितनी तैयारी की। अवश्य ही इस प्रश्न के उत्तर मे हमे बडी निराशा होगी"।[25] जैसा कि डा० रामविलास शर्मा स्वीकार करते है, "समाज मे ऊॅच–नीच का भेद मिटाकर, अन्धविश्वास और रूढियो से मुक्त होकर, व्यापक मानवतावाद की भूमि पर हिन्दू और मुसलमान अपनी राष्ट्रीय एकता दृढ कर सकते है, निराला की शिक्षा का यही सार तत्व था"।[26]

'महाराजा शिवाजी का पत्र' शीर्षक की कविता मे निराला के दृष्टिकोण को हाल ही मे प्रकाशित एक लेख मे नीलाभ शका की दृष्टि से देखते है और उनकी इतिहास दृष्टि पर प्रश्न उठाते है"।[27] यहॉ हमे ध्यान रखना चाहिये कि अतीत के ऐसे प्रतीको का उपयोग राष्ट्रीय आन्दोलन मे राजनीतिक लामबन्दी के लिये किया गया था। प्राय रचनाकार ही नही राजनीतिज्ञ भी इस प्रक्रिया मे अति उत्साह से भाग लेते थे। तिलक का शिवाजी एव गणपति उत्सव, गॉधीजी का 'रामराज्य' इसी श्रृखला की कडी थे। इसी क्रम मे निराला भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद को मुगल साम्राज्य के अतिप्रसार को साथ–साथ रखते है। निराला जब कहते है, "पस्त होगा हौसला/ ध्वस्त होगा साम्राज्य/ हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से/ दासता के पाश कट जाएगे/ शत्रु को मौका न दो/ अरे कितना समझाऊ मै"।[28] तो उनका उद्देश्य मुस्लिम साम्राज्य को ध्वस्त करना या घेरना या साम्राज्य से मुक्त होना नही था अपितु समकालीन बिटिश साम्राज्य था जो भारत का विभिन्न उपक्रमो से शोषण कर रहा

था, उससे मुक्ति की बात करते है। यहॉ हमे यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि शिवाजी के चरित्र मे जिन मिथको का प्रयोग किया गया था वे जनप्रिय भी थे जिसे निराला ने ऐतिहासिक तथ्यो से अलग किये बगैर उद्धृत किया है। दृष्टव्य है निराला साहित्य रच रहे थे न कि इतिहास। साहित्य के उद्देश्यो मे एक यह भी है कि उसमे रूचि बढाने के लिये यथार्थता से थोडा पल्ला झाडना पडता है जबकि इतिहास इसके उल्टा होता है। इस प्रकार यह नही स्वीकार किया जा सकता कि निराला ने साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अपनाकर राष्ट्रीय चेतना की धारा को विभाजित करने या मोडने का प्रयास किया है। रामविलास शर्मा लिखते है, "कुल मिलाकर पन्द्रहवी सदी से लेकर अठारहवी सदी तक द्विज या शूद्र का भेद मिटाने वाली धार्मिक रूढियो का निषेध करके हिन्दुओ और मुसलमानो की एकता को दृढ करने वाली साहित्य की जो शक्तिशाली धारा प्रवाहित हुई थी बीसवी सदी मे उसके सच्चे समर्थक और सबसे बडे प्रतिनिधि थे सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला"।[२९]

**x x x x x**

निराला पर दूसरा आक्षेप समीक्षको ने अतीतजीविता का लगाया है। दूधनाथ सिह ने अपनी पुस्तक 'आत्महन्ता आस्था निराला' मे उन्हे अतीतजीवी सिद्ध करते हुये उनके पास किसी दूसरे विकल्प के न होने की बात की है"।[३०] नीलाभ ने भी अपने लेख मे उन्हे परम्पराप्रिय कवि के रूप मे प्रतिष्ठित किया है जिससे प्रयास करने के बाद भी वे अपने को मुक्त नही कर पाये है।[३१] दलित लेखक कॅवल भारती के अनुसार निराला अपने चितन मे प्रगतिवाद के मूल चेतना के विरूद्ध है वेदान्ती होने के नाते वर्णव्यवस्था के समर्थक है तथा दलित विरोधी, हिन्दुत्वादी और पुनरूत्थानवादी।[३२]

निराला की अतीतजीविता एव उनमे वेदान्ती मान्यताओ को अपने रचनाकर्म मे धडल्ले के साथ उपयोग करने का आरोप लगाने से पहले हमे युगीन परिस्थितियो एव निराला के परिवेशगत सस्कारो को समझना होगा। कात्यायनी लिखती है, "भारत मे राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक दौर मे अतीत से प्रेरणा लेते हुये अतीतोन्मुख हो जाने, हिन्दुत्व के गौरव की पुर्नस्थापना की बात करने, पौराणिक गाथाओ और धार्मिक उत्सव के माध्यम से अपनी स्वतत्र राष्ट्रीय पहचान की तलाश करने और मध्यकाल के मुस्लिम विदेशी हमलावरो या दिल्ली मे स्थापित सल्तनत से मोर्चा लेने वाले राणा प्रताप, शिवाजी, छत्रसाल या गुरूगोविन्द सिह को राष्ट्रीय नायको के रूप मे प्रस्तुत करने की आम प्रवृत्नि राजनीतिक क्षेत्र मे भी मौजूद थी और सास्कृतिक साहित्यिक क्षेत्र मे भी, पर इस वैचारिक विचलन के वस्तुगत आधार थे"।[३३]

विष्णु खरे और नीलाभ जिस दृष्टि से निराला को साम्प्रदायिक हिन्दूवादी और परम्परामोही सिद्ध करने का प्रयास करते है उस दृष्टि से दयानन्द की वेदप्रियता, विवेकानन्द की वेदान्तिकता, तिलक के शिवाजी एव गणपति उत्सवो और गॉधीजी की 'रामराज्य' की परिकल्पनाओं के कारण इन

सभी के योगदानो को कमोबेस उसी खेमे मे रखा जा सकता है। कात्यायनी अपने निष्कर्ष मे लिखती है, ''अपने रचनाकाल के दौरान तीस के दशक के पूर्वार्द्ध तक निराला जहॉ कही भी राष्ट्रीय जीवन की दुरावस्था की पीडा, राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान की तडप या भारत के सास्कृतिक अध पतन के विकल्प की खोज से जूझते है, वहॉ अतीत की ओर देखते नजर आते है। पुनर्जागरण और प्रबोधन के दर्शन के अभाव मे औपनिवेशिक समाज की दुरावस्था का विकल्प वे गौरवमयी अतीत मे खोजने की कोशिश करते है''।[३४]

हमें यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि निराला जिस राजनीतिक पृष्ठभूमि की उपज थे अतीतोन्मुखता कितनी लोकप्रिय और गतिशील थी। दादाभाई नौरोजी, आर०सी० दत्त, गोपालकृष्ण गोखले एव एम०जी० रानाडे आदि उदारपथी विचारधारा के प्रवर्तक जिसने ब्रिटिश शोषण को उद्‌घाटित करते हुये आर्थिक राष्ट्रवाद का बीज आरोपित किया तथा ब्रिटिश सत्ता से रियायत के लिए याचक प्रवृत्ति का पोषण किया यह समूह ब्रिटिश शासन के सरक्षण मे ही स्वायत्ता चाहता था। यह विचारधारा अपने युग मे जनप्रिय न हो सकी, सिवाय अभिजात्य वर्ग के। जबकि बालगगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिनचन्द्र पाल जो उग्रपथी विचारधारा के समर्थक थे होमरूल और स्वराज की बात करते हुये अप्रत्यक्ष रूप से क्रातिकारी आन्दोलनो एव विचारो को भी सरक्षण प्रदान करते थे। जाति एवं धर्म के बारे मे यह समूह अतीतोन्मुख ही था लेकिन राष्ट्रीय आन्दोलन मे यही वर्ग जनप्रिय एव तेजस्वी विचारधारा वाला सिद्ध हुआ। बम्बई के मजदूरो ने तिलक की गिरफ्तारी पर १६०७ मे विशाल प्रदर्शन किया था। इस प्रकार निराला की रचनाओ मे प्रतिक्रियावादी विचारो का मौजूद होना, अतीत को गौरवशाली बनाना उन्हे कदापि अप्रासगिक सिद्ध नही करता।

अतीत का महिमामण्डन भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की विशेषता थी। समकालनी युग मे जबकि महादेवी वर्मा के शब्दो मे ''हम दम्भ और स्पर्धा, अज्ञान और भ्रान्ति की ऐसी कुहेलिका मे चल रहे है'',[३५] तब रचनाकारो द्वारा अतीतोन्मुख होना साहित्यिक रणनीति का अग था। महादेवी वर्मा के ही शब्दो मे, ''निराला की यह मौलिक स्फूर्तता उन्हे क्रान्तिकारी रूप देती है। निराला जी विचार से क्रान्तिदर्शी और आरचरण से क्रान्तिकारी है। जिसे वे उपयोगी नही मानते उसके प्रति उनका किंचित मात्र भी मोह नही है चाहे तोडने योग्य वस्तुओ के साथ रक्षा के योग्य वस्तुऍ भी नष्ट हो जावे''।[३६]

निराला 'गीतिका' शीर्षक से अपनी कविता मे कहते है, ''जला दे जीर्ण शीर्ण प्राचीन/ क्या करूँगा तन जीवन हीन''।[३७] निराला ने स्वयं लिखा है, ''इस समय सबसे बडा सुधार जो समाज को चाहिये वह है मस्तिष्क को हर तरह की रूढियो के बन्धनो से मुक्त कर देना''[३८] ''हम बहुत पहले से कह रहे है समाज का आमूल परिवर्तन जरूरी है''।[३९] इस तरह अतीत का उपयोग वर्तमान के लिये

निराला वही तक करते है जहाँ तक उसकी प्रासगिकता है। वे अतीत के सम्पूर्ण प्रतिमानो के अन्धभक्त नही है। अत निराला की अतीतोन्मुखता रूढिवादिता का प्रतीक नही है।

निराला अपनी रचनाओ मे जहाँ तक एक वेदान्ती के रूप मे दिखाई देते है वहाँ तक उनकी आस्था विवेकानन्द मे स्पष्टत दिखाई देती है। निराला विवेकानन्द के बारे मे टिप्पणी करते हैं, "प्राचीन सस्कारो के बडे खिलाफ थे यदि उनके पीछे ज्ञान न रहा नवीन भारत का क्या रूप होना चाहिए इसके वे सच्चे चित्र है"।[४०] कात्यायनी अपने लेख मे वेदान्त को अपरिवर्तनशील विचारशरणि नही स्वीकार करती बल्कि उनके अनुसार वेदान्त अपने युग के अनुरूप हमेशा परिवर्तित होता रहा है। उनके अनुसार, "बादरायण से लेकर शकराचार्य होते हुये विवेकानन्द पहुँचते–पहुँचते वेदान्त अपने सामयिक युग के अनुरूप था। विवेकानन्द ने १६वी सदी के अन्त में जब वेदान्त की व्याख्या की तो विज्ञान और टेक्नोलाजी के विकास के रूप मे आधुनिक पूँजीवाद की उपलब्धियॉ उनके सामने थी। मजदूर वर्ग और उपनिवेशो की जनता की निर्मम लूटमार का वह लेखा जोखा भी सामने था जिसे यूरोपीय पुनर्जागरण और प्रबोधन के मानवतावाद और तर्कबुद्धि ने राज्य की सकल्पना के आलोक को फीका कर दिया।. .. विवेकानन्द उपनिवेशवाद और उसके द्वारा पोषित सामन्तवाद, उसके रूढ धार्मिक, सास्कृतिक मूल्यो का विरोध करते हुये नये राष्ट्रवाद की वैचारिक भूमि तैयार करने मे अहम भूमिका निभाते है।. इसी रूपान्तरिक वेदान्त को निराला अपने साहित्यिक जीवन मे अपनाते है"।[४१]

**XXXXX**

निराला को कॅवल भारती द्वारा दलित विरोधी और वर्ण व्यवस्था का समर्थक कहना निराला साहित्य के सन्दर्भों को नजरअदाज करने के समान होगा। निराला अपने एक लेख मे कहते है, "भारतवर्ष का यह युग शूद्र शक्ति के उत्थान का युग है। देश का पुनरूद्धार उन्ही के जागरण की प्रतीक्षा कर रहा है"।[४२] अपने एक लम्बे लेख मे निराला शूद्र शक्ति का आह्वान करते है, "भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नही जागते। उनका कर्म क्षेत्र मे उतरना भारत का स्वाधीन होना है"।[४३] रामविलास शर्मा लिखते है, "वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी अपरिवर्तनीय व्याप्ति राष्ट्रीय चेतना के प्रसार मे अर्न्तविरोध का कार्य कर रही थी। अग्रेज इस अर्न्तविरोध को अपने पक्ष मे भुनाने का प्रयास 'कम्युनल एवार्ड' के द्वारा कर रहे थे, जिसके प्रति निराला सजग थे। अछूतो के अलग सगठन को बढावा देकर वे हिन्दुओ मे भी फूट डाल रहे है। निराला ने साम्राज्यवाद की इस भेद नीति का विरोध किया और इस दिशा मे न केवल काग्रेस के प्रयत्नो का समर्थन किया वरन उससे आगे बढकर एक सामान्य मानवता के स्तर पर निम्न जनो को सगठित करने के उपाय भी सुझाए"।[४४] निराला की यह कविता "दलित जन पर करो करूणा/ दीनता परउतर आये तुम्हारी शक्ति अरूणा"[४५] उनकी दलितों के प्रति

सच्ची सहानुभूति की प्रतीक है। निराला एक लेख मे कहते है, "यही अन्त्यज और शूद्र यज्ञ कुण्ड से निकले हुये अदम्य क्षत्रियो की तरह अपनी चिरकाल की प्रसुप्त प्रतिभा की नवीन स्फूर्ति मे देश मे एक अलौकिक जीवन का सचार करेगे पर देश की स्वतत्रता के लिए इन चारो शक्तियो की नवीन स्फूर्ति इनका जीवन सम्मेलन अनिवार्य है और तब कही उस सगठित नवीन राष्ट्र मे वेदान्तिक साम्य की यथार्थ प्रतिष्ठा हो सकेगी" ।[४६]

यही नही निराला तथाकथित उच्च जातियो के वाह्य आडम्बरो से भी बेहद क्षुब्ध थे। निराला अपने एक लेख मे कहते है, "तोडकर फेक दीजिए जनेऊ जिसकी आज कोई उपयोगिता नही जो बडप्पन का भ्रम पैदा करता है और समस्वर से कहिये कि आप उतनी ही मर्यादा रखते हैं जितना कि आपका नीच से नीच पडोसी चमार या भगी रखता है" ।[४७] यही निराला यह भी स्वीकार करते है "वीरो छोटो को अपने बराबर कर लेने से बडा कोई धर्म नही है" ।[४८] साथ ही वे यह भी लिखते है "आजकल ब्राह्मणेत्तर समाजो मे ऐसे मनुष्यो की कमी नही जो विद्या और बुद्धि मे ब्राह्मणो के बराबर है फिर ब्राह्मणों की कन्याओ का उनके साथ मानसिक मेल या विवाह असगत या अस्वाभाविक कदापि नही" ।[४९] अन्त मे निराला यह भी घोषणा करते हैं कि, "अब सब एक ही जाति के हैं, शूद्र" ।[५०]

वर्तमान हिन्दू समाज के एक अपने लेख मे निराला कहते हैं, "सदियो का कूडा उनमे जम गया है और उस समय की वे नालियॉ अब किसी भी तरह काम की नही रह गयी। वर्तमान समाज का सामाजिक प्रवाह जैसा है हमे भी उसी तरह की नयी–नयी नालियॉ काटकर तैयार करनी चाहिये नही तो अपर देशो का मुकाबलना नही कर सकेगे।" यही नही वे पूर्ववर्ती सुधार आन्दोलनो से पूर्णत सहमत नही है। अपने इसी लेख मे निराला कहते है, "आर्य समाज की बहुत सी बातो मे कट्टरता ही प्रबल थी" और अन्त मे वे कहते है, "शूद्र शक्तियो मे यथार्थ भारतीयता की किरणे फूटेगी" ।[५१]

निराला भारत की जाति समस्या को भारत की राष्ट्रीय समस्या से जोडते हुये एक दूसरे को समानान्तर मे देखते है। अपने लेख 'भारत की नवीन प्रगति' मे वे यह उद्धृत करते है, "भारत के राष्ट्रीय समस्या के साथ ही दो समानान्तर रेखा की तरह यहॉ की जातीय समस्या भी चल रही है" ।[५२] इस प्रकार निराला ने वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी लेखो मे इस व्यवस्था के खोखलेपन, वर्तमान युग मे उसकी निस्सारिता, इस व्यवस्था के कारण निर्धन ब्राह्मणो मे फैले मिथ्या अहकार और दम्भ का चित्रण किया और इस व्यवस्था की कडी आलोचना की। डा० रामविलास शर्मा लिखते है, "उन्होने ऊँच नीच का भेदभाव मिटाने का काम राजनीतिक कर्तव्य के रूप मे स्वीकार किया राष्ट्रीय आन्दोलन की दृढता के लिये उसे आवश्यक माना। दलितो के प्रति गहरी सहानुभूति प्रगट करते हुये उन्होने मैत्री और भाइचारे

के आधार पर उन्हे अपने बराबर आसन दिया उनका उद्धार अन्य वर्णों के गरीब किसानो के सहयोग से होगा इस सत्य की ओर सकेत किया" ।[53]

**X X X X X**

अपनी रचनाओ के माध्यम से निराला जहॉ एक ओर किसानो और मजदूरो को जागृत करने का प्रयास करते है वही दूसरी ओर यह भी स्वीकार करते है कि उनकी दुरावस्था के लिए सामन्ती एव पूँजीवादी ढग का समाज विशेष रूप से जिम्मेदार है। "अमेरिका और ब्रिटेन के मजदूर सगठन बनाकर प्रदर्शन करते और अपनी मॉग पार्लियामेण्ट तक पहुँचाते है और राज्य की ओर से उन्हे कुछ सहायता मिलती तो है परन्तु भारत के मजदूर किसे सुनाये वे अपने भाग्य के सहारे दुर्दिनो को करूणापूर्वक आधापेट अधपाव भोजन पाकर ही व्यतीत करते है। रूस ने पिछले पचवर्षीय आयोजन मे कितनी उत्तमता से अपनी बेकारी और दरिद्रता नष्ट कर दी। वहॉ के किसान मजदूर अपने को मनुष्य और सम्पन्न समझने लगे। तब वास्तव मे यह बात माननी पडेगी कि यदि पूँजीवादी का अस्तित्व मिट जाय तो भारत बेकारी से बच सकता है" ।[54] निराला अपने लेख 'किसान और उनका साहित्य' मे यह विचार प्रकट करते है, "कि देश की सच्ची शक्ति इसी जगह है जब तक किसानो और मजदूरो का उत्थान नही होगा तब तक सुख और शान्ति का केवल स्वप्न देखना है। हमने इसका साद्यान्त विचार करके 'किसान कुसुमावली' नाम की एक पुस्तक माला निकालने का निश्चय कर लिया है इसी तरह मिल के श्रमजीवियो के लिये भी" ।[55]

यहॉ नीलाभ के परम्परा मोह और अपने समय से सघर्ष मे उद्धृत इस विचारधारा से सहमत नही हुआ जा सकता कि 'निराला की नजर औद्योगिक मजदूर की तरफ नही जाती'। हॉ यह जरूर है कि कभी–कभी निराला मजदूर और किसान को एक ही चौखट मे रखकर देखते है। दरअसल निराला उन्हे लेकर कोई राजनीति नही कर रहे थे कि उन्हे अलग–अलग परिभाषित कर उसका नेतृत्व करे। वे तो उन्हे एक सही दृष्टि देना चाहते थे जिससे वे अपना हक प्राप्त कर सके। निराला का मत था, "राजनीतिक प्रचार का उद्देश्य यह होना चाहिये कि किसान शिक्षित हों। उनमे यह योग्यता उत्पन्न हो कि राजनीतिक समस्याओ पर स्वय विचार कर सके उद्देश्य यह नही होना चाहिये कि वे कुछ नेताओ के अनुयायी मात्र बनकर रह जाये। वे परिश्रम करके अन्न पैदा करेगे आपके भोजन की फिक्र करेगे आप उनकी विद्या तथा शिक्षा का फिक्र कीजिए" ।[56]

साम्राज्यवाद के आर्थिक रूप का विश्लेषण करते हुए निराला साम्राज्यवाद का भारतीय नरेशो और सामन्तो के साथ गठबन्धन पर टिप्पणी करते हैं, "यह जागृति का युग है पर देशी रियासतो मे वैसा ही अन्धकार है जैसा दो सौ वर्ष पहले था .. पेरिस और लन्दन की सैर होती है केवल एक दृष्टि

रहती है कि सरकार प्रसन्न रहे। दूसरो की महिलाए छीन ली गई अत्याचार पर अत्याचार हुये लगान पर लगान बढा प्रजा ने जरा सी आवाज कृपा के लिए उठाई तो गॉव का गॉव फूॅक दिया गया विश्वास नही कि देशी रियासतो के राजे महराजो को भी ईश्वर कभी सद्बुद्धि देगे"।[५७] यही नही समाजवादी देश रूस की व्यवस्था पर प्रशसात्मक टिप्पणी करते है, " गरीबो का आदर्श आज रूस ही है किसानो के सुख का स्वर्ग आज रूस ही है"।[५८]

पुन: जमीदारो की सहायता से अग्रेजो द्वारा किसानो के शोषण पर निराला ने लिखा "पटसन, रूई, गल्ला आदि जितना कच्चा माल यहॉ पैदा होता है मुहमॉगे दामो पर दिया जाता है। किसान लोगो मे माल रोक रखने की दृढता नही और उस दृढता की जड भी काट दी गई है कारण उन्हे लगान रूपयो मे देना पडता है, खेत की पैदावार का तिहाई या चौथाई हिस्सा नही"।[५९] निराला अपने 'दीन' कविता मे किसानो की सहन परम्परा को सामने रखते है, "सह जाते हो उत्पीडन की क्रीडा सदा निरकुश नग्न"।[६०] 'किसानो की नई बहू की ऑखे' शीर्षक से लिखी कविता मे किसानो का महत्व दर्शाते हुये निराला कहते है, "ज्यो हरीतिमा मे बैठे दो विहग बन्द कर पॉख नही जानती साम्राज्ञी अपने को/ नही कर सकी सत्य सपने को"।[६१] डा० रामविलास शर्मा लिखते है, "इस प्रकार निराला सन्' २४ से ४६ तक 'तुझे बुलाता कृषक अधीर से लेकर झीगुर डटकर बोला' कविताओ कहानियो उपन्यासों मे चित्रित किसान भारत के स्वाधीनता आन्दोलन के उतार चढाव का नक्शा प्रस्तुत करते है विप्लवी वीर के पुकारने से शुरूआत करके वे डटकर बोलने की मजिल तक पहुॅचते है"।[६२]

**X X X X X**

निराला अपने सम्पूर्ण रचनाचक्र मे एक उत्साही साहित्यकार के रूप मे सामने आते हैं। इस तरह वे युवा मनोवृत्ति के अधिक नजदीक दिखाई पडते है। अपनी इसी उत्साह वृत्ति के कारण वे गॉधीजी की विचारधारा से कभी भी पूर्ण सहमत नही हो पाये, इस सन्दर्भ मे वे प्रेमचन्द के अग्रगामी रहे। कात्यायनी के अनुसार "गॉधीजी के सुधारवाद और हृदयपरिवर्तन के सिद्धान्त के प्रति आलोचनात्मक रूख निराला मे प्रेमचन्द के पहले विकसित हो चुका था"।[६३] युवको की राष्ट्रीय आन्दोलन मे बढती भागीदारी से वे उत्साहित है। सयुक्त प्रान्तीय युवक कॉनफ्रेस के अधिवेशन मे कोई वरिष्ठ और व्यापक प्रभाव वाला राजनीतिज्ञ भाग न लिया जिस पर निराला टिप्पणी करते है, "बडे–बडे नेताओ के अभाव ने युवको के वास्तविक रूप को प्रगट हाने का अच्छा अवसर दिया। प्राय देखा जाता है कि अनुभवी और वृद्ध नेताओ के सामने . देश के नवयुवक अपने विचार स्वच्छन्दता पूर्वक नही कर सकते"। इसी लेख मे निराला आगे कहते है, "जवाहर लाल जैसे युवक हृदय की धधकती आग

उबलता हुआ खून मालुम पडता था। यह युवक हृदय अस्थिपजर के इस बन्धन को तोडकर अभी निकल पडेगा''।[६४]

जवाहर लाल नेहरू की जीवनी सम्बन्धित आलेख मे निराला नेहरू की प्रशसा करते हुये लिखते है, ''स्वदेश प्रेम मे उनके मुकाबले का कोई नही है। वह अपनी बुद्धि विवेक से जो कुछ ठीक समझते है उसे कहते हुये अपने पिता तथा राजनीतिक गुरू महात्माजी को टाल देते जाने मे कोई सकोच नही करते। आप ही के प्रयत्न से इस काग्रेस मे 'पूर्ण स्वाधीनता ही भारतवासियो का राजनीतिक आदर्श है'' यह प्रस्ताव ग्रहण किया था। इससे पहले काग्रेस मे मो० हसरत मोहानी आदि नेताओ ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास करने के लिए प्रयत्न किया था परन्तु महात्माजी के विरोध के कारण उनकी चेष्टा व्यर्थ गई''।[६५] निराला अपने जनवरी १९३० की सम्पादकीय टिप्पणी 'काग्रेस का रगमंच' शीर्षक से लिखते हुये कहते है ''परन्तु यदि कही सरकार ने अपनी नीति और हृदय की गति मे कोई परिवर्तन न किया तो देश के उबलते हुये खून की बहिया मे इन बूढे नेताओ का सारा अनुभव बह जाएगा''।[६६] देश के वृद्ध तथा शान्ति के इच्छुक नेताओ के हाथ से अभी परिस्थिति नही निकल पाई है भारत को शीघ्र ही औपनिवेशिक स्वराज्य देने की घोषणा कर देनी चाहिये अन्यथा ३१ दिसम्बर की मध्यरात्रि के १२ बजे जब गिरजाघर के घटे नववर्ष का स्वागत करने के लिए बज रहे होगे गरीब भारत के नौजवान प्रात काल से ही प्रारम्भ होने वाले स्वतत्रता सग्राम के लिए कमर कस रहे होगे''।[६७]

निराला 'राष्ट्र की युवक शक्ति' शीर्षक के अपने सम्पादकीय मे दिसम्बर १९२९ मे लिखते है, ''देश के आशा के साधन युवक ही है। काग्रेस भी अबकी उस स्थान पर हो रही है जहॉ के युवक हिन्दोस्तान के युवको के अग्रणी रहे है जिनका कार्य सक्षम पुष्ट यौवन ससार की किसी भी शक्ति का मुकाबला कर सकता है। वीरवर युवक श्रेष्ठ यतीन्द्रनाथ का आत्मत्याग इधर एक नवीन स्फुर्ति हमारे युवको मे फूॅक चुका है। श्रमिक दल का लाछन भी युवक शक्ति के उद्‌बोधन के लिए कम महत्व नही रखता''।[६८] निराला 'नेताओ के निश्चय' शीर्षक से अपने टिप्पणी मे कहते है ''जरा सी भी गलती होते ही समस्त भारत मे अशान्ति की वह प्रबल ज्वाला धधक उठेगी जिसको बुझाने के लिए समस्त ब्रिटिश साम्राज्य की अश्रुवारि भी पर्याप्त न होगा। शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की सम्पूर्ण पाशविक शक्ति भी युवक भारत के उबलते हुये जोश का मुकाबला न कर सकेगी उसकी तोपे और मशीनगने निश्शस्त्र भारतीय नौजवानो के सत्याग्रह सग्राम से निरूत्तर होकर शक्ति हीन और बेकाम हो जाएगी''।[६९] यही नही निराला 'युवको को किसी भी प्रकार की परतन्त्रता एक क्षण के लिए भी सहन नही होनी चाहिये' सुभाष चन्द्र बोस के इस व्याख्यान अश का समर्थन भी करते है।[७०]

निराला अपनी कविता मे लिखते है, "बहने दो रोक–टोक से कभी नही रूकती है/ यौवन मद की बाढ नदी /किसे देख झुकती है"।[७१] मार्च १६४६ मे विद्यार्थिओ की इलाहाबाद मे क्रान्तिकारी सहभागिता और आत्म बलिदान पर निराला की टिप्पणी थी कि "खून की होली जो खेली पाया है लोगो का मान"।[७२] डा० रामविलास शर्मा के अनुसार, "गॉधीजी से असन्तुष्ट होकर युवको ने आतक का मार्ग अपनाया निराला का दृष्टिकोण आतक से भिन्न व्यापक और मौलिक रूप से क्रान्तिकारी है। निराला धार्मिक भेदभाव से लेकर वर्गभेद तक मिटाने के पक्षपाती थे और उनकी इस बहुमुखी क्रान्ति की धुरी है किसान"[७३]। "काग्रेस की अपेक्षा निराला की सहानुभूति क्रान्तिकारियो के प्रति अधिक थी। निराला और क्रान्तिकारिओ के दृष्टिकोण मे अन्तर यह था कि निराला दो चार अग्रेजो या उनके सहायको को मारने के बदले किसानो को सगठित करने तथा उन्हे स्वाधीनता आन्दोलन मे शामिल करना ज्यादा आवश्यक समझते थे"।[७४] 'ताण्डव' शीर्षक से रचित कविता मे विनाश नृत्य ताण्डव करने वाली शिव की काल्पनिक प्रतिमा तरूण कवि की विद्रोही आत्मा को मूर्त करती है विनाश करने के साथ–साथ शिव नवनिर्माण की ओर ले जाते है। "नाचो हे रूद्रताल/ आचो जग रूज अराल/ झरे झीव जीर्ण शीर्ण /उद्भव हो नव प्रकीर्ण/ करने को पुन· तीर्ण/ हो गहरे अन्तराल"।[७५] इस रचना के परिवेश पर ध्यान देने पर इसकी प्रासगकिता बढ जाती है। असहयोग आन्दोलन स्थगित हो गया है, जनता ही नही गॉधीजी के समानान्तर का सम्पूर्ण नेतृत्व हताश और विस्मित है, जडता बढ रही है, असहयोग आन्दोलन का नेतृत्वकर्ता गॉधीजी कारावास मे है, स्वराजवादियो के सारे कल्पित सकारात्मक उद्देश्यो पर तुषारापात हो रहा है। "असहयोग आन्दोलन के वापस लेने के निर्णय से लगभग सभी प्रमुख काग्रेसी नेता क्षुब्ध हुये थे और स्वाभाविक रूप से युवा पीढी और भी अधिक क्षुब्ध थी"।[७६]

**XXXXX**

निराला राष्ट्र के प्रति समर्पित आस्था रखते थे और यही नही उसकी भौगोलिक परिकल्पना करते हुये उसमे कभी–कभी देवत्व का आरोपण भी कर देते है। विवेकानन्द का 'भारत का भविष्य' शीर्षक से मद्रास मे दिया गया भाषण निराला की कविता की भावभूमि को समझने के लिये उल्लेखनीय है, "आगामी पच्चास वर्ष के लिये यह जननी जन्मभूमि भारत माता ही मानो आराध्य देवी बन जाय तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ देवी देवताओ के हट जाने से कोई हानि नही है। अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ। हमारा देश ही हमारा जागृत देवता है"।[७७] निराला की प्रथम प्रकाशित कविता मातृभूमि को ही समर्पित है, "बन्दू मै अमल कमल चिरसेवित चरण युगल/ मुकुट शुभ्र हिमागार हृदयबीच विमलाहार/ पचसिंधु ब्रह्मपुत्र रवितनया गगा/ विध्य विपिन राजे घन घेरि युगल जघा। बधिर विश्व चकित गीत सुन भैरव वाणी/ जन्मभूमि मेरी जगन्महारानी/ त्रिदश कोटि नर

समाज/ मधुरकठ मुखर आज"।[७८] इसी तरह निराला मातृभूमि से 'आग्रह' करते है "मॉ मुझे वहॉ तू ले चल/ देखूँगा वह द्वार/ दिवस का पार/ मूर्छित हुआ पडा है जहॉ वेदना का ससार"।[७९] इसी तरह मातृभूमि पर रचित उनकी एक और कविता है जो क्रान्तिकारी भाव लिए हुये है, "नर जीवन के स्वार्थ सकल/ बलि हो तेरे चरणो पर/ मॉ मेरे श्रम सचित सब फल/ क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा/ मुक्त करूँगा तुझे अटल/ तेरे चरणो पर देकर बलि"।[८०] इसी तरह की एक और मातृवदना है, "वर दे वीणा वादिनी वर दे/ प्रिय स्वतत्र रव अमृत मत्र नव भारत मे भर दे/ नव नभ के नव विहग वृद को/ नव पर नव स्वर दे"।[८१] इसी तरह की एक कविता है, "भारति जय विजयकरे/ कनक शस्त्र कमल धरे"।[८२] निराला की इन सब कविताओ मे भारत की भौगोलिक धारणा के साथ – साथ मातृभूमि के प्रति उदात्त गर्व की अनुभूति का भी चित्रण है। दूधनाथ सिह लिखते है, "इस कविता मे जहॉ भारत की भौगोलिक परिकल्पना स्पष्ट होती है 'भारति जय विजय करे' से उनका यह भौगोलिक रेखाकन सास्कृतिक रेखाकन मे बदल जाता है। इसलिए इन कविताओ के क्रम मे यह प्रार्थनागीत रविन्द्रनाथ के तथाकथित राष्ट्र गान से ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाता है"।[८३]

निराला ने राष्ट्र का महिमागान करते हुये 'खडहर के प्रति' और 'दिल्ली' जैसी कविताए लिखी। "खडहर तुम खडे हो आज भी/ अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज/ .. आर्त भारत जनक हूँ मै/ जैमिनि – पतजलि व्यास/ ऋषियो का मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर/ तेरा है बढाया मान/ रामकृष्ण भीमार्जुन नरदेवो ने"।[८४] फिर 'दिल्ली' कविता मे निराला आश्चर्य के साथ कहते हैं, "क्या वह यही देश है/ भीमार्जुन आदि का कीर्ति क्षेत्र/ चिर कुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य दीप्त/ श्रीमुख कृष्ण के सुना था जहॉ भारत मे/ गीता गीत सिह नाथ/ मर्मवाणी जीवन सग्राम की/ सार्थक समन्वय ज्ञान, कर्म, भक्ति योग का"।[८५] इस प्रकार निराला इन कविताओ मे बीते हुये इतिहास का महिमामण्डन करके तथा राष्ट्र मे देवत्व का आरोपण करके वर्तमान हताश जनसमुदाय मे ऊर्जा भरने का सार्थक प्रयास करते है कभी–कभी मातृभूमि के प्रति अप्रतिम आस्था उनकी खण्डित भी होती दिखाई पडती है। 'क्या दूँ' शीर्षक से कविता मे जब वे कहते है, "क्या है कुछ भी नही/ धो रहा व्यर्थ साधना भार"।[८६]

**X X X X X**

रामविलास शर्मा के अनुसार – "निराला की सम्पूर्ण साहित्यिक रचना की प्रेरणा स्वाधीनता प्रेम रहा है। निराला ने लडकपन मे बग–भग विरोधी स्वदेशी आन्दोलन देखा, उन्होंने उन वीर नवयुवको की कहानी पढी ओर सुनी जिन्होंने सशस्त्र क्रान्ति के द्वारा भारत को मुक्त कराने के प्रयास मे अपने प्राण दिये। उन्होने सन्' २० और ३० मे स्वाधीनता आन्दोलन के नये उभार देखे जिसमे भारतीय जनता

ने व्यापक रूप से भाग लिया। उन्होने स्वय अपने जिले के किसानो को सगठित करने मे योग दिया और उनके सघर्षों का नेतृत्व किया। निराला भारतीय और विश्व राजनीति के बारे मे जो सामग्री मिलती थी उसे ध्यान से पढते थे जो देखते सुनते थे उससे पढी हुई सामग्री की तुलना करते थे। अग्रेजी राज और भारत के बारे मे अपने निष्कर्ष निकालते थे तब स्वाधीनता प्रेम उनके साहित्य की प्रेरणा हो आश्चर्य नही"।[८७]

रामरतन भटनागर भी लिखते है, "निराला की काव्यचेतना मे उनका युग ही नही समाहित है वरन् उसमे भारतीय नवजागरण की पूर्ववर्ती भूमिका भी आत्मसात हुई है। वह एक सास्कृतिक आन्दोलन के चरम बिन्दु का प्रतिनिधित्व करते है जिसे भारतीय रेनेसा, पुनरूत्थान या पुर्नजागरण या नवजागरण कहा गया है"।[८८] वे समकालीन काग्रेसी नेताओ की भाषण बाजी एव गोष्ठी संस्कृति से भी बहुत उत्साहित नही दिखाई पडते है। "जमाना अब काम का है गावो मे अभी तक कोई स्वराज का नाम भी नही जानता इसका हमे व्यक्तिगत अनुभव है"।[८९] दरअसल निराला यह उल्लेख करके कि गॉव के लोग स्वराज का नाम नही जानते यह सकेत देते है कि ग्रामीण अचल मे राष्ट्रीय चेतना के लिए अभी काफी काम करना है। उल्लेखनीय है यह १९२९ मे कहा गया था जब कतिपय एक जनान्दोलन समाप्त हो चुका था और दूसरे आन्दोलन की तैयारी चल रही थी। निराला का यह उल्लेख "बगाल पर 'हितेन्द्र सन्याल' द्वारा, सयुक्त प्रान्त पर 'ज्ञान पाण्डे' द्वारा और केरल पर 'डेविड हार्डिमन' द्वारा किए गये ताजा विस्तृत शोधो से अधिकारिक रूप से यह प्रमाणित उल्लेख कि काग्रेस के लिए ग्रामीण समर्थन प्राप्त करने मे गॉधीवादी रचनात्मक कार्य का पर्याप्त राजनीतिक महत्व था"[९०] का खण्डन करता है।

निराला राष्ट्र को बार–बार जनआन्दोलन से जोडने पुन उसे शीर्ष से तानाशाही ढग से काग्रेसी नेताओ द्वारा स्थगित करने की प्रवृत्ति से असहमत थे। अगस्त १९३३ के 'सुधा' के सम्पादकीय मे जब तक यह प्रक्रिया कई बार दुहराई जा चुकी थी निराला टिप्पणी करते हुये लिखते है, "नेता समष्टि को साथ लेकर दौडाने से पहले यह सोच ले कि उसमे साथ दौडने की कितनी शक्ति है तो ठोकर खाकर बैठने की बात न आये"।[९१] रामविलास शर्मा लिखते है, "गॉधीवाद से निराला का मतभेद वैज्ञानिक साधनो को लेकर है। साथ ही साथ वे वैज्ञानिक साधनो का उपयोग सबके लिए चाहते है, मुट्ठीभर पूँजीपतियो के लिए नही। उनका यह विचार 'सारी सम्पत्ति देश की हो' इस धारणा के अनुरूप है। निराला पूँजीपतियो को जनता की सम्पत्ति का सरक्षक नही मानते। वह सम्पत्ति के बडे–बडे उद्योग धन्धो के राष्ट्रीयकरण के पक्ष मे है "देश को वह मिल जाय पूँजी जो तुम्हारे मिल मे है"।[९२]

गॉधीजी से निराला की थोडी बहुत वैचारिक असहमति भले ही हो पर उनके प्रति सम्मान मे वे कमी नही करते थे। गॉधीजी की गिरफ्तारी पर टिप्पणी करते हुये निराला लिखते है, "आधीरात के बाद बडी सावधानी के साथ अहिसा के अवतार वृद्ध कमजोर महात्मा गॉधी को सरकार के कर्मचारियो ने गिरफ्तार कर लिया। उस समय महात्मा जी सो रहे थे। वह कोई चोर या डाकू नही थे कर्मचारियो का यह तरीका देखकर उनकी दिली धडकन मे शासन की उदारता और कार्य की जगह श्रृगाल नीति ही हमे दिखाई पडती है"।[६३] सरकारी दमन चक्र पर निराला लिखते है, "स्त्रियो और बच्चो के अगो पर डडो की मार से घावो से बहती हुई रक्तधाराओ को देखकर अपने शासन के सुदर्शन रूप पर इतराने वाली अग्रेजी सरकार के लिए उपयुक्त शब्द हमारे कोष मे भी नही है सरकार सब तरफ से हिन्दुस्तानियो पर आतक जमाना चाहती है और इस आतक के अधकार मे डालकर अभी बहुत दिन अधेरे मे भटकाते रहना ही सरकार का उद्देश्य जान पडता है"।[६४] फिर निराला स्वाधीनता पर अपनी कविता मे इस निष्कर्ष पर पहुँचते है, "भय ही व्यवस्था का जनक है/ निर्भय अपने को/ और दुर्बल समाज को/ करके दिखाना है/ स्वाधीन का ही एक और अर्थ निर्भय है"।[६५] डा० रामविलास शर्मा लिखते है, "इस प्रकार निराला ने ब्रिटिश सुधारो का विरोध किया पूर्ण स्वाधीनता की मॉग का समर्थन किया दमन बर्बरता का चित्र खीचकर जनता को सघर्ष के लिए प्रेरित किया"।[६६]

निराला ने दो प्रबन्ध काव्य 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' लिखे जिसका रचनाकाल क्रमश १९३६ एवम् १९३८ रहा। निराला 'राम की शक्ति पूजा' मे राम को एक वीर महापुरूष के रूप मे चित्रित करते हुये उन्हे दैवी गुणो से मुक्त कर मानवीय गुणो से युक्त करते है। चेलिशेव लिखते है, "निराला ऐसा करके सभवत यह कहना चाहते है कि सघर्ष मे मनुष्य की शक्ति घट सकती है अस्थायी हारे हो सकती है पर उसे हताश नही होना चाहिये। यदि वह न्याय के लिए लडता है तो उसे विजय से कुछ भी नही रोक सकता"।[६७] अर्चना वर्मा ने अपने लेख 'निराला का अद्वैत और स्वाधीनता सघर्ष' मे यह निष्कर्ष निकाला है कि "एक ओर इसमे भारत के सकट के समाधान का प्रस्ताव है तो दूसरी ओर भौतिक शक्ति को मूल्य भावना मे मण्डित करके चेतन बनाने का सुझाव, सास्कृतिक सकट और राजनीतिक पराभव मिलकर मूल्याधकार मे परिणित हो चुके है और भौतिक आधार के अभाव मे कोरी आध्यात्मिक ओजस्विता के महिमागान से सन्तुष्ट हो बैठना अबोधता है"।[६८] "कितना श्रम हुआ व्यर्थ आया जब मिलन समय/ तुम खीच रहे हो हस्त जानकी से निर्दय। तो निश्चय हो तुम सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त/ शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन/ होगी जय होगी जय हे पुरूषोत्तम नवीन/ कह महाशक्ति राम के बदन मे हुई लीन"।[६९] स्वतत्रता सघर्ष के समय जब कि असफलता के कई पडाव से गुजर चुका था निराला की यह कविता जनमानस को कितना

उत्साह दी होगी, इस सन्दर्भ मे कि जब राम हताश निराश हो सकते है तो हमे भी अपने पराजयो को विस्मृत करके नये शस्त्रो के साथ साम्राज्यवाद से सघर्ष करना चाहिये।

'तुलसीदास' कविता मे निराला यह चित्रित करते है कि कितनी जटिल स्थिति से मुक्त होकर तुलसीदास जनसेवाओ मे जुड जाते है। निराला के मत मे तुलसीदास ने रामचरित मानस का काव्य इस उद्देश्य से रचा कि लोगो मे आत्मविश्वास तथा अन्याय पर विजय पाने की अपनी क्षमता मे विश्वास आ सके। 'होगा फिर दुघर्ष समर/ जड से चेतन का निसिवासर' चेलिसेव लिखते है, "उज्जवल भविष्य के रोचक स्वप्नो से प्रेरित तथा जनता के सुख के लिए निस्वार्थ सघर्ष का आह्वान करने वाले तुलसीदास काव्य की रचना जोर पकडते हुये स्वतत्रता आन्दोलन की ही परिस्थिति मे हो सकती थी"।[१००]

चौथे दशक के अन्त मे तथा पाचवे दशक के प्रारम्भ मे हुये बडे परिवर्तनो, राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन की प्रबल लहर, जनसाधारण की राजनीतिक सक्रियता मे वृद्धि, जनवादी शक्तियो के ठोस एकत्रीकरण और भारत मे कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव प्रसार ने निराला के सारे भावी रचना विकास पर निर्णायक प्रभाव डाला। इस समय निराला द्वारा रचित कविता "वह तोडती पत्थर/ देखा मैने उसे इलाहाबाद के पथ पर/ गुरू हथौडा हाथ/ करती बार–बार प्रहार/ सामने तरूमालिका अट्टालिका का प्राकार"। दरअसल निराला यहॉ पहुॅचते–पहुॅचते जन और जनशत्रु दोनो को शक्तिशाली पाते है, एक का प्रहार पर दूसरा अट्टालिका जैसा सुरक्षित।

'कुकुरमुत्ता' शीर्षक से कविता निराला द्वारा उस समय रची गयी जब जनवादी शक्तियॉ अपने चरमोंत्कर्ष पर थी {१६४१}। कुकुरमुत्ता जन का प्रतीक है जिसका कभी किसी ने पोषण नही किया सिवाय उपेक्षा के जबकि उसके विपरीत गुलाब जो कि पूॅजीवाद और अभिजात्य वर्ग का प्रतीक है उसका लम्बे काल से प्रेषण ही होता आया है। पर कुकुरमुत्ता उगाये नही उगता वह तो अपने मर्जी का मालिक है जहॉ चाहे वही उगे। "अबे सुन बे गुलाब भूल मत जो पाई खुशबू रगो आब/ खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट डाल पर इतराता है कैपिटलिस्ट/ बहुतो को बनाया है तूने गुलाम/ कलम मेरा नही लगता/ मेरा जीवन आप जगता/ तू है नकली मै हूॅ मौलिक/ तू है बकरा मै हूॅ कौलिक/ तू रगा और मै धुला/ पानी मे तू बुलबुला। बोला माली फरमाये माफ खता/ कुकुरमुत्ता अब उगाये नही उगता"।[१०१]

निराला इसी समय 'उद्बोधन' शीर्षक से कविता मे लिखते है, "उडती है सदा धूल/ हिम्मत न हारो तुम सुधरेगी यह भूल"। निराला का यह उद्बोधन जैसे अपने सम्पूर्ण त्रुटियो के लिये प्रायश्चित करती प्रतीत होती है जो अभी तक शोषण कर रही थी। चेलिसेव लिखते हैं, "कुकुरमुत्ता से प्रारम्भ हुई

परम्परा का चौथे पॉचवे दशक मे रची गयी उनकी कविताओ तथा गीतो मे 'अणिमा' {१६४३}, 'बेला' और 'नये पत्ते' {१६४६} मे सकलित है। इन पुस्तको मे सग्रहीत निराला की रचनाओ के विशेष लक्षण है। यथार्थवाद और उग्र सामाजिक झुकाव मातृभूमि के प्रति प्यार, शोषितो के प्रति सहानभूति, ब्रितानी जुए से भारत की मुक्ति का आह्वान''।[१०२] 'बेला' कविता मे किसानो से पूँजीपतियो की सम्पत्ति को जनसम्पत्ति बनाने की वकालत निराला करते है, ''जल्दी–जल्दी पैर बढाओ/ आज अमीरो की हवेली किसानो की होगी पाठशाला''।[१०३]

'वनवेला' कविता मे धनी लोगो के दम्भ और ढोग का जो मानव प्रेम और जनवाद का राग अलापते है मजाक उडाया गया है। 'डिप्टी साहब आये' कविता मे कवि ने गॉवो और किसानो की जागृति का वर्णन किया है जो साधारण जनता के साथ दुर्व्यवहार करने वाले जमीदारो, पुलिस वालो, सरकारी कर्मचारियो का विरोध करते है। 'महगॅू महगॉ रहा' मे बहुत ही तीखा व्यंग करते हुये निराला लिखते है, रिश्वतो और लाठियो के विरूद्ध सघर्ष करने के बजाय राजनीतिक साधारण लोगो को सभी तरह के जलसे सभाओ मे एकत्रित करते है और व्यर्थ के भाषणो से घण्टों उनके दिमाग खराब करते है। व्यापारी समाचार पत्र व प्रकाशको को खरीद लेते है ताकि वे उनके नेक कामो की सराहना करे विदेशी शराबो की धाराए बहती है जिनमे जनसेवक अपने प्यास बुझाते है।

समग्रत निराला ने राष्ट्रीय चेतना के निर्माण मे युगान्तकारी भूमिका एक साहित्यिक के रूप मे निभाई। रामविलास शर्मा के अनुसार, ''राष्ट्रीय आन्दोलन कुछ लोगो के लिये अंग्रेजो को हटाने भर का आन्दोलन था। अग्रेजो को हटाने के लिये समाज व्यवस्था को बदलना आवश्यक न था, निराला का विचार उनके मत से भिन्न था। उसके समझ मे एक व्यापक सामाजिक क्राति न केवल इस लिए आवश्यक थी कि पुरानी व्यवस्था जो सदियो पहले जर्जर हो चुकी है वरन् इसलिए भी कि उसके बिना देश के राजनीतिक आन्दोलन का लक्ष्य क्या हो? उसे शक्तिशाली कैसे बनाया जाय, शिक्षित युवको को सामाजिक क्राति के लिए कौन–कौन से कदम उठाने चाहिये? इन सब समस्याओं को लेकर निराला ने जो कुछ लिखा था वह राजनीतिज्ञो के दाव पेच से बहुत आगे की बात थी''।[१०४]

निराला अपनी कविताओ मे राष्ट्र की सुप्तावस्था का चित्रण करते हुये 'मतवाला' के तीसरे अक मे {२३ अगस्त से ३० अगस्त १६२४} कहते है ''मेरे साथ मेरे विचार मेरी जाति/ मेरे पददलित/ मौन है निद्रित है/ स्वप्न मे भी पराधीन''। अपनी एक कविता मे निराला लोगों को जागृत करने का यत्न करते है ''जागो फिर एक बार सिहो की माद मे आया है आज स्यार''। फिर राष्ट्र के समझौतापरस्त राजनीतिज्ञो को फटकारते है, ''चूम चरण मत चोरो के तू/ गले लिपट मत गोरो के तू''। निराला के काव्य की चेतना के विकास की पराकाष्ठा १६४५–१६४६ के आस–पास दिखाई पडती

है जब किसान सघर्षों मजदूर आन्दोलन का प्रसार पूरे देश मे था। निराला का स्वप्न इस सम्पूर्ण आन्दोलन को एक सूत्र मे पिरोकर एक जनक्रान्ति करना था पर राजनीतिज्ञो की थकान सत्ता प्राप्ति की उनकी उत्कट अभिलाषा के कारण देश के जन को खण्डित और अधूरी आजादी से सतोष करना पडा। इस प्रकार भारत स्वाधीन हुआ किन्तु जिस स्वाधीन भारत का स्वप्न निराला देख रहे थे वह साकार न हुआ। कात्यायनी अपने लेख मे निराला के अन्तिम दौर की कविताओ का मूल्याकन करते हुये कहती है, "मोहभग और निराशा तथा शरणागति का जो भाव है वह उनके व्यक्तिगत जीवन की त्रासदियो से उतना नही जुडा है जितना देश की अधूरी आजादी। विभाजन किसान सघर्षों की पराजय और राष्ट्रीय नेतृत्व के जनविरोधी चरित्र के उजागर होते जाने की प्रक्रिया के साथ जुडा हुआ है"।[१०५]

**XXXXX**

भाषा के प्रश्न पर तथा उसमे राजनीतिज्ञो के हस्तक्षेप पर निराला ने गॉधी, नेहरू, सरोजनी नायडू यहाँ तक कि रवीन्द्र नाथ ठाकुर को भी कटघरे मे खडा किया। महात्मा गॉधी हिन्दी साहित्य से व्यवहार के स्तर पर बहुत अधिक नही जुडे थे पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति {१६३५–१६३६} होते है और यह टिप्पणी करते है कि "कौन है हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जगदीश चन्द्र बसू, प्रफुलचन्द्र राय" इस पर निराला अपनी गॉधीजी से मुलाकात मे उन्हे निरूत्तर करते हुये कहते है, "तो आपको क्या अधिकार है कि आप कहे कि हिन्दी मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर कौन है ?"[१०६] इसी तरह पण्डित जवाहर लाल नेहरू के यह कहने पर की "हिन्दी मे दरबारी ढग की कविता प्रचलित है" निराला नेहरू से ट्रेन मे हुयी मुलाकात मे उन्हे निरूत्तर करते हुये कहते है, "आप जिस दरबारीपने का उल्लेख कर चुके है वह हिन्दी साहित्य से बीसियो साल दूर है आज बॅगला को छोडकर शायद ही दूसरी भाषा खडी बोली के उस काव्य से हाथ मिला सके"।[१०७] निराला साहित्य के बारे मे कहते है, "स्वतत्रता बहुमुखी है और साहित्य का मतलब है वह सबको साथ लिये रहे"। उसी सन्दर्भ मे निराला अपनी जिम्मेदारी समझते हुए कहते है, "कि ये जितने बडे नेता है मैं उनसे बडा साहित्यिक हूँ"।[१०८]

निराला ने राष्ट्र भाषा की समस्या को बडी गम्भीरता से हमेशा उठाया। उसे वे अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्याओ के समकक्ष रखते है निराला लिखते है, "अछूत समस्या, हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या की तरह ही स्वाधीनता आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण समस्या राष्ट्र भाषा की समस्या है"।[१०९] निराला ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने की बात की, पर शिक्षा मातृभाषा मे देने की बात की। उनके अनुसार "हिन्दी का विरोध विदेशी भाषा अंग्रेजी के साथ है"। वे अग्रेजो के षडयन्त्र को भी उजागर करते है, "हमारी भाषाए गवारूँ, असाहित्यिक ओर अविकसित बताई जाने लगी"।[११०] निराला प्रान्तीय भाषा के महत्व को समझते थे। वे सस्कृत को राष्ट्रभाषा बनाने को अव्यवहारिक मानते हुये

उत्तर देते है, "जैसे पश्चिम देशो की मूल भाषा लैटिन होते हुये भी राष्ट्र भाषा नही है वैसे ही सस्कृत भी राष्ट्र भाषा नही हो सकती"। डा० रामविलास शर्मा के अनुसार, "जहॉ तक भारतीय भाषाओ मे लिखने पढने का प्रश्न था निराला और प्रेमचन्द युग निर्माता थे। जवाहर लाल नेहरू, अग्रेजी के प्रबल समर्थक, भारतीय भाषाओ के विकास मे बहुत बडी बाधा थे"।[१११]

इस प्रकार भाषा और साहित्य के प्रश्न पर निराला न केवल अपने समकालीन साहित्यकारो से अपितु राजनीतिज्ञो से भी उलझे। सयुक्त प्रान्तीय युवक कान्फ्रेस मे सरोजनी नायडू के अग्रेजी मे दिये भाषण के प्रवाह एव शैली की निराला प्रशसा करते है पर साथ ही आक्षेप भी प्रस्तुत करते है, "हमारी सम्मति मे तो देश के नेताओ को हिन्दुस्तानी भाषा जानना और भी जरूरी है"।[११२] अपने 'साहित्य और जनता' शीर्षक से टिप्पणी मे निराला कहते है "हमारे साहित्य मे हीनता का मुख्य कारण यही है कि हम अपनी हीनता को प्रश्रय देकर उत्कर्ष समझ बैठे है"।[११३] फिर वे हिन्दी साहित्य के विकास से सन्तुष्ट भी है, "इस समय हिन्दी साहित्य की धारा जिस तरह देश काल तथा समय के अनुसार संसार के अन्य साहित्यिक धाराओ की गति से अपनी गति मिलाकर बह रही है उसे देखते हुये हिन्दी साहित्य की प्रगति तथा उन्नति के सम्बन्ध में किसी विचारशील निरीक्षक को सशय नही रह जाता। परन्तु प्राचीन साहित्य के प्रेमी इसे साहित्य का विपथगामी होना ही कहते हैं"।[११४] रामविलास शर्मा के शब्दो मे, "इसप्रकार हिन्दी भाषा और साहित्य पर जो अनुचित आक्षेप किये गये दूसरो की भाषा का उचित सम्मान करते हुये उन्होने उसका समुचित उत्तर दिया। साथ ही राष्ट्रभाषा गौरव के अनुरूप हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने की आकाक्षा उनमे और भी प्रबल हुई"।[११५]

**X X X X X**

निराला अपने रचनाकर्म से स्त्रियो से जुडे प्रश्नो का समाधान करने का सार्थक प्रयास करते है यद्यपि इस प्रश्न पर उनका परिवेश और सस्कार उन्हे सीमाकित करता है। स्त्रियो की दशा का चित्रण करते हुये निराला कहते है, "रात का समय सब भूमियो पर आता है। भारत की भूमि पर शताब्दियो से रात है। इस समय स्त्री समाज पर जो अत्याचार हुये है उन्हे पढकर रोमाच होता है। साथ–साथ यह दृढता भी आती है कि इतने दिनो तक दलित होता हुआ भी भारत अपने विशेषत्व से रहित नही हुआ उनमें कोई अद्‌भुत निष्पाप जीवनी शक्ति अवश्य थी हमे इसी जीवन शक्ति का उद्‌बोधन करना है।" इसी लेख मे वे आगे कहते है, "समय के अनेकानेक प्रहारो ने उन्हे निश्चेष्ट कर दिया है"। निराला घरेलू कार्यों और बाहरी कार्यों को समान महत्व से देखते है और महिलाओ को घर के भीतर के कार्यों के लिये अधिक उपयुक्त मानते है यह उनकी सीमा है। वे कहते है, "उनकी अधिकाश उपयोगिता गृह के भीतर है। गृह के बाहर विशाल ससार मे चलने फिरने की शक्ति गृह के भीतर है यदि भीतर से

मनुष्य अशक्त रहा तो वह बाहर सफल नही हो सकता। भीतर के सम्पूर्ण अधिकार स्त्रियो के है''।[११६] इस प्रकार निराला उन्हे शक्ति की दृष्टि से देखते है जिनकी उपयोगिता घर के भीतर है।

''निराला इस तथ्य से भी परिचित थे कि स्त्रियो की वर्तमान स्थिति के लिये दोषी सामन्ती व्यवस्था है। शूद्रो मे जहॉ पुरूष के साथ स्त्री काम करती है तुलना मे अधिक समर्थ होती है। जैसे वर्ण व्यवस्था विश्वव्यापी है वैसी ही नारी की पराधीनता। सामन्ती व्यवस्था जहॉ ज्यादा पुरानी और मजबूत होगी वहॉ जाति–पति के भेदभाव की तरह स्त्री और पुरूषो मे छोटे बडे का भेद भी ज्यादा होगा। अवध और मिथिला की अपेक्षा ब्रज और पजाब की देवियॉ अधिक स्वाधीन है इसका यही कारण है''।[११७] यही नही निराला ग्रामीण स्त्रियो के आग्रहो को भी उद्‌घाटित करते है, ''परन्तु जो बीज शहर के पढे लिखे देवियो मे रहते है वे गॉवो के गृह लक्ष्मियो मे नही। गॉव की शिक्षा में इस तरह की शिक्षा फैलने की आशा नही की जा सकती। वहॉ स्त्रियो के मस्तिष्क मे सीता और सावित्री का आदर्श भरा हुआ है, जो हर तरह पति के अनुकूल, बल्कि अधीन, रहने की शिक्षा देता है। इससे स्त्री स्वतत्रता का यह रूप भारतवर्ष मे कहॉ तक कामयाब होगा इसमे सन्देह है''।[११८] यहॉ उल्लेखनीय है कि भारत ग्रामीण बाहुल्य राष्ट्र है ऐसे मे शहरी स्त्रियो की स्वतत्रता मात्र प्रतीकात्मक ही कही जा सकती है निराला का यही मत था।

निराला स्त्रियो को इस बात के लिए भी सचेत करते है कि अपनी स्वतत्रता के लिये दूसरे के निर्देशो का अनुपालन न करे बल्कि ''हमारा अभिप्राय यह है कि हम अपनी राष्ट्र की महिलाओ के लिये चाहते है कि वे दूसरो को अपनी ऑखों से देखे अपने को दूसरे की ऑखो से नही''।[११९] निराला शारदा बिल का विरोध कर रहे कठमुल्लाओ की आलोचना करते हुये लिखते है ''हम अनेक बार लिख चुके है कि देश के दारिद्रय तथा निर्बलता का प्रधान कारण बाल विवाह ही है। नवीन सस्कृति की नीव मजबूत करने के लिए आवश्यक है कि यह कुप्रथा समाज से शीघ्र दूर कर दी जाय''।[१२०]

निराला आन्दोलन मे पुरूषो के वर्चस्व से परिचित थे। वे कहते हैं, ''अभी देश अपने आधे हाथो से काम कर रहा है। वे घर की सीमाये लाघ कर बाहर आये। देश के सामाजिक आन्दोलन मे सम्मिलित होकर उसे समर्थ बनाए''।[१२१] 'वर्तमान आन्दोलन मे महिलाये' शीर्षक से सम्पादकीय टिप्पणी मे निराला कहते है, ''वर्तमान आन्दोलन को जीवित कर रखने मे हमारी महिलाओ ने देश की जो सेवा की है और करती जा रही है वह अनमोल है''। वे आन्दोलन मे अग्रणी महिलाओं रूक्मिणी लक्ष्मीपति, श्रीमती सरोजनी नायडू, श्रीमती मित्रा, श्रीमती सरस्वती, डा० मुथूलक्ष्मी रेड्डी, वीर भगिनी कुमारी कृष्णां, वीर पत्नी श्रीमती कमला, वीर माता श्रीमती स्वरूप रानी का ससम्मान उल्लेख करते है, और इसे देश

के लिये मगल सूचना मानते है।[१२२] यही नही निराला आन्दोलन मे सहभागी स्त्रियो के उपर नौकरशाही के हमले की कडी भर्त्सना करते है।

निराला नारी स्वतत्रा के सन्दर्भ मे पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने के विरोधी थे "हमारा मतलब यह नही है महिलाए यूरोपियन बीबियॉ बनाई जाय"। 'चीनी महिलाओ का भारतीय आदर्श' शीर्षक से लिखे लेख मे निराला कहते है "चीन की महिलाओ मे इतना परिवर्तन हो जाने पर भी उनका प्रेम गृहस्थी के कामो की ओर अधिक है"। आगे निराला लिखते है, "चीन की स्त्रियो की लज्जा उनके मधुर स्त्रित्व की विभूति है। वे अपने इस गुण को खो नही सकी"।[१२३] वे भारत के भावी भविष्य के लिए भी स्त्रियो की शैक्षिक प्रगति को आवश्यक समझते थे क्योकि, "नारी ही भावी राष्ट्र की माता है। मूर्ख, पीडित और पराधीन माता से तेजस्वी स्वतत्र और मेधावी बालक – बालिकाये नही पैदा हो सकती"।[१२४] वे रूस की स्त्रियो की स्वतत्रता की प्रशसा करते है "भारतीय ललनाओ का कर्तव्य है कि वे भी रूस की स्त्रियो की भॉति उन्नतिशील बने और जहरीले अन्ध परम्परा के बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर वास्तविकता और शिक्षा की ओर अप्रतिहत वेग से अग्रसर हो, इसी मे समाज का तथा देश का कल्याण है"।[१२५] डा० रामविलास शर्मा समीक्षात्मक रूप से लिखते है, "निराला नारी मुक्ति चेतना के कारणो एव स्वरूपो पर विस्तृत चर्चा करते हुये उन्हे उन बन्धनो से मुक्ति का रास्ता दिखलाते है जिनसे वे निकट अतीत मे जकडी हुई थी। निराला प्रत्येक समस्या पर राष्ट्र के सर्वांगीर्ण विकास की दृष्टि से विचार करते है। नारी की स्वाधीनता की समस्या देश के आर्थिक विकास राजनीतिक आन्दोलन और नवीन साहित्य के अभ्युदय से जुडी हुई है"।[१२६]

**X X X X X**

निराला का वर्तमान मूल्याकन करते समय अतीत की सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनीतिक जटिलताओ को ध्यान मे रखना होगा कि निराला किस परिवेश मे रचना कर्म से जुडे थे। कात्यायनी समीक्षात्मक रूप से स्वीकार करती है, "प्रेमचन्द, इकबाल, निराला सबके अपने–अपने अन्तर्विरोध थे. साहित्य के प्रतिबिम्बन सिद्धान्त के अनुसार यही कहा जा सकता है कि इनके अन्तर्विरोधो मे उस युग के अन्तर्विरोध ही अलग–अलग रूप मे अलग–अलग धरातलो पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे और कुल मिलाकर उनकी पक्षधरता सही पक्ष के प्रति थी, जन के प्रति थी, इतिहास के विकासमान धारा के प्रति थी। दूसरी बात यह भी है कि इनकी दृष्टि पूरे रचनाकाल मे जड या पीछे की ओर ले जाने वाली नही थी बल्कि सतत विकासमान थी। विकास की इस अग्रोन्मुखी दिशा पर ध्यान दिये बिना इनके अवदानो का सन्तुलित मूल्याकन नही किया जा सकता"।[१२७]

निराला एक महान रचनाकार थे। उनकी महानता इसमे थी कि वे उस वर्ग समूह की आकाक्षाओ के रचनाकार थे जिसके अनुकूल समाज अभी न बन सका था, उसे तैयार करना था। निराला द्वारा पारम्परिक साहित्यिक नियमो का खण्डन यदि प्रतीक के रूप मे देखे तो इसी के द्वारा वे पारम्परिक एव ऐसे सामाजिक नियमो का खण्डन करना चाहते थे जो समाज को परिपक्व एव समृद्ध बनाने मे बाधक होता। वे अपने युग की जटिलताओ से, चाहे वे साहित्यिक हो या सामाजिक, जीवनपर्यन्त सघर्ष किया और उसे एक ऐसा शब्द देने का यर्थाथ एव सार्थक प्रयास किया जो पारम्परिक दृष्टि से विखण्डनवादी था, पर था सकारात्मक। वे अपने साहित्यिक सहकर्मियो से भी इस प्रश्न पर उलझते रहे और मौका पडने पर राजनीतिज्ञो से मुखर बहस की। उनकी सफलताओं का मूल्याकन करते समय हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि वे साहित्यकार थे न कि राजनीतिज्ञ। साहित्यकार को समाज की चिकित्सा करते समय यह भी ध्यान रखना होता है कि जनरूचि और बोध का स्तर क्या है? और अपनी रचनाए उसी धरातल पर रहते हुये सम्प्रेषित करता है। इस रूप मे निराला की असफलता अपना महत्व दर्ज कराने मे प्राय असफल रहती है।

तमाम अन्तर्विरोधो से जूझने के कारण निराला अपने युग के अभिजात्यवर्गीय माहौल मे उतने लोकप्रिय और महत्वपूर्ण न हो सके जितने कि आज है जबकि समाज आज भी अभिजात्यवर्गीय शिकन्जो से छूट रहा है या छूटने के प्रयास मे जद्दोजहद कर रहा है। निराला इस अन्तर्विरोध की तपती अग्नि मे जले और अपने युग मे भले क्षुब्ध मानसिक अवस्था के कारण राख से दिखे {पागल} हो पर वे आज अतीत की ही नही वर्तमान के कुन्दन सदृश धरोहर है। डा० रामविलास शर्मा स्वीकार करते है, "निराला का मानसिक असन्तुलन उनके व्यक्तित्व का एक पक्ष है। वह सघर्ष से विमुख न हुये जूझते रहे और अन्त में जीत उनके विरोधियो की नही हुई जीत हुई, निराला की। यह उनके अपराजेय व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष है"।[१२८]

प्रो० लेविस के कथन को यदि ध्यान मे रखा जाय कि 'महान लेखक इसलिए महत्वपूर्ण होते है कि वे मानवीय जागरूकता को प्रचारित करते है'[१२९] तो निराला इसी श्रेणी के रचनाकारो मे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के सन्दर्भ मे अग्रपॅक्ति मे खडे दृष्टिगोचर होते है। निराला ने जनरुचि को ध्यान मे रखते हुये राष्ट्र के अभौतिक प्रतीको को मानवीय धरातल पर अवतरित कर उन्हे मानवीय भावो से सम्बद्ध कर ऊर्जा प्रदान की और अभी तक उपेक्षित पडे समूह की सर्वशक्तिमानता का अहसास कराया। वे इस रूप मे सदैव अनुकरणीय रहेगे।

# सन्दर्भ सूची


१ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, भाग–१, राजकमल प्रकाशन दिल्ली–१६७२ पृष्ठ–१४३

२ स्वाधीनता आन्दोलन और निराला की कविता, नन्द किशोर नवल, सेमिनार १६ – १६ सितम्बर १६६७ इण्डियन इस्टीट्यूट आफ एडवासड स्टडी शिमला, पृष्ठ–१.

३ महादेवी वर्मा, भूमिका, महाप्राण निराला, गगा प्रसाद पाण्डेय, साहित्यकार ससद प्रयाग सवत २००६ पृष्ठ–२

४ नन्द दुलारे बाजपेयी, कवि निराला, वाणी–वितान प्रकाशन वाराणसी–१६६५, पृष्ठ–२.

५. येоपेо चेलिसेव, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजपाल एण्ड सस दिल्ली–१६८२ पृष्ठ–१८.

६ नीलाभ, परम्परा मोह और अपने समय से सघर्ष, आजकल जुलाई १६६७ पृष्ठ–१०.

७. निराला रचनावली भाग–२ सम्पादक नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन दिल्ली–१६८३, पृष्ठ–३४

८ येоपेо चेलिसेव, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ–५६

६ वही

१० दूधनाथ सिह, आत्महन्ता आस्था निराला,लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–१६८३,पृष्ठ–१५०, १५१

११ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–३५

१२ दूधनाथ सिह, आत्महन्ता आस्था निराला, पृष्ठ–१५०

१३ रेमण्ड विलियम, मार्क्सिजम एण्ड लिटरेचर, पृष्ठ–१३२, १३३, उद्धृत साहित्य का समाजशास्त्र मैनेजर पाण्डेय हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ १६८६ पृष्ठ–१८१, १८२

१४ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–६.

१५ नन्ददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य और २०वी शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद–१६८३, पृष्ट–१६३

१६ महादेवी वर्मा, भूमिका, महाप्राण निराला, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ–६

१७ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–१, पृष्ठ–५४८

१८ विष्णु खरे, उद्धृत, निराला की राष्ट्रीय चेतना, कात्यायनी, नेशनल सेमिनार १६–१६ सितम्बर १६६७, इण्डियन इस्टिट्यूट आफ एडवास्ड स्टडी, शिमला पृष्ठ–१

१६ निराला रचनावली भाग–६ पृष्ठ–३०६.

२० सुधा जून १६३०, पृष्ठ–१६ उद्धृत रामविलास शर्मा, निराला के साहित्य साधना भाग–२

२१ निराला रचनावली भाग–४ पृष्ठ–६३

२२ वही पृष्ठ–६५

२३ वही पृष्ठ–६६

२४ वही पृष्ठ–३१६

२५ निराला रचनावली भाग–६ पृष्ठ–३८३

२६ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२ पृष्ठ–५२

२७. नीलाभ, परम्परा मोह और अपने समय से सघर्ष, आजकल, जुलाई १९९७

२८ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–१५५, १५८

२९ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–५२,

३० दूधनाथ सिह, आत्महन्ता आस्था निराला, पृ० १४१.

३१ नीलाभ, परम्परा मोह और अपने समय से सघर्ष, आजकल, जुलाई १९९७, पृष्ठ–९,१०

३२ कंवल भारती, उद्धृत, निराला की राष्ट्रीय चेतना, कात्यायनी, पृष्ठ–३

३३ वही

३४ वही पृष्ठ–७, ८

३५ महादेवी वर्मा, भूमिका, गगा प्रसाद पाण्डेय, महाप्राण निराला पृष्ठ–११

३६ वही पृष्ठ–९

३७ निराला रचनावली भाग–१ पृष्ठ–२३२

३८ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–४३३

३९. वही पृष्ठ–४०३.

४० वही पृष्ठ–१४६

४१ कात्यायनी, निराला की मुक्ति चेतना, आजकल, जुलाई १९९७ पृष्ठ–१९

४२ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–११४

४३ वही पृष्ठ–३०६.

४४ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२ पृष्ठ–१६

४५ निराला रचनावली भाग–२, पृष्ठ–३३

४६. निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–१०८

४७ वही पृष्ठ–४०४

४८. वही.

४६ वही पृष्ठ–४०३

५० वही पृष्ठ–४०२

५१ वही पृष्ठ–१०८

५२ वही पृष्ठ–११५

५३ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–३४

५४ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–३६५

५५ वही पृष्ठ–४४३, ४४४

५६. वही पृष्ठ–२४०

५७ वही पृष्ठ–३६८

५८ वही पृष्ठ–३६२.

५६. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, उद्‌धृत पृष्ठ–३४.

६० निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–१२४

६१ निराला रचनावली भाग–२, पृष्ठ–३४३

६२ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–२६

६३ कात्यायनी, निराला की राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–१३

६४ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२५७

६५ वही पृष्ठ–२६७, २६८

६६ वही पृष्ठ–२५६.

६७ वही पृष्ठ–२५७

६८ वही पृष्ठ–२५२

६६ वही पृष्ठ–२५६

७० निराला रचनावली की भूमिका भाग–६, पृष्ठ–१४.

७१ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–७१

७२ निराला रचनावली भाग–२, पृष्ठ–१६६

७३ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२ पृष्ठ–८१

७४ वही पृष्ठ–२७

७५ . निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–७३, ७४

७६ आटोबायोग्राफी पृ० ८२, उद्‌धृत सुमित सरकार, आधुनिक भारत पृष्ठ–२६१

७७ विवेकानन्द का अभिभाषण, उद्धृत नन्दकिशोर नवल, स्वाधीनता आन्दोलन और निराला की कविता, पृष्ठ–२

७८ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–२६

७९ वही पृष्ठ–११५

८० वही पृष्ठ–२०६

८१ वही पृष्ठ–२११

८२ वही पृष्ठ–२३२

८३ दूधनाथ सिह, आत्महन्ता आस्था निराला, पृष्ठ–१३८

८४ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–६८, ६९

८५ वही पृष्ठ–८८

८६ वही पृष्ठ–६८, ६९

८७ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–१४

८८ रामरतन भटनागर, निराला और नवजागरण, साथी प्रकाशन, सागर–१९६५, पृष्ठ–१०७

८९ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२४०

९० सुमित सरकार, आधुनिक भारत, पृष्ठ–२६७.

९१ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–३४

९२ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, भाग–२, पृष्ठ–१५७,

९३ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२८३

९४ वही.

९५ निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–१२१

९६ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–१५.

९७ ये०पे० चेलिशेव, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ–७४

९८ अर्चना वर्मा, निराला का अद्वैत और स्वाधीनता सघर्ष, सेमिनार १६–१९ सितम्बर,१९९७ इण्डियन इस्टिट्यूट आफ एडवास्ड स्टडी, शिमला, पृष्ठ–६

९९. निराला रचनावली भाग–१, पृष्ठ–३१४, ३१६

१०० ये०पे० चेलिसेव – सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ–७६

१०१ निराला रचनावली भाग–२, पृष्ठ–५६–५७

१०२. ये०पे० चेलिसेव – सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, पृष्ठ–६७.

१०३ निराला रचनावली भाग–२, पृष्ठ–१६२

१०४ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२ पृष्ठ–३४

१०५ कात्यायनी, निराला की राष्ट्रीय चेतना पृष्ठ–१६

१०६ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२१२, २१५

१०७ वही पृष्ठ–२२०

१०८ वही पृष्ठ–२११,२१३

१०६ निराला रचनावली की भूमिका भाग–६, पृष्ठ–१७

११० निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२६६

१११ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, भाग–२, पृष्ठ–६४

११२ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२३८

११३. निराला रचनावली भाग–५, पृष्ठ–४६७.

११४ वही पृष्ठ–४४१

११५ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–६७

११६ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२२५, २२६

११७ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–३५

११८ निराला रचनावली भाग–६ पृष्ठ–२४२

११६ वही पृष्ठ–२७५

१२० वही पृष्ठ–२८०

१२१ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–१२

१२२ निराला रचनावली भाग–६, पृष्ठ–३०२.

१२३ वही पृष्ठ–४३५, ४३६

१२४ वही पृष्ठ–३६१

१२५ वही पृष्ठ–४७४

१२६ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–२, पृष्ठ–३६

१२७ कात्यायनी, निराला की राष्ट्रीय चेतना, पृष्ठ–१४

१२८ रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना भाग–१, पृष्ठ–५२२

१२६ द ग्रेट ट्रेडिशन, उद्‌धृत इतिहास क्या है, ई०एच०कार, (हिन्दी अनुवाद) मैकमिलन दिल्ली, १६७६, पृष्ठ–४२

## अध्याय–५

# साहित्य और राष्ट्र सेवा: मैथिलीशरण गुप्त

अपनी रचना 'भारत भारती' के माध्यम से सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व्यवस्था पर सूक्ष्मतम तथा सरल भाषा मे विचार व्यक्त करने वाले मैथिलीशरण गुप्त का जन्म ३ अगस्त १८८६ को हुआ। वे अपने पिता रामचरण कनकने की तीसरी सतान थे। "श्री रामचरण कनकने का ठाट–बाट काफी बडा था। वे प्रसिद्ध और सम्पन्न सेठ तो थे ही साथ ही चिरगॉव मे और चिरगॉव के आस–पास के तेरह गॉवो मे उनकी जमीदारी थी। वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर भी थे, प्रान्त के राज्यपाल के, जो उन दिनो लेफ्टीनेट गर्वनर कहलाते थे, दरबारी भी थे। इसके साथ ही पडोसी ओरछा और दॅतिआ के राजाओ से उनका मेल जोल था उनका वहॉ आदर होता था"।[1] इस तरह मैथिलीशरण गुप्त एक अभिजात्य और सम्पन्न परिवार मे पैदा हुए थे। उनके परिवार मे जमीदारी भी थी और अग्रेज शासको से निकट सम्बन्ध भी, पर जैसा कि ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ अपने ग्रन्थ मे उद्धृत करते है, "पिता जी जहॉ एक ओर साहब लोगों से हाथ मिलाना सम्मान की बात समझते थे वहॉ लौटकर स्नान किये बिना जल भी ग्रहण नही करते थे"।[2] साम्राज्यवादी शासको से मैत्री और घृणा का यह द्वैध उनके पिता मे जरूर था पर मैथिलीशरणगुप्त ने इस द्वैध के उत्तराधिकारी होने के बावजूद, उसे कम से कम वहन करने की कोशिश की यद्यपि सामाजिक और राजनीतिक दबाव उन्हे इसे वहन करने के लिए बाध्य करता रहा।

पारिवारिक परिवेश की धार्मिक पृष्टभूमि ने उनकी रचनाओ के विषय को काफी प्रभावित किया। जैसा कि बरूआ उद्धृत करते है, "एक बार उन्होने { गुप्त जी के पिता जी} गॉव के ब्राह्मणो से सौ पाठ करवाये उसके पीछे स्वय भी सौ पाठ किये यह सकल्प पूरा होने पर उन्होने एक सहस्र पाठ करने का सकल्प लिया"।[3] उनकी माता निरक्षर थी "फिर भी उन्होने रामायण {रामचरिमानस} पढना सीख लिया था"।[4] मैथिलीशरण गुप्त की प्रारम्भिक शिक्षा गॉव के पाठशाला मे ही आरम्भ हुई। बाद मे "उन्हें झॉसी के मेकडोनल हाईस्कूल मे पढने के लिये भेज दिया गया लेकिन झॉसी मे भी उन्होने पतगबाजी कायम रखी गेद बल्ला से खेलना भी शुरू हो गया .बहुत सा धन नष्ट करके कोरा का कोरा लौट आया बडो को निराशा ही नही हुई कुसग मे पड जाने का भी भय हुआ मैथिलीशरण जब नौ वर्ष के थे उनका विवाह हो गया' ।[5] उनके परिवेश के निर्माण मे मुशी अजमेरी {जो रामचरण के पुत्रो के परवरिश के लिए नियुक्त थे} का भी योगदान कम नही था, "मुशी अजमेरी ने मैथिलीशरण गुप्त जी को कहानियॉ सुनाकर फिर कवित्त और सवैय्या सुनाकर खासतौर पर श्रृगार के पद सुनाकर उन्हे आकृष्ट किया फिर उन्हे

सस्कृत के श्लोक कठस्थ कराए और फिर उनकी लिखने पढने मे रूचि उत्पन्न हो गयी"।[6] उनके अध्ययन रूझानो को उद्धृत करते हुये चतुर्वेदी लिखते है, "उन्ही दिनो उन्होने श्री वेकेटेश्वर समाचार, हिन्दी बगवासी और भारत मित्र समाचार पत्र मॅगवाने शुरू किए। भतृहरिशतक, हितोपदेश, कामन्दकीय नीति और चाणक्यनीति जैसी पुस्तके भी उन्होने मॅगवाई। उनके परिवार मे उन्ही दिनो चन्द्रकाता सतति उपन्यास भी आये जो खूब पढे गये"।[7] स्कूली शिक्षा के स्थगन के बाद गृह शिक्षा का यह क्रम थमा नही जैसा की चतुर्वेदी लिखते है, "जब मैथिलीशरण १४ वर्ष के थे उस समय एक वेदपाठी महाराष्ट्रीय ब्राह्मण आया और उन्होने मैथिलीशरण के पिता जी को वेद मन्त्र सुनाये वे उनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने लडके को संस्कृत पढाने के लिये रख लिया। अलीगढ जिले के पण्डित रामस्वरूप मिश्र को मैथिलीशरण जी को सस्कृत पढाने के लिये बुला लिया गया यह शिक्षा मैथिलीशरण जी की काव्य प्रतिभा का प्रबल आधार बनी"।[8] इस तरह मैथिलीशरण गुप्त स्कूली शिक्षा मे शिक्षित न होने के बावजूद गृह शिक्षा से अध्ययन सम्पन्न बने यद्यपि उनकी इस सम्पन्नता ने उन्हे जरूर अतीत के प्रति गौरव तथा परम्पराप्रियता के बोध से भर दिया जिसने कि उनके काव्य को एक नई दिशा दी। स्कूली शिक्षा की विफलता ने जहॉ शास्त्रीय शिक्षा मे प्रशिक्षित किया वही उन्हें साम्राज्यवादी शक्तियो का एक घटक बनने से भी रोका। जैसा कि बरूआ अपने ग्रन्थ मे उद्धृत करते है, "एक कलेक्टर ने दाऊ जी से कहा था कि अगर आप अपने बच्चो मे से किसी एक को अग्रेजी पढाओ तो हम उसे कलक्टर बना देगे"।[9]

१६ वर्ष की अवस्था मे उन्होने कविता लिखना प्रारम्भ किया, "बीसवी सद के प्रारम्भिक वर्षों मे काफी जद्दोजहद के बाद १६०७ से 'सरस्वती' मे मैथिलीशरण गुप्त की कविताए दिनो–दिन छपने लगी"।[10] मैथिलीशरण गुप्त अपने आरम्भिक रचनाधर्मिता के काल मे ही राष्ट्रीय मुद्दो पर बेबाकी से लिखते पर 'सरस्वती' के सपादक उसमे सशोधन का काम प्राय साम्राज्यवादी दबावो की वजह से करते। फलत कभी – कभी वे अन्य पत्रिकाओ मे भी अपनी रचनाओ को प्रकाशित करा लेते थे जिसे 'सरस्वती' के प्रकाशक एव सपादक साम्राज्यवादी दबावो की वजह से आशका की दृष्टि से देखते थे। जब द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी ने, जो पहले 'राघवेन्द्र' के सम्पादक थे, देवरिया से 'यादवेन्द्र' निकाला तो उसके लिए मैथिलीशरण जी ने एक कविता लिखी जिसका शीर्षक था 'प्रार्थना पचक' यह कविता ब्रजभाषा मे लिखी गयी थी, "सहत है नित दुःख वियोग को बन गये गृह भारत रोग को"।[11] इसी तरह 'पजरबद्धकीर' कविता को भी प्रकाशित करने मे विलम्ब किया गया क्योकि उसमे प्रकारान्तर मे गुलामी की निन्दा की गई थी, "स्वर्ण के जिस पीजरे पर प्रीत तेरी हो रही/ विपिन का वह विटप कोटर श्रेष्ठ इससे है सही"।[12] दरअसल जैसा कि चतुर्वेदी जी लिखते है, "इण्डियन प्रेस के मालिक केवल सरस्वती का ही प्रकाशन नही करते थे उस समय स्कूलो मे पढाई जाने वाली पुस्तकों के हिन्दी मे सबसे बडे प्रकाशक थे

इसलिए उन्हे इस बात की सावधानी बरतनी पडती थी कि सरस्वती मे ऐसी रचना न मिल जाय जो अग्रेज विरोधी समझी जाय''।[९३]

गुप्त जी ने जार्जपचम के राज्याभिषेक पर एक कविता लिखी जो उनकी राष्ट्रवादी विचारधारा की छवि के विरूद्ध प्रतीत होती है पर हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि यह कविता उनके काव्य गुरू द्विवेदी जी ने विशेष आग्रह से लिखवाई थी क्योकि जैसा कि चतुर्वेदीजी लिखते है, ''द्विवेदीजी का ख्याल था कि सरकार को प्रसन्न करके वे हिन्दी के लिये कुछ प्राप्त कर सकेगे''।[९४] सारे देश मे जार्जपचम के गुण गाये जा रहे थे यही नही गुप्तजी ने अपनी इस अभिषेक वाली कविता मे कुछ ऐसी लाइने जोड दी थी जो द्विवेदीजी को आपत्तिजनक लगी फलत उन्हे निकाल दिया गया था जैसा कि चतुर्वेदीजी लिखते है, ''गुप्तजी इस समय तक अपनी भावनाओ की बौद्धिक इदृक्ता के प्रति सच्चे रहना चाहते थे अत उन्होने पूना से निकलने वाले साप्ताहिक 'हिन्दी चित्रमय' के नवम्बर अक मे धर्मराज्याभिषेक रचना सिर्फ इसलिये भेजी क्योकि द्विवेदीजी द्वारा राज्याभिषेक का सम्पादन उन्हे प्रीतिकर न लगा''।[९५] इसी तरह 'भारत–भारती' के प्रकाशन के समय भी अग्रेजो के प्रति प्रशसात्मक टिप्पणी {रेल, डाकतार तथा विकास आदि की प्रशसा} जोडने तथा तिलक का नाम हटाने की बात हुई क्योकि तिलक उस समय कारावास में थे {राजद्रोह के अभियोग मे} अन्त मे लोकमान्य पर सहमति हुई। साम्राज्यवादी दबाव के सकट से द्विवेदी जी कितने भयभीत थे यह २० मार्च १९१५ को गुप्त जी को लिखे पत्र के एक अश से स्पष्ट होता है, ''कोई बात समय और सरकार के विरूद्ध न रहे इशारा भी न रहे कल नया कानून बना है कानून क्या मार्शल ला जगी कानून है, फॉसी तक की सजा है''।[९६] इस तरह गुप्त जी इन दबावो के बीच साहित्य कर्म मे तल्लीन रहे और 'सरस्वती' के साथ–साथ अन्य पत्रिकाओ मे भी अपनी रचनाए दी 'प्रताप' में उन्होने जनवरी १९१५ मे लिखना प्रारम्भ किया और उसके बाद बराबर लिखते ही चले गये। कुछ रचनाएं अपने नाम से दीं, कुछ छद्म नाम से, कुछ रचनाए विदग्ध हृदय तथा भारतीय हृदय नाम से भी प्रकाशित हुईं। उन्होने श्री माखनलाल चतुर्वेदी का आग्रह मानकर खण्डवा की 'प्रभा' मे भी लिखना प्रारम्भ किया।

इस बीच मैथिलीशरण गुप्ता का दूसरा विवाह पहली पत्नी की मृत्यु के बाद हुआ। दूसरी पत्नी भी जल्दी ही चल बसी तब पारिवारिक दबाववश उन्होने तीसरा विवाह किया और अनेक सतानों के कालकलवित होने के बाद अन्तिम सतान उर्मिलाचरण ही जीवित एकमात्र पुत्र रहे। इस बीच गुप्तजी 'भारत–भारती' के प्रकाशन से एक लोकप्रिय कवि के रूप मे स्थापित हो गये थे। ''भारत–भारती' उग्र राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक बन गई। यह पुस्तक अगस्त १९१४ मे छप कर आयी और दो मास मे इसकी बारह सौ प्रतियॉ बिक गईं''।[९७] १९१३ के वर्ष मे 'भारत–भारती' 'सरस्वती' के अको मे प्रकाशित होती रही।

इसके बाद 'किसान' 'पत्रावली' आदि के साथ उनका कविकर्म और लोकप्रिय हुआ तो बाद मे 'साकेत', 'शकुन्तला', 'यशोधरा', 'नहुष', 'सैरन्ध्री', 'हिन्दू' एव 'गुरूकुल' आदि कई रचनाए उन्होने की। यही नही, उन्होने 'मधुप' के नाम से कुछ बगला कृतियो का अनुवाद भी किया। 'वीरागना' और 'मेघनाथ वध' का अनुवाद १९२७ मे किया। जैसा कि चतुर्वेदीजी लिखते है, "उन्होने बगला लेखक श्री नवीनचन्द्र सेन के प्रसिद्ध काव्य 'पलाशीर युद्ध' का अनुवाद 'प्लासी के युद्ध' के नाम से किया अनुवादो के इस परम्परा मे उन्होने उमर खय्याम की रूबाइयो का १९२६ मे अनुवाद प्रकाशित किया"।[१८]

इस बीच गॉधीजी का प्रभाव राष्ट्रीय क्षितिज पर बढता जा रहा था और मैथिलीशरण गुप्त धीरे–धीरे गॉधीजी के प्रभाव मे आ रहे थे। 'प्रताप' के जनवरी अक {१९१५} मे महात्मा गॉधी के भारत आगमन पर गुप्त जी ने 'अफ्रीका प्रवासी भारत वासी' छपवाई जैसा कि चतुर्वेदी जी लिखते है, "सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ करने से पहले गॉधीजी उत्तर भारत और पजाब के दौरे पर निकले थे उन्ही दिनो संभवतः १९२८–२९ मे मैथिलीशरण जी भी गॉधी जी के साथ हो गये"।[१९] इसके बाद उनका गॉधीजी से हमेशा पत्र व्यवहार होता रहा। गॉधी जी चिरगॉव भी आये। बाद में एक समारोह मे गॉधीजी अपने भाषण मे गुप्त जी को 'राष्ट्रकवि' की उपाधि दी "वे राष्ट्र कवि है उसी प्रकार जिस प्रकार राष्ट्र के बनाने से मै महात्मा बन गया हूँ"।[२०] "इस समारोह के बाद गुप्तजी राष्ट्रकवि के स्थायी पद्‌वी से विभूषित हो गये लेकिन गॉधी जी ने उन्हे यह पद्‌वी देकर जैसे उनके ऊपर और भी अधिक राष्ट्रीय साहित्य लिखने का गुरू गभीर दायित्व दे दिया"।[२१]

इस तरह मैथिलीशरणगुप्त राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर एक ऐसे रचनाकार रहे जो राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भिक उभारों से ही साहित्य कर्म से जुडे, यद्यपि उनकी उद्‌दाम राष्ट्रीय भावना साम्राज्यवादी दबावो का शिकार होती रही और उन्ही दबावो के बीच भरसक कोशिश करके वे राष्ट्रीय भावना के प्रसार–प्रचार एव परिपक्व करने मे लगे रहे और राष्ट्रीय आन्दोलन की चरम परिणति, देश की स्वतत्रता और उसके बाद के स्वतत्र भारत को भी उन्होने देखा। इस तरह से उनके पास एक व्यापक काल परिवेश का महत्तर अनुभव था। यह एक सयोग था कि वे सफल रचनाकार रहे उनका सम्बन्ध देश के शीर्ष नेताओ और साहित्यकारो से भी रहा। राष्ट्र कवि की उपाधि भी उन्हे मिली। उनका सम्बन्ध एक तरफ जहॉ गणेशशकर विद्यार्थी जैसे क्रान्तिकारी नेताओ से था तो वही दूसरी तरफ महात्मा गॉधी जैसे अहिसक नेता से भी था। इन दो विपरीत ध्रुवो को अपने व्यक्तित्व मे सहेजना उन्ही जैसे राष्ट्रीय प्रतिनिधि साहित्यकार के वश की बात थी आखिर दोनो के लक्ष्य एक थे। मैथिलीशरण गुप्त "जेल भी गये {१९४१} जेल मे गुप्त जी सात मास रहे"[२२] वहॉ उनकी ५६वी वर्षगॉठ के अवसर पर आगरा सेण्ट्रल जेल स्थित नजरबन्दो द्वारा उन्हे अभिनन्दन पत्र दिया गया, जिसमें यह लिखा था "आपने भारत के

उत्थान काल मे 'भारत–भारती' द्वारा भारतीयता की जो ज्वलन्त ज्वाला देश मे फूँकी है वह आज भी उसके हृदय मे प्रकाश फैलाती हुई स्वतत्रता के मार्ग मे देशवासियो को आगे बढाते ले जा रही है . — आपके विनीत सेवक और प्रशसक आगरा सेन्ट्रल जेल मे स्थित प्रान्त भर के नजरबन्द, आगरा . २७.०७ १६४१"[२३] । गुप्तजी यद्यपि कभी सक्रिय राजनीति मे नही रहे पर कलम की शक्ति को पहचानते थे। उनके जेल के सस्मरण को उनकी समकालीन कवियत्री महादेवी वर्मा 'दद्दा'[२४] शीर्षक मे लिखती है, "दुर्भाग्यवश कलेक्टर जेल की परिधि मे अपने कवि बन्दी से प्रश्न कर बैठा आप कुछ कहेगे? उत्तर देने वाले बन्दी की विनम्रता मानो शिला से टकराकर उग्रता मे फूट पडी 'आपका दिमाग खराब हो गया है आपसे क्या बाते करे आप निर्दोषो को पकडते घूमते है हमारा क्या हम तो लेखक ठहरे यहॉ सब देखेगे ओर इसके खिलाफ लिखेगे" ।[२५] श्री सोहन लाल द्विवेदी 'हिन्दी प्रचारसमाचार' मद्रास के जुलाई १६४१ अक मे राजबन्दी श्री मैथिलीशरण गुप्त पर इस प्रकार लिखा.. "चले उलटने सिहासन तुम ओ विद्रोही वीर/ इसलिए यहदण्ड तुम्हारे पावो मे जजीर"[२६] मैथिलीशरणजी की दो महत्वपूर्ण रचनाए जेल मे लिखी गईं जिनमे एक है 'कुणाल गीत' और दूसरी 'अजित" ।[२७]

उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। महादेवी वर्मा ने साहित्यकार ससद स्थापना मे गुप्त जी से सहयोग चाहा गुप्त जी तैयार हो गये। महादेवी वर्मा अपने सस्मरण मे लिखती है, "कर्मशील होने के कारण गुप्त जी से वह सहायता मिल गई जिसके लिए दूसरे वाद–विवाद करते रहे वे किसी सभा समिति की अध्यक्षता नही करते है पर हमारे हठ की रक्षा मे उनका वह नियम भी टूट गया" ।[२८] उनके व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष पर टिप्पणी करते हुए महादेवी अपने सस्मरण मे कहती है, वे गोपनशास्त्र की वर्णमाला भी नही जानते थे जिसकी आज के युग मे पग–पग पर आवश्यकता पडती है" ।[२९] उनके व्यक्तित्व और सम्पर्क के सम्बन्ध मे डा० नगेन्द्र लिखते है, "सभी वर्गों के साहित्यकारो के अतिरिक्त उनके यहॉ मन्त्री आते थे, राजनेता ससद सदस्य आते थे, उद्योगपति हाकिम हुक्काम आते थे, सभी क्षेत्रों के कर्मचारी आते थे, साधु सन्यासी आते थे, छद्म वेश मे क्रान्तिकारी और कभी–कभी अग्रेजी राज्य मे सी०आई०डी० भी आते थे। महिलाएं, बच्चे, युवा, वृद्ध सभी का आना जाना लगा रहता था हो सकता है दो चार बार अपराधीवृत्त के लोग भी आते रहे हो पर 'दद्दा' प्राय उसी सहज भाव से सबका स्वागत करते थे" ।[३०] ओकार शरद उनके व्यक्तित्व के वाह्यस्वरूप पर टिप्पणी करते हुये लिखते है, "यदि आपने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त को न देखा हो तो कल्पना कीजिए गोस्वामी तुलसीदास यदि बीसवी शताब्दी मे होते तो कैसे होते उनका रूप होता खद्दरधारी धोती व कुरता चप्पल, गॉधी टोपी, छडी, घडी गले मे कठी माथे पर तिलक और ओठो पर राम का नाम सभवत यही रूप होता और यही रूप था अपने राष्ट्र कवि का" ।[३१] गुप्त जी के काव्य सदर्भ का मूल्याकन करते हुये नागेन्द्र लिखते है, "रामायण, महाभारत

काल से उनका विशेष रागात्मक सम्बन्ध रहा है राजपूत इतिहास के प्रति उनका आकर्षण कम नही है इसके अतिरिक्त वैदिक युग और बौद्धकाल से भी कई कथानक उन्होने सोत्साह ग्रहण किए है इधर वर्तमान तो उनकी युग चेतना का केन्द्र है ही वास्तव मे उनका कवि चाहे वैदिक युग की यात्रा करे या रामायण महाभारत काल की, उसका वर्तमान सदा उसके साथ रहता है। वर्तमान युग के भी कई चरण उन्होने देखे थे बाल्य जीवन उनका पुनरूत्थान काल मे बीता। यौवन जागरण सुधार युग मे, प्रौढावस्था गॉधीजी द्वारा सचालित राष्ट्रीय सघर्ष के वातावरण मे और जीवन का चौथा चरण स्वतत्र भारत के नेहरू युग मे"।[32] दरअसल अतीत का गौरवमयी चित्रण तथा धर्मशास्त्री और ऐतिहासिक व्यक्तित्वो, जिनकी क्षवि जन मे धूमिल रूप से व्याप्त थी, उसे पुनर्स्थापित तथा महिमा मण्डित करना उस युग के साहित्यकारो की सामान्य विशेषता रही है, चाहे वे प्रसाद रहे हो या निराला या मैथिलीशरण गुप्त। भारत की लम्बी दासता का काल उन्हे अपने नायको की तलाश के लिए सूदूर अतीत मे जाने को बाध्य करता था चाहे राम हो, बुद्ध हो या प्रताप और शिवाजी।

**X X X X X**

मैथिलीशरण गुप्त और महात्मा गॉधी का पारिवारिक एव समाजिक परिवेश हिन्दू वैष्णव मतावलम्बी था, फलत महात्मा गॉधी के राजनीतिक जीवन मे और गुप्त जी के साहित्यिक जीवन मे इस मत का व्यापक प्रभाव दिखाई पडता है। गॉधीजी का प्रिय मत्र 'वैष्णवजन' और 'रामराज्य' की परिकल्पना गुप्तजी के साहित्य मे बडे पैमाने पर प्रस्फुटित होती है। 'रामराज्य' दोनो के लिये आदर्श रहा है जैसा कि शभूनाथ सिह लिखते है, "गॉधीजी भी उन्ही उदार वैष्णव आदर्शों के प्रवक्ता थे जिनको गुप्त जी अपने काव्यो मे स्थापित करना चाहते थे यद्यपि गुप्त जी ने अपने काव्य मे गॉधीवाद का प्रचार नही किया है तथापि प्रकारान्तर से उनके काव्य मे गॉधीवादी विचारधारा दिखाई पडती है कही – कही तो उन्होने गॉधीवादी जीवन पद्धतियो का अपने आख्यानो मे समावेश भी किया है उदाहरण के लिये 'साकेत' मे राम के वन जाते समय अयोध्यावासी उनके रथ के सामने सत्याग्रह कर देते है उसी तरड चित्रकूट मे सीता जी कछोटा मारकर उपवन मे वृक्ष सीचती और गॉधीवादी आश्रम जीवन की कल्पना को चरितार्थ करती है"।[33] दरअसल जब महात्मा गॉधी दक्षिण अफ्रीका मे रगभेद के खिलाफ काम कर रहे थे तो उसी समय वे भारतीय जीवन के नायक बन चले थे इस समय की सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मासिक पत्रिका 'सरस्वती' मे उनकी जीवन की गतिविधियो को लेकर प्रशसात्मक लेख प्रकाशित होने लगे थे। इधर गुप्त जी भी 'सरस्वती' पत्रिका से नियमित रूप से जुडे थे जैसा कि चतुर्वेदीजी लिखते है, "जब गॉधीजी भारत मे आये तो मैथिलीशरण जी ने उनके सम्मान मे एक कविता लिखी जिसका शीर्षक था अफ्रीका प्रवासी भारतवासी'। यह कविता पहले 'सरस्वती' मे छपने के लिये भेजी गई लेकिन जब वहॉ नही छपी तो

'प्रताप' के जनवरी १६१५ के अक मे छपी जो राष्ट्रीय अक था। इस कविता मे कहा गया था, "न्याय से अधिकार अपना चाहते/ कब से मॉगते हम दान है/ रक्त तुममे लाल जो हममे वही/ व्यर्थ ही क्यो भेद भावा क्रान्त हो"।[34] दरअसल गॉधीजी के राष्ट्रीय क्षितिज पर अवतरित होने के पूर्व की गुप्तजी के साहित्यिक रचनाओ का साम्राज्यवादी वर्जनाओ के बाद भी सूक्ष्मतम विश्लेषण करे तो वे समसामयिक समाज मे स्थापित मूल्यो का अतिक्रमण करते प्रतीत होते है। इसीलिए उनकी रचनाए समकालीन साहित्य जगत मे अधिक सहजता के साथ स्वीकार्य नही हो पाती थी। वे युगीन मानसिकता और साम्राज्यिक दबावो के बीच अधिक प्रगतिशील समझी जाती थी परन्तु लोकमान्य तिलक के अवसान और द्विवेदीजी का 'सरस्वती' से अवकाश और गॉधीजी की बढती लोकप्रियता ने उन्हे गॉधीवादी खेमे में डाल दिया। वे गॉधीजी के भक्त हो गये साहित्यिक एव व्यावहारिक दोनो रूपो मे। जैसा कि बरूआ लिखते हैं "सन् १६२६ मे गॉधीजी देश मे खादी के दौरे पर निकले हुए थे वे आगरा पधारे थे आगरा मे मुशी अजमेरी ने उन्हे वैष्णवी पद गाकर सुनाए गॉधीजी इस मुसलमान को परम वैष्णव के रूप मे देखकर गद्गद् हो गये फिर तो उन्होने मुशीजी से बात की और मुशीजी का यह निमत्रण स्वीकार कर लिया कि चिरगॉव की दिशा पधारने पर वे चिरगॉव मे प्रवास जरूर करे गॉधीजी ने स्वीकार कर लिया। गॉधीजी १६२६ की २३ नवम्बर को चिरगॉव पहुँचे और गुप्तजी की बखरी मे ठहरे। प्रार्थना प्रवचन भी उन्होने किया सारे ग्रामीण एकत्र हुए गॉधीजी अपने भाषण मे यही कहा कि 'प्रोग्राम बनाते समय मैने यह कह दिया था कि चिरगॉव तो जाना ही है क्योकि वहॉ मैथिलीशरण रहते है वे भी मुझे जानते है इसलिये उन्होने मुझे यहॉ आने के लिये लोभ दे दिया"।[35]

गॉधीजी चिरगॉव आये और चले गये। अपने एक दिन के निवास मे उन्होने चिरगॉव मे अपना एक दूरस्थ आश्रम बना दिया और इस आश्रम के मुखिया हो गये मैथिलीशरणगुप्त। इसके बाद गुप्तजी का गॉधीजी के निजी सेक्रेटरी श्री महादेव भाई से पत्र व्यवहार होता रहा। दरअसल गॉधीजी भी गुप्तजी की बढती लोकप्रियता {'भारत भारती' के कारण} से परिचित थे और उन्हे अपने टीम मे शामिल करना चाहते थे। जैसा कि बरूआ लिखते है, "गॉधीजी ने अपने वृहद् आन्दोलनो मे उन सभी आन्दोलनो को समाहित कर लिया जो देश की चेतना मे या तो योग दे चुके थे या दे रहे थे। गुप्तजी खडी बोली के दीर्घ आन्दोलन के प्रतीक के रूप मे थे गॉधीजी ने इनको शीघ्र ही अपने राजनीतिक आश्रम का माननीय सदस्य बनाने का उपक्रम तैयार कर लिया"।[36]

गॉधीजी द्वारा विकसित सिद्धान्त सत्य, अहिसा, त्याग, क्षमा, सेवा, श्रमशीलता सब भारतीय सस्कृत के पारम्परिक मूल्य थे। यही मूल्य गुप्त के साहित्य मे भी खूब मिलते है। अत: गुप्तजी को गॉधीवादी आदर्शो और स्थापनाओ को अपने साहित्य मे पचाने मे कोई असुविधा नहीं हुयी। बल्कि उनके

मस्तिष्क मे इन मूल्यो के प्रति जो कल्पना थी उसके प्रति आस्था ही बढी। गुप्तजी अपने साहित्य मे सत्य को स्थापित करते हुये कहते है, "आग्रह करके सदा सत्य का/ जहॉ कही हो शोध करो/ डरो कभी न प्रगट करने मे/ जो अनुभव जो बोध करो/ उत्पीडन अन्याय कही हो/ दृढता सहित विरोध करो"।[३७] यही नही सत्य की उपेक्षा करने वालो को आगाह भी करते है, "सत्य से भी बच के निकल जाते लोग है"।[३८] सम्पूर्ण सकारात्मक परिणाम सत्य के बल पर ही प्राप्त होगे गुप्त 'साकेत' मे लिखते है, "पर ये फल होगे प्रकट सत्य के बल पर"।[३९] गुप्तजी निरर्थक हिसा मे भी विश्वास नही करते यद्यपि साहित्यकार होने के कारण कही–कही वे हिसा का उल्लेख कर देते है पर उनका झुकाव अहिसा मे ही है, "वे आप अहिसा रूपिणी परम पुण्य की मूर्ति सी"।[४०] 'पत्रावली' मे अहिल्याबाई अपने पत्र मे राघोबा को आगाह करती है, "रक्त प्रवाह सबसे पहले बहेगा दायित्व आप पर ही उसका रहेगा/ . शान्ति स्थली रूधिर पूरित लाल होगी/ होगे विनष्ट बहुसैनिक लोग व्यर्थ/ तो सोचिए किसलिए इतना अनर्थ"।[४१] अहिसा की मान्यता स्थापित करते हुए अपने काव्य 'नहुष' मे गुप्त जी लिखते है, "सबमे अहिसा भाव है/ चारित्र्य का ही चाव है/ सुख शान्ति का प्रस्ताव है/ पर दु ख का ही घाव है/ जिसमे न कोई पाप हो/ हिसा असत्य न ताप हो/ वह काम करने मे कही / उनको घृणा होती नहीं"।[४२] यही नही 'साकेत' मे शक्ति की सार्थकता बताते हुये गुप्त जी कहते है, "बल विकास के लिए नाश के लिए नही है"।[४३]

गुप्त जी अपनी कविता के माध्यम से सेवा त्याग एव क्षमा का पाठ पढाते है। अपने काव्य गीत 'अनघ' मे ऐसे नायक की कल्पना करते है जो सेवा को ही अपना लक्ष्य बनाता है। कभी – कभी तो उसमे गॉधी की भी छाया दीख पडती है, "मरम्मत कभी कुऑ घाटो की/ सफाई कभी हाट बाटो की/ आप अपने हाथो करता है/ गदगी से कब डरता है"।[४४] इसी तरह 'नहुष' मे भी "न तन सेवा न मन सेवा/ न जीवनऔर धन सेवा/ मुझे है ईष्ट जन सेवा/ सदासच्ची भुवन सेवा"।[४५] इसी तरह 'सिद्धराज' मे भी वे कहते हैं, "अब योग्य हो गया है यह अपनी/ सेवा करे अर्पित स्वदेश को स्वराज को"।[४६] उनके काव्य मे त्याग को एक मूल्य के रूप मे विकसित किया गया है 'साकेत' मे भगवान राम पिता और माता के आदेश से सम्पूर्ण साम्राज्य को त्याग देते है। भरत और लक्ष्मण भी त्याग की मूर्ति है 'यशोधरा' काव्य गीत मे भगवान बुद्ध समस्त ऐश्वर्य त्याग कर ज्ञान की प्राप्ति के लिये तप करते है, 'साकेत' मे गुप्तजी कहते है, "होगे युग पुरूष स्वय ही युग – युग मे / देना पडे मूल्य चाहे जितना बडा"।[४७] क्षमा, शत्रु के प्रति उदार भाव गुप्तजी के काव्य मे एक स्थापित मूल्य है अपने आरम्भिक और लोकप्रिय काव्य गीत 'भारत–भारती' मे वे कहते हैं, "थी युद्ध मे ही शत्रुता, अन्यत्र वैरी मित्र था"।[४८] 'सिद्धराज' में वे कहते है "शत्रु और मित्र दोनो एक से है अन्त मे"।[४९] गॉधीजी के हृदय परिवर्तन में भी

उनका विश्वास दिखाई पडता है, "आ मित्र चक्षु के दृष्टि लाभ/ ला हृदय विजय रस वृष्टि लाभ/ पा हे स्वराज बढ सृष्टि लाभ/ जा दण्ड भेद जा साम दाम"।[५०]

मैथिलीशरण गुप्त का गॉधीजी की तरह समकालीन न्याय प्रक्रिया मे विश्वास नही है। वे पारम्परिक पचायत व्यवस्था मे ही विश्वास करते है। 'भारत भारती' मे वे लिखते है, "पचायतो मे समय पर दृष्टान्त ऐसे दीखते है/ धर्म का सब पाठ मानो गर्भ मे ही सीखते"।[५१] न्यायालयो की आलोचना करते हुये वे लिखते है "न्यायालयो मे नित्य ही सर्वस्व खोते सैकडो/ लघु बात भी हम पॉच मिलकर आप निपटाते नही"।[५२] यही नही, वे यान्त्रिक सभ्यता का भी समर्थन नही करते। अपने काव्य गीत 'किसान' मे कहते हैं, "परदेशो की तरह नही कुछ कल का बल है/ वह तो अपने लिए मन्त्र माया या छल है/ जो कुछ है बस यही हल बक्खल है"।[५२] इतना ही नही वे गॉधीजी के खादी आन्दोलन के न केवल साहित्य मे बल्कि व्यावहारिक जीवन मे भी जबर्दस्त प्रचारक रहे जैसा कि बरूआ लिखते है, "गुप्तजी पक्के गॉधी भक्त थे और आठ – आठ घण्टे चरखा काता करते थे"।[५३] यही नही बरूआ इस संदर्भ मे गुप्तजी द्वारा गॉधी को लिखे पत्र को भी उद्धृत करते है "पूज्य बापू हम लोगो का प्रणाम स्वीकार हो इधर कुछ दिन मैने भरपूर कताई की"।[५४] 'बापू के प्रति' अपनी एक कविता मे गुप्त जी लिखते है, "लौह श्रृखला रखने वाले सावधान हो आगे से/ बॅधा हमारा बापू तो है केवल कच्चे धागे से"[५५] यह कविता बडे व्यापक अर्थों वाली है। श्री बरूआ एक जगह उद्धृत करते है, "गॉधीजी अपने भाषण मे शिकायत की थी कि अच्छी बुनाई का प्रबन्ध नही हो रहा है गुप्त जी ने इस सकेत को पकडा और नियमित रूप से गॉधीजी के जयन्ती पर हाथ कते सूत के दो थान चिरगॉव से भेजने लगे यो गुप्तजी देशव्यापी गॉधीजी के सूत यज्ञ की ज्योति चिरगॉव मे जलाए देशीय राजनीति को पवित्रता का व्रत मानकर नया जीवन जीने लगे।"[५६] यही नही स्वतत्रता प्राप्ति के बाद लिखे साहित्य मे भी वे खादी के प्रचारक दिखाई पडते है, "सूत कातती करती मॉ आ जाती पडोसिने"।[५७]

मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य मे राम एक आदर्श पात्र है और रामराज्य रूपी आदर्श राज्य की परिकल्पना गॉधीजी की तरह ही उनकी भी कल्पना है। अपने काव्य गीत 'भारत–भारती' मे वे लिखते है, "जो हम कभी फूले फले थे 'राम राज्य' बसन्त मे"।[५८] अपने काव्य गीत 'साकेत' मे जब तक कि राष्ट्रीय आन्दोलन कई पडावो से गुजर कर उफान पर था वे लिखते है, "पर निकट ही रामराज्य बसन्त है"।[५९] इसी सग्रह मे वे आगे लिखते है, "जाओ अपने रामराज्य की आन बढाओ /वीर वश की बान देश का मान बढाओ"।[६०] गॉधी जी के लिये उपवास हमेशा एक हथियार के रूप मे रहा है। अपनी लोकप्रियता के कारण जब गॉधीजी उपवास करते है तो पूरे देश मे एक जागृति की लहर सी फैल जाती है। इसी भाव को गुप्त जी 'नहुष' मे इस प्रकार लिखते है, "वे दूसरो के दोष पर/ उनपर न कुछ भी रोष कर/

उपवास करते आप है/ सहते स्वय अनुताप है"।[६१] श्री बरूआ अपने ग्रन्थ मे उद्धृत करते है, "जब यरवदा जेल मे गॉधी जी ने १६३२ मे अक्टूबर मास मे अनसन कियातो गुप्त जी ने एक कविता बनाकर अपनी अनुनय भेजी, "तुम तो प्राण दे चुके बापू/ स्वय उन्हे साधारण जान/ कृपया कभी न करना अब फिर/ अपने दिये हुए का दान"।[६२] गॉधीजी का अभ्युदय उन्हे राष्ट्र की मुक्ति के लिए भी आश्वस्त करता है, "पथ दिखाने के लिये ससार को/ दूर करने के लिये भूभार को / सफल करने के लिये जनदृष्टियॉ/ क्यो न करता वह निज सृष्टियॉ/ असुर शासन शिशिर मय हेमन्त है / पापियो का जान लो अब अन्त है/ भूमि पर प्रगटा अनादि अनन्त है"।[६३]

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध सघर्ष मे गॉधीवादी तरीको मे उनकी पूरी आस्था है। अपने कविता सग्रह 'स्वदेश सगीत' {१६२५} मे वे लिखते है, "सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार/ हार मानकर शत्रु स्वय ही यहॉ करेगे मित्राचार/ नही मारने मे मरने मे है विक्रम यशमान/ सुनो सुनो भारत सतान"।[६४] इसी सग्रह मे 'विचित्र सग्राम' शीर्षक से लिखी अपनी कविता मे गुप्त जी लिखते है, "अस्थिर किया योरोप वालो को, गॉधी टोपी वालो ने/ अपने निश्चय पर ये दृढ है, मारो पीटो बन्द करो/ अजब बॉकपन दिखलाया है इनकी सीधी चालो ने/ यहॉ जमाई है अपनी जड, पश्चिम के जिन पौधो ने/ असहयोग के फल उपजाए उनकी ऊॅची डालो ने"।[६५] इसी सग्रह मे 'ओ बारडोली' शीर्षक कविता मे वे लिखते है, "न हो विजय का निश्चय जिनको, साक्षी होकर हट जावे/ बढकर पग न हटे फिर पीछे चाहे सिर भी कट जावे/ खौल उठेगा खून न किसका पीडन और प्रहारो से / सयम तुझे दिखाना है, निज विनीत व्यवहारो से/ आज महात्मा द्वारा तूने आत्मा का बल जाना है/ परमात्मा ने दिया जिसे यह, सत्याग्रह का बाना है"।[६६] सन् १६४२ के भारत छोडो आन्दोलन को लक्ष्य करके उन्होने कविता लिखी, "मुक्ति मागती है बलिदान सुनो – सुनो बन्दी बापू का आज यह आह्वान/ बन्दी है किसलिए आज वे? क्याउनका अपराध/ सबके साथउन्हे अपनो की स्वतत्रता की साध"।[६७]

दरअसल गुप्तजी गॉधीजी के मूल आदर्शो मे गॉधी जी के राष्ट्रीय क्षितिज पर अवतरित होने के पूर्व ही आस्था रखते थे पर थोडा बहुत विचलन भी था क्योकि उनके ऊपर तिलक प्रभाव था और गणेश शकर विद्यार्थी जो क्रातिकारी सगठनो से जुडे थे उनके अभिन्न मित्र थे। परन्तु गॉधी जी के आगमन के बाद गुप्तजी लगभग पूरे तौर पर गॉधीवादी हो गये पर अन्त तक उनके साहित्य और व्यावहारिक जीवन कर्म का रूझान देशसेवा के अन्य मार्गों मे भी रहा और उसे वे अपने साहित्यिक एव व्यावहारिक कार्यो से मदद पहुॅचाते रहे। यहॉ हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि गॉधीजी हिन्दी भाषा की शक्ति से परिचित थे और यह उनकी मातृभाषा या व्यवहार की भाषा न होने के बावजूद हिन्दी साहित्य के रचनाकारो एव उसके सगठनो से जुडे रहते थे। गॉधीजी के इसी दृष्टिकोण के कारण उन्हें प्रायः हिन्दी विकास

आन्दोलन के सगठनो का अध्यक्ष भी बना दिया जाता था। यद्यपि उन्हे हिन्दी की बहुत अल्प जानकारी थी। कभी–कभी उनकी टिप्पणियॉ समर्पित हिन्दी साहित्यकारो को पीडा भी पहुँचाती थी फिर भी हिन्दी साहित्यकार ने समकालीन राष्ट्र के इस नायक को साहित्य मे पूरी जगह दी और उनके प्रति सामान्यतः लगभग थोडे बहुत विचलन के साथ पूर्ण आस्था दिखाई। गुप्त जी भी अपनी प्राय सभी कृतियॉ बापू को पढने और उनकी टिप्पणी प्राप्त करने के लिये उनके पास प्रेषित करते थे। जैसा कि बरूआ अपने ग्रन्थ मे उद्धृत करते है, "सन् १६३२ आया साकेत छपा गुप्तजी ने 'पचवटी' के साथ 'साकेत' भी बापू जी के पास भेजवाया इन दिनो गॉधी यरवदा मन्दिर {जेल} मे थे १६३२ की २० फरवरी को बापू ने पत्र लिखा भाई मैथिलीशरणजी आपने प्रसादि भेजी मिल गई उसे मै रसपूर्वक पढूँगा पुस्तक के विषय भी मुझे प्रिय है इसलिए पढने मे आनन्द होगा – आपका मोहनदास  दो दिन बाद २२ फरवरी कोदूसरा पत्र लिखा 'पचवटी पढ लिया अच्छा लगा, साकेत शुरू किया है – मोहनदास"।[६८]

इस तरह मैथिलीशरणगुप्त गॉधीवादी आदर्शों एव उनके सघर्ष के तरीको मे आस्था रखते है साथ ही बार – बार आन्दोलन के स्थगन पर हताश देशवासियो को अपने गीतों की ऊर्जा से जागृति करने का भी यत्न करते है। 'नहुष' मे लिखते हैं, "चिन्ता नहीं बाहर उजेला या अधेरा है/ चलना मुझे है बस अन्त तक चलना/ गिरना ही मुख्य नही मुख्य है सँभलना/ गिरना क्या उसका उठा ही नही जो/ कभी मै ही तो उठा था आप गिरता हूँ जो/ अभी फिर भी उठूँगा और बढके रहूँगा/ मै नर हूँ पुरूष हूँ मै चढके रहूँगा मै"।[६९] यही नही वे सबकी समानता और साधन की पवित्रता {कर्म मार्ग} की बात करते हुये लिखते है, "मै तो एक साधारण व्यक्ति हूँ/ रखता सभी पर समान श्रद्धा भक्ति हूँ/ साधारण लोकधर्म मेरा ध्रुव धर्म है/ फल हो किसी के हाथ मेरे हाथ कर्म्म है"।[७०] कर्म की सार्थकता को स्थापित करते हुये १६१४ मे ही वे लिखते है, "नर हो न निराश करो मन को/ कुछ काम करो कुछ धामकरो/ जग मे रहकर कुछ नाम करो"।[७१] इस तरह गुप्तजी का साहित्य और उनका जीवन गॉधीवादी मार्गों पर फलता–फूलता रहा। यह सत्य नही माना जा सकता कि गुप्तजी गॉधीजी के आगमन के बाद ही उनके आदर्शों पर चले। गॉधीवादी आदर्शों और सिद्धान्तो के बीज उनके साहित्य मे पहले से मौजूद थे। इतना जरूर रहा कि उनके आगमन के बाद उस बीज को पुष्पित एव पल्लवित होने का सहज वातावरण उपलब्ध हो गया।

**X X X X X**

कृषक असन्तोष ने मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य मे बडे पैमाने मे हिन्दी साहित्य मे सबसे पहले स्थान प्राप्त किया है। अवध के जिस किसान आन्दोलन की चर्चा ज्ञानेन्द्र पाण्डेय और कपिल कुमार करते है उसके पूर्व ही मैथिलीशरण गुप्त ने 'किसान' नामक कविता के द्वारा किसान समस्या का एक

चक्रीय चित्रण प्रस्तुत किया है कि कैसे वे अपनी समस्या से चाहकर भी मुक्त नही हो पाते और किसान से मजदूर बन जाते है। इनमे विदेशी शासको के साथ – साथ देशी सामन्तो और प्रभावशाली वर्गों का कम हाथ नही है ऐसा गुप्त जी स्वीकार करते है। ब्रिटिश साम्राज्यवादियो की कर नीति और दबावो ने किसानो के पारम्परिक शोषण मे और वृद्धि की जैसा कि कपिल कुमार लिखते है, "अवध मे किसान आन्दोलन की शुरूआत ऐसे समय हुई जब अभागे किसानो का दमन और शोषण चरम पर था और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियॉ उनमे एक नई चेतना का सचार कर रही थी। प्रथम विश्वयुद्ध ने किसानो की इस दयनीयता और असन्तोष मे इजाफा ही किया। कमरतोड लगान से दुहरे हो जा रहे इन काश्तकारो को जिनके सर पर बेदखली की तलवार हमेशा लटकी रहती थी, अब लडाई चन्दा और भरती चन्दा की जबरन वसूली और सेना मे जबरन भर्ती का शिकार होना पड रहा था। किसान, नजराना और मनमाने करो की गैर कानूनी जबरन वसूली की दमन चक्की मे पिस रहे थे। बढती कीमतो ने आग में घी का काम किया"।[82] मैथिलीशरणगुप्त स्वय ग्रामीण किसानो के बीच रहते थे यद्यपि उनका सम्बन्ध जमीदार परिवार से था फिर भी उनकी सहानुभूति पूरी तरह से किसानों के साथ थी। फलत· कृषक आन्दोलन के अभ्युदय के पूर्व ही जो कृषको मे असन्तोष और पीडा के बादल घुमड रहे थे वे गुप्तजी के साहित्य मे स्थान पा गये यद्यपि इस चित्रण मे कही – कही साम्राज्यवादी ताकतो का सकारात्मक चित्रण किया गया है, "करते है बदनाम सभ्य सरकार को/ करती है जो दूर सदा अविचार को"[83] या किसान से प्रथम विश्व युद्ध मे सैनिक के रूप मे शामिल होने का निर्णय करवाते है "हुये सहस्रो की सख्या मे सेना मे प्रविष्ट हम लोग. .पडी आजकल रण सकट मे वह मेरी उदार सरकार"[84] यह उस युग की साम्राज्यवादी शक्तियो के दबाव का परिणाम हो सकता है जो कि गुप्त साहित्य मे कडवी गोलियो के बीच मे मीठी गोलियो के रूप मे सामने आ रहा था। साथ ही हमे ध्यान रखना चाहिये कि स्वय गॉधीजी भी अन्य अनेक कारणो से प्रथम विश्वयुद्ध के समय साम्राज्यवाद के सहयोग का आह्वान कर रहे थे। साथ ही मैथिलीशरण गुप्त इस बात से भी परिचित थे कि देशी सामन्ती शक्तियॉ भी किसानो की दयनीय स्थिति के लिए कम जिम्मेदार नही है, "शाह, जमीदार, महाजन तीनो ठने/ वात पित्त कफ सन्निपात जैसे बने"।[85] यही नही कृषक असन्तोष को चित्रित करते हुये वे लिखते है, "यदि मै डाकू बनू मुझे क्या दोष है/ दोषी है तो पुलिस उसी पर रोष है/ जमीदार भी कुफल किए का पायेगा/ झूठे रूक्के फिर कभी न लिखवायेगा/ और महाजन? कर्ज लिया उससे सही / किन्तु ब्याज की लूट नही जाती सही/ . मन आया आग लगा दू मै अभी/ इसी गेह से भमक उठे भारत अभी"[86] अपनी 'किसान' कविता के पूर्व ही 'भारत–भारती' मे किसानो की दयनीयता का चित्रण गुप्त कर चुके थे, "हो जाय

अच्छी भी फसल पर लाभ कृषको को कहाँ/ आता महाजन के वह अन्न सारा अन्त मे/ पानी बनाकर रक्त का कृषि कृषक करते है यहाँ/ फिर भी अभागे भूख से दिन रात मरते है यहाँ"।[७७]

अपने काव्य 'नहुष' मे वे राजा को लोक कल्याण मे गुप्त निरीक्षण की सलाह, कृषको के महत्व को बताते हुए देते है, "पर जिनके धन से महराज/ है पूर्ण हमारा कोष आज/ कैसे वे है सब प्रजा लोग/ करते है सुख या दुःख भोग/ कर देते है वह किस प्रकार/ कैसे है उनके क्रियाचार"।[७८] साथ ही शासको को कर न देने के आन्दोलन के प्रति अगाह भी करते है, "यो ही कही न एक दिन/ भूकर मिलना हो कठिन"[७९] गुप्तजी किसानो पर अत्यधिक कर भार की भी आलोचना करते है, "कर को जो बलि कहते है सो यथार्थ है/ बलि है सदैव बलि, कर है कठिन ही/ सहज कही भी उसे देते नही लोग हैं"।[८०] यही नही, यही कर साम्राज्यवादी घटको को मलामाल भी किए हुए है। वे कहते है, "कर का निदेश पत्र और लेखा उसका/ देखा उससे है प्रतिवर्ष लाभ लाखो का"।[८१] कृषको के शोषण का चित्रण करते हुए वे 'साकेत' मे कहते है, "पूँछा यही मैने एक ग्राम मे तो कृषको ने/ अन्न गुण गोरस की वृद्धि ही बखान की/ किन्तु स्वाद कैसा है न जाने इस वर्ष हाय/ यह कह रोई एक अबला किसान की"।[८२]

मैथिलीशरण गुप्त कृषको की इतनी दयनीयता और समस्याओ के चित्रण के बाद भी उनका गौरवपूर्ण चित्रण भी करते हैं, "जिनके खेतो मे है अन्न कौन, अधिक उनसे सम्पन्न/ हम राज्य लिए मरते है/ सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते है"।[८३] कृषको का शोषण समकालीन समाज मे बेगारी प्रथा के द्वारा भरपूर किया जाता था उसपर भी टिप्पणी करते हुए वे कहते है, "साँकल खटकी और सिपाही ने कहा/ बेगारी चाहिए निकल क्या कर रहा/ बेगारी? क्या नही आज भी मुक्ति है?"[८४] कृषको का शोषण और कर्ज से तस्त्र होकर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे पलायन उस युग की आम विशेषता थी। इस पर वे कहते है "भूमि बहुत है कही ठौर पा जाएगे"।[८५] कृषको की इतनी समस्या के बावजूद सरकार ऑख मूँदे हुए है, "पर लोग कहते है यहाँ/ राजा निकलते ही कहाँ/ वे अधिकतर रनवास मे/ है मग्न हास विलास में"।[८६] इस तरह मैथिलीशरण गुप्त के सम्पूर्ण साहित्य मे सीधे – सीधे या प्रकारान्तर मे किसान और उनकी समस्याओ को खूब स्थान मिला है। किसानो के समस्याओ से त्रस्त होकर मजदूर बनने की कथा काव्य रूप मे गुप्तजी का 'किसान' है, वही गद्य मे उपन्यास के रूप मे प्रेमचन्द के 'गोदान' का भी मूल विषय है यद्यपि इन दोनो कृतियो मे किसानो के शेष समस्याओ का भी मार्मिक चित्रण है। गुप्त जी का 'किसान' जहाँ कृषक आन्दोलन के उभारो के पूर्व लिखा गया था वही प्रेमचन्द्र का गोदान कृषक आन्दोलन के कई उत्ताल तरगो के बाद।

गृप्तजी किसानो और मजदूरो को अलग – अलग विभाजित करके उनकी समस्याएं नही देखते। हाँ, इतना जरूर है कृषको को मजदूरों से श्रेष्ठ स्वीकार करते है। कृषक भले ही समस्याग्रस्त हो पर वह

स्वतत्र विचरण और अपनी मर्जी का मालिक होता है। 'किसान' काव्य गीत का कृषक पात्र जब मजदूर बन जाता है तो पश्चाताप करते हुये कहता है, "हो चुके सर्वस्व खोकर दीन से भी दीन थे/ किन्तु फिर भी हम अभी तक सर्वथा स्वाधीन थे।" मजदूरो के शोषण का चित्रण करते हुए इसी काव्य गीत मे वे लिखते है, "रोटियॉ पाते गिनी हम और पानी भी तुला/ बहुत हो तो गालियॉ खावे तथा ऑसू पिए/ नरक कही हो नरक से बढकर दशा यहॉ है/ भूमि जाने किसकी है श्रम है यहॉ हमारा/ किन्तु विदेशी व्यापारी ही लाभ उठाते सारा।"[८६] गुप्तजी श्रम के महत्व को भी स्थापित करते हैं, "श्रमवारि विन्दुफल स्वास्थ्य भुक्ति फलती हो"।[८७] या "श्रम करो स्वेदजल स्वास्थ्य मूल मे डालो"।[८८] भारत के कृषिप्रधान देश और उनकी रचनाधर्मिता का परिवेश उन्हे मजदूरो की समस्याओ से उतना नही जोड सका जितना किसानो की समस्याओ से, फिर भी जितना वे जुडे हैं अपनी सीमा के बावूजद एक सकारात्मक चित्रण किसानो की समस्याओ के सदर्भ मे माना जा सकता है।

**X X X X X**

गुप्तजी ने अपने साहित्य मे स्त्री पात्रो को जितनी प्रमुखता से जगह दी है शायद ही कोई साहित्यकार दे पाया हो। गुप्त जी उन सभी ऐतिहासिक स्त्री पात्रो को अपने साहित्य मे स्थापित किया जो वास्तव मे अभी तक उपेक्षित थी जबकि उन्ही के त्याग और गुणो की वजह से मानक मूल्यो और आदर्शों की स्थापना हो सकी चाहे वह तुलसीदास की पत्नी रत्नावली हो या बुद्ध की पत्नी यशोधरा चाहे लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला हो या चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया सभी ने पति वियोग को हॅसकर झेला और उनके पतियो ने क्रमश साहित्य, दर्शन, सेवा और भक्ति के क्षेत्र मे मानक कार्य किए। उनकी रचना 'साकेत' की कथाभूमि पूरी तरह रामायण पर आधारित है अन्तर है तो बस इतना कि उर्मिला जिनकी रामायण मे चर्चा मात्र है 'साकेत' मे मुख्य पात्र के रूप मे स्थापित है। यही नही जब गुप्त जी साकेत को महात्मा गॉधी के पास अध्ययन के लिये प्रेषित करते है तो उर्मिला के इस नवीन महत्तापूर्ण चित्रण को गॉधीजी नही पचा पाते। इस मुद्दे की समीक्षा करते हुये राजीव सक्सेना लिखते है, "गुप्त जी इस मामले मे गॉधीजी से आगे थे गॉधीजी उर्मिला को सीता से अधिक महत्व देने पर आपत्ति कर रहे थे"। पर राजीव जी के इस दृष्टिकोण से सहमत नही हुआ जा सकता कि यह "दो वैष्णवो के जीवन दर्शन मे जो सूक्ष्मतम मतभेद पैदा हो गया था उसका एक सकेत था"।[८९] यह मैथिलीशरणगुप्त की नवीन स्थापना थी जिसपर आश्चर्यचकित होना किसी भी पाठक के लिये एक स्वाभाविक गतिविधि थी क्योकि यह रामायण की नायिका {सीता} के रूप मे स्थापित पारम्परिक आधिपत्य को यह खण्डित करता था।

नारी के आधुनिक रूप को परम्परा से सम्बद्ध कर उन्ही पारम्परिक आदर्शों से युक्त कर उनका चित्रण वे करते है जो भारतीय सस्कृति मे मान्य है। 'भारत–भारती' मे वे कहते है, "गृहणी तथा मत्री

स्वपति की शिक्षिता है वे सती/ ऐसी नही कि जैसी आजकल की श्रीमती/ घर का सारा हिसाब किताब है उन्ही के हाथ मे/ पाक शास्त्र विशारदा है और वैद्यक जानती/ सबको सदा सन्तुष्ट रखना धर्म अपना मानती/ दिन क्या निशा मे भी कभी पति से प्रथम सोती नही/ सीना पीरोना चित्रकारी जानती है वे सभी"।[60] यही नही गुप्तजी समकालीन समाज मे कन्याओ की उपेक्षा से भी चिंतित है। इस विषय पर वे लिखते है, "हा अब उन्ही के जन्म से हम डूबते है शोक मे/ पर हो न उनका जन्म तो हो पुत्र कैसे लोक मे"।[61]

मैथिलीशरण गुप्त नारी शक्ति और उनकी क्षमता मे पूर्ण आस्था रखते है। उनकी क्षमता को परिभाषित करते हुए वे 'भारत – भारती' मे लिखते है, "क्या कर नही सकती भला यदि शिक्षित हो नारियॉ/ रण, रग, राज्य, सुधर्म, रक्षा कर चुकी सुकुमारियॉ"।[62] मैथिलीशरणगुप्त स्त्रियो को मातृरूप मे और सहधर्मिणी रूप मे उनकी शक्ति को अधिक महत्व देते है इसलिये कहते हैं, "होती जहॉ जैसी स्त्रियॉ/ वैसे पुरूष होते वहॉ"।[63] गुप्त जी नारी जाति को पुरूष के समक्ष अबला रूप मे कही – कही चित्रित करते है जो पुरूषो का साथ पाकर ही सबल होती है। एकाकी जीवन उनके लिए नारकीय होता है। अपने गीत सग्रह 'पत्रावली' मे अहिल्याबाई राघोबा को पत्र लिखती है जिसमे वे कहती है, " श्रीमान् को सब महाबल मानते है/ है नारि जाति अबला सब जानते है"।[64] इस तरह 'साकेत' मे भी उर्मिला अपने को स्वय अबला कहती है। इसी तरह 'यशोधरा' मे गुप्तजी कहते है, "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी /ऑचल मे दूध और ऑखो मे पानी"।[65] यही नही नारी पात्रो मे भी वे कही – कही हीनता का चित्रण कर बैठते है यशोधरा कहती है, "नाथ विजय है यही तुम्हारी दिया तुच्छ को गौरव भारी/ अपनाई मुझ सी लघुनारी/ होकर महा महान"।[66]

मैथिलीशरण गुप्त अपने परिवेशगत सस्कारो और युग की सीमाओ का नारी स्वतत्रता के सन्दर्भ मे अतिक्रमण नही कर पाते। सेवा, त्याग और क्षमा वे नारी के आदर्श मूल्य सिद्ध करते प्रतीत होते है। नारी एक आदर्श मॉ और त्यागमयी पत्नी हो सकती है जो अपने पुत्र और पति को वीरतापूर्ण कार्यों के लिये प्रेरित कर सकती है। अपने 'किसान' गीत मे किसान की पत्नी पर हुए अत्याचार और उसकी मृत्यु को सती की एक शक्ति के रूप मे मानते है, "सती गर्भिणी अबला का बध वृथा नही जावेगा"।[67] 'सिद्धराज' मे वे लिखते है, "कौन वीर नारी निज पुत्र और पति को/ देख सकती है दीन शत्रुओ के सामने"।[68] 'साकेत' मे वे त्यागमयी एव सती सीता की शक्ति का उल्लेख करते हुये लिखते है, "पर नारी, फिर सती वह त्यागमूर्ति सीता सी सृष्टि/ जिसे मानता हूँ मै माता, आप उसी पर करे कुदृष्टि/ उड जाएगा दग्ध देश का सती श्वॉस से ही बल वित्त/ राम और लक्ष्मण तो होगे तो कहने भर के निमित्त"।[69]

नारी पात्र मैथिलीशरण गुप्त के साहित्य मे निष्क्रिय नही है बल्कि सक्रिय जीवन जीती है। 'किसान' काव्य गीत मे कृषक पत्नी अपने पति के साथ रहते हुये हमेशा सहयोग करती है। 'पत्रावली' मे अहिल्याबाई और रूपवती दोनो राज्य की सुरक्षा एव न्याय की स्थापना के लिये पत्र लिखती है, इन उद्धरणो से लगता है कि नारियो की राष्ट्रीय भूमिका भी होनी चाहिये। जैसा कि प्राचीन और कुछ स्थानो पर मध्यकालीन समाज मे रहा है। सैरन्ध्री भले ही नारी है पर वह सम्मान के साथ जीना चाहती है, "मै दीना हूँ हीना हूँ सही किन्तु लोभ लीना नही/ करके कुकर्म ससार मे मुझको है जीना नही"।[100] 'नहुष' काव्य गीत की नारी पात्र शासक को प्रजा हित मे कार्य करने के लिये प्रेरित करती है और कहती है, "मनुष्यत्व से हमे जो गिरा दे कभी/ ऐसे सुख को लात मारती हूँ अभी"।[101] 'सिद्धराज' मे माँ की प्रेरणा से ही मन्दिर को आम नागरिको के लिये खोल दिया जाता है जिस पर अभी तक कर लिया जाता था, "राज्यकोष रिक्त हो तो चिन्ता नही मुझको/ . पुष्ट प्रजा जन ही सच्चे धन राजा के"[102] 'साकेत' की नारी पात्र उर्मिला और सीता सभी त्याग, क्षमा, दया एव सक्रिय कर्मशीलता की प्रतिमूर्ति है। 'यशोधरा' काव्य गीत मे यशोधरा कहती है, "तप ही मनुष्यत्व है बेटा"।[103] गुप्तजी नारी के त्याग और महत्व को भी समझते है। अपने काव्य गीत 'यशोधरा' मे ही शुद्धोधन से कहलवाते है, "सावित्री समान तेरे पुण्य से ही उसको सिद्धि मिली"। बुद्धदेव भी नारी की महत्ता स्वीकारते हुए कहते है, "दीन न हो गोपे, सुनो हीन नही नारी/ कभी – भूत दयामूर्ति वह मन से शरीर से"।[104] यही नही 'साकेत' मे वे नारी को समस्त धार्मिक और सकारात्मक गुणो की स्थापना के लिए भी उत्तरदायी मानते है, "धर्म स्थापन किया भाग्यशालिनी इस भू पर"।[105] स्त्रियो को वे क्षात्रधर्म का प्रतीक भी मानते है। 'यशोधरा' मे नायिका कहती है, "स्वय सुसज्जित करके रण मे/ प्रियतम को प्राणों के पण मे/ हमी भेज देती है रण मे/ क्षात्र धर्म के नाते"।[106]

नारी असन्तोष मैथिलीशरण ागुप्त के साहित्य मे उतना जगह नही बना पाया है जितना समकालीन समाज में था। संभवत लगता है वे नारी असन्तोष एव उनकी सक्रियता को भारतीय सस्कृति के पारम्परिक मूल्यो मे आबद्ध करके उसे एक सकारात्मक रूप देना चाहते थे। यद्यपि यह उनकी परिवेशगत सीमा भी हो सकती है। 'नहुष' काव्य गीत मे वे कहते है, "स्त्रियॉ है देवियॉ मेरी/ न भोग्या न वे चेरी"।[107] यद्यपि स्वतत्रता के बाद लिखे अपने काव्यगीत 'विष्णु प्रिया' मे नारी असन्तोष का उल्लेख करते है, "कहता है नारी पर नर का कितना अत्याचार है/ लगता है विद्रोह मात्र ही अब इसका प्रतिकार है"।[108] इस सकेत से लगता है राष्ट्रीय आन्दोलन के समय एक नारी आन्दोलन गुप्त जी नही चाहते थे और उन्हे सम्मान देते हुए समाज एव राष्ट्र की मुक्ति के लिए उनका सम्मिलित सहयोग चाहते थे। सभवत इसीलिए उनकी समस्याओं को भी उन्होने एक क्रम से उदघाटित नहीं किया। केवल बाल

विवाह को ही उनकी सारी समस्याओ का मूल माना जिससे कि उनका सम्पूर्ण शैक्षिक एव व्यक्तित्व विकास अवरूद्ध सा हो जाता है। 'भारत–भारती' मे वे कहते है, "कितना अनिष्ट किया हमारा हाय! बाल विवाह ने"।[१०९] उनके मन मे नारी की जो पारम्परिक भूमिका थी उसी को थोडे नये ढग से स्थापित करके देखना चाहते थे। क्योकि उनके मन मे ऐतिहासिक स्त्री पात्र ही घुमड रहे थे। विदुला, सुमित्रा, कुन्ती, सावित्री, सुकन्या और अशुमती उनके लिए आज भी आदर्श नारी पात्र थी, जिन्होने सकट के समय अपने पति या पुत्र को प्रेरित कर राष्ट्रीय या समाजिक सकटो से सामना किया था। जैसा कि डा० मजुलता तिवारी भी स्वीकार करती है, "यह उल्लेखनीय है कि नारी का चरित्र पति और पुत्र द्वारा पूर्णता को प्राप्त होता है पति को राष्ट्र सेवी बनाकर तथा सुयोग्य सतान को जन्म देकर भी नारी देश सेवा कर सकती है। गुप्त जी ने अपने अनेक नारी पात्रो के द्वारा पत्नी तथा माता के रूप मे उक्त तथ्य का सफल निर्वाह करके भी नारी पात्रो मे राष्ट्रीय भावना का सफल अकन किया"।[११०] यही नही डा० मजुलता गुप्तजी के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण पर गॉधीवादी प्रभाव को स्वीकार करती हैं, "गुप्तजी पर गॉधीवादी विचारधारा का पूर्ण प्रभाव है उन्होने अपने ऐतिहासिक पात्रो के माध्यम से अतीत के गौरवशाली पृष्ठो को पलटकर एक ऐसी नारी की रचना की जो अपनी सेवा भावना, त्याग, क्षमा, सहनशीलता के साथ ही भारतीय गौरव की सरक्षिका थी"।[१११]

**XXXXX**

धार्मिक एव साम्प्रदायिक मुद्दो पर मैथिलीशरण गुप्त का दृष्टिकोण कुछ हद् तक पारम्परिक किस्म का दिखाई पडता है, पर ध्यान रहे उनके आरम्भिक रचनाओ मे ही। जैसे–जैसे वे मुख्य राष्ट्रीय धारा की राजनीति से जुडते गये और उनमे परिपक्वता आती गई वैसे–वैसे उनका दृष्टिकोण उदार होता गया और उनका मूल मत्र सर्वधर्म सम–भाव बना। उनके दृष्टिकोण की समीक्षा करते हुए हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि वे उस साहित्यिक पीढी की पहली उपज थे जो 'हिन्दू हिन्दी हिस्दुस्तान' का नारा देकर उन्हे अभी – अभी छोड गई थी या उनका परिवेश बना गयी थी। साथ ही हमे यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उनका पारिवारिक एव सामाजिक सदर्भ हिन्दूवादी आग्रहो से युक्त था। अन्तिम तथ्य यह है कि वे साहित्य रच रहे थे जिसमे जनरूचि का ध्यान रखना पडता था नही तो उनके साहित्य की वही गति होती कि अधेरे मे नाचा मोर किसने देखा? इसलिए जब 'भारत–भारती' की रचना करते है तो उनके मन मे मुस्लिम धर्म के शासको के प्रति जो आक्रोश था वह अभिव्यक्ति पा जाता है, "जीते हुए दीवार मे हम लोग चुनवाए गये/ बल से असख्यक आर्य्य यो इस्लाम मे लाये गये.. / कितने अवश अबला जनो के धर्म्म नष्ट किये गये/ घर मे सुता के जन्म से होती बडो को भी व्यथा/ कुलमान रखने को चली थी बालिका बध की प्रथा/ हा निष्ठुरो के हाथ से सुर–मूर्तियां खण्डित हुईं/ बहु मन्दिरो की

वस्तुओ से मस्जिदे मण्डित हुई''।[112] साथ ही ऐसे मुस्लिम शासको की 'भारत–भारती' मे ही प्रसशा भी करते है, ''ऐसा नही होता कि सारी जाति कोई क्रूर हो/ अतएव ऐसे भी यवन–सम्राट कुछ है हो गये/ जातीय पक कलक को जो कीर्ति जल से धो गये/ कम कीर्ति अकबर की नही सत्शासको की ख्याति से/ शासक न उसके सम कभी होगे किसी भी जाति मे''।[113] यही नही औरगजेब की साम्प्रदायिक दृष्टिकोण की भले ही वे निन्दा करे पर उसकी आर्थिक नीति की ब्रिटिश शासको के समक्ष प्रशसा ही करते हैं, ''बीता नही बहु काल उस औरगजेबी को अभी/ करके स्मरण जिसका कि हिन्दू कॉप उठते है अभी/ उसदु समय का चावलो का आठमन भाव है/ पर आठ सेर नही रहा अब क्या अपूर्ण अभाव है''।[114] गुप्तजी अपने 'पत्रावली' सग्रह मे शिवाजी द्वारा औरगजेब को लिखा गया पत्र उद्धृत करते है जिसमे अकबर के सर्वधर्म समभाव की प्रशसा करते है और औरगजेब की साम्प्रदायिक नीति किस तरह साम्राज्य का अहित करती है इसका भी चित्रण करते है, ''सर्वप्रेमी बनकर न वे पा सके कौन सिद्धि?/ हिन्दु द्वेषी बनकर हुई आपकी कौन वृद्धि/ कोई देखे कि अब तब से वृद्धि क्या ह्रास ही है/ हॉ जो कोई बढ रहा तो प्रजा त्रास ही है/ होता जाता दिन–दिन न क्या आपका तेज धीमा?/ धीरे–धीरे कट–छॅट रही है आपकी राज्य सीमा''।[115] शायद इन्ही सब काव्य सन्दर्भो को ध्यान मे रखते हुये प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री गुप्त जी के साहित्य मे जातीयता के तत्व देखते है। अपने निष्कर्ष मे शास्त्री जी लिखते है, ''गुप्तजी के काव्य के सामूहिक अध्ययन के पश्चात् हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेगे कि प्राय जातीयता के स्वर से वे ऊँचे नही उठ सके''।[116] ऊपर उद्धृत काव्य सन्दर्भ उनकी आरम्भिक रचनाए है बाद मे गुप्त जी अपनी रचनाओ मे पूरी तरह सर्वधर्म समभाव दृष्टिकोण को स्थापित करते है। हमने ऊपर भी देखा है कि उनका किसी  वर्ग के प्रति आक्रोश नही है बल्कि किसी शासक की नीति जरूर उन्हे असुविधाजनक प्रतीत होती है। यही नही अकबर के सर्वधर्म समभाव के दृष्टिकोण की पशसा करके क्या वे समकालीन शासको की साम्प्रदायिक {फूट डालो शासन करो} नीति की आलोचना नही कर रहे होते है। साथ  ही उन्हे अकबर की नीति सर्वधर्म समभाव पर चलने के लिए प्रेरित नही कर रहे है क्योकि ऐतिहासिक घटनाओ से ही सीख ली जा सकती है। यही नही वे औरगजेब की तुलना मे ब्रिटिश शासको की आर्थिक नीति को खराब भी मानते है इससे सिद्ध है कि उनका किसी वर्ग विशेष के प्रति दुराव नही है।

मैथिलीशरण गुप्त अपने रचना के परवर्ती काल मे सभी धर्मो के प्रति आस्था दिखाते है। अपने 'हिन्दू' काव्य सग्रह मे गुप्त जी कहते है, ''सुने प्रेम से जो सब धर्म/ सोचे समझे सब का मर्म''।[117] इसी सग्रह मे वे लिखते है, ''रक्खो पडोसियो का ध्यान/ है विधर्मियो मे भी ज्ञान. ले लेकर स्वधर्म का नाम/ हुए यहॉ भीषण काम .दूर करो अनुचित आवेश/ लो अतीत से कुछ उपदेश/ पकड भूत भावी

के छोर/ देखो वर्तमान की ओर"।[११८] इसी सग्रह मे वे कहते हे, "जुडे यहाँ सब मत के लोग/ साधन करे एकता भोग"।[११९] अपनी कविता 'मातृ मन्दिर' मे कहते है, "भारत माता का यह मन्दिर, समता का सवाद यहाँ/ सबका शिव कल्याण यहाँ है पावे सभी प्रसाद यहाँ/ नही चाहिए बुद्धि बैर की भला प्रेम उन्माद यहाँ/ सबका स्वागत सबका आदर सबका समकल्याण यहाँ/ जाति धर्म या सम्प्रदाय का नही भेद व्यवधान यहाँ। भिन्न–भिन्न भव सस्कृतियो के गुण गौरव का ज्ञान यहाँ/ राम रहीम बुद्ध ईसा का सुलभ एक सा ध्यान यहाँ/ भिन्न–भिन्न भव सस्कृतियो के गुण गौरव का ज्ञान यहाँ"।[१२०] 'आह्वान' शीर्षक से रचित अपनी कविता मे गुप्तजी कहते है, "सौहार्द और मतैक्य हो"।[१२१] उपर्युक्त काव्य सदर्भ के आधार पर क्या गुप्त जी को साम्प्रदायिक रचनाकार की श्रेणी मे डाला जा सकता है? निश्चित रूप से इसका उत्तर नकारात्मक होगा। जैसा कि उनके समकालीन प्रभाकर माचवे लिखते हैं, "जातीय उन्हे कहना अन्याय होगा हिन्दू वीरो और नायको के चरित उन्होने अधिक गाये हैं मगर ईसा पर भी कविताए लिखी है और उमर खय्याम का भी अनुवाद भी किया है और मुशी अजमेरी आपके केसे अभिन्न थे यह कौन नही जानता"।[१२२]

यही नही अग्रेजों की इस चाल के प्रति हिन्दुओ और मुसलमानो दोनो को वे आगाह करते हैं जिसमे वे दोनो समुदायो को सघर्ष के लिये प्रेरित कर अपना हित साधते है, "बदर बाट किया है तुमने हमे लडाकर आप/ पानी पानी की पुकार हा आग लगाकर ताप"।[१२३] 'गुरुकुल' काव्य मे वे कहते है, "हिन्दु–मुसलमान दोनो अब छोडे वह विग्रह की नीति"।[१२४] वे अपनी कविता 'मुसलमानो के प्रति' मे कहते है, "हिन्दु–मुसलमान की प्रीति/ मेरे मातृभूमि की भीति"।[१२५] गुप्तजी १९४३ मे 'काबा और कर्बला' नामक पुस्तक लिखी जिसमे उन्होंने लिखा, "यह सारा ससार है उस प्रभु का परिवार/ सबसे रखना चाहिए प्रेमपूर्ण व्यवहार/ यही ईश्वरोपासना यही धर्म का मर्म/ एक दूसरे के लिए करे यहाँ हम कर्म"।[१२६] गुप्तजी हिन्दू–मुस्लिम एकता की वकालत करते हुए तथा उसका महत्व समझाते हुए 'हिन्दू' काव्य गीत मे कहते है, "मुसलमान भाई हो शान्त/ सोचो तनिक तुम्ही एकान्त/.. करो पर्व सस्कृति की याद/ मिटे सभी विद्वेष विषाद/ तुम अभिन्न हो न हो विभिन्न/ रहो न हम अपनो से खिन्न"।[१२७]

इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त अपने रचना कर्म से कही भी साम्प्रदायिकता को प्रश्रय देते नही प्रतीत होते। जब राष्ट्र साम्प्रदायिकता के आग मे जल रहा था तो गुप्त अपने साहित्य से उन्हे एकता का पाठ पढा रहे होते है। यद्यपि वे धर्मनिरपेक्षता की बात नही करते पर अपनी धार्मिक पृष्टभूमि के बावजूद सर्वधर्मसमभाव की आवश्यकता को जरूर प्रचारित करते है। जैसा कि सुधेश लिखते है, "उसमे साम्प्रदायिकता के बजाय एकता पर बल दिया गया है। धार्मिक चेतना उनके काव्य की एक सीमा हो सकती है पर वे वास्तविक अर्थो मे धर्मनिरपेक्ष कवि न होकर सर्वधर्मसमभाव के कवि हैं"।[१२८]

अछूतो एव अस्पृश्यो के प्रति मैथिलीशरण गुप्त का दृष्टिकोण सकारात्मक रहा है। 'भारत–भारती' मे ही उनके लिये आह्वान करते हुये वे लिखते है , "शूद्रो उठो तुम भी भारत भूमि डूबी जा रही रखो न व्यर्थ घृणा कभी निजवर्ण से या नाम से/ मत नीच समझो आपको ऊँचे बनो कुछ काम से / उत्पन्न हो तुम प्रभु पदो से जो सभी को ध्येय है"।[129] अपने काव्य गीत 'हिन्दू' मे 'अछूतो का उद्धार' शीर्षक से वे लिखते है, "दलित बन्धु सुचिता के दूत/ उठो कि छूमन्तर हो छूत/ करो अपूर्व अछूते कर्म/ छू न सके हॉ तुम्हे विधर्म"।[130] राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर तीस के दशक मे जगह–जगह मन्दिर प्रवेश आन्दोलन चल रहा था। उसकी ध्वनि गुप्तजी के 'नहुष' काव्य मे सुनायी पडती है, "विश्व के लिये खुला द्वार सदा उनका/ किन्तु हमी द्वारी उन्हे देते नही घुसने"।[131]

अल्पसख्यको को लेकर राजनीति करनेवाली सरकार और नेताओ पर भी बहुसख्यको की उपेक्षा करने के प्रति वे आगाह भी करते है, "अल्पसख्यको का अधिकारियो को ध्यान है/ और बहुसंख्यको को भूला निज ज्ञान है"।[132] इस प्रकार गुप्तजी धर्म को एक हथियार के रूप मे इस्तेमाल करने वाली ताकतो का विरोध करते हुये सर्वधर्मसमभाव की भावना को अपने साहित्य मे स्थापित करते है। जैसा कि राजीव सक्सेना स्वीकार करते है, "राष्ट्रीय आन्दोलन का एक और प्रमुख प्रश्न था सभी सम्प्रदायो मे एकता, गुप्तजी ने इस समस्या को सदा महत्वपूर्ण समझा और लगभग हर कृति मे किसी न किसी बहाने उन्होने सर्वधर्मसमभाव और राष्ट्रहित के लिये एकता के सूत्रों का प्रतिपादन किया।"[133] हिन्दू–मुस्लिम एकता को, मुस्लिम लीग की स्थापना के कुछ ही वर्षों बाद 'भारत–भारती' मे, भारत की आवश्यकता बताते हुये गुप्तजी ने लिखा, "हिन्दू तथा तुम सब चढे हो एक नौका पर यहॉ/ जो एक का होगा अहित तो दूसरे का हित कहॉ/ सप्रेम हिल–मिलकर चलो यात्रा सुखद होगी तभी /पीछे हुआ सो हो गया/ अब सामने देखो सभी"।[134]

**X X X X X**

क्रान्तिकारी आन्दोलन और सगठनो को गुप्तजी के साहित्य मे भले ही महिमामण्डित न किया गया हो पर यह कटु सत्य है कि क्रान्तिकारी विचारो एव सगठनो के प्रणेता गणेशकर विद्यार्थी से उनके व्यक्तिगत सम्बन्ध रहे और उनकी रचनाए विद्यार्थी जी के पत्र 'प्रताप' मे नियमित रूप से छपती रही। यही नही जो रचनाए द्विवेदीजी अपने पत्र 'सरस्वती' मे साम्राज्यवादी वर्जनाओ के कारण प्रकाशित करने से इन्कार करते या विलम्ब करते गुप्त जी उन्हे 'प्रताप' मे प्रकाशित करवा लेते। 'प्रताप' एक प्रगतिशील पत्र था जिसमे प्रकाशित होने वाले लेख युग की सीमाओ का अक्सर अतिक्रमण करते हुये प्रतीत होते हैं। इसी कारण उस पर कई बार साम्राज्यवादी महकमो की गाज गिरी। मैथिलीशरणगुप्त का ऐसे पत्र और क्रातिकारी सगठन के प्रणेता व्यक्ति से सम्बन्ध सिद्ध करता है कि वे क्रातिकारी सगठनो के प्रति

सहानुभूति रखते थे भले ही गॉधीवादी प्रभाव एव साम्राज्यवादी दबावो के चलते उसका मुखर समर्थन न कर पाये हो। यद्यपि 'पजरबद्धकीर' कविता गुलामी की स्पष्ट निन्दा करती है। यही नही उनका प्रथम काव्य सग्रह 'भारत–भारती' उग्र राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक बन गयी थी जिसमे वे कहते है, "वीरो उठो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो/ निज देश को जीवन सहित तन मन तथा धन भेट दो"। 'सिद्धराज' मे वे लिखते है, "वीरगति पावे रख मान मातृभूमि का/ शत्रुओ के माथे पर पैर रखते हुये"।[१३५] या "सकट मे क्षात्र धर्म धारे अन्य वर्ण भी"।[१३६] 'साकेत' मे गुप्तजी लिखते हैं, "क्षत्रियों के चाप–कोटि समक्ष लोक मे है कौन दुर्गम लक्ष्य?"[१३७] यही नही गणेशकर विद्यार्थी की सहादत पर वे दुखी होकर एक कविता लिखते है, "अब हम तुझे नही देखेगे, होता यह विश्वास नही/ किन्तु सत्य–यह क्रूर सत्य–हा मिथ्या होता आज कही"।[१३८]

स्वदेशी आन्दोलन की ध्वनि भी गुप्त जी के साहित्य मे बडे पैमाने पर व्याप्त है। 'भारत–भारती' मे वे कहते है, "जो वस्तु देखो मेड इन इग्लैण्ड, इटली, जर्मनी/ जापान, फ्रास, अमेरिका वा अन्य देशों की बनी/ माचिस विदेशी हो न तो हम फिर अंधेरे मे रहे/ है छुद्र छडियॉ तक विदेशी और आगे क्या कहे?/ केवल विदेशी वस्तु ही क्यो अब स्वदेशी है कहॉ?/ वह वेश–भूषा और भाषा सब विदेशी हैं यहॉ"।[१३९] गुप्तजी आगे कहते है, "जो देश कच्चामाल उत्पन्न करके शान्त हो/ उसका पतन एकान्त है सिद्धान्त यह निभ्रान्त है"।[१४०] स्वदेशी उद्योग केन्द्रो की चर्चा करते हुये वे कहते है, "बनते दुशाले हाय! थे कश्मीर मे कैसे भले/ है विदित बगाली किनारी धोतियो की आज भी / ढॉके चदेरी आदि की कारीगरी अब है कहॉ"।[१४१] साथ ही साम्राज्यवादी घटको के उन हथकण्डो पर आक्षेप करते हुए वे कहते है, "जिस भॉति भारत वर्ष का व्यापार नष्ट किया गया/ कर से तथा प्रतिरोध से जिस भॉति भ्रष्ट किया गया"। फिर भारतीयो को स्वदेशी वस्तुओ के उपयोग के लिये प्रेरित करते हुये गुप्त जी कहते है, "यदि हम विदेशी माल से मुॅह मोड सकते नही/ तो हाय उसका मोह भी क्या छोड सकते है नही?"[१४२]

स्वदेशी उद्योगो की स्थापना के लिये मैथिलीशरण गुप्त भारतीय पूँजीपतियो {जमीदार, शासक एव व्यवसायी} को प्रेरित करते है, "कल कारखाने खोल दे ऐसे धनी भी है हमी"।[१४३] आगे वे फिर कहते है, "बनने लगे सब वस्तुए/ कल कारखाने खोल दो/ जावे यहॉ से और कच्चा माल अब बाहर नही/ हो मेड इन इण्डिया ही सब कही"।[१४४] बाद मे गॉधीजी के सम्पर्क मे मैथिलीशरण गुप्त खादी आन्दोलन से व्यक्तिगत रूप से जुडे रहे। सूत कातना उनकी दिनचर्या मे शामिल रहा। वे अपनी कविता 'स्वावलम्ब' मे देश को स्वावलम्बी बनाने के लिए प्रेरित करते है, " बढे घरेलू व्यवसाय/ जिनसे स्वावलम्ब आ जाय / कत जावे घर मे ही सूत/ लगे न लकासुर की छूत/ घर की चादर हो तैयार/ न हो किसी पर लज्जा भार/ ... चले न कही छुरी तलवार/ रुके न सुई सलाई हार"।[१४५] इस तरह मैथिलीशरण गुप्त

केवल विदेशी शासन से मुक्ति मात्र ही नही चाहते बल्कि साथ ही साथ अपने देश की आर्थिक प्रगति करवाकर उसकी आर्थिक मुक्ति की बात करते है। इसलिये न केवल विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार या उपयोग कम करने का आह्वान करते है बल्कि स्वदेशी उद्योग की स्थापना की भी बात करते है। साथ ही उन्हे यह भी बताते चलते है कि राष्ट्र कैसे पहले आत्मनिर्भर था और कौन–कौन से उत्पाद मे कौन – कौन से स्थान ख्याति प्राप्त थे। उनका यह दृष्टिकोण निश्चित रूप से देशी उद्योगपतियो के लिये आत्मविश्वास एव प्रेरणा का स्रोत बना होगा जो आर्थिक रूप से विदेशी प्रभुत्व को स्वीकार करके हीनता के शिकार हो रहे थे। साथ ही जनता मे भी विदेशी वस्तुओ के प्रति घृणा और स्वदेशी वस्तुओ के प्रति प्रेम उमडा होगा।

**X X X X X**

मैथिलीशरण गुप्त अपने सम्पूर्ण साहित्यिक जीवन मे साम्राज्यवाद के विरूद्ध सघर्ष करते रहे यद्यपि उनको आरम्भिक जीवन मे कुछ ऐसी रचनाए देनी पडी जो साम्राज्यवाद का समर्थन करती हुई जान पडती है। जैसे 'भारत भारती' के कुछ अशो मे अग्रेजो की प्रसशा, या 'किसान' मे कुली प्रथा समाप्त करने के लिये की गयी अग्रेजो की प्रशसा या जार्जपचम के राज्याभिषेक पर लिखे गये प्रशसा गीत। लेकिन तथ्यो के सूक्ष्म निरीक्षण से पता चलता है कि वह रचना उस समय लिखी गई थी जब साम्राज्यवादी शिकजो के विरूद्ध थोडी सी आवाज उनके अस्तित्व को समाप्त कर देती या गुप्तजी जो अभी साहित्य के क्षेत्र मे अपना स्थान ही बना रहे थे, बना न पाते क्योकि द्विवेदीजी जैसे मजे हुए सपादक जो उनके साहित्यिक गुरू और 'सरस्वती' के सपादक थे और उसके प्रबन्धक श्री चितामणि घोष किसी भी प्रकार का सकट नही बुलाना चाहते थे यद्यपि उनकी दृष्टि मे सामाजिक एव शैक्षिक रूप से भारतीयो को प्रबुद्ध करना ही राष्ट्रीय चेतना का फैलना था और वह जानते थे कि इससे अधिक की अपेक्षा करना मतलब अपने पख कटवाना है। जैसा कि मैथिलीशरण गुप्त की 'पजरबद्धकीर' को छापने मे विलम्ब किया गया तो द्विवेदी जी को गुप्त जी ने लिखा, "यदि 'पजरबद्धकीर' के प्रकाशित करने मे कुछ हानि की सभावना हो तो उसे न छापे, 'सरस्वती' की पालसी और समय की गति पर विचारकर लीजिएगा अभी नासिक के सावरकर महाशय की कविता निर्दोष कहते हुए भी विचार पति महोदय ने विचारासन पर बैठकर और न्यायदेवता को साक्षी देकर इनको राजदण्ड से दण्डित किया है"।[१५६] अत. गुप्त जी ने इसी साम्राज्यवाद के दबावो के बीच मे कार्य किया जो कि काफी दबावो से परिपूर्ण था उस समय की पत्रिका 'प्रताप' और 'हिन्दी प्रदीप' से जमानते मॉगी जा चुकी थी। जो साहित्यिक जगत मे चर्चा के और साम्राज्यवादी आतक के विषय बने थे।

'भारत–भारती' के प्रकाशन ने गुप्तजी के साहित्य को एक नई पहचान दी। 'भारत–भारती' आम जन मे बहुत ही लोकप्रिय हुई और राष्ट्रीय जागरण को प्रेरित करने लगी। जैसा कि श्री बरूआ अपने ग्रन्थ मे उद्धृत करते है, ''भारत भारती' के प्रकाशन ने हिन्दी ससार मे एक तहलका सा मचा दिया था घर – घर वह पढी जाती थी और बच्चे के मुख से उसके पद्य सुने जाते थे। राष्ट्र मे उसने जीवनमन्त्र फूँक दिया हिन्दी का कोई भी आधुनिक काव्य इतना नही बिका जितना 'भारत–भारती', उसकी ५० हजार से भी अधिक प्रतियॉ भारत के कोने–कोने मे पहुँच चुकी थी और लाखो नर–नारियो ने उसे पढ कर अपनी–अपने देश की दशा पहचानी है। इसके पश्चात् ही 'वैतालिक' ने अनुप्राणित राष्ट्र की सुप्त स्मृतियो को गुदगुदाकर जगाया और उसकी एक–एक ॲगडाई से १६२१ से ३१ तक देश के राजनीतिक जीवन मे भूकम्प सा पैदा किया। वैतालिक का सदेश हमने वेत्रवती, परिसरवर्तनी, गॉवटियो मे चना चबाने वाले काग्रेस स्वयसेवको के मुँह से सुना और उससे प्रभावित होकर उन्हे सर्वस्व उत्सर्ग करते देखा। बुन्देलखण्ड मे तो प्रभातफेरी का वह मूल गान हो गया था तब फिर आया 'हिन्दू' वह गुप्तजी के वैयक्तिक जीवन का एक बडा ही ओजस्वी चित्र है। वह आदर्श हिन्दू है और हिन्दू धर्म का आदर्श ही सदा उनके जीवन का लक्ष्य रहा है वास्तव मे हिन्दुओं की वर्तमान सामाजिक अवस्था उनकी आशा तथा निराशा का चित्रण गुप्तजी से अच्छा कोई कर भी नही सकता''।[१४७]

साम्राज्यवादी शक्तियो के समक्ष गुप्तजी भारतीयो को चेताते हुए कहते है, ''बार–बार ठगाते हम/ पर क्या भूल भगाते हम?''[१४८] 'नहुष' काव्य के एक सवाद मे गुप्त जी कहते है, ''मुखिया – 'सुरभि राज्य की नीति जिसे भाते नही/ राज्य छोडकर दूर चले जाते कही'.. सुरभि–''प्रमुख महाशय जाय प्रजा ही क्यो कही ऐसा नृप ही जाय राज्य से क्यो नही''।[१४९] साम्राज्यवादी शक्तियो के समक्ष कैसे अकुश स्थापित रहता है इसको चित्रित करते हुये वे लिखते है, ''तो फिर किसका मोह/ ठानेगे विद्रोह/ पॉचवा – भाई धीरे बोल/ यो ही मुँह मत खोल''।[१५०] 'साकेत' मे वे कहते है, ''भारत लक्ष्मी पडी राक्षसो के बन्धन मे/.. सजे अभी साकेत बजे हा जय का डका/ रह न जाय अब कही रावण की लका''।[१५१] 'साकेत' मे ही वे आगे कहते है, ''मातृभूमि का मान ध्यान मे रहे तुम्हारे/ लक्ष–लक्ष भी एक लक्ष तुम रखो सारे''।[१५१] अपने जेल जीवन के दौरान मैथिलीशरण गुप्त ने 'अजित' नाम की कविता लिखी जिसमे उन्होने लिखा, ''खो बैठे वे अवधि आप निज न्याय महत्ता/ यहॉ पुलिस का राज और सेना की सत्ता/ ऐसी सत्ता किन्तु कहॉ तक चल सकती है?/ सह सकता है कौन पराया शासन मन से – / जिसे काम है मात्र हमारे तन से धन से / बन बैठे वे यहॉ सरक्षक कैसे / लडते थे हम लोग परस्पर बच्चे जैसे''।[१५२] गुप्तजी राष्ट्रीय जागरण की बढती प्रवृत्ति के कारण जान गये थे कि अब भारत मे ब्रिटिश साम्राज्यवाद का अस्तित्व अब थोडे दिनो के लिये ही है, ''धन्य हो ब्रिटिश लूट का खाते हो/ निहत्थो

पर हथियार चलाते हो/ काला मुँह कर जाने मे अब शेष तुम्हारे दिन थोडे/ तब तक और प्रभुत्व दिखा लो बरसा लो हम पर कोडे / भारत की खेती चर तेरी भेडे मोटी पडी ब्रिटेन/ देख उन्ही के मास बिना अब नही दूसरो को छिन चेन/ भारत के प्रति निज नरपशुता चाहो तो अब भी त्यागो/ आखेटक आ गये अन्यथा ब्रिटिश सिह जागो भागो"।[१५३] इसी रचना मे वे आगे कहते है, "जय भारत अविभाज्य की/ छै ब्रिटेन साम्राज्य की"।[१५४] यही नही जिन्ना की विभाजन दृष्टि पर वे टिप्पणी करते है, "छोडे हमें हमारे जिन्ना/ हम छोडेगे उन्हे नही/ जहॉ पाक परवर दिगार है/ अपना पाकस्तान वही"।[१५५] विभाजन पर वे कहते हैं, "स्वतत्रता का जन्मदिवस अपना यह आया/ यही देश का देह विभाजन लाया"।[१५६] इस प्रकार मैथिलीशरण गुप्त अपने साहित्य के माध्यम से साम्राज्यवाद से प्रत्येक उस मोर्चे पर लडते हैं जिससे राष्ट्र उनके शोषण का शिकार हो रहा होता है।

मैथिलीशरण गुप्त अपने सम्पूर्ण साहित्य मे स्वतत्रता को एक मूल्य की तरह स्थापित करते है जबकि समकालीन समाज मे स्वतत्रता साम्राज्यवाद के कारण एक दुर्लभ धारणा बन गई थी फिर भी उनके साहित्य मे गुलामी अपमान का प्रतीक है। जिसे किसी भी वीर पुरूष को नही सहन होना चाहिये। कभी – कभी वे अपनी इस स्वतत्रता की धारणा को अनुभूति या महसूस करने की बात करते है {वाह्य गुलामी के बावजूद} तो उनका दृष्टिकोण दार्शनिक किस्म का हो जाता है। अपने आरम्भिक कविता 'पजरबद्धकीर' मे ही प्रतीकात्मक रूप से गुलामी की निन्दा कर चुके थे। उनकी पूरी 'भारत–भारती' देश की आर्थिक राजनीतिक, शैक्षिक एव सास्कृतिक गुलामी की जबर्दस्त प्रतिकार करती है। 'नहुष' काव्य मे वे कहते है, "आज मै विदेशिनी हूँ अपने ही देश मे/ मेरी यह दिव्य धरा आज पराधीना है"।[१५७] स्वतत्रता की वकालत करते हुए वे कहते हैं, "मत स्वातत्र्य न छीने किसी का/ नाम है न्याय विधान इसी का"।[१५८] "स्वतत्रता ही जीवन मे इष्ट है"।[१५९] उनको अधीनता किसी भी शर्त पर स्वीकार नही है। 'सिद्धराज' मे वे यही स्थापित करते है, " बॅधा हूँ मार डालो क्यो न मुझे/ अगीकार न होगी मुझको अधीनता/ काट डालो मेरा सिर कोई अनायास ही/ किन्तु झुकने से रहा मस्तक विपक्षी को"।[१६०]

स्वतत्रता का व्यापक अर्थ समझाते हुए वे कहते है, "निज रक्षा का अधिकार रहे जन – जन को/ सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को/ मै आर्यो का आदर्श बताने आया/ जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया/ सुख शान्ति हेतु मै क्रान्ति मचाने आया"।[१६१] यही नही राज्य का स्वरूप यदि कल्याणकारी हो तो वह नागरिको के लिये बधन नही अपितु मुक्ति का साधन बनता है, "जनपद के बन्धन मुक्ति हेतु सबके/ यदि नियम न हो उच्छिन्न सभी हो कब के"।[१६२] यही नही साम्राज्यवादी शासन के बन्धन को मैथिलीशरणगुप्त अस्वीकार करते है, "मैं तुम्हारा राज्य शासन भार/ कर नही सकता यथा स्वीकार/ . बनगई अब राजभक्ति विरक्ति/ . राजपद ही क्यो न अब हट जाय/ . .सब जगत में

हो नया आरम्भ/ विगत हो नरपति, रहे नर मात्र''।[163] इस तरह राज्य के देवी अधिकार का भी वे विरोध करते हैं। वे स्वतत्रता की बात रखते हुये उसे अपनी मातृभूमि का स्वाभाविक गुणधर्म मानते है, ''पचतत्व मेरी पुण्यभूमि के है मुझमे/ कहला रहे है यही मुझसे पुकार के/ हम परतत्र नही सर्वथा स्वतत्र है''।[164] इस तरह मैथिलीशरण गुप्त परतत्रता के परिवेश मे भी स्वतत्रता की बात करते है और गुलामी से अच्छा मृत्यु को स्वीकार करते है।

**X X X X X**

भाषा के प्रश्न पर भी मैथिलीशरण गुप्त अपने साहित्य के माध्यम से उलझते है। यह हिन्दी भाषा के लिये एक चुनौती थी कि उसे कई मोर्चों पर संघर्ष करना था। पहला तो उसे अपना विकास क्षेत्रीय बोलियो के बीच मे खडी बोली के रूप मे करना था साथ ही साम्राज्यवादी दबावो को भी समाप्त करना था और उर्दू के सामने भी अपनी महत्ता सिद्ध करनी थी। विभिन्न बोलियो के मध्य उभरी आधुनिक हिन्दी अपनी जनशक्ति के बदौलत यथोचित सम्मान भी चाहती थी। इस सघर्ष मे हिन्दी का भारतेन्दु से लेकर द्विवेदी और मैथिलीशरण गुप्त तथा बाद के साहित्यकारो ने भरपूर साथ दिया। मैथिलीशरण गुप्त अक्टूबर १६११ के 'सरस्वती' अक मे लिखते है, ''जो हो हम सब सजग हो हिन्दी हित साधन करे/ विश्वेश्वर बल देकर हमे सकल विघ्न बाधा हरे''।[165] भाषा के महत्व पर वे लिखते है, ''करो अपनी भाषा पर प्यार/ जिसके बिना मूक रहते तुम रूकते सब व्यवहार''।[166] 'भाग्त–भारती' मे हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा बनाने की वकालत करते हुए वे लिखते है, ''है राष्ट्रभाषा अभी तक देश मे कोई नही/ इस योग्य हिन्दी है तदपि अब तक न निजपद पा सकी/ यो तो स्वभाषा सिद्धि के सब प्रान्त है साधक यहाँ/ पर एक उर्दूदाँ अधिकतर बन रहे बाधक यहाँ/ भगवान जाने देश मे कब आएगी अब एकता/ हठ छोड दो हे भाइयो अच्छी नही अविवेकता''।[167] यही नही स्वतत्रता के बाद भी गुप्तजी भाषा के लिये सघर्ष करते है, ''भाव परन्तु एक भाषा के स्नेह बिना सब रूखा है/ . एक देश मे द्विभाषिणी की बाधाए अब कौन सहे/ . . आई जब यह स्वतत्रता की उषा स्वर्ण मयूखा है/ मै ही क्या मेरा प्रभुवर भी सदा भाव का भूखा है''।[168] इस तरह वे अन्य साहित्यकारो के ही समान हिन्दी को राष्ट्र भाषा के रूप मे स्थापित करने के लिये पूरे साहित्यिक जीवन मे सघर्ष करते रहे।

मैथिलीशरण गुप्त समकालीन शिक्षा व्यवस्था से भी सतुष्ट नही थे। हमे यह ध्यान रखना चाहिये कि उन्होने स्वय स्कूली शिक्षा से ऊबकर उसे छोड दिया था। बाद मे उन्होने गृह शिक्षा के द्वारा अपनी अध्ययन सम्पन्नता बढाई। 'भारत–भारती' मे वे लिखते है, ''हा आज शिक्षा मार्ग भी सकीर्ण होकर क्लिष्ट है/ .... बिकने लगी विद्या यहाँ अब शक्ति हो तो क्रय करो/ यदि शुल्क आदि न दे सको तो मूर्ख रहकर ही मरो/ . ऐसी असुविधा में कहो वे दीन कैसे पढ सके/ .. अब नौकरी ही के लिये विद्या

पढी जाती यहाँ/ जाकर विदेश अनेक अब जब युवक अपने आ चुके/ पर देश के वाणिज्य हित की ओर कितने है झुके/ है कारखाने कौन से उनके प्रयत्नो से चले"।[१६६] इस तरह वे समकालीन शिक्षा व्यवस्था का व्यावसायीकरण जिससे गरीबो को शिक्षा मिलना दुष्कर हो गई थी की जमकर आलोचना की। साथ ही उसे सहज और भारतीय सस्कृति और परम्पराओ के अनुरूप बनाने की वकालत की।

**X X X X X**

इस तरह मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रीय आन्दोलन के समय की सभी समस्याओ से अपने साहित्य के माध्यम से सघर्ष किया। अपने आरम्भिक रचनाओ मे ही उन्होने राष्ट्रहित को मुखर रूप से रखना प्रारम्भ किया तो समकालीन दबावो के चलते उसे स्वीकृति प्राप्त होने मे कुछ अडचने आई पर 'भारत–भारती' उनकी लोकप्रियता का प्रथम और व्यापक आयाम बनी। उन्हे एक इसी रचना ने जन कवि बना दिया। यद्यपि वे सक्रिय राजनीति मे नही रहे पर गणेशशकर विद्यार्थी से सम्बन्ध और गॉधीजी से सम्बन्ध तथा उनकी बढती लोकप्रियता के कारण अनेक लोगो का उनके यहाँ आना–जाना लगा रहता था। फलत उन्हे १६४१ मे गिरफ्तार भी किया गया। इस बीच वे अनेक रचनाओ के माध्यम से अपनी लोकप्रियता के कारण 'राष्ट्रकवि' बन गये थे। यह नाम उन्हे महात्मा गॉधी से मिला। गुप्तजी गॉधीजी के निकट सम्पर्क मे रहे और उनके ऊपर उनकी विचारधारा का प्रभाव भी बहुत गहरा पडा। यद्यपि पहलेसे ही वे उन मूल्यो को व्याख्यायित कर रहे थे। गॉधीजी के आगमन और उनकी लोकप्रियता तथा सफलता ने उन्हे अपने ही सिद्धान्तो पर चलने के लिये मजबूती प्रदान की।

अपने समकालीनो की अपेक्षा वे अपनी भाषा मधुरता और सरलता तथा योग्यता के बल पर अधिक लोकप्रिय रहे चाहे वह प्रसाद हो या प्रेमचन्द या निराला। इसका कारण शायद उनका लम्बा जीवनकाल और अनुभव और परिवार की कुलीनता भी रहा हो। राष्ट्र के प्राय सभी प्रमुख नेताओ का उनके यहाँ आना–जाना लगा रहता था चाहे वह गॉधीजी हो या नेहरू सभी ने उनका आतिथ्य स्वीकार किया, बाद मे वे स्वतत्र भारत मे ससद सदस्य भी चुने गये। उनकी समकालीनो से तुलना करते हुए डा० नगेन्द्र लिखते है, "प्रेमचन्द्र मे धर्म का अभाव है और प्रसाद मे लोकभावना का अतः गॉधीयुग मे भारतीय लोकचेतना का प्रतिनिधित्व गुप्तजी अपने इस दोनो समसामयिक महारथियो की अपेक्षा अधिक करते है। युग चेतना और सास्कृतिक चेतना का ऐसा मणिकाचन योग अन्यत्र प्राप्त नही होता"।[१७०]

मैथिलीशरण गुप्त अपने साहित्य मे उन सभी नारियो की प्रतिष्ठा को स्थापित किया जो अतीत के साहित्य और समाज मे अपने जीवन साथी से विरक्त होकर त्यागमय जीवन जीते हुये समाज निर्माण के क्षेत्र मे अपने साथी को मानक कार्य करने के लिये प्रेरित किया। वे नारी की भूमिका पत्नी एव मॉ के रूप मे भी महत्वपूर्ण मानते थे और उनमे सेवा, त्याग, क्षमा आदि कोमल गुणों का होना आवश्यक समझते

थे। साथ ही वे यह सिद्ध करते चलते है प्राचीन भारत मे ये गुण उनसे सम्बद्ध थे पर लम्बी गुलामी और भारत पर हुए अनगिनत आक्रमणो ने उनके अन्दर असुरक्षा की भावना भर दिया और वे पतित होती चली गईं। दरअसल एक आदर्श समाज की परिकल्पना के लिए वे अपने साहित्य मे सूदूर अतीत मे प्राय चले जाते हैं और उसी परिवेश के आधार पर समकालीन समाज का मूल्याकन करते है चाहे वह नारी समस्या हो, किसान समस्या हो या स्वतत्रता सम्बन्धी दृष्टिकोण हो। वर्तमान से सुदूर अतीत की तरफ पलायन यह समकालीन साहित्यकारो का लगभग प्रचलित शगल रहा है। इस प्रक्रिया से बहुत कम साहित्यकार अपने को बचा पाये है। यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त अपने नायको की तलाश मे सिर्फ पौराणिक युग की सैर नही करते अपितु उन्हे मध्यकालीन समाज मे भी ऐसे नायक मिल जाते है जिनके माध्यम से समकालीन राष्ट्रीय समस्याओ का समाधान कर पाते है उनकी हिन्दू धर्म मे पूर्ण आस्था है पर कही कट्टरपन नहीं है। हिन्दू साहित्यिक कृतियो मे से पात्रो का चयन एव उनके आदर्शों की स्थापना उन्हे सतही रूप से भले ही साम्प्रदायिक सिद्ध करे यद्यपि उनका दृष्टिकोण सर्वधर्मसमभाव का ही है।

# सन्दर्भ सूची


१ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, साहित्य सगम इलाहाबाद १६८६, पृष्ठ–२०

२ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, सपादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, जैमिनी प्रकाशन, कलकत्ता १६५६, पृष्ठ–११

३ वही पृष्ठ–१८

४ वही पृष्ठ–१३

५ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–२१

६ वही पृष्ठ–२२

७ वही

८ वही पृष्ठ–२३

६ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, सपादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ पूष्ठ–१६

१० जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–३३

११ वही पृष्ठ–४१.

१२ सरस्वती, अगस्त १६११ पृष्ठ–३६०

१३ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–४२

१४ वही पृष्ठ–५३

१५ वही पृष्ठ–४५

१६ राष्ट्रवाणी मैथिलीशरण गुप्त, सपादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, साकेत प्रकाशन, झॉसी १६८६, पृष्ठ X, VII भूमिका

१७. जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–८६

१८ वही पृष्ठ–६६

१६ वही पृष्ठ–१२६

२० श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ सम्पादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ पृष्ठ–१६

२१ वही पृष्ठ–२३३

२२ वही पृष्ठ–२६४

२३ वही पृष्ठ–२६१

२४. अपने समकालीनो में मैथिलीशरण गुप्त 'द्ददा' के नाम से भी जाने जाते थे.

२५ महादेवी वर्मा, 'दद्दा' पथ के साथी, महादेवी साहित्य खण्ड–२ सम्पादक ओकार शरद, सेतु प्रकाशन झाँसी १६६६, पृष्ठ–२६५

२६ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, पृष्ठ–१६

२७ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–८६

२८. महादेवी वर्मा, 'दद्दा' पथ के साथी, महादेवी साहित्य खण्ड–२, पृष्ठ–२६५

२६ वही पृष्ठ–२६१

३० नगेन्द्र, 'दद्दा' महान व्यक्तित्व, मैथिलीशरण गुप्त पुर्नमूल्याकन, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, १६८७ पृष्ठ–३०

३१ ओकार शरद, राष्ट्र कवि, मैथिलीशरण गुप्त, बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद १६१७ पृष्ठ–५

३२. नगेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त पुनर्मूल्याकन पृष्ठ–५३.

३३ शम्भूनाथ सिह, 'युग चेतना के कवि', मैथिलीशरणगुप्त, सम्पादक ओकार शरद पृष्ठ–६४

३४ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा पृष्ठ–१०१

३५ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिन्नदन ग्रन्थ, सम्पादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, पृष्ठ–१६७

३६ वही पृष्ठ–१७५

३७ नहुष , मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २००० पृष्ठ–५६

३८ सिद्धराज, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २०२२ पृष्ठ–१०४

३६. साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २००२ पृष्ठ–१६३

४०. सैरध्री, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २००० पृष्ठ–३.

४१ पत्रावली, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २००० पृष्ठ–२६

४२ नहुष, पृष्ठ–६४

४३ साकेत, पृष्ठ–३२१

४४ अनघ, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत १६६५, पृष्ठ–१३.

४५ नहुष, पृष्ठ–६१

४६ सिद्धराज, पृष्ठ–१२

४७. साकेत, पृष्ठ–१३३

४८. भारत–भारती, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २०४४, पृष्ठ–५८.

४६. सिद्धराज, पृष्ठ–३४

५० यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सदत २०१४, पृष्ठ–२०

५१ भारत–भारती, पृष्ठ–७१

५२ किसान, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, पृष्ठ–८

५३ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ सपादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ पृष्ठ–२६२

५४ वही पृष्ठ–२७६

५५ वही पृष्ठ–२७७

५६ वही पृष्ठ–१६७

५७ विष्णुप्रिया, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत २०२६, पृष्ठ–७२.

५८. भारत भारती, पृष्ठ–८१

५९. साकेत, पृष्ठ–१२

६० साकेत, पृष्ठ–३०६

६१ नहुष, पृष्ठ–६४

६२. श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–२०८.

६३ साकेत, पृष्ठ–१२

६४ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–५७

६५ वही पृष्ठ–७१

६६ वही पृष्ठ–७०

६७ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, पृष्ठ–२०

६८ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, पृष्ठ–१६७

६९ नहुष, पृष्ठ–३६

७० वही पृष्ठ–५५

७१ सरस्वती, फरवरी १९१४, पृष्ठ–६८

७२ कपिलकुमार, अवध किसान आन्दोलन – निष्कर्ष, इतिहास लेखन की समस्याये खण्ड–१, हिन्दी कलम, सम्पादक नीलकान्त, हाथ प्रकाशन इलाहाबाद, जुलाई–दिसबर १९९४, पृष्ठ–३१७

७३ किसान, पृष्ठ–२८

७४ वही पृष्ठ–४५.

७५ वही पृष्ठ–२६

७६ वही पृष्ठ–२८.

७७ भारत – भारती, पृष्ठ–६६

७८ नहुष, पृष्ठ–७२

७६ वही पृष्ठ–८२

८० सिद्धराज, पृष्ठ–२२

८१ वही पृष्ठ–२६

८२. साकेत, पृष्ठ–२२२

८३ वही पृष्ठ–२२२

८४ किसान, पृष्ठ–२६.

८५ वही पृष्ठ–३०

८६ वही पृष्ठ–३६, ३४

८७ साकेत, पृष्ठ–१५८

८८ वही पृष्ठ–१५६

८६. राजीव सक्सेना, मैथिलीशरण गुप्त और राष्ट्रीय नवजागरण, मैथिलीशरण गुप्त युग और कविता, सम्पादक ललित शुक्ल, समानान्तर प्रकाशन दिल्ली १६८८ पृष्ठ–६६

६० भारत भारती, पृष्ठ–६५

६१ वही पृष्ठ–६६

६२ वही पृष्ठ–१४४

६३ वही.

६४ पत्रावली, पृष्ठ–२७

६५ यशोधरा, पृष्ठ–४७

६६ वही पृष्ठ–४३

६७ किसान, पृष्ठ–४०

६८ सिद्धराज, पृष्ठ–४२

६६ साकेत, पृष्ठ–२८८

१०० सैरन्ध्री, पृष्ठ–६

१०१ नहुष, पृष्ठ–११४

१०२ सिद्धराज, पृष्ठ–२७

१०३. यशोधरा, पृष्ठ–८८

१०४ वही पृष्ठ–१४५

१०५ साकेत, पृष्ठ–३३१

१०६ यशोधरा, पृष्ठ–२४

१०७ नहुष, पृष्ठ–६०

१०८ विष्णुप्रिया, पृष्ठ–७२

१०६ भारत–भारती, पृष्ठ–१४४

११०. डा० मजुलता तिवारी, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे नारी, सुलभ प्रकाशन लखनऊ १६७७, पृष्ठ–१५६.

१११ वही, आमुख पृष्ठ–६

११२ भारत–भारती पृष्ठ–८२

११३ वही पृष्ठ–८३.

११४. वही पृष्ठ–१००

११५ पत्रावली, पृष्ठ–१३

११६ प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, गुप्तजी की काव्य की कारूण्य धारा, पुस्तक भण्डार लोहिया सराय १६४१ पृष्ठ–६१

११७. राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–७५

११८ वही पृष्ठ–७६

११६. वही पृष्ठ–८०

१२० वही पृष्ठ–६६

१२१. वही पृष्ठ–१०७

१२२ प्रभाकर माचवे, जीवन साहित्य, सितम्बर १६४१ का अक, उद्धृत प्रो० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री, गुप्तजी के काव्य में कारूण्यधारा, पृष्ठ–६२

१२३ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी पृष्ठ–१२३

१२४ गुरूकुल, मैथिलीशरण गुप्त साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, सवत १६८५, पृष्ठ–२६

१२५ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–८१

१२६ वही पृष्ठ–१३०

१२७ हिन्दू, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगॉव, झॉसी, पृष्ठ–२४६, २४८

१२८ सुधेश , गुप्तजी के काव्य मे सर्वधर्मसमभाव, मैथिलीशरण गुप्त और कविता, सम्पादक ललित शुक्ल, पृष्ठ–१५८

१२६ भारत–भारती, पृष्ठ–१७४, १७५

१३० राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सपादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–७४

१३१ सिद्धराज, पृष्ठ–२६

१३२ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी पृष्ठ–११६

१३३ राजीव सक्सेना, मैथिलीशरण गुप्त और राष्ट्रीय नवजागरण, मैथिलीशरण गुप्त युग और उनकी कविता, सम्पादक ललित शुक्ल, पृष्ठ–६१

१३४ भारत–भारती, पृष्ठ–१०७.

१३५ सिद्धराज, पृष्ठ–४१

१३६ वही पृष्ठ–१३०.

१३७ साकेत, पृष्ठ–१३६

१३८ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–१६४

१३६ भारत–भारती, पृष्ठ–१०६

१४० वही पृष्ठ–११०.

१४१ वही पृष्ठ–११३

१४२ वही पृष्ठ–११६

१४३ वही

१४४ वही पृष्ठ–१७४

१४५ स्वावलम्ब, मैथिलीशरण गुप्त, हिन्दू, पृष्ठ– २२७, २२८, २२६

१४६ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा पृष्ठ–४२

१४७ श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, सम्पादक ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ पृष्ठ–२७५

१४८ अनघ, पृष्ठ–२

१४६ नहुष, पृष्ठ–११३

१५० वही पृष्ठ–१०७

१५१ साकेत, पृष्ठ–२६७.

१५२ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–११४

१५३ वही पृष्ठ–११६

१५४ वही पृष्ठ–१२१

१५५ वही पृष्ठ–१२२

१५६ वही पृष्ठ–१२५

१५७ नहुष, पृष्ठ–६, १०

१५८ वही पृष्ठ–१५

१५९ वही पृष्ठ–५७

१६० सिद्धराज, पृष्ठ–४३

१६१ साकेत, पृष्ठ–१६६.

१६२ वही पृष्ठ–१६४.

१६३. वही पृष्ठ–१४१

१६४. सिद्धराज पृष्ठ–४७

१६५. सरस्वती, अक्टूबर १६११ पृष्ठ–४६६

१६६. राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–६५

१६७. भारत–भारती, पृष्ठ–१८१

१६८ राष्ट्रवाणी, मैथिलीशरण गुप्त, सम्पादक जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, पृष्ठ–१२८

१६९ भारत–भारती, पृष्ठ–१६९

१७०. नगेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त पुनर्मूल्याकन, पृष्ठ–५६

## अध्याय–६

# परवर्ती राष्ट्रवाद में साहित्यकर्म : पंत, महादेवी और माखनलाल

### सुमित्रानन्दन पन्तः

सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म १६०० मे २० मई के दिन हुआ था। अपने जन्मभूमि के प्राकृतिक परिवेश के बारे मे सुमित्रानन्दन स्वयं लिखते है, " मेरी जन्मभूमि कौसानी है, जिसे कुर्मांचल की एक विशिष्ट सौदर्य स्थली माना जाता है जिसकी तुलना गॉधीजी ने स्विट्जरलैण्ड से की है और जहॉ शरद मे ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओ के उपयोग के लिए चिरतन सौंदर्य उगाया जाता है"।[1] जन्म के कुछ ही घण्टे बाद पंत की मॉ चल बसी फलत मॉ की कोमल और स्नेहपूर्ण सरक्षण की क्षतिपूर्ति प्रकृति से ही हुई जैसा कि पत जी स्वय लिखते है, "मेरी मॉ की मृत्यु मेरे जन्म के छ–सात घण्टे के भीतर ही हो गई थी पर कौसानी की गोद मुझे मॉ की गोद से भी अधिक प्यारी रही"।[2] पत की प्रकृति पर निर्भरता दिनो–दिन बढती ही गई जैसा कि उनकी जीवनीकार शान्ति जोशी लिखती है, "पत के लिए प्रकृति ही माता–पिता, भाई, सखा, शिक्षक, प्रेमिका एव सभी कुछ बन गई"।[3] पत जी की रचनाओ पर न केवल प्रकृति का प्रभाव पडा है वरन उन्होने प्रकृति को ही प्रतीक मानकर प्राय अपनी सारी बात कविता के माध्यम से कही है।यही नही उन्होने समकालीन सघर्ष को भी रूपको के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है। जैसा कि पत जी लिखते हैं, "युग संघर्ष के अनेक रूपो को मैने अपने काव्य रूपको द्वारा भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है"।[4] विश्वम्भर मानव भी उद्धृत करते है, "प्रकृति को नारी के रूप मे चित्रित करना पत का प्रिय स्वभाव है"।[5]

उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और परिवेश के बारे मे शान्ति जोशी लिखती है, "पत वश अपने शौर्य और साहित्यिक प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध रहा है। इस कुल मे बडे–बडे शास्त्रज्ञ विद्वान, सेनाध्यक्ष ज्योतिषी, वैद्य तथा कवि हुए है। १६वी सदी मे गुमानी पत कुमॉऊ के प्रख्यात कवियो मे माने जाते है जिन्होने सस्कृत, हिन्दी और पहाडी भाषा मे अनेक ग्रन्थ लिखे है जिनमे से अब भी कुछ उपलब्ध है। वशावली के अनुसार कुर्मांचलीय ब्राह्मण विशेषत पत और जोशी महाराष्ट्र से पन्द्रहवी सदी मे कुर्मांचल आये"।[6] उनकी आरम्भिक शिक्षा कौसानी वर्नाक्यूलर स्कूल मे, तत्पश्चात् अल्मोडा मे हुई। उनके शैक्षिक गतिविधि के बारे मे शान्ति जोशी उद्धृत करती है, "सस्कृत की शिक्षा का आरम्भ भी पत को फूफाजी ने ही कराया। १६०७ से १६०६ के बीच उन्होंने अमरकोश, मेघदूध, रामरक्षास्त्रोत, चाणक्यनीति आदि के

अतिरिक्त अन्य अनेक श्लोको का ज्ञान पत को करा दिया। फूफा के अतिरिक्त अम्बादत्त जोशी जो सस्कृत और पर्सियन के विद्वान थे पत को सस्कृत और पर्सियन पढाई बडे भाई हरदत्तजी के मधुर काव्य पाठ तथा साहित्यिक रुचि ने पत को साहित्य का अनुरागी बना दिया इसी बीच उन्हे घर मे सगीत का अभ्यास भी प्रारम्भ करवा दिया गया पत के कवि व्यक्तित्व के प्रस्फुटन के लिए उनके बचपन मे ही सभी परिस्थितियाँ अनुकूल बन गईं"।[७] ११वे वर्ष उनका उपनयन सस्कार हुआ पर वे जनेऊ अधिक दिनो तक धारण न कर सके/ शान्ति जोशी लिखती है, "उपनयन सस्कार के पाँचवे दिन वे अल्मोडा आ गये और वही उन्होने जनेऊ उतार कर फेक दिया"।[८] अल्मोडा मे ही उनकी रुचि हिन्दी साहित्य की तरफ अधिक हुयी, जैसा कि शान्ति जोशी उद्धृत करती है, "छत्रसाल प्रतिमा', 'फूलो का गुच्छा', 'कविता कलाप', 'गल्पगुच्छ' आदि ग्रन्थ पढ डाले, 'भारत–भारती', 'जयद्रथ वध', 'काव्य प्रभाकर' आदि अलकार पिगल ग्रन्थो के साथ मध्ययुगीन कवियो का भी मनोयोगपूर्वक अध्ययन इसी साल प्रारम्भ किया"।[९] जैसा कि पत जी भी कहते हैं, "इन्ही दिनो अल्मोडा मे बाहर से अनेक विद्वानो, महानुभावो तथा प्रचारको का आगमन हुआ जिनमे से मुझे विद्या वारिधजी, मालवीयजी तथा स्वामी सत्यदेवजी का नाम स्मरण है . .स्वामी सत्यदेव परिब्रजाकजी ने अल्मोडा मे निरन्तर कई महीनो तक अपने प्रभावपूर्ण भाषणो से नागरिको मे नैतिक जागृति, देशभक्ति तथा मातृभाषा हिन्दी का प्रेम पैदा किया"।[१०]

पतजी अध्ययन के लिए काशी भी गये। वहाँ वे कवीन्द्र रवीन्द्र के आगमन पर उनसे मिले और प्रभावित हुए। जुलाई १९१६ मे उन्होने प्रयाग नगरी मे प्रवेश किया और म्योर सेन्ट्रल कालेज मे इटर मे भर्ती हो गये। यही महात्मा गाँधी का आगमन आनन्दभवन मे हुआ और उनके प्रभाव मे आकर उन्होने स्कूली शिक्षा को तिलाजलि दे दिया और 'इण्डिपेन्डेस' नामक दैनिक पत्र की, जो सरकार द्वारा जब्त कर दिया गया था कि हस्तलिखित प्रतियाँ तैयार करने मे सहायता करने लगे"।[११] पर इस कार्य मे उनका मन न लगा और अपने को अलग कर लिया। जैसा कि शान्ति जोशी लिखती है, "पत ने देश सेवा के लिए राजनीति के कोलाहलपूर्ण मार्ग को छोडकर अब सम्पूर्ण समर्पण के साथ साहित्य का मार्ग अपना लिया"।[१२] राजनीति मे सहभागिता की अपनी दृष्टि को परिभाषित करते हुए पत कहते है, "मैने देश के आन्दोलन मे बाहर से तो कभी भाग नही लिया और न मैने कभी कारावास ही झेला पर हमारे राष्ट्रीय जागरण के आन्दोलन का भीतरी पक्ष रहा है उससे मै निरन्तर जूझता रहा हूँ और अपनी सामर्थ्य के अनुसार मैने उसका ऋण भी चुकाया है"।[१३] इस बीच वे 'हार' उपन्यास और अपने 'पल्लव' काव्य सग्रह की वजह से चर्चा मे आ चुके थे, "अगस्त'२८ मे 'वीणा' के प्रकाशन के साथ ही साहित्य जगत मे भूकम्प आ गया"।[१४] इस बीच उनके पिताजी की मृत्यु हो गयी। शान्ति जोशी उद्धृत करती है, "पिता की मृत्यु पारिवारिक सम्बन्धो की मृत्यु थी ... पारिवारिक विपर्यय तथा पिता की मृत्यु के बाद पत का कहना है कि

उन्हे विलक्षण अनुभूतियॉ होने लगी उन्हे लगा कि उनका मन जैसे विगत ऐतिहासिक तथा परम्परागत पृष्ठभूमि से बिल्कुल ही कट गया। वह अब मात्र एकाकी चेतना है जिसके चारो ओर काल का निर्जीव ध्वसावशेष पडा हुआ है"।[१५] शान्ति जोशी १९२६ से ३० तक के काल को पत के लिए अधिक अभिशप्त मानती है, "अधिकार सघर्ष परिस्थिति की असहनीयता आर्थिक सघर्ष, आत्मीयजनो का विछोह और एक मूक रुदन यही सब तो इस काल का चक्र था"।[१६]

इसी समय देश भक्त हिन्दी प्रेमी प्रथम हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्तान' के प्रेरक कालाकाकर के राजा के यहॉ पत जी ने लम्बा प्रवास किया। उनका प्रेमपूर्ण व्यवहार एव सरक्षण पतजी के मन स्थिति के लिए अनुकूल रहा जैसा कि शान्ति जोशी लिखती है, "पिता की मृत्यु ने जिस पारिवारिक स्नेह सुख को तोड दिया था उसी के अभाव की पूर्ति उन्हे कालाकाकर मे मिली"।[१७] पत जी कहते है, "कालाकाकर मे मेरी युवावस्था के श्रेष्ठवर्ष १९३० से ४० तक वानप्रस्थ स्थिति मे ज्ञान साधना मे पशुपक्षियो के साथ व्यतीत हुए"।[१८] "युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' की रचना मेरे कालाकाकर के दूसरे निवास काल मे हुई"।[१९] इसी बीच पतजी गॉधीजी से भी मिल चुके थे। अपने कालाकाकर प्रवास के सम्बन्ध में पंतजी लिखते है, "कालाकाकर जाना तो एक प्रकार से मेरे लिए वनगमन सिद्ध हुआ जहॉ मेरा लोक जीवन के दुर्जेव शत्रु दुर्निवार दारिद्रय के पर्वताकार रावण से साक्षात्कार हुआ और अपनी कवि सामर्थ्य के स्तर पर उससे जूझने के लिए मैने शब्दो की वानर सेना भी सगठित की"।[२०] १९३८ मे पत ने 'रुपाभ' नामक पत्र का सपादन किया जो अपने एक वर्षीय जीवन मे ११ अक प्रकाशित होने के बाद बन्द हो गया।

सन् १९४१ मे अपने अल्मोडा प्रवास के दौरान वे उदयशकर सस्कृति केन्द्र के सम्पर्क मे आये और जब १९४२ को भारत छोडो आन्दोलन के साम्राज्यवादियो के दमनात्मक स्वरूप के कारण उनका मन क्षुब्ध तथा अशान्त हो उठा तो उन्होने मानस रचना तथा सोये हुए मनुष्य के जागरण के लिए सामानान्तर सास्कृतिक आन्दोलन की आवश्यकता महसूस करते हुए उन्होने 'लोकायन' सस्था बनाई जैसा कि पत जी लिखते है, "मैने सन्'४२ मे 'लोकायन' के नाम से एक व्यापक सस्कृति पीठ की योजना बनाई जिसमे रगमच को सास्कृतिक प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार प्रस्तुत किया गया था"।[२१] उनकी यह योजना तुरन्त कार्यरुप न ले सकी जैसा कि शान्तिजोशी, हरिवशराय बच्चन को उद्धृत करती है, "युद्ध की विभीषिका – भारत छोडो आन्दोलन, दमन, अत्याचार ने मन को गहन विषाद से भर दिया था और परिस्थिति की असहनीय भावना ने निष्क्रिय और औदास्य को जन्म दे दिया था"।[२२] फलत- पन्त अल्मोडा चले गये जैसा कि पत जी लिखते है, " मैने उदयशकर ट्रप के साथ दो तीन महीने भारत भ्रमण भी किया"।[२३] इसी बीच जैसा कि शान्ति जोशी लिखती है "टायफाइड के साथ कालाजार" के शिकार पतजी हुए और स्वस्थ होने पर उदयशकर ट्रप के लोगो ने आश्रम (अरविन्द–पाण्डिचेरी) जाने का

कार्यक्रम बनाया तो पत जी भी उनके साथ चले गये"।[24] पतजी भी लिखते है, "आश्रम के स्वच्छ प्रभाव तथा श्री अरविन्द के उज्जवल सम्पर्क मे आने के कारण मेरी आध्यात्मिक मान्यताए अधिक उन्नत, विकसित तथा पुष्ट हुईं। 'ग्राम्या' के बाद मेरे मन मे जो चितन धारा चल रही थी उसका यहॉ आकर परिपाक हुआ"।[25] इस तरह पत ने अपने जीवन पथ पर आगे बढते हुए तथा युगीन विचारधाराओ को आत्मसात करते हुए अपनी रचनाए प्रस्तुत की। वे भारतीय दर्शन और अध्यात्म से भी प्रभावित थे तथा पाश्चात्यदर्शन के भौतिकवादी दृष्टिकोण से भी, उन्हे मार्क्सवाद ने भी प्रभावित किया और गॉधी का व्यक्तित्व और उनकी विचारधारा भी और अन्त मे उन्होने अरविन्द के दर्शन से प्रेरणा ली। इन सब विचारधाराओ का जब सश्लेषण पत के व्यक्तित्व से हुआ तो उसने नया कलेवर ग्रहण किया और उस समय की प्रचलित और लोकप्रिय विचारधारा के वे एक तरह से समन्वयकर्ता के रूप मे सामने आये। जैसा कि शान्ति जोशी लिखती है, "पत का दृष्टिकोण न सकीर्ण साम्यवाद एव भूतवाद को अपनाता है और न अयथार्थवाद मानवता से रहित अध्यात्म को। उन्होने भौतिकता और आध्यात्मिकता का, पूर्व और पश्चिम की जीवन दृष्टि का सार ग्रहण कर उनमे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है। मार्क्सवाद के ऐतिहासिक यथार्थ सम्बन्धी व्यापक सामाजिक आदर्श और भारतीय चेतना के अन्तर्मुखी उर्ध्व आदर्श का सश्लेषण, विश्लेषण कर उन्होने ऐक्य को मानव सभ्यता के विकास के लिए अनिवार्य बतलाया है"।[26]

XXXXX

इलाहाबाद मे स्वराजभवन मे गॉधीजी के दर्शन और उनके आन्दोलन मे सहभागी होने के पूर्व वे (पत जी) रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रभाव मे आ चुके थे और जब इन दोनो व्यक्तियो मे विदेशी कपडो के दहन के मुद्दे पर मतभेद जाहिर हुआ तो पतजी का भी मानस इससे अछूता न रह सका। पतजी के अनुसार, "सन्'२१ के बाद गॉधीयुग अपना सक्रिय रूप धारण कर चुका था और उसके प्रभाव को भुलाना असभव हो गया था। मेरा साहित्य रस लोलुप मन अध्ययन मनन छोडकर बीच – बीच मे श्वेत खादी से विभूषित गॉधीजी की अर्धनग्न कर्मठ प्रतिमा को अपलक देखने तथा उसके सच्चे स्वरूपको समझने के लिये लालायित हो उठा था .. उन दिनो विदेशी वस्त्रो की होली जलाने के सम्बन्ध मे गॉधीजी तथा गुरूदेव मे जो वाद – विवाद छिडा था उससे सन्तोष मिलने के बदले मन की जिज्ञासा और भी बढ गई थी। मानव सत्य के मानदण्ड का अन्वेषण यह मुझे धीरे–धीरे इस युग की परम आवश्यकता प्रतीत होने लगी"।[27] पर यह द्वद धीरे–धीरे मिटता गया और पतजी गॉधीजी के इस दृष्टिकोण (विदेशी वस्त्रो के दहन) के समर्थक हो गये। जैसा कि शान्ति जोशी उद्धृत करती है, "उस दिन (२० मार्च १९२९) हास्टल मे विदेशी कपडो की होली जलाई गई। उस समय पत ने अपना विदेशी वस्त्र का कोट अग्नि देवता को समर्पित कर दिया"।[28]

पतजी गॉधीजी से कई बार मिले पर अपने पहले साक्षात्कार (१६३४) की अनुभूतियो के बारे मे पतजी लिखते है, "इस बार मै उनके व्यक्तित्व के अत्यन्त गहरे तथा आन्तरिक रूप से प्रभावित हुआ"।[२६] इसी प्रभाव को काव्य रूप मे पतजी लिखते है, "प्रथम भेट मे मिला हृदय को सूक्ष्म स्पर्श दृग विस्मय प्रेरित"।[३०] पतजी महात्मा गॉधी पर १६३६ मे 'बापू के प्रति' शीर्षक से कविता मे लिखते है, "तुम मासहीन तुम रक्तहीन/ हे अस्थिशेष ! तुम अस्थिहीन/तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल/हे चिर पुराण, हे चिर नवीन"।[३१] महात्मा गॉधी के सारे विचारधारात्मक आयाम पतजी की प्रशसा पाते है चाहे वह सत्य हो या अहिसा या सत्याग्रह। वे लिखते है, "सुख भोग खोजने आये सब/ आये तुम करने सत्य खोज"।[३२] इसी तरह दूसरी जगह वे लिखते है, "सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण/ मानवीय स्पर्शों से भरते धरती के व्रण"।[३३] यही नही पतजी गॉधीजी को प्रथम पुरूष मानते है जो इस हिसा प्रेमी समाज मे अपनी अहिसात्मक मान्यताये लेकर अवतरित हुआ। वे लिखते है, "प्रथम अहिंसक मानव तुम बन आये हिस्र धरा पर/मनुज बुद्धि को मनुज हृदय के स्पर्शों से सस्कृत कर/ निवल प्रेम को भाव गगन से निर्मम धरती पर धर/ जन जीवन के बाहुपाश मे बॉध गये तुम दृढतर/ द्वेष घृणा के कटु प्रहार सह, करूणा दे प्रेमोत्तर/ मनुज अह के गत विधान को बदल गये हिसा हर/ . अग्रदूत बन भभ्य युग पुरूष के आये तुम निश्चय"।[३४] गॉधी जी के सत्याग्रह पर टिप्पणी करते हुये वे लिखते है, "सहयोग सिखा शासित जन को शासन का दुर्वह हरा भार/ होकर निरस्त्र, सत्याग्रह से रोका मिथ्या का बल प्रहार/ बहु भेद विग्रहो मे खोयी, ली जीर्ण जाति क्षय से उबार/ तुमने प्रकाश को कह प्रकाश और अन्धकार को अन्धकार"।[३५]

गॉधीजी के खादी आन्दोलन से भी पतजी प्रभावित है और भारत के व्यक्तित्व निर्माण के लिए उसे एक सार्थक प्रयास मानते है । अपने 'चरखा गीत' मे वे उसके बहु आयामी लाभो की चर्चा करते हुये लिखते है, "भ्रम, भ्रम, भ्रम-/ घूम-घूम, भ्रम-भ्रम रे चरखा/ कहता मै जन का परम सखा/ जीवन का सीधा-सा नुसखा-/ श्रम, श्रम, श्रम/ भ्रम, भ्रम, भ्रम/ धुन रूई निर्धनता दो धुन/ कात सूत जीवन पट लो बुन/ अकर्मण्य, सिर मत धुन, मत धुन/ थम, थम, थम ! / नग्न गात यदि भारत मॉ का/ तो खादी समृद्धि की राका/ हरो देश की दरिद्रता का/ तम, तम, तम/ रक्षक मै स्वदेश के धन का"।[३६] उनकी रचनाओ मे चरखा और खादी को कई जगह स्थान मिला है उन्हे वे एक नूतन मानवीय संस्कृति का प्रतीक भी स्वीकार करते है, "सदियो का दैन्य, तमिस्र तूम/ धुन तुमने कात प्रकाश सूत/ हे नग्न ! नग्न पशुता ढॅक दी बुन नव सस्कृत मनुजत्व पूत"।[३७] इसी गीत मे वे आगे कहते है, "उर के चरखे मे कात सूक्ष्म/ युग-युग का विषय जनित विषाद/ गुजितकर दिया गगन जग का/ भर तुमने आत्मा का निनाद/ रॅग-रॅग खद्दर के सूत्रो मे नव जीवन आशा, स्पृहा, आह्लाद/ मानवी कला के सूत्रधार/ हर दिया यन्त्र कौशल प्रवाह"।[३८] पतजी की गॉधीजी की 'रामराज्य' की अवधारणा

पर भी दृष्टि लगी है, "विश्व सभ्यता का होना था नखशिख नव रूपान्तर/ रामराज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यो ही निष्फल"।[35] अपनी इस कविता मे वे गॉधीजी के रामराज्य को नयी मूल्यो के द्वारा स्थापित व्यवस्था स्वीकार करते है जो सच्चे मानवीय मूल्यो से सयुक्त होगी।

गॉधीवादी मान्यताओ के विज्ञापक होते हुए भी पत जी मार्क्स के जनापेक्षी दृष्टिकोण का सम्मान करते है। पूरनचन्द्र जोशी उनके मित्र रहे जो पी०सी० जोशी के नाम से प्रसिद्ध थे। जैसा कि पत जी लिखते है, "मार्क्सवाद के जटिल आर्थिक पक्ष मुझे भाई देवीदत्त पत ने समझाया था"।[40] अत यह बात नही स्थापित की जा सकती कि पत जी मे मार्क्सवादी विचारधारा का सश्लेषण नही हुआ। 'मार्क्स के प्रति' शीर्षक से रचित अपनी कविता मे वे मार्क्स की विचारधारा की प्रशसा करते हुये लिखते है, "वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन/ पूरित होगे जन के भव जीवन के निखिल प्रयोजन/ . धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर / तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रगट हुए प्रलयकर"।[41] अपनी कविता 'समाजवाद–गॉधीवाद' मे वे दोनो विचारधाराओ को लोक कल्याणकारी बताते हुए कहते है, "साम्यवाद ने दिया जगत को सामूहिक जनतत्र महान/ गॉधीवाद जगत मे आया ले मानवता का नवमान"।[42] पर वे साम्यवाद को पूरे उत्साह के साथ अपने साहित्य मे नही पचा पाते। उसकी कमियो को रेखाकित करते हुए अपनी कहानी 'अवगुठन' वे उद्धृत करते है, "साम्यवाद ने केवल ऐतिहासिक तत्वो का मनन कर ससार के कल्याण का मार्ग निश्चित किया है। उसने मनोविज्ञान को भी इतिहास के तीस डिग्री कोण से देखा है इसलिए उसका आदर्श साम्राज्य अथवा स्वर्ण स्थिति की कल्पना भी केवल इतिहास के मनुष्यो के लिये है। पूर्ण मनुष्य को देखने का उसने प्रयत्न ही नही किया"।[43] यही नही वे 'सकीर्ण भौतिकवादियो के प्रति' शीर्षक कविता मे भी भौतिकवाद की कमियो को उद्घाटित करते हुये कहते है, "आत्मवाद पर हसते हो भौतिकता का रट नाम?/ मानवता की मूर्ति गढोगे तुम सॅवार कर चाम?"[44] इस तरह वे मार्क्सवाद के महत्व को स्वीकारते हुये उसकी कमियों को भी उद्घाटित करते है। कभी भी वे मार्क्सवाद के अधभक्त नही रहे। उसे वे उसी सीमा तक अपने साहित्य मे स्थान और महत्व दिया जहॉ तक वे जनहित के लिये उपयोगी समझते रहे। जैसा कि रामधारी सिह दिनकर अपने एक लेख मे स्वीकार करते है, "साम्यवादियो द्वारा 'युगवाणी' के प्रशसित होने का कारण यह भी था कि युगवाणी मे धनपतियो की भर्त्सना और कृषक श्रमजीवी आदि की प्रशसा की गई है। यही नही प्रत्युत उसमे मार्क्स का भी स्तवन है और भूतदर्शन के लिए भी उसमे कुछ अच्छे शब्द कहे गये है किन्तु यहॉ यह ध्यान रखना चाहिये कि मार्क्स की प्रशसा तो कवि ने मुक्त हृदय से की है किन्तु भूतदर्शन को उसने अपने निजी ढग से स्वीकार किया है। भौतिक दर्शन को पत जी इसी परिष्कार के साथ स्वीकार करते है

कि स्थूल का अस्तित्व तो है किन्तु उसके भीतर सूक्ष्म का भी निवास हे ओर बर्हिजीवन के परिवर्तन का प्रभाव भी स्थूल और सूक्ष्म दोनो पर पडता है''।[५५]

इस तरह पंतजी के साहित्य को गॉधीवादी विचारधारा ने निश्चित रूप से प्रभावित किया। वे गॉधी जी की प्रशसा करते हुये लिखते है, ''गॉधीजी ने त्याग को त्याग के लिये खोखले निष्क्रिय रूप मे न अपनाकर उसे बहुजन हिताय अपने युग की अनिवार्य आवश्यकता समझकर ही धारण किया। वे अपनी भेषभूषा मे ही नही, रहन–सहन, मितव्ययिता, सादगी आदि मे भी भारत के ग्रामवासी दरिद्रनारायण का प्रतिनिधित्व करते थे। उन्होने अहिसा को मध्ययुगीन, निर्बल, निष्क्रिय, दया पीडित, हिसाभीरू वैयक्तिक साधन के रूप मे स्वीकार न कर उसे भारतीय स्वतत्रता के सग्राम मे जूझने के लिये एक सक्रिय सामूहिक सशक्त, उदार मानवीय अस्त्र के रूप मे अपनाया और उसे साम्राज्यवादी निर्मम हिसक शक्तियो का सामना कर मनुष्यत्व के पशुत्व पर विजय पाकर मनुष्यत्व की ओर अग्रसर होने के लिये जीवन दृष्टि प्रदान की''।[५६] इस तरह उनका अन्तर्मन गॉधीवाद के अधिक निकट रहा पर इसका आशय यह नही है कि उन्होने सिर्फ गॉधीवाद को ही अपने साहित्य मे स्वीकृति प्रदान की। अपने ऊपर समकालीन विचार बिन्दुओ के प्रभाव के सन्दर्भ मे वे स्वय लिखते है, ''मेरा भाव प्रवण बचपन से ही सौन्दर्य के प्रेरणाप्रद स्पर्शों के प्रति सवेदनशील रहा है वह सौन्दर्य चाहे नैसर्गिक हो या सामाजिक, मानसिक हो या आध्यात्मिक। मै हिमालय तथा कुर्मांचल के प्राकृतिक ऐश्वर्य से उसी प्रकार किशोरावस्था मे प्रभावित हुआ हूँ जिस प्रकार युवावस्था मे गॉधीजी तथा मार्क्स से अथवा मध्य वयस मे अरविन्द के दर्शन तथा व्यक्तित्व से''।[५७]

**X X X X X**

कृषको और मजदूरो को पत जी ने अपने साहित्य मे सम्मानपूर्ण स्थान दिया है साथ ही उनका दारूण चित्र प्रस्तुत करके प्रबुद्ध जनो की सहानुभूति को उनके पक्ष मे करने का यत्न किया है। 'कृषक' शीर्षक से रचित कविता मे वे किसानो के बारे मे लिखते है, ''वज्र मूढ जड भूत हठी वृष बान्धव कर्षक/ ध्रुव ममत्व की मूर्ति, रूढियो का चिररक्षक/ कर जर्जर ऋणग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू धन/ निखिल दैन्य दुर्भाग्य दुरित दु ख का जो कारण/वह कुबेर निधि उसे स्वेद सिचित जिसके कण/ हर्ष शोक की स्मृति के बीते जहॉ वर्ष क्षण/ युग – युग से नि सग स्वीय श्रम बल से जीवित/ विश्व प्रगति अनभिज्ञ, कूपतम मे निजसीमित''।[५८] अपनी कविता 'ग्रामश्री' मे किसानो के विभिन्न फसलो को तैयार करते होने का वे सौन्दर्यपूर्ण चित्रण करते है, ''फैली है खेतो मे दूर तलक/ मखमल की कोमल हरियाली''।[५९] पतजी कृषको मे व्याप्त असन्तोष को भी चित्रित करते है। अपनी कविता 'ग्राम देवता' मे वे लिखते है, ''राम राम/ हे ग्राम देव लो हृदय थाम/ अब जन स्वातत्रय युद्ध की जग मे धूम–धाम/

उद्धृत जनगण युग क्रान्ति के लिए बॉध लाम/ यह जन स्वातन्त्र्य नही, जनैक्य का वाहक रण/ यह अर्थ राजनीतिक न, सास्कृतिक सघर्षण/ युग – युग की खण्ड मनुजता दिशि–दिशि के जनगण/ मानवता मे मिल रहे–ऐतिहासिक यह क्षण"।[५०] यही नही वे कवि समुदाय को भी किसान से प्रेरणा लेने की बात करते है। अपनी कविता 'कवि किसान' मे वे लिखते है, "जोतो हे कवि, जिन प्रतिभा के/ फल से निष्ठुर मानव अन्तर/ चिर जीर्ण विगत की खाद डाल/ जन भूमि बनाओ सम सुन्दर"।[५१]

श्रमिको को भी पतजी ने अपने साहित्य मे सम्मानपूर्वक स्थान दिया है। अपनी कविता 'श्रमजीवी' मे वे लिखते है, "वह पवित्र है वह जग के कदर्म से पोषित/ वह निर्माता श्रेणिवर्ग धन, बल से शोषित"।[५२] इस तरह वे मजदूरो की स्थिति का चित्रण करते हुये यह भी बताते है कि उनकी दयनीय स्थिति एव शोषण का कारण व्यापारी वर्ग है। पत जी उसकी शक्ति से भी परिचित है और यह जानते है कि आने वाले युग मे उनकी निर्णायक भूमिका होगी, "वह सगठित करेगा भावी भव का शासन"।[५३] आगे वे लिखते है, "लोक क्रान्ति का अग्रदूत वर वीर जनादृत/ नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक शासित"।[५४] यही नही वे धनिको को क्रूर एव नृशस मानते है जिन्होंने किसानो एवं मजदूरो का शोषण करके अपने को अमीर बनाया है। 'धनपति' शीर्षक से अपनी कविता मे वे लिखते है, "वे नृशस हैं : वे जन के श्रमबल से पोषित/ दुहरे धनी जोक जग के, भू जिनसे शोषित/ नही जिन्हे करनी श्रम से जीविका उपार्जित/ नैतिकता से भी रहते जो अत अपरिचित"।[५५]

इस तरह पत जी किसानो एव मजदूरो की न केवल दयनीय दशा का चित्रण करते है वरन उसके उत्तरदायी धनिको, व्यापारियो की आलोचना भी करते है तथा उनमे व्याप्त असन्तोष और उसकी शक्ति को भी अपने साहित्य के द्वारा प्रचारित करते है। अत यशदेव के इस दृष्टिकोण से सहमत नही हुआ जा सकता कि, "पतजी कृषक वर्ग को केवल बौद्धिक सहानभूति ही दे सके क्योकि वे अपने वर्ग से असन्तुष्ट होकर कृषक वर्ग की ओर आये किन्तु अपने व्यक्ति को उस समष्टि का अग नही बना सके उन्होने उनकी समस्याओ को अपने (पूँजीवादी व्यक्तिवादी) वृत्त से खडे होकर देखा"।[५६] कोई भी लेखक किसी भी वर्ग से सिर्फ बौद्धिक सहानुभूति ही आमतौर पर रखता है, जरूरी नही कि वह उसके कर्म क्षेत्र से व्यावहारिक रूपसे जुडे। पत जी किसान एव मजदूरो से नितात निजी शैली से जुडते है यह आवश्यक नही है कि वह किसी का अनुकरण हो। उन्हे सभी पीडित दीन जन से सहानुभूति थी इसीलिए वे लिखते है, "जो दीन हीन पीडित निर्बल/ मै हूँ उसका सबल"।[५७]

**X X X X X**

समकालीन साम्प्रदायिक तनावो से अपने समकालीन साहित्यकर्मियो की अपेक्षा सुमित्रानन्दन पत कम ही दो चार होते है। फिर भी इस सन्दर्भ मे उन्होने कई स्थानो पर विचार प्रगट किये है। पन्त जी

धर्म की नियमबद्धता की आलोचना करते हुये लिखते है, "धर्म तत्व को उपलब्धि के लिए जिन नियम विधान की परिकल्पना की गयी है वह उसकी सिद्धि मे सहायक होने के बदले कालान्तर मे धर्म प्राप्ति मे बाधा ही उपस्थित करता है। इसी सिद्धान्तवादिता तथा विधिनियमवादिता के कारण धर्म अपने मूलगत अभिप्राय से च्युत होकर मानव एकता तथा लोक कल्याण की स्थापना करने के बदले पारस्परिक मतभेद, सघर्ष तथा साम्प्रदायिक युद्धो को जन्म देने लगता है"।[५८] अपनी कविता 'श्रद्धा के फूल' मे पत जी हिन्दू–मुस्लिम एकता की बात करते है, "जाति ऐक्य के ध्रुव प्रतीक, जग वद्य महात्मन / हिन्दू–मुस्लिम बढे तुम्हारे युगल चरण बन भावी कहती कानो मे भर गोपन मर्मर– / हिन्दु मुस्लिम नही रहेगे भारत के नर /मानव होगे वे, नव मानवता से मडित/.. जाति द्वेष से मुक्त मनुजता के प्रति जीवित/ विकसित होगे वे उच्चादर्शों से प्रेरित"।[५९] वे हिन्दू–मुस्लिम एकता को एक शक्ति के रूप मे भी देखते है, "हिन्दू मुस्लिम युगल बाहुबल"।[६०] 'नोआखाली के महात्मा जी के प्रति' शीर्षक कविता में वे महात्मा गॉधी के साम्प्रदायिक विद्वेष के लिये किये गये सकारात्मक कार्यों की प्रशसा करते है, "कौन खडे उन्नत दुर्धर झझा के सम्मुख? / स्वर्ग दूत से, जाति भेद हरने धरणी का दुख"।[६१] पंत जी विभिन्न धर्मों एव समुदायो मे खण्डित मानव समाज के समन्वय की बात करते है, "आज वृहत् सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित/ खण्ड मनुजता को युग–युग की होना है नव निर्मित/ विविध जाति, वर्गों धर्मो को होना सहज समन्वित/ मध्ययुगो की नैतिकता को मानवता मे विकसित"।[६२] वे अपनी 'खोज' शीर्षक से कविता मे समस्त भेद को समाप्त करने की बात कुछ इस तरह से करते है, "देश राष्ट्र के विविध भेद हर/ धर्म नीतियो मे समत्व भर/ रूढि रीति गत विश्वासो की/ अध यवनिका आज उठालो"।[६३] अपने नाटक 'ज्योत्सना' मे भी पत जी यह गीत उद्धृत करते है, "सब मानव – मानव है समान/ निज कौशल मति इच्छानुकूल/ सब कर्म निरत हो भेद भूल/ बन्धुत्व भाव ही विश्व मूल/ सब राष्ट्र के उपादान"।[६४] इस तरह पत जी समस्त भेद भाव चाहे वह धार्मिक हो या जातिगत या वर्गगत को भुलाकर समन्वय एव एकीकरण की बात अपने साहित्य के माध्यम से करते है।

**XXXXX**

पत जी का प्रिय काव्य सन्दर्भ प्रकृति है और प्रकृति को वे प्राय नारी सदर्भो से ही सयुक्त करके अपनी काव्य की रचना किये है। "प्रणय की थी वह प्रथम सुनहली रेखा ! / उषा का अवगुण्ठन पहने"।[६५] 'नारी रूप' शीर्षक कविता मे पत जी लिखते है, "तुम्हारे गुण है मेरे गान"।[६६] 'अवगुण्ठिता' शीर्षक से अपनी कविता मे वे स्त्री को शरीर मात्र मानने का विरोध करते है, "बँधकर हृदय मुक्त होते है/ बँधकर देह यातना सहती"।[६७] 'नारी' शीर्षक से रचित कविता मे भी वे कहते है, "सदाचार की सीमा उसके तन से निर्धारित / ... योनि नही रे नारी वह भी मानवी प्रतिष्ठित"।[६८] उसके बन्धन को वे

कारागार सदृश स्वीकारते हुए कहते है, "युग-युग की बन्दिनी, देह की कारा ने निज सीमित/ वह अदृश्य अस्पृश्य विश्व से गृह पशु सी जीवित"।[८९] वे स्त्रियो की मुक्ति के लिये पुरूष वर्ग का आह्वान करते है, "मुक्त करो नारी को मानव ! चिर वन्दिनी नारी को/ युग – युग की बर्बर कारा से जननि सखी प्यारी को/ छिन्न करो सब स्वर्ण पाश उसके कोमल तन मन के/ वे आभूषण नही दाम उसके बन्दी जीवन के"।[९०] नारी की महत्ता स्थापित करते हुए वे लिखते है, "नारी का तन माँ का तन है/ जातिवृद्धि के लिए विनिर्मित"।[९१] पत जी ग्रामीण नारी जगत के पारम्परिक बन्धन और उसके स्वरूप का भी चित्रण करते है। 'ग्रामवधू', 'ग्राम नारी' या 'ग्राम युवती' शीर्षक से रचित कविताओ मे ग्रामीण स्त्रियो का सजीव चित्रण है। इन कविताओ मे वे नारी के श्रम को भी प्रशसात्मक दृष्टि से देखते है। अपनी कविता 'मजदूरनी के प्रति' मे उसके श्रम की प्रशसा करते हुये लिखते है, "नारी की सज्ञा भुला, नरो के सग बैठ/ जो बटा रही तुम जग जीवन का काम काज/ तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज"।[९२] अपनी कहानी 'अवगुठन' मे नारी की परतत्रता को नारी द्वारा आत्मस्वीकृति मान लेने की बात करते हुए वे लिखते है, "हमारे समाज मे अबला स्त्री के चारो ओर जो सूक्ष्म स्पष्ट रेखाये खीचकर उसके लिए स्थान नियत कर दिया है, जो दृढ मर्यादा चिरकाल से बॉध दी गयी है, उसे हम जिस प्रकार दूर से देख सकते है हमारी नारी उस तरह अपने को अलग कर नही देख सकती वह शिक्षित हो अथवा अशिक्षित। उस सकीर्ण कारा मे रहते-रहते उसे अपनी सकीर्णता का अनुभव नही होता"।[९३] इसी कहानी मे नायक की प्रकृति को परिभाषित करते हुये पतजी कहते है, "मानव स्वभाव की दुरूहता के कारण ससार ने स्त्री पुरुष के बीच जो छोटी बडी रेखाये खीच दी है, सीमाए बाध दी है, उन पर विश्वास करना वह अपनी दुर्बलता समझता था"।[९४] ये०पे० चेलिशेव पत की नारी स्वतत्रता दृष्टिकोण के सन्दर्भ मे लिखते है, "नारी स्वतत्रता की समस्या पतजी द्वारा मुख्य रूप से सामाजिक स्तर पर नही नैतिक स्तर पर उठायी और हल की गयी है। कवि सबसे पहले पुरुष के सम्मुख नारी की दासता की जो सामाजिक नैतिकता मे मान्यता पा चुकी है, निन्दा करता है। वह मानता है कि नारी की स्वतत्रता पुरूष की उदार मनस्कता ही पर तो निर्भर है"।[९५]

**X X X X X**

राष्ट्रीय आन्दोलन मे बढती हुई जनसहभागिता को पतजी साम्राज्यवाद के लिये खतरा मानते है। वे कहते है, "अस्त आज साम्राज्यवाद धनपति वर्गों का शासन/ प्रस्तर युग की जीर्ण सभ्यता मरणासन्न समापन"।[९६] 'साम्राज्यवाद' शीर्षक से रचित कविता मे वे उन समस्त शक्तियो को पतनशील मानते है, जो जनशक्ति के अभ्युदय मे बाधक है, "मुखियो के कुलपति सामन्त महन्तो के वैभव क्षण/ बिला गये बहु राजतत्र-सागर मे ज्यो बुद-बुद कण/ रजत स्वप्न साम्राज्यवाद का ले नयनो मे शोभन/ पूँजीवाद

निशा भी है होने को आज समापन"।[७७] सम्पूर्ण राष्ट्र को जागृति करते हुये वे प्रतीकात्मक रूप से कहते है, "देश राष्ट्र लौह काष्ट/ श्रेणि वर्ग नरक स्वर्ग/ जाति पाति, वश ख्याति/धनी निधन, भूपति जन/ अभयकर नृत्य करो/ शिशिर-समीर क्षुब्ध अधीर/ ताण्डवगति नृत्य करो/ भूतल कृत कृत्य करो"।[७८]

'१९४०' शीर्षक से रचित कविता मे पत जी साम्राज्यवाद के विरूद्ध जन सघर्ष का वर्णन करते हुये लिखते है, "इधर अडा साम्राज्यवाद शत–शत विनाश के ले आयोजन/ उधर प्रतिक्रिया रूद्ध शक्तियाँ क्रुद्ध दे रही युद्ध निमन्त्रण/ सत्य न्याय के बाने पहने, सत्व लुब्ध लड रहे राष्ट्रगण/ ध्वश भ्रश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता के गढ जर्जर"।[७९] इस तरह पत जी साम्राज्यवाद के विरूद्ध अपनी कविता से सघर्ष करते है और यह स्थापित करते है कि साम्राज्यवाद अपनी शक्ति के बावजूद पतन द्वार पर खडा हुआ है। उनके समकालीन रामधारी सिह दिनकर कहते है, "साम्राज्यवाद बन्दिनी मानवता, दासता की श्रृखला, निर्दय शासन, जेल और यातनाए तथा शोषण और अनाचार ये समस्याये पहले से ही जीवन को औट रही थी किन्तु पन्त ने उनकी आवाज पहले पहल 'युगान्त' मे सुनी और उसके बाद 'युगवाणी' मे इन समस्याओ का निदान और समाधान का कार्य आरम्भ हुआ जो निरन्तर आगे बढता जा रहा है"।[८०]

XXXXX

भाषा के प्रश्न पर पत जी इस मत को स्थापित करते है कि भाषा राष्ट्र की अनिवार्य आवश्यकता है। वे कहते है, "अपने देश की जनता मे उसके विभिन्न वर्गों एव सम्प्रदायो मे एकता स्थापित करने के लिये तथा अपने राष्ट्रीय जीवन को सशक्त, सयुक्त एव सगठित बनाने के लिये हमे एक भाषा के माध्यम की नितान्त आवश्यकता है"।[८१] और वे इसके लिये हिन्दी को सर्वाधिक उपयुक्त मानते है, "अन्य प्रान्तीय भाषाओ की तुलना मे राशि (जनसख्या) तथा गुण (सरलता, सुबोधता आदि) की दृष्टि से भी हिन्दी का स्थान महत्वपूर्ण तथा प्रमुख है"।[८२]

इस तरह पतजी अपने साहित्य के माध्यम से समकालीन चुनौतियो का सामना करते हुए मार्ग दर्शन करते है। वे मानवतावाद के सस्थापक है जिसकी प्रेरणा उन्हे प्रकृति, गाँधीवाद, मार्क्सवाद, अरविन्द दर्शन आदि के उपादानो से मिली है। उनका साहित्य निरन्तर विकास का साहित्य था जो कभी रूढ नहीं हुआ बल्कि नवीन परिवर्तनो को आत्मसात करते हुये आगे बढा यद्यपि अपने समकालीन सभी प्रचलित विचारधाराओ पर उनकी निजी अर्न्तदृष्टि का अकुश अवश्य रहा। इसीलिए वे भारत छोडो आन्दोलन के समय एक नये सास्कृतिक सघर्ष की बात करते है जो साम्राज्यवादी दबाओ के कारण प्रतिफलित हुई थी यद्यपि युग की प्रतिकूलता ने उन्हे अनुकूल परिवेश न प्रदान किया, फिर भी वे अपने मूल्यो के साथ सघर्ष करते रहे। आरम्भिक रचनाओ में पत जी भले ही कल्पना की भूमि पर खडे रहे हो

पर बाद मे 'युगवाणी', 'ग्राम्या' तक आते–आते वे यथार्थवादी हो गये। जैसा कि उनकी समकालीन प्रसिद्ध साहित्यकर्मी महादेवी वर्मा लिखती है, "ग्राम्या 'युगवाणी' आदि मे उन्होने अपनी सद्य प्राप्त यथार्थ भूमि की सभावनाओ का स्वर चित्रित करने का प्रयत्न किया है"।[८३]

## महादेवी वर्मा :

"मैंने मीरा को नही देखा, लक्ष्मी बाई को नही देखा, ये दोनो इतिहास प्रसिद्ध देवियॉ जीवन के दो क्षेत्रो मे उच्चतम शिखर की अधिकारिणी है लेकिन महादेवी को देखकर और निकट से जानकर मुझे सदा ही मीरा और लक्ष्मी बाई के एक साथ दर्शन मिले है, अपने विशाल और परिष्कृत रूप मे।. मीरा की करूणा एव वेदना जितनी सीमित और व्यक्ति परक है महादेवी की उतनी विस्तृत और युग व्यापक तथा आज के अहिसा मान्य युग मे महादेवी का जीवन व्यापी विद्रोह, सन्तुलित राष्ट्रीयता तथा किसी भी स्थिति मे समझौता न करना आधुनिक सन्दर्भ मे लक्ष्मी बाई को भी पीछे छोड देता है"।[८४] महादेवी का जन्म संवत १९६४{१९०७ ई०} फर्रूखाबाद, उत्तर प्रदेश मे हुआ था।[८५] समकालीन परिवेश मे कन्या के जन्म के उपेक्षात्मक पहलू पर महादेवी टिप्पणी करते हुए लिखती है, "जैसे ही दबे स्वर से लक्ष्मी के आगमन का समाचार दिया गया वैसे ही घर के एक कोने से दूसरे कोने तक एक दरिद्र निराशा व्याप्त हो गयी। बडी बूढियॉ मूक सकेत से गाने वालियो को जाने को कह देती और बडे बूढे इशारे से नीरव बाजे वाले को विदा देते यदि ऐसे अतिथि का भार उठाना परिवार की शक्ति से बाहर होता तो उसे बैरग लौटा देने के उपाय भी सहज थे"।[८६] पर जैसा कि गगाप्रसाद पाण्डेय लिखते है, "सौभाग्य से इनका जन्म बडी प्रतीक्षा और मनौती के पश्चात हुआ। इनके बाबा ने इसे अपनी कुलदेवी दुर्गा का विशेष अनुग्रह समझा और आदर प्रदर्शित करने के लिए नाम रखा महादेवी"।[८७] उनके पारिवारिक परिवेश के बारे मे सन्तोष शर्मा टिप्पणी करती है, "माता–पिता कि पहली सतान होने के कारण उन्हे बालपन की वे सभी सुख–सुविधाए प्राप्त हुई जो किसी सभ्रान्त परिवार मे मिला करती है। पिता श्री गोविन्द नारायण वर्मा फर्रूखाबाद के प्रतिष्ठित और प्रबुद्ध व्यक्ति माने जाते थे। इससे पूर्व उन्होने डौली कालेज इन्दौर मे अध्यापन कार्य भी किया था। वे सुन्दर, सौम्य, विद्वान और हसमुख होने के साथ–साथ साहसी भी थे। इसके विपरीत उनकी माता श्रीमती हेमरानी देवी एक आस्तिक और भावप्रवण महिला थी। पति–पत्नी का स्वभाव एक नदी के दो समानान्तर किनारो का सा था जो अपने सब अन्तरालो के रहते भी एक समान बिन्दु पर ही विछलता था"।[८८] उनके नाम की महानता के बोझ के तले उनका बचपन जैसे दब सा गया। जैसा कि महादेवी वर्मा स्वय स्वीकार करती है, "नाम को उपयुक्त बनाने के लिए सब बचपन से ही मेरे मस्तिष्क मे इतनी विद्या बुद्धि भरने लगे कि मेरा अबोध मन विद्रोही हो उठा"।[८९] "नवे वर्ष मे इनका विवाह बरेली के नवाबगज कस्बे के एक युवक से किया गया। ससुराल पहुॅचकर इस बालिका वधू ने जो

उपद्रव मचाया उसे सुसराल वाले ही जानते है। न खाना, न पीना, न बोलना, न सुनना—केवल रोना, रोना बस रोना। ऑखे सूज गई, ज्वर आ गया और कैय का तॉता बॅध गया। फलत स्वसुर महोदय दूसरे दिन ही इन्हे वापस लौटा गये"।[60] विवाह के कारण खण्डित शिक्षा पुन प्रारम्भ हुई। इलाहाबाद के क्रास्थवेट कालेज से मिडिल की परीक्षा आपने प्रथम श्रेणी मे पास की और प्रान्त भर मे प्रथम स्थान पाने के कारण राजकीय छात्रवृत्ति भी प्राप्त की मिडिल दसवॉ ग्यारहवॉ दर्जा पास करते – करते कवि सम्मेलनो, वाद–विवाद प्रतियोगिताओ मे प्राप्त तमगो और पुरस्कारो से छात्रावास का कमरा भर गया। उस समय की प्रचलित प्रसिद्ध पत्रिकाओ मे कविताए प्रकाशित होने लगी। बी०ए० पास होते ही गौने का प्रश्न उपस्थित हुआ इस बार उन्होने साफ शब्दो मे दृढतापूर्वक किन्तु सहज भाव से जिज्जी को बता दिया कि वे विवाह को किसी भी स्थिति मे स्वीकार करने को तैयार नही"।[61] इस तरह उन्होने एकाकी जीवन जीने का निर्णय लिया और साहित्य एव समाज सेवा के क्षेत्र मे अपने सम्पूर्ण आगामी जीवन मे मानक कार्य किए। प्रयाग विश्वविद्यालय से सस्कृत से एम०ए० करने के पश्चात उन्होने अपनी रूचि के अनुकूल कार्य समझकर प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या का भार ग्रहण किया और 'चॉद' का नि शुल्क सपादन भी करने लगी। अब तक आपकी 'नीहार' और 'रश्मि' काव्य कृतियॉ प्रकाशित हो चुकी थी"[62] इसके बाद 'नीरजा' 'साध्य गीत', 'दीपशिखा', काव्य सग्रह प्रकाशित हुए। साथ ही नारी विषयक लेख 'श्रृखला की कडियॉ' के बाद 'अतीत के चलचित्र' 'पथ के साथी' आदि गद्य साहित्य का भी प्रकाशन हुआ जो अपने शिल्प, विषयवस्तु के रूप मे साहित्य एव समाज को एक अनूठा योगदान है।

महादेवी का काव्य पूरी तरह विरह वेदना से सयुक्त है भले ही ये वेदना उनकी निजी न हो जो हो भी सकती है {जैसा कि उल्लेखित है कि वे बौद्ध भिक्षुणी बनने जा रही थी}। इसी वेदना की अभिव्यक्ति के लिए वे अपनी प्रस्तुति रहस्यवादिनी जैसी कर लेती है जो पूरी तरह दार्शनिक तर्कजाल से सयुक्त प्रतीत होती है जो उनकी उच्च बौद्धिकता का प्रतीक है। वे अपने काव्य गीत मे सामाजिक एव राष्ट्रीय समस्याओ से कही भी सीधे सघर्ष नही कर पाती न ही उनका व्यौरेवार उल्लेख ही सभवत समकालीन समाज की नकारात्मक स्थिति {नारी शोषण एव पराधीनता एव श्रमिक वर्ग की उपेक्षा} उनके इस स्वरूप के लिए उत्तरदायी हो। यद्यपि उनके काव्य मे चेतना, प्रभात, उल्लास, पीडा आदि का जो वर्णन है प्रत्येक पाठक के मन को स्पन्दित और सकारात्मक स्थापनाओ के लिए प्रेरित करता है। उनके गद्य–पद्य की समीक्षा करते हुए ओकार शरद लिखते है, "महादेवी का काव्य जहॉ पाठक को पीडा लोक मे ले जाकर थपकियॉ देकर सुलाने का प्रयास करता है वही उनका गद्य मुर्दे मे कफन फाडकर उठ बैठने की शक्ति सचारित करता है"।[63] निश्चित रूप से उनका गद्य साहित्य सामाजिक चेतना के सन्दर्भ में एक नवीन उर्जा का सचार करता है वह भी पूरे साहित्यिक मर्यादा और सौष्ठव के साथ। महादेवी के

काव्य की युग सदर्भ के आधार पर समीक्षा करते हुए डा० भगीरथ मिश्र लिखते हैं, "महादेवी अपने काव्य मे युग के साथ कम है युगेतर के साथ अधिक हे जहॉ वह युग के साथ है, वहॉ भी सीधे सन्दर्भो को लेकर नही आध्यात्मिक प्रतीको, निवैयक्तिक निकायो को बीच मे डालकर है फल यह है कि उनका काव्य अनुभूति का स्फुरण न रहकर सार्वभौमिक और निवैयक्तिक अभिव्यजना बन गया है"।[६४] उनकी पीडा भी नये ढग की है, "पाने मे तुझको खोऊॅ/ खोने मे समझू पाना"।

**XXXXX**

महादेवी का साहित्य काफी अन्तर्मुखी ढग का होने के कारण उनको किसी विचारधारा के साथ सयुक्त करना एक सामान्य सी समस्या रही है। यद्यपि जब महादेवी १६२६ मे बौद्ध भिक्षुणी बनने जा रही थी उसी समय गॉधी से ताकुला {नैनीताल} मे सम्पर्क हुआ फलस्वरूप वे समाज सेवा की ओर उन्मुख हुई और १६३२ मे अपनी विदेश यात्रा स्थगित करके हिन्दी माध्यम से नारी शिक्षा के प्रचार प्रसार मे जुट गईं।[६५] निश्चित रूप से यह घटना सिद्ध करती है कि उन्होने गॉधीजी से प्रेरणा ली। यही नही उनका साहित्य कही भी क्रान्ति, हिसा आदि की वकालत नही करता अपितु सहयोग एवं सामजस्य की बात करता है। अपने लेख 'सामयिक समस्या' मे गॉधीवादी विचारधारा पर प्रशंसात्मक टिप्पणी करती है, "गॉधीवाद वाह्य दृष्टि से राष्ट्र का सयुक्त मोर्चा है और आन्तरिक दृष्टि से सस्कृति का पुनर्जागरण। इसी से किसी भी विचार का कलाकार एक न एक स्थल पर उसका समर्थक है किसी न किसी अश तक उससे प्रभावित है"।[६६] अपने इसी लेख मे महादेवी साम्यवाद को शका की दृष्टि से देखती है। वे कहती है, "साम्यवाद. की स्थिति ऐसी ही है जैसी पैराशूट से इस धरती पर उतर आने वाले विदेशी की हो सकती है। जिसकी मित्रता मे विश्वास करके भी हम जिसके इस देश सम्बन्धी ज्ञान मे सदेह करेगे जिसे अपनी सस्कृति और जीवन का मूल्य समझाने का प्रयत्न करेगे और न समझने पर खीझ उठेगें"।[६७]

महादेवी वर्मा को स्वदेशी वस्तुओ के प्रति लगाव भी है। अपने सस्मरण 'चीनी फेरीवाला' मे महादेवी उद्धृत करती हैं, "मै विदेशी – फारेन नही खरीदती"[६८] उनके सम्पूर्ण स्मृति मे अपने आस–पास के उपेक्षितो और श्रमजीवियो को सहानभूति एव सम्मानपूर्ण स्थान मिला है। विन्दा, बदलू, लछमा, भक्तिन उनके ऐसे पात्र है जो उनकी स्मृति और साहित्य दोनो मे स्थान बनाते है। रामा जो उनका नौकर था उसके बारे मे वे कहती है, "रामा आज भी सत्य है, सुन्दर है और स्मरणीय है"।[६९] इतना ही नही उनके साहित्य एव जीवन दोनो मे मानवेतर प्राणियो को भी खूब स्थान मिला है चाहे वह नीलकठ {मोर} हो, गिल्लू {गिलहरी} हो या सोना {बकरी}, दुर्मुख {खरगोश} हो, गौरा {गाय} या नीलू {कुत्ता}।

महादेवी वर्मा गॉधीजी के राष्ट्र के प्रति किए गये कार्यो का मूल्याकन करते हुए कहती हे, "गॉधीजी की अधिकाश शक्तियॉ और साधन विदेशी दासता से मुक्त करने मे लगे रहे परन्तु उनकी दूरदर्शिनी दृष्टि भारतीय जीवन मे व्याप्त विषमता की ओर ही रही गॉधीजी ने आत्मा को अहिसा मन्त्र से अभिषिक्त कर सत्य के उस अस्त्र को साधन बनाया जिसमे हार भी जय के समान गौरववती है"।[१००] अपनी कविता 'बापू को प्रणाम' मे गॉधीजी को नमन करते हुए महादेवी कहती है, "हे धरा के अमर सुत तुझको अशेष प्रणाम/ जीवन के अजस्र प्रणाम/ मानव के अनन्त प्रणाम"।[१०१] उपेक्षितो के प्रति अपनी सवेदना व्यक्त करते हुए 'दुविधा' शीर्षक से अपनी कविता मे महादेवी कहती है, "कहदे मॉ क्या अब देखूँ/ देखूँ खिलती कलियॉ या/ प्यासे सूखे अधरो को/ तेरी चिर यौवन सुषमा या/ जर्जर जीवन देखूँ"।[१०२]

XXXXX

रामस्वरूप चतुर्वेदी का कहना है कि प्रणयगीतो के मध्य मे राष्ट्रीय चेतना की ध्वनि छायावाद की विशेषता रही है। साम्राज्यवादी आक्रमण को प्रतीकात्मक रूप से चित्रित करते हुए महादेवी कहती है, "इन ललचाई पलको पर/ पहरा जब था व्रीणा का/ साम्राज्य मुझे दे डाला/ उस चितवन ने पीडा का"।[१०३] यही नही उसके पतन के लिये वे एक बूँद ऑसू को भी पर्याप्त मानती है, "इस एक बूँद ऑसू मे/ चाहे साम्राज्य बहा दो"।[१०४] यही नही महादेवी सम्पूर्ण जन को अनवरत सघर्ष के लिये प्रेरित भी करती है, "वे मुस्काते फूल नही/ जिनको आता है मुरझाना/ वे तारो के दीप नही/ जिनको आता है बुझ जाना"।[१०५] साम्राज्यवादी आघातो के बाद भी जन को सघर्ष के लिए प्रेरित करती है, "इन उत्ताल तरगो पर सह/ झंझा के आघात /जलना ही रहस्य है, बुझना/ है नैसर्गिक बात"।[१०६] साम्राज्यवादी आतक के खिलाफ महादेवी नेतृत्व का आह्वान करती हुई कहती है, "गरजता सागर बारम्बार/ कौन पहुँचा देगा उस पार?/ हाथ से छूट गई पतवार/ कौन पहुँचा देगा उस पार"।[१०७] निश्चित रूप से महादेवी की अन्तर्मुखिता उनके काव्य मे सर्वव्यापक है और सामान्यत नारी प्रश्नो के अलावा गद्य साहित्य मे उनकी मुखरता बहुत कम बिन्दुओ पर हुई है । उनकी इस अन्तर्मुखिता मे भी सूक्ष्मता से अन्वेषण करने पर चेतना की अनुगूँजे सुनाई पडती है और समग्र पीडा से मुक्ति के लिए आह्वान भी।

हमे उनके साहित्य सन्दर्भो का मूल्याकन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि समकालीन समाज मे एकाकी जीवन जीने का सकल्प जैसे विद्रोहात्मक कदम उठाने वाली, उच्च शिक्षा सम्पन्न, समाज सेविका और निहायत सवेदनशील व्यक्तित्व राष्ट्रीय समस्याओ से अपने को विमुख नही कर सकता, फलत- हमे उनके साहित्यिक सदर्भो का सूक्ष्मतर विश्लेषण करना चाहिए। उपेक्षितो के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए महादेवी कहती हैं, "अपने सुशिक्षित सुसस्कृत विद्यार्थियो से साहित्यालोचन करके

मुझे प्रसन्नता होती है परन्तु अपने मलिन दुर्बल जिज्ञासुओ को वर्णमाला पढाने मे मुझे कम सुख नही मिलता। जहाँ तक मेरा प्रश्न है मैने उस उपेक्षित ससार मे बहुत कुछ भव्य पाया है अन्यथा सभ्य समाज से इतनी दूरी असह्य हो जाती"।[१०८] यही नही साहित्य की भाषा से ही उनकी समस्या का समाधान नही होने वाला है उसके लिए उनसे व्यक्ति के रूप मे जुडने की बात महादेवी कहती है "एक बहुत बडे मानव समूह को हमने ऐसी दुर्दशा मे रख छोडा है जहाँ साहित्य का प्रवेश कल्पना की वस्तु है। वह समाज हृदय की बात समझता है पर व्यक्ति के माध्यम से। ऐसे समाज मे काव्य पहुँचाने से अधिक महत्व का प्रश्न मनुष्य पहुचाना है जो अपनी सहज सवेदना से उनके हृदय तक पहुँचकर बुद्धि की खोज खबर ले सके"।[१०९]

महादेवी अपनी राष्ट्रप्रियता एव जनप्रियता को विज्ञापित करने मे विश्वास न करके साम्राज्यवादी श्रृखला को खण्डित करने मे या खण्डित करने वालो का सहयोग करने मे हमेशा अग्रसर रहती थी। १९४२ के विप्लवियो के गुप्त सहयोग के प्रति साम्राज्यवादी शक्तियों के भय की बात जब उनके समकालीन शुभचितको ने उनसे की तो उन्होने उत्तर दिया, "यह सब तो मै जानती हूँ पर विश्वास और आशा से आये देश प्रेमी विद्रोही को सहानुभूति और सरक्षण देने से इकार भी तो नही किया जा सकता। इस समय देश को बहुत बडे बलिदान और त्याग की आवश्यकता है। पुलिसवाले हमे जीवित तो पकड नही सकते और यथाशक्ति काम तो करना ही है। राक्षसी परपीडन का भय हमको नही है क्योकि हम जौहरव्रत के सच्चे उत्तराधिकारी है"।[११०]

**X X X X X**

महादेवी वर्मा अपने निबन्ध श्रृखला 'श्रृखला की कडियाँ' मे नारी समस्या के विविध पहलुओं का न सिर्फ उद्‌घाटन करती है वरन उनकी मुक्ति के लिए रास्ता भी दिखाती है। एक तरह से यह समकालीन नारी आन्दोलन के लिए एक सजातीय एव सवेदशील व्यक्ति द्वारा लिखी गयी गीता है। जैसा कि ओकार शरद स्वीकार करते है, "जब उनकी गद्य कृति 'श्रृखला की कडियाँ' का प्रकाशन हुआ था तब भारत देश परतत्र था। भारत की नारी परतत्र थी, एक सामाजिक क्रान्ति हो रही थी। महादेवी की प्रगतिशील सामाजिक चेतना भी इस क्रान्ति से ओत प्रोत थी। समाज की समस्त करूणा और वेदना की अधिकारिणी भारतीय नारी के स्वर को महादेवी ने अपने लेखो के द्वारा समस्त लोगो तक पहुँचाया। नारी मे उसके अधिकारो और शक्ति कि चेतना जगाई और लिखा कि, "लौह श्रृखलाए उसकी गरिमा से गलकर मोम बन जाएँ"। महादेवी स्त्रियो की मुक्ति मे पुरूष एव प्रबुद्ध वर्गों का सहयोग अनिवार्य मानती है क्योकि उनकी अवस्था समकालीन समाज मे इतनी श्रृंखलाबद्ध, जर्जर एव शोषित है कि वे स्वय अपना विकास नही कर सकती। जैसा वे कहती हैं, "आज विवश पशु के समान इन्हे हॉक ले जाना इसलिए

हज है कि ये पशुओ की श्रेणी मे बैठा दी गई है"।[111] यही नही महादेवी नारी विकास के लिए विस्तृत ाधीनता की आवश्यकता पर बल देती है, "उसे अपने गुरूत्तम उत्तरदायित्व के अनुरूप मानसिक तथा ारीरिक विकास के लिए विस्तृत स्वाधीनता चाहिये कारण सकीर्णता मे उसके जीवन का वैसा र्वतोन्मुखी विकास सभव ही नही जैसा किसी समाज की स्वस्थ व्यवस्था के लिए अनिवार्य है"।[112] नारी मस्या के आर्थिक तत्व का विश्लेषण करते हुए महादेवी कहती हैं, "सम्पत्ति के स्वामित्व से वचित सख्य स्त्रियो के सुनहले भविष्यमय जीवन कीटाणुओ से भी तुच्छ माने जाते देख कौन सहृदय रो न गा? यदि उन्हे अर्थ सम्बन्धी सुविधाए प्राप्त हो सके जो पुरूषो को मिलती आ रही है तो न उनका ोवन उनके निष्ठुर कुटुम्बियो के लिए भार बन सकेगा और न वे गलित अग के समान समाज से ाकालकर फेकी जा सकेगी प्रत्युत वे अपने शून्य क्षणो को देश के सामाजिक तथा राजनीतिक उत्कर्ष : प्रयत्नो से भरकर सुखी रह सकेगी"।[113]

महादेवी वर्मा स्त्रियो के विकास के लिए उन्हे शासन मे उचित प्रतिनिधित्व की भी वकालत रती है, "शासन व्यवस्था मे उन्हे स्थान न मिलने से नागरिक समाज प्रतिनिधिहीन रह जाएगा कारण पने स्वत्वो के रूप मे तथा आवश्यकताओ से जितनी स्त्रियॉ परिचित हो सकती है उतने पुरूष नही रन्तु स्थान मिलने का अर्थ यह नही है कि उन्हे केवल पुरूष परिषदो को अलकृत करने के लिए रखा ाय। वास्तव मे उनका पर्याप्त सख्या मे रहकर अपने अन्य बहिनो के हित – अनहित विषयक अस्पष्ट चारो को स्पष्ट करना और उन्हे क्रियात्मक रूप देना ही समाज के लिए हितकर सिद्ध होगा"।[114] हादेवी श्रमजीवी स्त्रीवर्ग को आम स्त्री से अधिक समस्याग्रस्त मानती है। "श्रमजीवी श्रेणियो के स्त्रियो ' विषय मे कुछ विचार करना भी मन को खिन्नता से भर देता है। उन्हे गृह का कार्य और सतान का लन करके भी बाहर कामो में पति का हाथ बटाना पडता है. मिलो कारखानो आदि मे काम करने ली स्त्रियो की दुर्दशा तो प्रगट ही है कृषक तथा अन्य श्रमजीवी स्त्रिया की इतनी अधिक सख्या है 5 बिना उनकी जागृति के हमारी जागृति अपूर्ण रहेगी "।[115] यही नही नारी आन्दोलन को अतिरेक के ार पर जाने की वे पक्षधर नही है, "स्वय अपनी इच्छा से स्वीकृत युगदीर्घ बन्धनो को काट देने के ाए हमे ससार भर की अनुमति लेने का न अवकाश है न आवश्यकता परन्तु इतना ध्यान रखना चाहिए 5 बेडियो के साथ उसी अस्त्र से बन्दी यदि पैर भी काट डालेगा तो उसकी मुक्ति की आशा दुराशा ात्र रह जाएगी"।[116] नारी स्वतत्रता और विकास की दिशा तय करते हुए महादेवी कहती है, "स्त्री न घर ा अलकार मात्र बनकर जीवित रहना चाहती है न देवता की मूर्ति बनकर प्राण प्रतिष्ठा । आज उसने ोवन के क्षेत्र मे पुरूष को चुनौती देकर अपनी शक्ति की परीक्षा देने का प्रण किया है और उसी मे त्तीर्ण होने को अपने जीवन की चरम सफलता समझती है"।[117] महादेवी के नारी स्वतत्रता विषयक

वेचार अपनी युगसीमा का अधिक अतिक्रमण नही कर पाते और उनमे उन्होने उन पारम्परिक गुणो के ग़ेने की आवश्यकता पर बल दिया है और प्रशसा की है जो कही न कही इस निष्ठुर और जड समाज ा उनके बन्धन का कारण बनते है। वे कहती है, "स्त्री मे मॉ का ही रूप सत्य, वात्सल्य ही शिव और ामता ही सुन्दर है"।[११८]

निश्चित रूप से युग – युग से पददलित, शोषित एव उपेक्षित श्रृखलाबद्ध स्त्रियो मे नवीन उर्जा े सचार के लिए महादेवी के विचार काफी महत्व रखते है। इस दुरावस्था से निकालने के लिए पुरूषो ौर प्रबुद्धजनो के सहयोग की अनिवार्यता की स्थापना निश्चित रूप से आवश्यक प्रतीत होता है। शोषक ग शोषित के साथ यह सम्बन्ध स्थापित करके वे निश्चित रूप से गॉधीवाद के 'ट्रस्टीशिप सिद्धान्त' की कालत कर रही होती है जिसमे वे नारी–पुरूष सघर्ष न चाहकर सहयोग का आह्वान करती है, "समाज ो किसी न किसी दिन स्त्री असन्तोष को सहानभूति के साथ समझकर उसे ऐसा उत्तर देना होगा जसे पाकर वह अपने आपको उपेक्षित न माने"।[११९] उनके इस सहयोग और उनमे कोमल गुणो के होने ी अनिवार्यता को रामचन्द्र तिवारी उनकी सामजस्य दृष्टि मानते है, उनके नारी विषयक निबन्धो की ामीक्षा करते हुए वे लिखते है, "श्रृखला की कडियॉ' के निबन्ध मे महादेवी की भारतीय नारी के प्रति ापार सहानुभूति उस समाजिक व्यवस्था के प्रति क्षोभ और आक्रोश के रूप मे व्यक्त हुई है जो नारी के ामूचे व्यक्तित्व को निष्प्राण और जड बनाने मे ही अपनी सार्थकता अनुभव करती आई है। इन निबन्धो भी महादेवी ने अपनी सामजस्यवादी दृष्टि का परित्याग नही किया है उन्होने जहॉ भारतीय नारी को ृखला की कडियो को काट फेकने के लिए उद्‌बुद्ध किया है वहीं उसे यह भी समझाया है कि वह रूषो के सहयोग से ही आगे बढ सकती है। वह पुरूष की प्रतिद्वन्दिनी नही सहयोगिनी है"।[१२०] इस दर्भ मे इलाचन्द्र जोशी का मत है कि "श्रृखला की कडियॉ एक–एक करके गिनाकर उन्होने भारतीय ारी को अपनी दयनीय दासता और अवमानना की स्थिति से ऊपर उठने की प्रेरणा दी और आत्मरत रूष समाज को ललकारा कि नारी को कठघरे मे बन्द रखने के अपने तथाकथित अधिकार को सिद्ध रे"।[१२१]

X X X X X

भाषा के प्रश्न पर महादेवी अपनी स्पष्ट राय रखती है। वे हिन्दी भाषा की शक्ति से परिचित है सीलिए वे कहती है, "हिन्दी अपनी भविष्य किसी से दान मे नही चाहती वह तो उसकी गति का ाभाविक परिणाम होना चाहिए, जिस नियम से नदी की गति रोकने के लिए शिला नही बन सकती सी नियम से हिन्दी भी किसी सहयोगिनी का पथ अवरूद्ध नही कर सकती"।[१२२] पराजय की स्थिति ने न्दी भाषा के रगमचीय एव नाट्य विकास को कैसे अवरूद्ध किया है इस पर टिप्पणी करते हुए

महादेवी कहती है, "देश के अन्य भागो की अपेक्षा पहले हिन्दी का क्षेत्र सघर्ष का केन्द्र बना और इस सघर्ष की समाप्ति पराजय मे होने के उपरान्त परिस्थितियॉ इतनी बदल गईं कि साहित्य के नाटक जैसे प्रकार का विकास कठिन हो गया, फिर रगमच की स्थिति और दूर की कल्पना कही जाएगी"।[123] यही नही महादेवी पराधीनता के समानान्तर उत्पन्न चेतना को गद्य साहित्य के विकास के लिए उत्तरदायी मानती है, "दीर्घ पराधीनता के विरोध मे जाग्रत राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक रूढिग्रस्तता के विद्रोह से उत्पन्न सुधार आन्दोलनो ने हिन्दी और मराठी दोनो के गद्य को प्रगतिशील बनाया है"।[124]

महादेवी वर्मा समकालीन शैक्षिक व्यवस्था से सन्तुष्ट नही थी। उसपर आक्षेप करते हुए वे कहती है, "जैसे टकसाल से एक प्रकार के सिक्के ढलते है उसी प्रकार हमारे शिक्षागृहो से एक ही प्रकार के लक्ष्यहीन, हताश पर कल्पनाजीवी विद्यार्थी निकलते रहते है"।[125] इस तरह महादेवी शैक्षिक एकतत्रता को खण्डित करते हुए उसकी विविधता और बहुमुखिता की वकालत करती है। यही नही शैक्षिक परिवेश के व्यावसायीकरण और सकीर्णता की आलोचना करते हुए उससे मुक्ति की भी बात महादेवी करती है, "पर आज अन्य क्षेत्रो मे तटस्थ और सम्मानित क्षेत्रो मे काम करने वाले यदि अपनी व्यावसायिक बुद्धि और सकीर्ण दृष्टि को बदल सकते तो एक नई पीढी के भविष्य की रेखाऍं स्पष्ट और उज्जवल हो उठती"।[126] महादेवी वर्मा पाश्चात्य सस्कृति की अपने सस्कृति से तटस्थ होने के कारण उपजे द्वैध की व्याख्या करते हुए कहती है, "पाश्चात्य सस्कृति शासक सस्कृति होने के कारण अन्य सस्कृतियो के समान हमारी सस्कृति मे विलीन नही होना चाहती, अन्यथा इससे हमारे विकास मे कोई विशेष बाधा न पहुँचती। वर्तमान परिस्थितियो ने हमारे शिथिल समाज के भीतर एक ऐसे समाज का निर्माण कर दिया है जिसकी आत्मा भारतीय और शरीर अभारतीय जान पडता है। इसे न हम साथ ले चल सकते है और न छोड सकते है। वह पश्चिमी विचारधारा मे बहकर भी उससे शासित नही होता और भारतीयता मे जीवित रहकर भी उससे प्रभावित नही होता"।[127]

**X X X X X**

इस तरह महादेवी वर्मा का सम्पूर्ण साहित्यिक एव व्यावहारिक जीवन अपने परिवेश से अपने युग और निजी व्यक्तित्व की सीमा के बावजूद अपनी निजी शैली से सामजस्य बैठाता हुआ समाज को प्रगति के रास्ते पर लाने की कोशिश करता रहा। उन्हे जहॉ उपेक्षितो और पीडितो से सहानुभूति थी वही अपनी साहित्यिक एव व्यावहारिक गतिविधियो से उस धुध को छॉटने मे लगी रही जिसमे उनकी स्थिति ओझल हो गई थी। यही नही वे यह भी जानती थी कि सिर्फ बौद्धिक व्यायाम उनको स्वस्थ नही बना सकता। उसके लिए शारीरिक व्यायाम की भी आवश्यकता है क्योकि उन तक उसी के माध्यम से पहुँचा जा सकता है। साथ ही उन लोगो के दृष्टिकोण से पूर्ण सहमत नही हुआ जा सकता जो उनके सम्पूर्ण

ाव्य पर अपने अराध्य प्रियतम का विभिन्न दृष्टिकोण से चित्रण स्वीकार करते है। जैसा कि पालीवाल ीकार करते है, "महादेवी के सम्पूर्ण काव्य का साध्य है चिरतन प्रियतम, यह चिरतन प्रियतम ही ह्रदय ो कोमल भावनाओ के माध्यम से कलात्मक रूप से अवतीर्ण हुआ है"।[१२८] उनके साहित्य मे हमे चेतना भी बीज मिलते है यद्यपि वे प्रणय सुख और पीडा के बीच से निकलते है यही उनकी निजी शैली है द्यपि वे गद्य विधा मे अधिक मुखर होती है। जैसा कि महादेवी स्वय स्वीकार करती है, "उनकी विताओ मे चाहे नवीन प्रभाव के वैतालिको का स्वर न हो परन्तु उनकी यह दीप शिक्षा की लौ रात की घनता को नष्ट करने मे अवश्य समर्थ है"।[१२९] महादेवी की अर्न्तमुखिता, रहस्यवादिता, दार्शनिकता नकी निजी शैलियॉ है। समकालीन सामाजिक दबावो एव साम्राज्यवाद के आतक तथा उनकी उच्च द्धिकता के सगम ने सभवतः उनके साहित्यिक स्वरूप को यह रूप दिया हो क्योकि उसी परिवेश मे राला जैसे उद्भट पुरूष सघर्ष करते—करते टूट जाते है, प्रसाद समकालीनता से पलायन करके उसका तीत के माध्यम से समाधान ढूढते है तो महादेवी के इस स्वरूप पर हमे आश्चर्य नही करना चाहिए योकि वे कहती है, "आलोक यहॉ लुटता है/ बुझ जाते है तारागण/ अविराम जला करता है/ पर ा दीपक सा मन"।[१३०] महादेवी का मूल्याकन करते हुए परमानन्द श्रीवास्तव लिखते है, "महादेवी मे नसाधारण के प्रति बौद्धिक सहानभूति ही नही है, उन्हे पीडित जनता से हार्दिक सहानभूति है और क्रियरूप से नारी स्वाधीनता और जनसाधारण की स्वाधीनता के आन्दोलन के साथ आगे बढती है"।[१३१] नके गीत जन सघर्ष की भी प्रेरणा देते है, "टकरायेगा नही आज उद्धत लहरो से/ कौन ज्वार फिर झे पार तक पहुँचाएगा"।[१३२] या "आज अलस बन्दी युगो का/ ले उडेगा शिक्षिल कारा"।[१३३]

## ।खनल ल चतुर्वेदी :

"मुझे तोड लेना वनमाली!/ उस पथ मे देना तुम फेक!/ मातृभूमि पर शीश चढाने/ जिस पथ ावे वीर अनेक"[१३४] 'पुष्प की अभिलाषा' शीर्षक से रचित इस गीत के रचनाकार न केवल अपने ाहित्यिक गतिविधियो से वरन अपनी व्यावहारिक रणनीतियो से राष्ट्र को सच्ची सेवा अर्पित की। उनका ड व्यापक अर्थो वाला गीत समस्त हिन्दी प्रदेश मे लोकप्रियता के शिखर पर पहूँच गया था। इसके चयिता श्री माखन लाल चतुर्वेदी का जन्म १२ अप्रैल सन् १८८६ को श्रीमती सुन्दर बाई के गर्भ से आ। श्रीकान्त जोशी चतुर्वेदी जी के खानदान के बारे मे लिखते है, "चतुर्वेदी जी का खानदान जितना अपनी विद्या के लिए प्रसिद्ध रहा उतना ही अपनी दृढता और लडाई झगडे के लिए प्रसिद्ध रहा। इस रेवार के लोगो से जमीदार भी पनाह मॉगते थे और पुलिस के प्रजादलन मार्ग मे रूकावट होती रहती ।"।[१३५] कम उम्र मे ही इनका विवाह हुआ और जल्द ही इनका प्रणय खण्डित हुआ जैसा कि चतुर्वेदी ीकार करते है, "मेरे विवाह के समय मेरा चौदहवॉ वर्ष समाप्त हो रहा था और मेरी पत्नी नवे वर्ष मे

ागी थी" ।[१३६] १६१४ मे अल्पायु मे ही कवि पत्नी का स्वर्गवास हो गया जिससे कवि को गहरा आघात हुँचा और वह हृदय की धडकन से पीडित हो गया और यह रोग उसका जीवन सगी बन बैठा" ।[१३७] ाकिन इसके पूर्व काफी पहले वे साहित्य रचना से जुड गये थे जैसा कि स्वय चतुर्वेदी स्वीकार करते है, यह कहना कठिन है कि कौन सी रचना मैने पहले लिखी किन्तु वैष्णव पदो की तरह जब कोई पद मै ‍लखता तब मेरी बुआ मुझे प्रोत्साहन देती। यो मेरे काकाजी तथा पिताजी ने कुछ पद मुझे छुटपन से ही टा दिए थे" ।[१३८] इस तरह उनका पारिवारिक परिवेश वैष्णवी रहा। उनकी रचनाओ पर उनका प्राकृतिक रिवेश और रूझान भी कम प्रभावी नही रहा। श्रीकान्त जोशी लिखते है, "इन गीतो की बुनावट मे ध्याचल, सतपुडा और नर्मदा की छाया मे फैले हुए होशगाबाद, बाबई, शिवनी, हरदा, छिदगॉव और सगॉव आदि तक के सम्पूर्ण भूभाग के प्राकृतिक सौन्दर्य का अपना हिस्सा रहा है" ।[१३९] जैसा कि स्वय तुर्वेदी स्वीकार करते है, "इस तरह जगल नदी, पहाड, चढाव उतार, बोगदे, लडाई – झगडे ये मेरे ीवन के बहुत नजदीक रहे है और एक आधी जिदगी का मेरा इनका सम्बन्ध तथा प्रभाव। दूसरी आधी ादगी मे न तो टूट पाया न कम हो पाया" ।[१४०] उनके परिवार की आर्थिक स्थिति की चर्चा करते हुए ोकान्त जोशी कहते है, "चतुर्वेदी जी के परिवार मे गरीबी बहुत थी, स्वाभिमान भी गरीबी के टक्कर का ा अत उन्हे एक बेहद कठिन जिदगी जीनी पडी, वे चाहकर भी अधिक न पढ सके और मात्र १६–१७ ो वय मे अध्यापक बन गये। १९०५ मे माखन लाल जी को नार्मल ट्रेनिग लेने के लिए जबलपुर जाना डा। जबलपुर प्रवास के दौरान वे कुछ बगाली क्रान्तिकारियो के सम्पर्क मे आये" ।[१४१] अब से १९२१ तक ब वे गॉधीजी के प्रभाव मे आये क्रान्तिकारी गतिविधियो मे ही सक्रिय रहे।

क्रान्तिकारी सगठनो से अलग होकर गॉधीवादी खेमे मे जाकर चतुर्वेदीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे पनी साहित्यिक एव व्यावहारिक सेवाएँ दी। "कवि माखनलालजी का कहना था यदि माधवराव सप्रे मेरे ाहित्यिक गुरू है तो महात्मा गॉधी मेरे राजनीतिक गुरू। यही कारण है कि चतुर्वेदी जी 'कर्मवीर' ाहित्यिक पत्र के माध्यम से कर्मवीर गॉधीजी के विचारो को वाणी प्रदान कर जन–जन तक पहुँचाते ़े" ।[१४२] उनका पूरा जीवन सक्रियता मे ही बीता और अपने इसी व्यक्तित्व के कारण वे अनेको बार जेल ो यात्राए की जैसा कि डा० कृष्णदेव शर्मा उद्धृत करते है, "काग्रेस मे रहते हुए चतुर्वेदी जी तीन वार ल गये किन्तु इससे पूर्व क्रान्तिकारी दल मे रहते हुए नौ बार जेल गये थे। इस प्रकार चतुर्वेदी जी ल १२ बार जेल गये और ६३ बार उनकी तलाशियॉ ली गई" ।[१४३] सिर्फ साहित्य रचना उन्हे कभी पसन्द ही आया जैसा कि वे स्वय कहते थे, "जीवन का काम साहित्य बनाना और गा बजाकर जिदगी बिताना झे कभी स्वीकार नही था" ।[१४४] चतुर्वेदी जी ने खण्डवा से 'प्रभा' पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया, "प्रभा ा प्रथम अक ७ अप्रैल १९१३ को निकला" ।[१४५] लेकिन घाटे की वजह से उसे बन्द कर दिया गया "उन

दिनो मासिक पत्रो की बिक्री प्राय अधिक नही होती थी, इसलिए २ वर्षों का कठोर घाटा सहा नही गया और 'प्रभा' का प्रकाशन दूसरे वर्ष के १२ अको को निकालकर बन्द कर दिया गया''।[१४६] जीवन के आरम्भिक चरण मे उनका सम्बन्ध तिलक, गणेश शकर विद्यार्थी, मैथिलीशरण गुप्त आदि से हो गया था। श्रीकान्त जोशी उनके अध्ययन परिवेश की चर्चा करते हुए उद्धृत करते है, ''२५–२६ वर्ष की अवस्था तक माखनलाल जी ने स्वामी रामतीर्थ, स्वामी विवेकानन्द, रामकृष्ण परमहस का गभीर अध्ययन कर लिया था। सस्कृत साहित्य का वह अभ्यास करते ही रहते थे इसलिए उनका मौलिक चितन जनहिताय का विवेक पा सका। वैष्णवाद जैसे रूढ किन्तु युग पुरातन रस से सरोबार विषय को वे निर्माण और विद्रोह की भाषा मे सोचने का अधिकार पा गये थे''।[१४७] इस तरह माखनलाल चतुर्वेदी का जीवन परिवेश प्रकृति के गोद मे टेढे मेढे रास्तो मे झूलता हुआ आगे बढा। १९२१ के पूर्व उनका रूझान क्रान्तिकारी विचारो की ओर रहा पर १९२१ के बाद वे गॉधीवादी सिद्धान्तो एव आन्दोलन के प्रचारक एव प्रसारक हो गये। उनकी सक्रियता ने उन्हे कई बार सकट मे डाल दिया पर इससे उन्होने निष्क्रियता का पाठ नही पढा। वे केवल साहित्य के ही नही वरन राजनीति के भी पहुँचे और मजे हुए खिलाडी बने रहे।

**XXXXX**

माखन लाल चतुर्वेदी ने अपनी उम्र की परिपक्वता और गॉधीजी से सम्पर्क के फलस्वरूप क्रान्तिकारी सगठनो से अपने को अलग कर लिया पर यह बीज जो उनमे पड चुका था उन्हे गॉधीवादी खेमे मे रहते हुए भी क्रान्तिकारी विचारो से एक दम अलग न कर सका, उसके प्रति उनके मन मे सहानुभूति बनी रही। गॉधीवादी आन्दोलन जब तमाम सयम पाठ के बावजूद साम्राज्यवादी दमन के कारण उग्र रूप लेता तो माखनलाल चतुर्वेदी उसमे सहयोग करते थे। क्रान्तिकारी सगठनो से अलग होकर गॉधीवादी खेमे मे आने की घटना का वर्णन करते हुए डा० कृष्णदेव शर्मा उद्धृत करते है, ''लखनऊ मे काग्रेस के चौथे दिन पश्चात गॉधीजी कानपुर पधारे और गणेशशकर विद्यार्थी के यहॉ 'प्रताप' प्रेस मे ठहरे। यही चतुर्वेदीजी का गॉधीजी से प्रथम बार परिचय हुआ जो उत्तरोत्तर बढता गया और अभिन्नता मे बदल गया। सन् १९२१ मे काशी विश्वविद्यालय मे गॉधीजी ने अभिभाषण दिया था जिसमे उन्होने कहा था तुम मुझे पिस्तौल दो मै तुम्हे स्वराज दूँगा। उस समय माखनलालजी गॉधीजी के व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने पिस्तौल का सर्मपण कर दिया तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त चतुर्वेदी जी गॉधीजी की नीति का पूर्णतया पालन किया''।[१४८] 'अदालत मे सत्याग्रह कैदी के नाते बयान' शीर्षक से चतुर्वेदी अपनी कविता मे लिखते है, ''सब मतवाले कहे भले ही मै जड जीव निराला हूँ/ मै तेरे पिजडे का कैदी असहयोग मतवाला हूँ/ हिसा और घृणा दोनो ही है मेरे मजहब से पाप/ अत्याचारी का बध कर दे यह पशुता दरकार नही/ . बाकी एक उपाय बचा था जिसकी की गॉधी ने

याद/ शीघ्र अहिसक असहयोग से मातृभूमि होवे आजाद/ शान्तिपूर्ण आन्दोलन करने का बल आवे आर्यों मे''।[१४९] 'युग और तुम' शीर्षक से रचित कविता मे चतुर्वेदी जी लिखते है, ''तुम कहते हो बलि से पहले अपना हृदय टटोलो/ तेरी अगुली हिली हिलपडा भवोन्मत्त जमाना/ अमर शान्ति ने अमर क्रान्ति ने अवतार तुझे पहचाना/ तू कपास के तार–तार मे अपनापन जब बोता/ राष्ट्र हृदय के तार–तार पर वह प्रतिबिम्बित होता/ झोपडियो का रूदन बदल देता तू मुसकाहट मे/ करती है श्रृगार क्रान्ति तेरी इस उलट पलट मे/. अरे गरीब नवाज, दलित जी उठे सहारा पाया/ है तेरा विश्वास गरीबो का धन, अमर कहानी/तो है तेरा स्वॉस क्रान्ति की प्रलय प्रहर मस्तानी/ कठ भले हो कोटि – कोटि, तेरा स्वर उनमे गूँजा/ हथकडियो को पहन राष्ट्र ने पढी क्रान्ति की पूजा।[१५०] यही नही चतुर्वेदी जी अपनी कहानी 'शान्ति तथा क्रान्ति' मे भी गॉधीवादी मूल्यो मे और सघर्ष तरीको मे आस्था दिखाते है। कहानी का पात्र रामदेव गॉधीवादी आन्दोलन का प्रतीक है, ''मजिस्ट्रेट ने रामदेव से पूछा – 'क्या तुमने विदेशी वस्त्र व्यवसायियो के दुकानो पर धरना दिया था', 'जी हॉ', 'इसलिए कि मेरा देश विदेशी वस्त्र खरीदकर निर्धन होता जा रहा है आज उसकी अत्यन्त शोचनीय दशा है'। . 'क्या तुम सरकार को उलटना चाहते हो'? 'उलटना नही पलटना चाहता हूँ'। 'उलटने और पलटने मे क्या भेद है'। 'उलटने का मतलब है नाश और पलटने का अर्थ है परिवर्तन''।[१५१] पुन रामदेव अपने सिद्धान्तो की व्याख्या करता है, ''भाइयो यदि आप मेरे उद्‌देश्य से सहानुभूति रखते है तो आप शान्ति को भग न होने दे। सरकार और अधिकारी और विदेशियो के प्रति कभी द्वेष और इर्ष्या का विचार तक मन मे न लाये। अपने हित का कार्य शान्ति, दृढता और प्रेम से करे। गड़बड न होने द, न कभी उत्तेजित हो। यदि आपने इन बातो के साथ कार्य किया तो हम अवश्य विजयी होगें''।[१५२] इसी कहानी मे अपने सघर्ष के तरीको की सफलता की भी बात करते है, ''परिणाम यह हुआ कि सरकार को शासन चलाना कठिन हो गया बडे से बडे आसन हिलने लगे''।[१५३]

गॉधीजी का चरखा आन्दोलन चतुर्वेदी जी के काव्य मे पर्याप्त जगह पाया। 'कुलवधु का चरखा' शीर्षक से चतुर्वेदी जी लिखते है, ''चरखे गा दे जी का गान/ चिर सुहाग पहचान चरखे गा दे जी का गान/ . ढॉके इज्जत ढॉके दो मन दो डोरो के गठबन्धन से/ बधे हृदय महमान''।[१५४] इतना ही नही वे महात्मा गॉधी के कार्यक्रमो के प्रचारक एव प्रसारक भी रहे। 'मध्य प्रदेश मे महात्माजी' शीर्षक से वे १४ अक्टूबर १९३१ को गॉधीजी के मध्य प्रदेश दौरे पर टिप्पणी करते है, ''सन् १९२१ के पश्चात् महात्माजी १२ वर्ष पश्चात इस प्रदेश मे भ्रमण करेगे। हमारा विश्वास है समस्त प्रान्त महात्मा जी के दौरे का हृदय से स्वागत करेगा''।[१५५] 'यही नही स्वराज क्या है'?[१५६] 'महात्माजी कि स्वदेशी की परिभाषा'[१५७] आदि जैसे शीर्षक से लिखे लेखो मे गॉधीजी विचारधारा का प्रचार करते है। गॉधीजी जब १९२० मे

असहयोग आन्दोलन से, जो कि गॉधीजी के अनुसार स्वराज प्राप्ति के लिए किया गया आन्दोलन था, उसे खिलाफत आन्दोलन को सम्बद्ध कर देते है। उस पर चतुर्वेदीजी 'खिलाफत की समस्या और गाजी मुस्तफा कमालपाशा' शीर्षक से लेख लिखते है जिसमे वे महात्मा गॉधी के इस उद्धरण को ऊपर ही उद्धृत करते है, "खिलाफत ही स्वराज्य है और स्वराज्य ही खिलाफत। खिलाफत समस्या के कारण ही हिन्दू–मुस्लिम एकता की समस्या बहुत कुछ हल हो गयी है खिलाफत के कारण ही देश मे असहयोग आन्दोलन का जन्म हुआ"।[१५८]

गॉधीजी के अनसन पर उनके प्राण बच जाने को वे एक 'चमत्कार' की तरह देखते है और इसी शीर्षक से जून १९३३ मे लिखते है, "आखिर महात्माजी के प्राण बच गये और यह वाणी सत्य साबित हुई जिसमे विश्व के अविश्वास और निश्चय पर मुहर लगाते हुए कहा था कि चमत्कारो का युग अभी समाप्त नही हुआ है"।[१५९] यही नही जब महात्माजी सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समप्ति के बाद हरिजन सेवा आदि के कार्य मे लगते है तो उन्हे चिता होती है, "आज देश मे राष्ट्रीयता की हलचल कुछ दबी सी है। महात्मा गॉधी आज राजनीतिज्ञ नही किसान सेवी है, वह आज के हरिजन सेवक है"।[१६०] यही नही माखनलाल चतुर्वेदीजी १९४२ के आन्दोलन मे भी सक्रिय भूमिका निभाई जैसा कि डा० कृष्ण देव शर्मा उद्धृत करते है, "सन् १९४२ के भारत छोडो आन्दोलन मे चतुर्वेदीजी ने गॉधीजी से आज्ञा लेकर कानपुर मे प्रिसिपल हीरा लाल खन्ना के यहॉ रहकर भूमिगत क्रान्तिकारियो की सक्रिय सहायता की"।[१६१] यही नही गॉधीजी १९३३ मे माखनलालजी की जन्मभूमि बाबई भी आये।[१६२] श्री माखनलालजी गॉधीजी के व्यक्तिगत सचिवो मे एक थे।[१६३] इस तरह चतुर्वेदीजी ने अपने साहित्यिक कृतियो एव व्यावहारिक राजनीति द्वारा गॉधीवाद मे अपनी आस्थाए प्रगट की यद्यपि उनके शुरूआती दिनो पडे क्रान्ति के बीज नष्ट नही हुए थे वरन उन्हे भी प्रायः पल्लवित होने का मौका मिलता रहता था। गॉधीवाद जब जनता मे अतिवाद के स्तर पर पहुॅचा था कोई राष्ट्र प्रेमी अपनी कुर्बानी से राष्ट्र की सेवा करता तो उसका वे पूरी सहानभूति के साथ सहयोग करते थे।

**X X X X X**

मजदूरो एव किसानो की दयनीय स्थिति समकालीन साहित्यकारो के लिए एक समस्या के रूप मे रही माखनलाल चतुर्वेदी की साहित्यिक सवेदना किसानो, मजदूरो एव उपेक्षितो से हमेशा दो चार होती रही। चतुर्वेदीजी का ग्रामीण एव कृषक परिवेश एव समकालीन कृषक समस्याओ तथा उनकी राष्ट्रीय आन्दोलन मे सक्रियता ने उन्हे जरूर इसके लिए और भी प्रेरित किया होगा। चतुर्वेदीजी ने स्वय इसे अपनी प्रेरणा माना है, "मैने देखा भोजन की वस्तुओ के निर्माता को अत्यन्त दुखी और उपेक्षित और भोजन को परोसने वाले को अधिक परिपुष्ट प्रसन्न और प्रभुता सम्पन्न भी"।[१६४] 'किसान का सवाल'

शीर्षक से अपनी टिप्पणी मे चतुर्वेदी लिखते है, "भारत का भाग्य विधाता, भारत मे महान धन उपजाने वाला, भारत मे सबसे बडी तादाद रखने वाला किसान दुर्दशा से पीडित, अकाल का मारा हुआ कर्ज मे दबा हुआ है  जिस दिन वह इन्कार कर देगा उस दिन हमारे ससार मे महाप्रलय मच जाएगा"।[१६५] इस तरह माखनलालजी किसानो की समस्या और उनकी शक्ति दोनो से लोगो को परिचित करवाते है। यही नही प्राकृतिक विपदा के वे शिकार होते ही है सामान्य दशा मे भी व्यापारियो के शोषण के शिकार होते है। 'हम जनसाधारण है' मे चतुर्वेदी जी लिखते है, "जब इन्द्रदेव जल नही बरसाते तब हम ही पहिले मरते है और जबकि भरपूर अन्न होता है तब भी हम भूखो मरते है क्योकि अनाज व्यापारी ले जाता है"।[१६६] अपनी कविता मे भी चतुर्वेदीजी किसानो की दयनीयता चित्रित करते है "पर किसान की क्या भूखे बच्चो वाली घरवाली देखी"? इस तरह किसानो एव श्रमिक वर्ग से चतुर्वेदीजी की पूरी सहानुभूति साहित्य मे प्रदर्शित होती है। 'गरीब का रास्ता' शीर्षक से अपने लेख मे चतुर्वेदीजी कहते है "जब महल और दुमजिली तिमजिली इमारते हॅसती है तब उन महलो के नौकर किस हालत मे होते है आप जानते है?[१६७] यही नही वे उस विशाल समूह की शक्ति से भी लोगो को परिचित करवाते चलते है और उनके असन्तोष से भी परिचित कराते है और उनके शासक वर्ग को आगाह भी करते है कि उनके असहयोग से सम्पूर्ण व्यवस्था सकट मे पड सकती है।

**X X X X X**

वैष्णव परिवेश मे पालित–पोषित और शिव भक्त माखनलाल चतुर्वेदी की निश्चित रूप से हिन्दू मान्यता मे आस्था रही है। गोबध उन्हे उद्वेलित करता है और वे 'गोबध की सरकारी तैयारी'[१६८] लेख मे इसकी आलोचना करते है। हिन्दू मत मे पूर्ण आस्था उन्हे और धर्मो की आलोचना करने के लिये कभी नही प्रेरित करती इसीलिए वे "मन्दिर–मस्जिद गिरजे सबकी भू मे धॅसी दीवार"[१६९] उद्धृत कर पाते है। खिलाफत आन्दोलन से असहयोग आन्दोलन की सम्बद्धता से उत्पन्न हिन्दू–मुस्लिम सौहार्द उन्हे उत्साहित करता है और उसे ही वे राष्ट्रीय आन्दोलन की सच्ची ताकत स्वीकार करते है। मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय चतुर्वेदीजी को आहत कहता है। इसीलिए जब कुछ प्रगतिशील मुस्लिम नेता राष्ट्रीय मुस्लिम सघ की स्थापना करते है तो वे 'मुसलमानो मे राष्ट्रीयता का उदय' शीर्षक से लेख लिखते है, "अब देश के मुसलमानो ने राष्ट्रीय मुस्लिम सघ की स्थापना की है जिस सघ का काम होगा कि वह राष्ट्रीयता विरोधियो का सामना करे और गुमराह मुसलमान समाज को चलने की दिशा बतावे इस सघ के सभापति है कलकत्ता के अबुल कलाम आजाद"।[१७०] चतुर्वेदीजी 'हिन्दू प्रतीको का प्रयोग अवश्य अधिक करते है पर इससे उनकी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति नही स्पष्ट होती। कही भी वे इतर

सम्प्रदाय के प्रति दुर्भावना लेकर सामने नही आते इसीलिए तो वे कहते है, "जहॉ से जो खुद को जुदा देखते है/ खुदी को मिटाकर खुदा देखते है"।[१७१]

**XXXXX**

नारी जगत की समस्याये भी चतुर्वेदी जी के साहित्य मे प्रतिबिम्बित होती है। उनकी स्वतत्रता की तरफदारी करते हुए पुरूष वर्ग को चेताते हुए वे लिखते है, "स्त्री जाति स्वतत्र विचार क्यो नही कर सकती? पुरूष जाति की नीचता और अन्याय के कारण, अब हमारे भाइयो को चेतना चाहिये तथा अपनी माताओ, बहिनो, गृहलक्ष्मियो की स्वतत्र सम्मति देने योग्य विद्या देने का एव अपनी स्वार्थ भरी आवश्यकताओं को कम करने का प्रयत्न करना चाहिये।[१७२] दहेज प्रथा के प्रभाव पर टिप्पणी करते हुए चतुर्वेदी लिखते है, "आज भी दहेज बन्द नही है। समझदार लडके जमाता बनकर लोगो के दरवाजो पर बिकने मे सकोच नही करते। बालिकाएँ इस कुप्रथा के भय से पिताओ के द्वारा निर्दयतापूर्वक जन्मते ही मारी जा रही है। कई प्राण त्याग रही है और कई कठोर काम के कराल पुष्पवाणी का लक्ष्य बनकर कोई प्रगट और कोई गुप्त रूप से वेश्या बन रही है"।[१७३] इसी तरह वे बाल विवाह को भी एक अभिशाप के रूप मे स्वीकार करते है, "विवाह की उच्चप्रथा प्राय नीच रूप धारण कर चुकी है . . बालक बालिकाओ की दुर्दशा करने का कोई अधिकार नही"।[१७४] यही नही बाल विवाह के कारण बाल विधवा की समस्या भी एक जटिल रूप धारण कर चुकी थी। इस पर चतुर्वेदी जी लिखते है, "भारत की विधवा बालिकाओ की जो सख्या प्रकाशित हुई है उसे देखकर सच्चे भारतीयो का कलेजा जल रहा होगा"।[१७५] इस तरह चतुर्वेदीजी नारी शिक्षा, स्वतत्रता की बात करते हुए उनकी समस्या बाल विवाह एव बाल विधवा की समस्या से लोगो को अवगत कराते हैं यही नही वे उनमे उद्दाम वीरता के गुणो का भी समावेश करने की कोशिश करते है। वे लिखते है, "चूडिया बहुत हुई कलाइयो पर प्यारे भुजदण्ड सजादो/ तीर कमानो से सिगार दो जरा जिरह बख्तर पहना दो"।[१७६]

**XXXXX**

चतुर्वेदीजी के जीवन काआरम्भिक पोषण एक तरह से क्रान्तिकारी परिवेश मे ही हुआ। उनका क्रान्तिकारी सगठनो से सम्बन्ध भी रहा और वे उसके लिए कार्य भी किये। उनका सम्बन्ध गणेशशकर विद्यार्थी और तिलक से भी रहा। डा० कृष्णदेव शर्मा उद्धृत करते है, "लोकमान्य बाल गगाधर तिलक से माखनलाल चतुर्वेदी की भेट सन १९०८ मे पूना के गायकवाड बाडा मे केसरी कार्यालय मे हुई थी उस समय दोनो ही व्यक्ति क्रान्तिकारी दल के सक्रिय सदस्य थे"।[१७७] अपनी कविता मे 'लाल बाल पाल' को राष्ट्र नायक बताते हुए चतुर्वेदीजी लिखते है, "जिनको 'बाल' समझकर माता दूध पिलाती सुधा समान/जिनको 'पाल' हुई है जगती तल मे वह आनन्द विधान/जिनको 'लाल' लाल कह उसने भुला

दिया सुख–दुख का ध्यान/जानो उन्हे राष्ट्र की सम्पदा भारत के भावी विद्वान/ यही तुम्हारे कष्ट हरेगे यही बनेगे शक्ति निधान/पिता! प्राण देने वालो ये भारत के भावी विद्वान/ आओ इनकी शिक्षा के हित उथल–पुथल कर दे ससार''।[१७८] वे अपने क्रान्तिदर्शी विचारो को व्यावहारिक रूप देते हुए कहते है, ''ऐ धीरो वीर वर्यों शुभ रण मद से मत्त हो केसरी सा/दौडो–दौडो अगाडी झपट झट चढो शत्रुओ के गढो पै/तोडो–तोडो अभी जा दपटकर सभी गर्व पापी खलो के डका/ स्वातन्त्र्य का हो, रणित अवनि की दूर हो भीति शका''।[१७९] तिलक के प्रति श्रद्धाजलि देते हुए चतुर्वेदीजी लिखते है, ''अपने प्राणो पर खेल गया जेल गया सहार हुआ/तुझ पर शिरोल के दोष लगे पीछे से कायर वार हुआ । मेरे जीते पूरा स्वराज्य भारत पाये अरमान यही/बस शान यही अभिमान यही हम कोटि–कोटि की जान यही''।[१८०] यही नही लाला लाजपतराय के निष्कासन पर 'दुख भोगी' शीर्षक से कविता लिखते है। चतुर्वेदीजी अपने व्यगात्मक लहजे में स्वदेशी का समर्थन करते है, ''बूट चाहिये सूट चाहिये, कालर हैट और नेक्टाय/केन चाहिये चेन चाहिए–घडी सहित फिर डेली चाय/देखो इन पर लिखा न होवे कही मेड इन हिन्दुस्तान''।[१८१] इस तरह चतुर्वेदीजी क्रान्तिकारी एव स्वदेशी आन्दोलन के भी समर्थक थे यद्यपि गॉधीवाद मे दीक्षित होने के बाद भी उनका झुकाव और सहानभूति क्रान्तिकारी सगठनो और बलिदानियो के प्रति हमेशा रहा।

**X X X X X**

साम्राज्यवाद का दमन एव उसके प्रति भारतीयो के बलिदान दृष्टिकोण को स्थापित करने का प्रयत्न चतुर्वेदीजी का हमेशा रहा है। अपनी कविता मे वे कहते है, ''मॉ रोवो मत शीघ्र लौट घर आऊॅगा प्रस्थान करूॅ/ बाबा दो आशीष पताका पर सब कुछ कुरबान करूॅ/लौटूगॉ मै देवि हाथ मे विजय पताका लाऊॅगा/कष्ट प्रवास जेल जीवन की तुमको कथा सुनाऊॅगा../दौड पडो वीरो, माता ने सकट मे की आज पुकार''।[१८२] यही नहीं चतुर्वेदीजी जनता मे ऊर्जासचार के लिए गौरव पात्रो {इतिहास के} का भी सहारा लेते है, ''परम पूज्य राणा प्रताप का हृदय हमे दो हे भगवान/ स्वाभिमान स्वाधीन भाव पर होवे हम समुदित बलिदान/लोकमान्य से अभय हृदय हो छोडे हम स्वराज्य की तान/सबल शिवाजी का दिल लेकर करे दासता का अवसान''।[१८३] साम्राज्यवादी दबावो और उसके जेल के नारकीय जीवन का चित्रण अपने लेख 'अपराधी कौन' मे करते हुए वे लिखते है, ''जेल मे एक राजनैतिक नाम का जतु होता है, गुलाम देशो मे उसकी तादाद अधिक होती है क्योकि वहॉ आत्माभिमान की हुकार स्वदेश प्रेम का बलिदान और स्वदेश की वस्तुओ, व्यक्तियो और व्यवस्थाओ के लिए उथल पुथल मचाना भी अपराध होता है। वह चोर नही होता, डाकू नही होता, निर्दय नहीं होता, नीति भ्रष्ट नही होता वह देश की सेवा लगन का दीवाना होता है''।[१८४] साम्राज्यवादी दमन के खिलाफ वे लिखते हुए दूसरी जगह वे कहते है,

"यहॉ के करोडो लोग दोनो जून भर पेट नही खाते और यहॉ पढे लिखे विद्वान केवल सदेह पर पकडकर बिना मुकदमा चलाए और पैरवी का अवसर दिए जेलो मे ठूँस दिये जाते है"।[१८५]

उनकी शुरूआती रचना पर ही साम्राज्यवादी कुपित हो गये थे। 'सुबोध सिधु' के हिन्दी सस्करण मे दशहरे के १६१२ अक मे माखनलाल के 'शक्तिपूजा' लेख पर स्थानीय पुलिस सुपरिनटेण्डेण्ट ने उन्हे तलब किया था और कहा, 'टुमको ऐसा लेख नही लिखना चाहिए'।[१८६] अत· वे साम्राज्यवादी दबाव को हमेशा महसूस करते रहे और उसके विखण्डन के लिए हमेशा प्रयास करते रहे। 'क्या देशी भाषा के अधिकार ही दोषी है' शीर्षक मे वे कहते है, "देश मे आजादी की साधना साधते हुए अखबार बदनाम होगे, कुचले जाएगे और फिर जन्म धारण करेगे"।[१८७] 'कैदी और कोकिला' शीर्षक से रचित कविता मे वे बन्दी जीवन और ब्रिटिश नीति का चित्रण करते है, "ऊँची काली दीवारो के घेरे मे/डाकू चोरो बटमारो के डेरे मे/ जीने को नही देते पेट पर खाना/ मरने भी देते नही तडप रह जाना"।[१८८] "काली तू रजनी भी काली / शासन की करनी भी काली हथकडियॉ क्यो? यह ब्रिटिश राज का गहना"।[१८९] चतुर्वेदी जी की इस कविता की समीक्षा करते हुए विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं, "कैदी और कोकिला' शीर्षक कविता कवि की निर्भीकता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। कविता मे एक ओर कारावास का भीषण जीवन चित्र है तो दूसरी ओर ब्रिटिश शासको की अन्यायपूर्ण–अत्याचारपूर्ण नीति का सशक्त भाषा मे उद्घाटन"।[१९०] यही नही वे नागरिको से जेल मे चलने का आह्वान भी करते है "जेल चल जेल चल/ जेल चल भाई/ बेटे बलिदान हो माता की गई लाज बचे/होऊॅ आज़ाद हो कॉटो का भले ताज मिले/ मर करके दिखला दो तो प्यारे तुम्हे स्वराज मिले"।[१९१] यही नही हथकडियो को वे सकारात्मक रूप भी देते है, "जजीरे है हथकडियॉ है, नेह सुहागन की लडियॉ है"।[१९२] "ओ कस के बदीगृह की/ उन्मादक किलकार/तीस करोड बन्दियो का भी/ खुल जाने दे द्वार"।[१९३]

यही नही चतुर्वेदी जी बलिदान को स्वराज्य प्राप्ति का मार्ग भी स्वीकार करते है, यह साम्राज्यवाद की नीव हिला सकता है ऐसा वे स्वीकार करते है, "छोटे–छोटे लडके लिए हथेली पर सिर अपने/ उनसे उस दिन विश्वबली शासन डोला था"।[१९४] या "प्राण देकर प्राण लेकर प्राण का खिलवाड सीखे/ अपाजित है न जो मॉगे जगत से भीखे"।[१९५] या "तरुण अपनाता रहे यह लाल टीका"।[१९६] यही नही वे स्वराज्य की परिभाषा देते हुए अपनी कविता मे लिखते है, "शासन धन अपनो ही का हो अपने लिए किया जावे/इसके सिवा? विदेशी शासन हो चाहे जगदीश्वर का/ वह स्वराज्य कह ना सकेगा, हो अपना अपने घर का"।[१९७] यही नही वे साम्राज्यवाद के विभाजन नीति का भी विरोध 'कृष्णार्जुन युद्ध' के अपने आरम्भिक नाटक में ही करते है "वे पुराण प्रसिद्ध स्वय सेवक कूटनीति से भरे कोई महत्वाकाक्षी राजा तो नही है जो किसी दीन का पक्ष लेकर धर्म की दुहाई देते हुए मित्र राजाओ को आपस मे

लडाकर उनका राज्य हडपना चाहते हो"।[१९८] यही नही वे सुधार समझौतो मे कम विश्वास करते है, "यह सुधार समझौतो वाली मुझको आती नही ठिठोली"।[१९९] इसीलिए वे 'गोलमेज दावत' शीर्षक के अपने टिप्पणी मे कहते है, "इसमे हिन्दुस्तानी को मदद पहुचाने जैसी कोई बात नही"।[२००] इस तरह चतुर्वेदीजी साम्राज्यवाद के विरूद्ध उद्दाम राष्ट्रीयता का आह्वान कर उसके विस्थापन के लिए समग्र प्रयास किए। यही नही जब राष्ट्र को विभाजित रुप मे लोग स्वीकार करने की बात कर रहे थे तब वे कहते है, "बूढे युग के बूढे सपने नन्हे हाथो से दफना दे/ ओ पूरब के प्रलय पथी उठ चल एक भैरवी गा दे"।[२०१] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लिखी कविता में वे कहते है, "टूटी नही कि लगा अभी तक उपनिवेश का दाग/बोल तिरंगे तुझे उडाऊँ या कि जगाऊँ आग"।[२०२] इसी गीत मे वे आगे कहते है, "ब्रिटिश राज टुकडे–टुकडे है क्या समाज का भय है/उठ कि मसलदे शिथिल रूढियॉ तेरी आज विजय है/तोड अमीरो के मनसूबे गिन न दिनो की घडियॉ/बुला रही है तुझे देश की कोटि–कोटि झोपडियॉ"।[२०३] इस तरह चतुर्वेदीजी राजनीतिक मुक्ति के बाद शेष गुलामियो और विद्रूपताओ (सामाजिक एव आर्थिक) के विरूद्ध एक और आन्दोलन की बात करते है, जब सम्पूर्ण नेतृत्व वर्ग हताश था उनका यह दृष्टिकोण निश्चित रुप से सकारात्मक स्थापनाओ वाला रहा।

समकालीन शैक्षिक परिवेश के व्यावसायीकरण एव उसकी कृत्रिमता से प्राय सभी साहित्यकार क्षुब्ध थे। चतुर्वेदी जी का भी दृष्टिकोण उनसे अलग नही था, वे कहते है,"जो लोग भारत का भला चाहते है उनका काम है कि वे भारत मे कृषि व्यापार और उद्योग की शिक्षा दे, इधर–उधर की शिक्षा मे हमारा जीवन खराब न होना चाहिए"।[२०४] शिक्षा को नारी से सदर्भित करते हुए वे कहते है,"शिक्षा का क्षेत्र सकीर्ण है हमारे यहॉ की स्त्री लेखिकाओ और सम्पादको का हाल बुद्धिमान और अनुभवी लोगो से छिपा नही है। स्त्रियॉ पुरूषो से लेख लिखवाकर सम्पादिका और लेखिका बनने मे अपना गौरव समझ रही है तिसपर भी उनकी सख्या गिनी चुनी है"।[२०५] इसी तरह वे देशी भाषाओ की स्थिति और उनकी शक्ति से परिचित थे साथ ही उसपर साम्राज्यवादी अकुश को निरकुश करने के लिए जद्दोजहद करते रहे।

**X X X X X**

इस तरह चतुर्वेदीजी अपने सम्पूर्ण रचनाक्रम एव अपने जीवन के गतिविधियो मे उद्दाम राष्ट्रीयता के प्रवर्तक बने रहे। उनका आरम्भिक जीवन क्रान्तिकारी सगठनो के परिवेश से सम्बद्ध रहा और यह बीज उनको हमेशा उद्वेलित करता रहा और बाद मे गॉधीवादी विचारधारा के समर्थक होते हुए भी क्रान्ति बलिदान एव उद्भट सघर्ष की बात करते रहे। उन्हे क्रान्तिकारियो या यूँ कहे प्रत्येक देश प्रेमियो से सच्ची सहानुभूति रही। यही नही अपनी कविताओ एव रचनाओ के माध्यम से एक समर्पित राष्ट्रभक्त को तैयार करने की वे पूरे प्राणोप्रण से आजीवन सघर्ष करते रहे। जैसा कि हरिकृष्ण प्रेमी

उद्धृत करते है, "राजनीति के क्षेत्र मे इन्होने हिस्सा लिया न केवल 'प्रभा' और 'कर्मवीर' का सचालन और सपादन करके, न केवल देश की जवानी को व्रिदोह और बलिदान के पथ पर अग्रसर करने वाली रचनाए लिखकर वरन पहले हिसावादी क्रान्तिकारी दल के नियमित रूप से दीक्षित सदस्य के रूप मे तथा बाद मे गॉधीजी के अनुयायी सत्याग्रही बनकर"।[२०६] जैसा कि केदारनाथ लाभ अपने निबन्ध मे लिखते है, "चतुर्वेदी जी की कविताओ मे राष्ट्रीय भावना अपनी बहुविधि छवियो के साथ अभिव्यजित हुई थी। राष्ट्र के प्रति अत्यतिक अनुराग, राष्ट्र सेवको और नेताओ के प्रति स्नेह और श्रद्धा, देश की आकाक्षाओ के स्पन्दनो से रागात्मक सम्बन्ध, देश मे जागरण का सदेश एव राष्ट्रहित के लिए बलि की भावना को अभिव्यक्ति देना राष्ट्रीयता के कवि होने की अनिवार्य शर्तें है, 'एक भारतीय आत्मा' की कविता मे इन सभी तत्वों का समावेश है"।[२०७] इस तरह उनका काव्य राष्ट्रीय समस्याओ के सभी बिन्दुओ से तालमेल बैठाता हुआ आगे बढता है। इस रूप मे उनकी भूमिका काफी महत्वपूर्ण है क्योकि उनका कहना था, "मै न झुकूँ मै न हटूँ मै न मिटूँ मै न डरूँ/निराशा के बाधाओ के सकटो के प्राण हरूँ"।[२०८]

# सन्दर्भ सूची


१ सुमित्रानन्दन पत, साठ वर्ष एक रेखाकन, सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६६३, पृष्ठ–१४१

२ वही पृष्ठ–१४३

३. शान्तिजोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य, भाग–१, राजकमल प्रकाशन, पटना–१६७७, पृष्ठ–२

४. इन्द्रनाथ मदान, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१६७५, पृष्ठ–१६

५ विश्वम्भर मानव, पन्त और प्रकृति, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, सम्पादक इन्द्र नाथ मदान, पृष्ठ–१४३.

६ शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य, भाग–१, पृष्ठ–३७

७ वही पृष्ठ–४४

८ वही पृष्ठ–६८

६ वही पृष्ठ–७८

१० वही पृष्ठ–८१

११ वही पृष्ठ–१५३.

१२ वही पृष्ठ–१५४

१३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–१५४

१४ शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य भाग–१, पृष्ठ–२१८.

१५ वही पृष्ठ–२२७.

१६ वही पृष्ठ–२३३

१७ वही पृष्ठ–२५७

१८ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–१५६

१६ वही पृष्ठ–१६२

२० शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य भाग–१, पृष्ठ–२६०, २६१

२१ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–१६६

२२ शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य भाग–२, पृष्ठ–७

२३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–१६६

२४ शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पंत जीवन और साहित्य भाग–२, पृष्ठ–२८

२५ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–१६६

२६ शान्ति जोशी, सुमित्रानन्दन पत जीवन और साहित्य भाग–१, पृष्ठ–४१२

२७ वही पृष्ठ–१५६

२८ वही पृष्ठ–२२४

२९ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–५३८

३० वही पृष्ठ–१६२.

३१ तारापथ, सुमित्रानन्दन पत, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१९९५, पृष्ठ–१२३

३२. वही पृष्ठ–१२४.

३३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–२, पृष्ठ–३१.

३४ वही पृष्ठ–३३

३५ तारापथ, सुमित्रानन्दन पत, पृष्ठ–१२४, १२५.

३६. सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली, भाग–२, पृष्ठ–१४६

३७. तारापथ, सुमित्रानन्दन पत पृष्ठ–१२३

३८ वही पृष्ठ–१२५.

३९ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–२, पृष्ठ–१५०

४० इन्द्रनाथ मदान, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, पृष्ठ–९

४१ सुमित्रानन्दन पंत ग्रन्थावली भाग–२, पृष्ठ–६२.

४२ वही पृष्ठ–६३

४३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–४४

४४ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–२, पृष्ठ–६४

४५ रामधारी सिह दिनकर, विचारक कवि पत, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, सम्पादक इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ–१००

४६ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–५३१, ५३२

४७ सुमित्रानन्दन पत उद्धृत सम्पादक इन्द्रनाथ मदान, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, पृष्ठ–१३

४८ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–२, पृष्ठ–६५

४९. वही पृष्ठ–१४१

५० वही पृष्ठ–१५५

५१ वही पृष्ठ–१७४

५२ वही पृष्ठ—६५

५३ वही पृष्ठ—६६

५४ वही

५५ वही पृष्ठ—६४

५६ यशदेव, प्रगतिवादी काव्य, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, सपादक इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ—६४

५७ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—२, पृष्ठ—१४

५८ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—६, पृष्ठ—४५५

५९. सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—२, पृष्ठ—३२

६० वही पृष्ठ—३५.

६१ वही पृष्ठ—१६६

६२ वही पृष्ठ—१६६.

६३ वही पृष्ठ—११९.

६४. सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—१, पृष्ठ—३२३

६५ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—२, पृष्ठ—२०१

६६ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—१, पृष्ठ—२०६

६७ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—२, पृष्ठ—२०१

६८ वही पृष्ठ—३६

६९. वही पृष्ठ—१६७

७०. वही पृष्ठ—१००

७१ वही पृष्ठ—२०१

७२ तारापथ, सुमित्रानन्दन पत, पृष्ठ—१४८.

७३ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—६, पृष्ठ—४०

७४. वही पृष्ठ—४३

७५ ये०पे० चेलिशेव, सुमित्रानन्दन पत तथा आधुनिक हिन्दी कविता मे परम्परा और नवीनता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली—१९७०, पृष्ठ—१२६

७६ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग—२, पृष्ठ—६३

७७ वही

७८ वही पृष्ठ—१२५

७६ वही पृष्ठ–१६८

८० रामधारी सिह दिनकर, विचारक कवि पत, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, सपादक इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ–६७

८१ सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली भाग–६, पृष्ठ–४३२

८२ वही पृष्ठ–४३३

८३ महादेवी वर्मा, महादेवी साहित्य भाग–२, सपादक ओकार शरद, सेतु प्रकाशन झॉसी १६६६, पृष्ठ–३०६.

८४ महादेवी साहित्य भाग–१ सपादक ओकार शरद, सेतु प्रकाशन झॉसी १६६६ पृष्ठ–५

८५ गगाप्रसाद पाण्डेय, महीयसी महादेवी, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद १६७६ पृष्ठ–२३

८६. महादेवी वर्मा उद्धृत महीयसी महादेवी, गगा प्रसाद पाण्डेय, पृष्ठ–२४

८७ गगाप्रसाद पाण्डेय, महीयसी महादेवी, पृष्ठ–२४.

८८ सन्तोष शर्मा, महादेवी का बिम्ब बोध और प्रतीक सृजन, आर्य बुक डिपो दिल्ली, सन् १६८५, पृष्ठ–२८

८६ महादेवी साहित्य भाग–२, सपादक, ओंकार शरद, पृष्ठ–२७

६० गगा प्रसाद पाण्डेय, महीयसी महादेवी, पृष्ठ–२६

६१ वही पृष्ठ– ३०, ३१.

६२ वही.

६३. ओकार शरद, महादेवी साहित्य, भाग–१, सपादक, पृष्ठ–८

६४ भगीरथ मिश्र, महादेवी के काव्य, महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ संपादक देवदत्त शास्त्री, राष्ट्रीय मुद्रणालय प्रयाग, पृष्ठ– ३१, ३२

६५ महादेवी साहित्य भाग–१, सपादक ओंकार शरद, पृष्ठ–१२

६६ महादेवी वर्मा, महादेवी साहित्य भाग–१, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–५१४

६७ वही पृष्ठ–५१६

६८ महादेवी साहित्य भाग–२, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–१३७

६६ महादेवी वर्मा, रामा, महादेवी साहित्य भाग–२, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–३२

१०० महादेवी साहित्य भाग–२, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–३८६, ८७

१०१ महादेवी साहित्य भाग–३, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–४७३

१०२ महादेवी वर्मा, दुविधा, महादेवी साहित्य भाग–३, सपादक ओकार शरद पृष्ठ–१५४

१०३ महादेवी वर्मा, मेरा राज्य, महादेवी साहित्य भाग—३, पृष्ठ—४५

१०४ महादेवी वर्मा, उत्तर, महादेवी साहित्य भाग—३, पृष्ठ—७३

१०५ महादेवी वर्मा, अधिकार, महादेवी साहित्य भाग—३, पृष्ठ—४३

१०६ महादेवी वर्मा, जीवन दीप, महादेवी साहित्य भाग—३, पृष्ठ—१३०

१०७ महादेवी वर्मा, उत्तर, महादेवी साहित्य भाग—३, पृष्ठ—५७

१०८ महादेवी वर्मा, उद्‌धृत गगाप्रसाद पाण्डेय, महियसी महादेवी, पृष्ठ—३६

१०९ वही

११० महादेवी वर्मा, उद्‌धृत, गगाप्रसाद पाण्डेय, जीवन झॉकी, महादेवी स्मरण ग्रन्थ, सपादक सुमित्रानन्दन पन्त, शान्ति जोशी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६२, पृष्ठ—२२, २३

१११ महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कडियॉ, नारीत्व का अभिशाप, महादेवी साहित्य, पृष्ठ—४१७.

११२ महादेवी वर्मा, हमारी श्रृखला की कडिया, महादेवी साहित्य, पृष्ठ—३७१

११३. वही पृष्ठ—३७६.

११४. वही पृष्ठ—३७७.

११५ वही पृष्ठ—३८०.

११६ वही पृष्ठ—३७३.

११७ वही पृष्ठ—३६३.

११८ महादेवी वर्मा, उद्‌धृत, गगाप्रसाद पाण्डेय, महियसी महादेवी, पृष्ठ—३४

११९ वही पृष्ठ—३३, ३४.

१२० रामचन्द्र तिवारी, महादेवी का गद्य साहित्य, महादेवी, सपादक परमानन्द श्रीवास्तव, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद १९७६ पृष्ठ—१४७

१२१ श्री इलाचन्द्र जोशी, महादेवी वर्मा, निकट से महादेवी स्मरण ग्रन्थ, सपादक सुमित्रानन्दन पत, शान्ति जोशी, पृष्ठ—६५

१२२ महादेवी वर्मा, हमारा देश और राष्ट्रभाषा, महादेवी साहित्य भाग—१, पृष्ठ—७१

१२३ महादेवी वर्मा, कुछ विचार, महादेवी साहित्य भाग—१, पृष्ठ—८१

१२४ वही पृष्ठ—८०

१२५ महादेवी वर्मा, महादेवी साहित्य भाग—१, पृष्ठ—५३१

१२६ वही

१२७ महादेवी वर्मा, समाज और व्यक्ति, महादेवी साहित्य भाग—१, पृष्ठ—३६३, ३६४

१२८ कृष्णदत्त पालीवाल, महादेवी की रचना प्रक्रिया, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली–१९७१, पृष्ठ–७८

१२९ विशम्भर मानव, महादेवी का काव्य –महाश्वेता का ऑसू भर अचल, महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–५६

१३०. महादेवी वर्मा, अभिमान, महादेवी साहित्य भाग–३, पृष्ठ–५६

१३१. परमानन्द श्रीवास्तव, महादेवी, पृष्ठ–१९९–२००

१३२ महादेवी वर्मा, गीत, महादेवी साहित्य भाग–३, पृष्ठ–४७२

१३३. महादेवी वर्मा, आज पिजर खोल दो, महादेवी साहित्य भाग–३, पृष्ठ–३४१

१३४ पुष्प की अभिलाषा, माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली–१९९९, पृष्ठ–६७.

१३५. माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, सपादक श्रीकान्त जोशी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ–३९

१३६. वही पृष्ठ–८८

१३७ कृष्णदेव शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, १९७९, पृष्ठ–४४

१३८. ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, माखनलाल चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी–१९६०, पृष्ठ–१५९

१३९ श्रीकान्त जोशी, प्राक्कथन, माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, पृष्ठ–५

१४० माखनलाल चतुर्वेदी, उद्धृत माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–५

१४१ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–५

१४२ कृष्णदेव शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृष्ठ–६३

१४३ वही पृष्ठ–४७

१४४ माखनलाल चतुर्वेदी, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि माखनलाल चतुर्वेदी, हरिकृष्ण प्रेमी, राज पाल एण्ड सन्स दिल्ली–१९६०, पृष्ठ–१३

१४५ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, सपादक श्रीकान्त जोशी पृष्ठ–१७२

१४६ वही पृष्ठ–१९२

१४७ वही पृष्ठ–१९६

१४८ कृष्णदेव शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृष्ठ–६२

१४९ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–८८, ८९

१५० वही पृष्ठ–१९६.

१५१ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, पृष्ठ–३२१

१५२ वही पृष्ठ–३२२

१५३ वही पृष्ठ–३२३

१५४. माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, पृष्ठ–२१६

१५५ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–३, पृष्ठ–२६८, २७१

१५६. वही पृष्ठ–२७१.

१५७. वही पृष्ठ–२७३

१५८ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–२, पृष्ठ–६०

१५६ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–३, पृष्ठ–२६६

१६० माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली खण्ड–४, पृष्ठ–४१

१६१. कृष्ण देव शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व पृष्ठ–६२

१६२ वही.

१६३ वही पृष्ठ–६३

१६४ माखनलाल चतुर्वेदी उद्धृत आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, हरिकृष्ण प्रेमी, पृष्ठ–१३

१६५ किसान का सवाल, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–३, पृष्ठ–१५.

१६६ हम जन साधारण है, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–३, पृष्ठ–१३

१६७ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, पृष्ठ–३८०.

१६८ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–६, पृष्ठ–१६१

१६६. माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–१६८

१७० माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग–१०, पृष्ठ–३१६

१७१ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सपादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–६५

१७२ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–२, पृष्ठ–१७

१७३ माखनलाल चतुर्वेदी, ऋषि जैमिन कौशिक बरूआ, पृष्ठ–३८२

१७४ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–२, पृष्ठ–२०, २१

१७५ वही पृष्ठ–३७

१७६. सिपाहिनी, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग–६, पृष्ठ–१७६

१७७ कृष्णदेव शर्मा, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व पृष्ठ–६२

१७८ माखनलाल चतुर्वेदी की समग्र कव्तिाए, सम्पादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–३८

१७६ वही पृष्ठ–५१

१८० वही पृष्ठ–८३

१८१ भारत के भावी विद्वान, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–६, पृष्ठ–२१

१८२ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताएँ, सम्पादक श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–१०७

१८३ वही पृष्ठ–११५

१८४ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–३, पृष्ठ–४७.

१८५ वही पृष्ठ–२२

१८६ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, पृष्ठ–१६५

१८७ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१०, पृष्ठ–२६२

१८८. माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, पृष्ठ–१५१

१८६ वही पृष्ठ–१५३

१६०. विजयेन्द्र स्नातक, भारतीय आत्मा का काव्य – प्रेम रहस्य और राष्ट्रीयता की त्रिवेणी, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, सपादक प्रेम नारायण टण्डन, श्री नन्दन एम०एस०सी० लखनऊ १६७०, पृष्ठ–१२६

१६१ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताएं, सम्पादक, श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–८५

१६२ वही पृष्ठ–२०६

१६३ वही पृष्ठ–१२३

१६४ वही पृष्ठ–२३७

१६५ वही पृष्ठ–२५७.

१६६ वही पृष्ठ–२५३

१६७ वही पृष्ठ–११६.

१६८ माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, पृष्ठ–२२७

१६६ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सम्पादक, श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–२११

२०० माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली भाग–१, पृष्ठ–३१७

२०१ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताए, सम्पादक, श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–२६१

२०२. वही

२०३ वही पृष्ठ–२६३

२०४ माखनलाल चतुर्वेदी, ऋषि जैमिनी कौशिक बरूआ, पृष्ठ–४५०

२०५ वही पृष्ठ–१५६

२०६ हरिकृष्ण प्रेमी, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि माखनलाल चतुर्वेदी, पृष्ठ–१३

२०७ केदारनाथ लाभ, चतुर्वेदीजी के काव्य मे राष्ट्रीय भावना, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, सपादक प्रेम नारायण टण्डन, पृष्ठ–८४

२०८ माखनलाल चतुर्वेदी समग्र कविताएँ, सम्पादक, श्रीकान्त जोशी, पृष्ठ–२५६

# अध्याय—७

# उपसंहार

राष्ट्रीय आन्दोलन का १९२० से १९४७ तक का काल अपनी जन पक्षधरता और साम्राज्यवाद के खिलाफ एक राष्ट्रव्यापी सयुक्त मोर्चा तैयार करने के रुप मे प्रसिद्ध रहा है। राष्ट्रीय आन्दोलन महात्मा गॉधी के नेतृत्व मे नई रणनीति के द्वारा नया आकार ग्रहण किया और उन वर्गो एव क्षेत्रो मे चेतना प्रसारित किया जो अभी तक इससे अछूते रहे थे। यद्यपि महात्मा गॉधी के व्यक्तित्व एव आन्दोलन मे उनके द्वारा नवीन अस्त्रो के प्रयोग ने इस आन्दोलन को निर्णायक रुप से प्रभावित किया पर यह नही कहा जा सकता कि राष्ट्रीय आन्दोलन की समस्त मुख्य धाराएँ एव उप धाराएँ उनकी अनुगामी रही या गॉधी के पूर्व के आन्दोलन के स्रोत सूख गये, बल्कि उनके समानान्तर ही क्रान्तिकारी वामपथी आन्दोलन जारी रहे जिनको समर्थन भी मिला तथा लोकप्रियता एव मच भी। इन सब के बीच छोटे—छोटे आन्दोलन भी जारी रहे जो अपनी अन्तर्निहित दुर्बलताओ की वजह से राष्ट्रीय आकार न ग्रहण कर सके। इस दौर का आन्दोलन सिर्फ साम्राज्यवाद और उसके समर्थको से राजनीतिक रुप मे मुक्ति का आन्दोलन न रहा बल्कि कृषक मजदूरो को उनका न्यायपूर्ण हक दिलाने, स्त्रियो को तमाम पारम्परिक बेडियो से मुक्त कराते हुए सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने, एक ऐसी राष्ट्रभाषा को स्थापित करने, जिसका स्वरूप व्यापक जन से जुडा हो तथा साम्प्रदायिकता के भयावह परिणामो से देश को सुरक्षित बचा लिए जाने के लिए भी प्रयास हुए। कुल मिलाकर एक समग्र मुक्ति की बातें इस दौर मे की गई।

इस सम्पूर्ण कालक्रम मे हिन्दी साहित्य जो अपने को विभिन्न क्षेत्रीय बोलियां से मुक्त करके सम्पूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र से शक्ति ग्रहण करते हुए अभी निर्माण के दौर से गुजर ही रही थी कि उसके निर्माण कर्ताओ ने अपनी शैली मे इस युग मे राष्ट्र निर्माण और समग्र मुक्ति से अपने को जोड लिया और अपने को स्थापित करने के लिए न केवल जुझारु तेवर अख्तियार किए वरन हिन्दी साहित्य को पारम्परिक सदर्भो से अलग करते हुये इस युग के रचनाकारो ने नये सदर्भो की ओर कदम बढाए। उन्हे सफलताएँ भी मिली और उपेक्षा भी, पर कदम पीछे न हटे आगे बढते ही गये। जयशकर प्रसाद, प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एव मैथिलीशरण गुप्त आदि के नेतृत्व मे हिन्दी भाषा ने साहित्य और राष्ट्र को समर्पित सेवाये दी और उन सभी मुद्दो से अपने को सयुक्त रखा जिनसे समकालीन राष्ट्र और समाज सघर्ष कर रहा था। चाहे वह राजनैतिक मुक्ति की बात हो या कृषक मजदूर के शोषण का प्रश्न हो या नारी प्रश्न या साम्प्रदायिकता एव भाषा का प्रश्न। इन सभी प्रश्नो ने इन साहित्यकारो को उद्वेलित किया जिनका समाधान भी इन साहित्यकारो ने वैश्विक जगत के परिवर्तन को ध्यान मे रेखते हुए प्रस्तुत किए।

साम्राज्यवाद और उससे उत्पन्न जडता के विरूद्ध सघर्ष के तरीको मे गॉधीवादी मान्यताये इस काल मे अधिक लोकप्रिय रही। इस लोकप्रिय विचारधारा के विज्ञापक इस युग के हिन्दी साहित्यकर्मी भी रहे चाहे वे प्रसाद हो या प्रेमचन्द या निराला या मैथिलीशरण गुप्त यद्यपि इन साहित्यकारो की नजर वामपथी रुझानो एव समाधानो पर भी रही और उससे एक दृष्टि भी प्राप्त की पर उसके पूरे पैरोकार कोई भी रचनाकार नही रहा। प्रेमचन्द किसानो एव मजदूरो का रुस मे राज की चर्चा एव प्रशसा करते हुए भी वे मृत्युपर्यन्त गॉधी के भक्त बने रहे यद्यपि उनके साहित्य के अन्तिम चरण मे ऐसे सकेत मिलते है कि राष्ट्रीय आन्दोलन की बार–बार असफलता उन्हे हताश अवश्य कर रही थी पर इससे वे किसी दूसरे खेमे मे नही गये बल्कि अपने साहित्यिक शैली के कलेवर को आदर्श यथार्थवादी की जगह यथार्थवादी कर लिया। प्रसाद के साहित्य मे भी गॉधीवादी मान्यताओ का विरोध नही दिखाई पडता बल्कि समर्थकता ही दिखाई पडती है। उनका साहित्यिक सदर्भ प्राय प्राचीन इतिहास है पर यह सदर्भ उन्हे अप्रासगिक नही बल्कि और अधिक प्रासंगिक सिद्ध करता है, क्योकि स्वय उनके अनुसार वे इस सासारिक कारावास (जेल) को बसाने मे नही तोडने मे विश्वास करते थे। फलत. उन्होने साम्राज्यवादी शक्तियो और उनके समर्थको पर सीधे–सीधे आक्रमण न करके, अपरोक्ष रुप से साहित्य के द्वारा जन मे उद्दाम राष्ट्रीयता के बीज आरोपित करके, आक्रमण करते है। उनकी परिष्कृत भाषा उन्हे उतना लोकप्रिय न बना सकी जितना उनके अन्य समकालीन साहित्यकार रहे। मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्र मे प्रचलित विचारधारा के अनुयायी रहे। उन्होने अपने आरम्भिक कृतियो मे जहॉ तिलक के उग्र राष्ट्रवाद मे आस्था प्रकट की वही बाद की रचनाओ मे, जब तिलक का अवसान और गॉधीजी का उदय हुआ तो पूर्णत गॉधीवादी तरीको के प्रचारक–प्रसारक हो गये। वे अपनी 'भारत–भारती' और 'साकेत' रचनाओ को लेकर अधिक लोकप्रिय हुए उन्हे, जननायक गॉधीजी ने 'राष्ट्रकवि' की उपाधि भी दी। यह इत्तफाक भी हो सकता है कि प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला अपने विस्तृत साहित्यिक सदर्भों के बावजूद गॉधीजी के उतने नजदीक न हो सके जितने मैथिलीशरण गुप्त रहे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला गॉधीवादी तरीको से एक सीमा तक ही सहमत रहे। वे गॉधीजी कि उस शैली का विरोध करते है जिसमे आन्दोलन का जनवादी स्वरुप होने पर वे आन्दोलन को तानाशाही ढग से रोक देते है। माखनलाल चतुर्वेदी अपने क्रान्तिदर्शी साहित्यिक एव व्यवहारिक आयामो को गॉधीवादी प्रभाव मे आकर नये आयाम देते है और एक समर्पित बलिदानी की भॉति गॉधीवादी मान्यताओ के विज्ञापक बन जाते है। महादेवी वर्मा गॉधीजी के व्यक्तिगत आग्रह पर निवृत्ति मार्ग से प्रवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख होती है और गॉधीवादी मान्यताओ मे आस्था व्यक्त करते हुये मार्क्सवादी विचारधारा को आयातित होने के कारण शका की दृष्टि से देखती है। सुमित्रानन्दन पत, प्रचलित विचारधाराओ के द्वद्व

से जूझते हुए एक नवीन सास्कृतिक सघर्ष की बात करते है। जन की बात करते हुए भी वे कही भी गॉधीवाद से असहमत नही दिखाई देते बल्कि उनके व्यक्तित्व से प्रभावित जान पडते है।

समकालीन परिवेश मे किसानो एव मजदूरो की दयनीय स्थिति हिन्दी साहित्यकारो को अधिक उद्वेलित करती है। प्राय सभी रचनाकार उनकी समस्याओ तथा उनसे मुक्ति का चित्रण बेबाकी से करते है। मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' कविता किसानो के यातनापूर्ण जीवन एव मजदूर बनने की प्रक्रिया का एक चक्रीय एव विशद विवरण प्रस्तुत करता है। प्रेमचन्द के आरम्भिक उपन्यास 'प्रेमाश्रम' मे भी कृषक असन्तोष की अनुगूँजें सुनाई पडती है। उनकी कहानियो एव उपन्यासो मे मजदूर, किसान, एव शोषित जन बडे पैमाने पर स्थान प्राप्त किए है। उपन्यास 'गोदान' और कहानी 'कफन', 'पूस की रात' इस दृष्टि से रचित उनकी श्रेष्ठ रचनाएँ है। यद्यपि प्रेमचन्द समकालीन किसान आन्दोलनो को सही दिशा नही दे पाये है। निराला मजदूरो एव किसानो कि दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार पूँजीपति वर्ग तथा ऐसे सभी वर्गों को अपने साहित्य के द्वारा चुनौती देते है, जो उनके शोषण के लिए उत्तरदायी रहे है। वे कृषको एव मजदूरो की शक्ति को पहचानते हुये अपने रचनाओ मे उन्हे महत्तापूर्ण स्थान देते है तथा पूँजीपति एव जमीदारो की शोषण प्रवृत्ति की आलोचना करते है। जयशकर प्रसाद अपने अतीत सदर्भों की वजह से किसानो एव मजदूरो का समकालीन सदर्भ मे चित्रण प्रस्तुत नही कर पाते यद्यपि 'कामायनी' मे ऐसे वर्ग के असन्तोष का उल्लेख है जो यान्त्रिक कुशासन से ऊब गये है। 'मधुवा' कहानी की बुनावट का सदर्भ सर्वहारा वर्ग से ही है। 'पुरस्कार' कहानी की नायिका मधूलिका कृषक कन्या है जो राष्ट्र की सुरक्षा मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। महादेवी वर्मा की श्रमिक वर्ग से पूरी सहानुभूति है। श्रमिक वर्ग का साहचर्य उन्हे बौद्धिक वर्ग के साहचर्य से अधिक सतुष्ट करता है। माखनलाल चतुर्वेदी श्रमिक और किसानो की दयनीय स्थिति एव उनको नियन्त्रित करने वालो की समृद्धतर स्थिति पर प्रश्न उठाते है और उन्हे चेतावनी भी देते है। सुमित्रानन्द पत का साहित्य भी मजदूरो एव किसानो की दयनीय स्थिति से उद्वेलित है।

हिन्दी साहित्य कर्मियो ने इस युग मे उस समस्या को भी बडे पैमाने पर चिन्हित किया है जिसमे कृषक, समकालीन साम्राज्यवादी शक्ति और उसके समर्थको की जन विरोधी प्रकृति के कारण अपने समस्याओ का समाधान नही तलाश पाते और सम्पूर्ण कृषकीय व्यवस्था से पलायन करके मजदूर बन जाते है। इस परिणति को हिन्दी साहित्यकार समस्या का समाधान नही स्वीकार करते बल्कि एक समस्या का दूसरे समस्या के रूप मे रूपान्तरण मात्र मानते है। भारत जैसे कृषि प्रधान राष्ट्र मे भारतीय किसान हिन्दी साहित्यकारो के आदर्श पात्र रहे है जिस पर किसी भी प्रकार का आघात साहित्यकारो को आहत करता है। इस युग के हिन्दी रचनाकार आमतौर पर किसानो एव मजदूरो मे विभेद नही करते।

दोनो को समस्याग्रस्त मानते हुये एक ही खॉके मे रखते है। शायद उनके लिये विभाजन अनिवार्य भी न था क्योकि उनको लेकर वे राजनीति (नेताओ की तरह) नही करना चाहते थे बल्कि उनकी समस्याओ की सवेदनशील प्रस्तुति एव समाधान ही उनका लक्ष्य होता है। बेगारो की समस्या पर भी साहित्यकारो की दृष्टि लगी रहती है। उनकी समस्याओ का उल्लेख प्राय सभी रचनाकार करते है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के इस दौर मे स्त्रियो को पारम्परिक रुढिगत बन्धनो से मुक्त करने एव नये परिवेश मे उनके लिये नई और सम्मानजनक भूमिका, जो लगभग समानता पर आधारित हो, को तैयार करने मे इस युग के साहित्यकार जुटे रहे है। यद्यपि उनकी परिवेशगत एव सस्कारगत सीमाएँ उन्हे इस प्रश्न पर सीमाकित भी करती रही। इस युग के लिए शिक्षा एक ऐसी जादुई छडी थी जिससे जुडने मात्र से समस्त नारी समस्याओ का समाधान हो जायेगा, ऐसा प्रायः सभी रचनाकारो ने स्वीकार किया है। दहेज प्रथा, बाल विवाह, बेमेल विवाह, वैधब्य जीवन, कन्याओ की उपेक्षणीय स्थिति और नारी–पुरूष के बीच असमानतापूर्ण व्यवहार इस युग के साहित्यकारो के लिये प्रमुख नारी प्रश्न रहे। समकालीन साहित्यिक रूझानो से यह पता चलता है कि समाज का एक वर्ग इस बात से भी भयभीत था कि नारी समाज में शिक्षा का प्रसार अधिक होने पर पुरूषो का प्रभावपूर्ण पारम्परिक अधिकार जाता रहेगा। अत इस युग के साहित्यकारो ने यह भी विज्ञापित किया कि नारी शिक्षा से पुरूषो के पारम्परिक अधिकार पर कोई प्रभाव नही पडने वाला है, बल्कि इससे वे उन सभी पारम्परिक (चहारदीवारी के भीतर) कार्यों को अधिक कुशलता से कर सकेगी। शिक्षित स्त्रियो का यह रूप व्याख्यायित करके साहित्यकार न केवल अपने परिवेशगत दबावो को उजागर कर रहे थे बल्कि समाकालीन शिक्षित समाज पर एक दबाव भी तैयार कर रहे थे।

इसी बीच साहित्यिकारो ने अपने पात्रो के माध्यम से उनकी समकालीन समाज मे सक्रियता को भी चित्रित किया। प्रेमचन्द के उपन्यासो कहानियो मे ढेर सारे नारी पात्र है जो चहारदीवारी से बाहर निकलकर राष्ट्र एव समाज सेवा के लिये सक्रिय भूमिका निभानी है। प्रसाद साहित्य मे यह सख्या और सक्रियता और अधिक है। उनके नारी पात्र राष्ट्र को समर्पित और त्यागपूर्ण सेवाये अर्पित करती है जो वयस्क होने पर भी अविवाहित रहती है और राष्ट्रीय गतिविधियो मे सलग्न रहती है। प्रसाद के 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की प्रमुख पात्र ध्रुवस्वामिनी अपने को वस्तु समझने और कायर पुरुष के सरक्षकत्व का विरोध करती है और कहती है कि 'मेरा अपराध यही है कि मैने कोई अपराध नही किया है'। तथा 'आज यह निर्णय हो जायेगा कि मै कौन हूँ' ? कहानी 'सालवती' की प्रमुख पात्र वेश्यावृत्ति के खिलाफ सकल्प लेती है तथा उसकी समाप्ति के लिये सकारात्मक समाधान प्रस्तुत करती है। निराला के कहानियो, उपन्यासो तथा कविताओ मे नारी जगत की सक्रियता और पीडाओ को खूब स्थान मिला है।

वे महिलाओ को सदेश देते है कि अपने को दूसरो की ऑखो से नही बल्कि स्वय की ऑखो से देखे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन मे स्त्रियो की सक्रिय भूमिका से उत्साहित होते है तथा उनके सहयोग को अमूल्य मानते है यद्यपि वे कई सकारात्मक स्थापनाएँ उनमे इस लिये चाहते है जिससे वे अच्छी मॉ की भूमिका निभा सके।

सुमित्रानन्दन पत तो नारी को ही अपनी सम्पूर्ण साहित्यिक कर्म की प्रेरणा स्वीकार करते है और उनका सकारात्मक चित्रण करते है। मैथिलीशरण गुप्त अभी तक उपेक्षित ऐतिहासिक स्त्री पात्रो को अपने साहित्य सन्दर्भों के द्वारा नये रूप मे स्थापित करते है चाहे वह उर्मिला हो या यशोधरा या विष्णुप्रिया हो। उनके इस चित्रण से महात्मा गॉधी भी विस्मित होते है। स्त्रियो की पारम्परिक भूमिका उनके लिए आदर्श रही है। हॉ, उसमे वे रूढियॉ न हो जो उनके अस्तित्व पर प्रश्न खडा करती है। सती–सावित्री उनके लिए आदर्श है। माखनलाल चतुर्वेदी उन्हे राष्ट्र के समकालीन प्रश्नो के समानान्तर वीर क्षत्राणी वेश मे सामने आने के लिए कहते है।

महादेवी वर्मा अपनी सजातीय अतरगता एव सवेदनशीलता के कारण नारी जगत की समस्याओ को सर्वाधिक बेबाकी से रख पाती हैं। 'श्रृखला की कडियॉ' नारी समस्या और उसके समाधान पर लिखी गई ऐसी निबन्ध श्रृखला है जो युगीन सीमाओ, सस्कारो का सर्वाधिक अतिक्रमण करती है। जिसमे वे ऐसी समस्त बेडियो को गलकर मोम बनने की बात करती है जो उनके विकास मे बाधक है साथ ही उनके विकास को सो पीस के रूप मे करने का वे विरोध करती है। महादेवी वर्मा उस मानसिकता का भी विरोध करती है जिसमे यह कहा जाता है कि केवल स्वतत्र कर देने मात्र से ही नारियॉ समस्या मुक्त हो सकेगी बल्कि वे स्पष्ट करती है कि उनकी स्थिति इतनी दयनीय (पशु सदृश) हो चुकी है कि उचित दिशा नेतृत्व के अभाव मे वे दिशाहीन विकास का शिकार हो सकती है। महादेवी वर्मा नारी जगत के अतिरेक के स्तर पर स्वतत्रता के दुरपयोग की सभावना के प्रति सचेत भी करती है और कहती है बन्दी बेडियो की जगह अपने पैर न काट ले।

धर्म और समकालीन समाज में उसके साम्प्रदायिक रूप पर हिन्दी साहित्यकारो ने काफी कुछ लिखा है। प्रेमचन्द का रगभूमि उपन्यास ईसाई धार्मिक सर्वोच्चता के सिद्धान्त का न केवल खडन करता है वरन हिन्दू धर्म की सकारात्मक मान्यताओ की प्रशसा भी करता है। प्रेमचन्द ऐसा करके सभवत साम्राज्यवाद के पोषित धर्म ईसाई धर्म को कटघरे मे खडा करते है क्योकि भारतीय मानस की सरचना धार्मिक मान्यताओ मे अधिक आस्था रखती थी। प्रेमचन्द अपने उपन्यास, 'कायाकल्प' मे साम्प्रदायिक हिसा का भी चित्रण करते है जो छोटे–छोटे कारणो के चलते वीभत्स रूप ले लेती है। प्रेमचन्द अपने निबन्धो और कहानियो के माध्यम से भी साम्प्रदायिक तनाव को समाप्त करके एकता का पाठ पढाने की

कोशिश करते है। वे ऐसे किसी रचनाकार की आलोचना करते है जो साम्प्रदायिकता के विषवृक्ष को अपनी रचनाओ से पोषित करते है। प्रेमचन्द हिन्दी–उर्दू भाषा के साम्प्रदायिक आधार की भी आलोचना करते है। साथ ही साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर हिन्दुओ को धैर्य से काम लेने की शिक्षा देते है। प्रसाद अपने रचना सन्दर्भ मे समकालीनता के अभाव के कारण समकालीन साम्प्रदायिक प्रश्नो से कम ही दो चार होते है। यद्यपि प्रसाद धर्म के प्रश्न को लेकर काफी जद्दोजहद करते है। धर्म का स्वरूप कैसा होना चाहिये? तथा धर्म का राज्य से सम्बन्ध कैसा होना चाहिये? आदि विषयो पर प्रसाद अपनी रचनाओ के माध्यम से विस्तृत विमर्श करते है। साथ ही शासको की साम्प्रदायिक भेद नीति की अलोचना करते हुए यह स्थापित करते है कला एवं साहित्य सौहार्द स्थापित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपने रचना सन्दर्भो की बजह से सतही अध्येताओ द्वारा साम्प्रदायिक रचनाकारो की श्रेणी मे रखे जाते है। जबकि अधिक सूक्ष्मता से अन्वेषण करने पर वे साम्प्रदायिक सौहार्द की वकालत करते नजर आते है। सुमित्रानन्दन पत, माखनलाल चतुर्वेदी एव महादेवी वर्मा कही भी साम्प्रदायिकता को प्रश्रय नही देते बल्कि ऐसी उन सभी प्रवृत्तियो का विरोध करते है जिनसे साम्प्रदायिकता को प्रश्रय मिलता है। इन रचनाकारो के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता एक ऐसी शक्ति हैं जिसके द्वारा न सिर्फ विदेशी शत्रुओ से मुकाबला किया जा सकता है वरन् देशी शत्रुओ से भी निजात पाई जा सकती है।

भाषा का प्रश्न हिन्दी साहित्यकर्मियो के लिए स्वय के अस्तित्व से जुडा हुआ था। अत हिन्दी भाषा के आरम्भिक रचनाकार ही उसको नये सन्दर्भों से सयुक्त करते हुए और उसकी जन शक्ति को पहचानते हुए राष्ट्रभाषा के रूप मे स्थापित करने की जद्दोजहद करते है। हिन्दी के रचनाकारो ने विदेशी भाषा को गुलामी का प्रतीक स्वीकार किया और देशी भाषा को स्वतत्रता का प्रतीक माना। प्रेमचन्द हिन्दी–उर्दू भाषा की एकता के लिए प्रयास किए और हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए दक्षिण भारत तक की यात्राऐं की। अपनी पत्रिका 'हस' को प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य परिषद को दे दिए जिसमे अन्य भारतीय भाषाओ के महत्वपूर्ण एव लोकप्रिय साहित्य हिन्दी मे अनूदित होकर प्रकाशित होते थे। जयशकर प्रसाद ने भाषा के उत्थान के लिए अपने साहित्यिक लेखन क इतर कोई विशेष उल्लेखनीय प्रयास नही किए। उनकी भाषा अपनी युग सीमा का अतिक्रमण करती प्रतीत होती है सभवत इसी कारण वे अपने युग मे उतने लोकप्रिय न हो सके जितने उनके साथी रचनाकार। भाषा का परिष्कार एव मानकीकरण उनका प्रथम लक्ष्य था जिसके कारण उनकी भाषा पर दुरूहता के भी आरोप लगे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भाषा के प्रश्न को लेकर समकालीन राजनीतिज्ञो से भी मुखर बहस की। महात्मा गॉधी, जवाहर लाल नेहरू की हिन्दी के प्रति की गई टिप्पणियॉ निराला की भाषिक सवेदना को आहत की और वे बहस मे उन लोगो को निरूत्तर किए। यही नही देशी भाषाओ के विकास मे साम्राज्यवादी अवरोधो का भी खुलासा निराला ने किया। मैथिलीशरण गुप्त भाषा को जीवन के लिए अपरिहार्य घोषित करते हुए उसके विकास के लिए मिल जुलकर सजगता के साथ प्रयास करने की बात करते है और उसे विभिन्न अवरोधो से मुक्त करने के लिए ईश्वर से भी प्रार्थना करते है। भाषा का प्रश्न सुमित्रानन्दन पत के लिए विभिन्न सम्प्रदायो एव वर्गों की एकता से जुडा हुआ है और उनके लिए राष्ट्रभाषा के योग्य हिन्दी भाषा ही है। महादेवी वर्मा हिन्दी भाषा के भविष्य को लेकर आश्वस्त है और उसके विकास को स्वाभाविक एव अनिवार्य मानती है। साथ ही यह भी स्वीकार करती है कि हिन्दी किसी भी अन्य भारतीय भाषाओ के मार्ग का अवरोधक नही बन सकती। महादेवी वर्मा हिन्दी गद्य के विकास में सुधार आन्दोलनो की भूमिका की चर्चा करते हुए कहती है कि इससे उनमे प्रगतिशीलता आई है।

समकालीन शैक्षिक व्यवस्था के व्यवसायीकरण और उसकी उपेक्षा तथा भारतीय सस्कृति से जुडाव न होने की आलोचना प्राय सभी रचनाकार करते है। पाश्चात्य सस्कृति के प्रसार में समकालीन शैक्षिक व्यवस्था को सहायक मानते हुए भी वे उसका विरोध करते है। समकालीन शिक्षण सस्थाओ मे रूपये–पैसो की अधिक महत्व देने के कारण जो उस सस्था से छात्र निकलते है वे रूपये–पैसे को ही अधिक महत्व देते है तो इसमे आश्चर्य क्या? ऐसा विचार प्रेमचन्द व्यक्त करते है। साथ ही वे शिक्षको (प्राथमिक) के वेतन मे बढोत्तरी को अनिवार्य मानते है जिससे उनको आर्थिक दबाव से मुक्ति मिल सके। महादेवी वर्मा पढे लिखे विद्यार्थियो की तुलना टकसाली सिक्को से करती है जिनमे एकरूपता होती है विविधता नही। मैथिलीशरण गुप्त भी शिक्षा के बिकाऊपन एव दुरूहता की आलोचना करते है और यह प्रश्न उठाते है कि इस व्यवस्था में निर्धन छात्र कैसे शिक्षा प्राप्त कर सकेगे।

साम्राज्यवाद एव उसको समर्थन देने वाली देशी शक्तियो के विभिन्न घटको के छल प्रपचो का खुलासा हिन्दी भाषा के प्राय सभी रचनाकार करते रहे। साम्राज्यवाद उनके लिए एक ऐसी नकारात्मक प्रवृत्ति है जिसके कारण ही अन्य सारी कुप्रवृत्तियॉ देश मे व्याप्त है चाहे वह दयनीय अर्थ व्यवस्था हो, सामाजिक रूढियॉ हो, साम्प्रदायिक तनाव हो, शिक्षा का अप्रसार हो या भाषा की प्रगति। अत रचनाकारो का प्रथम लक्ष्य साम्राज्यवाद और उसकी सहयोगी शक्ति का विरोध करना था। चाहे वह सीधे–सीधे करे या परोक्ष रूप में विभिन्न प्रतीको के द्वारा। साम्राज्यवादी दबावो और वर्जनाओ को भी हिन्दी साहित्यकार इस पूरे काल मे महसूस करते रहे।

प्रेमचन्द प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामो से आश्वस्त होते हुए कहते है, कि अब कमजोर राष्ट्र भी सम्मान के साथ रह सकेगे। यही नही वे विभिन्न सम्मेलनो मे भारत की स्वतत्रता को उलझाते हुए उसमे विलम्ब करने की साम्राज्यवादी चालो की खुलासा करते है। वे साम्राज्यवाद एव सामन्तवाद के गठबन्धन को जनता के शत्रु के रूप मे देखते है और यह प्रचारित करते है कि कोई भी दल हो (ब्रिटेन मे) सबका एक ही लक्ष्य है भारत को लम्बे काल तक विभिन्न प्रयासो के द्वारा गुलाम बनाए रखना। प्रेमचन्द साम्राज्यवाद के खिलाफ जनजागरण की बात करते हुए युवको का आह्वान करते है कि वे इस चेतना को गावो मे प्रचारित–प्रसारित करे। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भी गॉव मे राष्ट्रीय चेतना के प्रसार पर बल देते है और कहते है कि गॉवो मे अभी वे उन सब बातो से अनभिज्ञ है जो राष्ट्रीय नेताओ के एजेन्डे मे शामिल है। प्रसाद राष्ट्र के सभी नागरिको मे चाहे वह स्त्री हो या पुरूष राष्ट्र के प्रति गौरव भाव के बीज आरोपित करते है और राष्ट्र सेवा के मूल्य को प्रथम और अन्तिम स्वीकार करते हैं । उसके लिए कोई भी त्याग या कुर्बानी को सहज बनाने का प्रयास अपने साहित्यिक प्रतीको के माध्यम से करते है।

सुमित्रानन्दन पत देश मे व्याप्त जन जागृति को साम्राज्यवाद के लिए खतरा स्वीकार करते है और उसका अस्तित्व इसी कारण सकट मे देखते है। मैथिलीशरण गुप्त अपने रचनाकार्य के द्वारा साम्राज्यवाद के खिलाफ जागृति फैलाते है। विशेषकर 'भारत–भारती' के द्वारा देश की सम्पूर्ण व्यवस्था मे व्याप्त सम्पूर्ण नकारात्मक प्रवृत्ति के लिए लम्बी दासता को जिम्मेदार ठहराते है और उससे मुक्ति के लिए समग्र प्रयास करने की बात करते है । महादेवी वर्मा और माखनलाल चतुर्वेदी भी अपने निजी शैली मे इसी तरह के प्रयास करते है।

इस युग के रचनाकारो के लिए स्वतत्रता एक स्वर्णिम एव आदर्श मूल्य है जबकि परतत्रता या गुलामी एक तरह का नकारात्मक मूल्य, जिसकी स्वीकृति ही अनेक समस्याओ को जन्म देती है। फलत प्रत्येक व्यक्ति को अपने को स्वतत्र बनाने के लिए सार्थक प्रयास करना चाहिए। कभी–कभी तो रचनाकार वाह्य गुलामी के बावजूद स्वतत्रता को महसूस करने की बात करते है तब उनका दृष्टिकोण दार्शनिक किस्म का हो जाता है। यद्यपि अपने हाथ से सूत कात कर वस्त्र पहनने, अपने खेत मे उपजाए अन्न का सेवन करने और किसी भी प्रकार के अन्याय का प्रतिरोध करने को ही रचनाकार स्वतत्रता के रूप मे विज्ञापित करते है। विशेषकर प्रेमचन्द और मैथिलीशरण गुप्त जो कि उनके उपर गॉधीवाद के प्रभाव को दर्शाता है। यद्यपि अन्य रचनाकार और स्वयं प्रेमचन्द राजनीतिक मुक्ति की भी बात बडे शिद्दत से करते है साथ ही आर्थिक सामाजिक एव सास्कृतिक मुक्ति की भी। इन रचनाकारो का यह समग्र मुक्ति अभियान अपने समकालीन राजनीतिज्ञो के थकान, हताशा एव निहित स्वार्थों की बलि चढ गया और उनके लिये सिर्फ राजनीतिक मुक्ति ही समग्र मुक्ति बन गई। मुक्ति के इस उत्सव मे

साहित्यकार भी अपने को गुम कर लिये। शेष सारी व्यवस्थाये ज्यो कि त्यो स्वीकार कर ली गयी जिससे आज भी सम्पूर्ण जनता पिस रही है। प्रेमचन्द कि यह शका की स्वतत्रता का यह आशय नही है कि जान के बदले गोविन्द बैठ जाएँ, सत्य साबित हुई और आज के समकालीन साहित्यकार की आवाज आज के राजनीतिज्ञो के समक्ष नक्कारखाने मे तूती की आवाज सिद्ध हो रही है।

# ग्रन्थ सूची

## प्राथमिक स्रोत :–


आनन्द, राम, सपादक, प्रेमचन्द रचनावली, खण्ड–१ से २०, जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली–१९९६

चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद, सपादक, राष्ट्रवाणी मैथिलीशरण गुप्त, साकेत प्रकाशन, झाँसी–१९८६

चतुर्वेदी, श्री नारायण, सपादक, सरस्वती हीरक जयन्ती विशेषाक–१९००–१९५९, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद–१९६१

दास, ब्रजरत्न, सपादक, भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग–१ से ३, काशी सवत २००६.

द्विवेदी, मुकुन्द, सपादक, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, भाग–१ से ११, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१९९१.

गुप्त, मैथिलीशरण, नहुष, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, संवत २०००

गुप्त, मैथिलीशरण, सिद्धराज, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०२२

गुप्त, मैथिलीशरण, साकेत, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी–२००२

गुप्त, मैथिलीशरण, सैरन्ध्री, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०००

गुप्त, मैथिलीशरण, पत्रावली, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०००

गुप्त, मैथिलीशरण, अनघ, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत १९९५

गुप्त, मैथिलीशरण, यशोधरा, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०१४

गुप्त, मैथिलीशरण, किसान, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत १९८५

गुप्त, मैथिलीशरण, भारत–भारती, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०४४

गुप्त, मैथिलीशरण, विष्णुप्रिया, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत २०२६

गुप्त, मैथिलीशरण, गुरूकुल, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, सवत १९८५

गुप्त, मैथिलीशरण, हिन्दू, साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, प्रकाशन वर्ष अप्राप्त

जोशी, श्रीकान्त, सपादक, माखनलाल चतुर्वेदी रचनावली, भाग–१ से १०, वाणी प्रकाशन, दिल्ली–१९८३

जोशी, श्रीकान्त, सपादक, माखनलाल चतुर्वेदी की समग्र कविताएँ, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली–१९९६

मल्ल, विजयशकर, सपादक, प्रतापनारायण ग्रन्थावली, भाग–१, २, नागरी प्रचारणी सभा काशी, सवत २०१४

मिश्र, शिवकुमार, सपादक, आजादी की अग्निशिखाएँ, इण्डियन फारमर्स फर्टिलाइजर कोआपरेटिव लिमिटेड दिल्ली–१६८८

नवल, नन्द किशोर, सपादक, निराला रचनावली, भाग–१ से १०, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६८३

पत, सुमित्रानन्दन, सपादक, सुमित्रानन्दन पत ग्रन्थावली, भाग–१ से ७, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६६३

पत, सुमित्रानन्दन, तारापथ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६५

प्रसाद, जयशकर, लहर, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी–१६८०

प्रसाद, जयशंकर, प्रेमपथिक, भारती भण्डार, काशी, संवत–१६८५

प्रसाद, जयशकर, कामायनी, आमुख प्रकाशन संस्थान, दिल्ली–१६६३

प्रसाद, जयशकर, ध्रुवस्वामिनी, लोकप्रिय प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६४

प्रसाद, जयशंकर, महाराणा का महत्व, भारती भण्डार, काशी, सव, १६८५

प्रसाद, जयशकर, आकाशदीप, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, सवत २००१

प्रसाद, जयशकर, झरना, भारती भण्डार, बनारस, सवत, १६६१

प्रसाद, जयशकर, कानन कुसुम, हिन्दी पुस्तक भण्डार, काशी–१६२६

प्रसाद, जयशकर, ऑसू, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सवत २०००

प्रसाद, जयशकर, करुणालय, भारती भण्डार, काशी, १६६६

प्रसाद, जयशकर, ऑधी, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी–१६२६.

प्रसाद, जयशकर, इन्द्रजाल, लीडर प्रेस, इलाहाबाद–१६३६

प्रसाद, जयशकर, काव्य कला तथा अन्य निबन्ध, गीताप्रेस, गोरखपुर–१६३६

प्रसाद, जयशकर, प्रतिध्वनि, लीडर प्रेस प्रयाग, सवत, २००७

प्रसाद, जयशकर, छाया, लीडर प्रेस, इलाहाबाद–१६७४

प्रसाद, रत्नशकर, सपादक, प्रसाद वागमय खण्ड–१, २, ३, लोक भारती प्रकाशन–१६८५

प्रेमचन्द, प्रेमाश्रम, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

प्रेमचन्द, रगभूमि, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६३

प्रेमचन्द, प्रेमपच्चीसी, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

प्रेमचन्द, मानसरोवर–२, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६८५

प्रेमचन्द, सेवासदन, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

प्रेमचन्द, गुप्तधन भाग–१, २, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

राय, अमृत, सपादक, प्रेमचन्द विविध प्रसग, भाग–१, २, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

शरद, ओकार, महादेवी वर्मा साहित्य, खण्ड–१, २, ३, सेतु प्रकाशन, झाँसी–१६६६

उपाध्याय, प्रभाकर, सपादक, प्रेमघन सर्वस्व, भाग–१, २, ३, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सवत १६६६

यायावर, भारत, सपादक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रचनावली खण्ड–१ से १५, किताबघर, दिल्ली–१६६५

## द्वितियक स्रोत :–

एब्रम्ब, एम०एच०, ए ग्लासरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स, प्रिज्म बुक्स, बगलौर,१६६३

एकरमैन, कान्वर्सेशन्स विथ गेटे, जे०एम० डेन्ट एण्ड सस लिमिटेड लन्दन–१६३०.

एण्डरसन, बेनेडिक्ट, इमैजिड कम्यूनिटीज, वर्सो, लन्दन–१६६३

अर्गल, राजेश्वर प्रसाद, प्रसाद के तीन ऐतिहासिक नाटक, साहित्य भवन, इलाहाबाद–१६६४.

अश्क, उपेन्द्रनाथ, प्रेमचन्द और देहात, हस, प्रेमचन्द स्मृति अक, मई १६६७.

बरुआ, ऋषि जैमिनी कौशिक, श्री मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन ग्रन्थ, जैमिनी प्रकाशन, कलकत्ता–१६५६

बरुआ, ऋषि जैमिनी कौशिक, माखनलाल चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी–१६६०

बेल्सी, कैथरीन, क्रिटिकल प्रैक्टिकल, मेथ्यून, लन्दन–१६८०.

बेजामिन वाल्टर, इल्यूमिनेशस, शौकेन, न्यूयार्क–१६७०

भटनागर, रामरतन, प्रसाद का जीवन और साहित्य, सरस्वती प्रेस, दिल्ली,१६६२

भटनागर, रामरतन, निराला और जागरण, साथी प्रकाशन, सागर–१६६२

कापरा, डी०एल०, रीथकिग, इटलेक्चुएल हिस्ट्री, कार्नेल, यूनिवर्सिटी प्रेस, इथका–१६८३

चन्द्र, सुधीर, लिटरेचर एण्ड सोशल कौनशसनेस इन कोलोनियल इण्डिया, आक्सफोर्ड, युनिवर्सिटी प्रेस–१६६२

चन्द्र, विपिन, आधुनिक भारत मे साम्प्रदायिकता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–१६६६

चन्द्र, विपिन, भारत का स्वतत्रता सघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–१६६२

चन्द्र, विपिन, भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन  दीर्घकालिक गतिशीलता, हिन्दी अनुवाद, अनामिका पब्लिसर्स दिल्ली–१६६८

चेलिसेव, ये०पे०, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली–१६८२.

चेलिसेव, ये०पे०, पत तथा आधुनिक हिन्दी कविता मे परम्परा और नवीनता, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६७०
चटर्जी, पार्थ, ए नेशन एण्ड फ्रेगमेट्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली–१६६४
चटर्जी, पार्थ, नेशनलिजम ए डेरिवेटिव डिस्कोर्स, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली–१६८३
चातक, गोविन्द, प्रसाद के नाटक स्वरुप एव सरचना, तक्षशिला प्रकाशन, दिल्ली–१६६५
चतुर्वेदी, जगदीश प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त की काव्य यात्रा, साहित्य सगम, इलाहाबाद–१६८६
चतुर्वेदी, जगदीशचन्द्र, चन्द्रा पाण्डेय, सपादक, प्रेमचन्द और मार्क्सवादी आलोचना, सस्कृति प्रकाशन, कलकत्ता–१६६४
चतुर्वेदी, रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६६
चतुर्वेदी, रामस्वरूप, प्रसाद निराला अज्ञेय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६७
दत्त, रजनी पाम, आज का भारत, (हिन्दी अनुवाद) मैकमिलन, दिल्ली–१६७७
देसाई, ए०आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, मैकमिलन, दिल्ली–१६६१
देवी, शिवरानी, प्रेमचन्द घर मे, आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली–१६८३
गोपाल, मदन, अमर कथाकार प्रेमचन्द, राजपाल एण्ड सस दिल्ली–१६८१
घोष, प्रफुल्ल चन्द्र, महात्मा गॉधी, मित्र प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड इलाहाबाद, १६६५
गोयनका, कमल किशोर, प्रेमचन्द अध्ययन की नई दिशाऍ, साहित्य निधि दिल्ली–१६८१
गोयनका, कमल किशोर, रगभूमि के नये आयाम, नचिकेता प्रकाशन–१६८१
ग्रियर्सन, जार्ज, लिगविस्टिक सर्वे आफ इडिया, कलकत्ता, खण्ड–१०, भाग–१, १६११
ग्रीन ब्लैट, स्टीफेन, द फार्म्स आफ पावर एण्ड द पावर आफ फार्म इन द रेनेसा, जॉनर–१६८२
गूच, जी०पी०, हिस्ट्री एण्ड हिस्टोरिएस, इन द नाइनटीथ सेचुरी ओरिएन्ट लागमैस, लन्दन–१६६१
गुरू, राजेश्वर, गोदान, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–१६६७
गुप्त, किशोरी लाल, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस–१६५८
गुप्त, किशोरी लाल, प्रसाद का विकासात्मक अध्ययन, वाराणसी–१६५२
इगल्टन, टेरी, मार्क्सिजम एण्ड लिटरेरी क्रिटिसिजम, वर्कले प्रेस, कैलफोर्नियॉ–१६७६
जेमसन, फ्रेडरिक, दी पोस्टमाडर्न कडीशन, राटलेज, लन्दन–१६६६
जैदी, शैलेश, प्रेमचन्द की उपन्यास यात्रा – नवमूल्याकन, नवयुग प्रेस, अलीगढ–१६७८
जोशी, ललित, साहित्य और इतिहास लेख अर्न्तसम्बन्ध–सन्दर्भ गुमानी, इतिहास बोध, इलाहाबाद–१६६६
जोशी, शान्ति, सुमित्रानन्दन पत, जीवन और साहित्य, भाग–१, २, राजकमल प्रकाशन, पटना–१६७७

जोशी, जगदीश चन्द्र, प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, सवत, २०१६
काफमैन, वाल्टर, फ्राम शेक्सपियर एक्सिजटलिजम, ऐकर बुक्स, न्यूयार्क–१६६०.
कालिगबुड, आर०जी०, द आइडिया आफ हिस्ट्री, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस–१६६२
कार, ई०एच०, इतिहास क्या है (हिन्दी अनुवाद) मैकमिलन, दिल्ली–१६७६
कात्यायनी, निराला की मुक्ति चेतना, आजकल, जुलाई–१६६७
खण्डेलवाल, विद्या, प्रसाद के नाटको मे राष्ट्रीय भावना, भारत बुक डिपो, पटना,१६८६
क्रिस्टोफर, आर०किग, वन लैगवेज टू स्क्रिप्ट्स द हिन्दी मूवमेट इन नाइनटीथ सेचुरी इण्डिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस–१६६४
मार्क्स, कार्ल, थीयरीज आफ सरप्लस वैल्यू, खण्ड–१, प्रोग्रेस पब्लिसर्स, मास्को–१६६४
मार्क्स, कार्ल, कैपिटल, खण्ड–१, अनुदित सेमुअल मूर और एडवर्ड स्कलिग, जार्ज एलेन एण्ड एनविन, लन्दन–१६४२
मदान, इन्द्रनाथ, सम्पादक, प्रसाद की प्रतिभा, नेशनल पब्लिसिग हाउस–१६७१.
मदान, इन्द्रनाथ, सपादक, सुमित्रानन्दन पत मूल्याकन, लोक भारती प्रकाश्न, इलाहाबाद–१६७५
मिश्र, शिवप्रसाद, प्रेमचन्द विरासत का सवाल, अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली–१६६२
मिश्र, राम प्रसाद, प्रसाद आलोचनात्मक सर्वेक्षण, पल्लव प्रकाशन, दिल्ली–१६६१.
मुखर्जी, सुजीत, टुवर्डस ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ इण्डिया, इण्डियन इस्टीट्यूट आफ एडवास्ड स्टडीज, शिमला–१६७५
मुक्ति बोध, गजानन माधव, कामायनी एक पुर्नविचार, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६६१
नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स–१६६६
नगेन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त पुर्नमूल्याकन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली–१६८७
नीलकान्त, सपादक, हिन्दी कलम, जुलाई–दिसम्बर–१६६४, हाथ प्रकाशन, इलाहाबाद
नीलाभ, परम्परा मोह और अपने समय से सघर्ष, आजकल जुलाई–१६६७
पाण्डेय, मैनेजर, साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ–१६८६
पाण्डेय, गगाप्रसाद, महीयसी महादेवी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१६७६
पाण्डेय, गगाप्रसाद, महाप्राण निराला, साहित्यकार ससद प्रयाग, सवत, २००६
पाण्डेय, पद्माकर, सपादक, राष्ट्रीय पत्रकार और अनन्य साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी–१६६५.
पत, सुमित्रानन्दन, शान्ति जोशी, संपादक, महादेवी स्मरण ग्रन्थ, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,१६६२

पालीवाल, कृष्णदत्त, महादेवी की रचना प्रक्रिया, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली–१६७१

पट्टाभि सीतारमैया, वी०पी०, कांग्रेस का इतिहास, अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली–१६३६

पट्टाभि सीतारमैया, वी०पी०, गॉधी और गॉधीवाद भाग–१, २, हिन्दी अनुवाद, आगरा–१६५७

प्रेमशकर, प्रसाद का काव्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–१६६८

प्रेमी, हरिकृष्ण, आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, माखनलाल चतुर्वेदी, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली–१६६०

राय अमृत, कलम का सिपाही, हस प्रकाशन, इलाहाबाद–१६६२

राय गुलाब, प्रसाद जी की कला, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा

राधाकृष्ण , सपादक, आज का भारतीय साहित्य, राजपाल एण्ड सस, दिल्ली–१६५८.

रोला, रोमा, विवेकानन्द (हिन्दी अनुवाद) लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,१६६३

रोलां, रोमां, रामकृष्ण की जीवनी, (हिन्दी अनुवाद) अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, १६६५

सईद, एडवर्ड, ओरियण्टलिजम, पेग्विन बुक्स, लन्दन,–१६६५

सईद, एडवर्ड, कल्चर इम्पियरीलिजम, विण्टेज, लन्दन–१६६४

सरकार, सुमित, राइटिग सोशल हिस्ट्री, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस–१६६७.

सरकार, सुमित, आधुनिक भारत (हिन्दी अनुवाद) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६६५

शरद, ओकार, मैथिलीशरण गुप्त, बोरा एण्ड कम्पनी पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद–१६७०

शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य साधना भाग–१, २, ३ राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६७२

शर्मा, रामविलास, स्वाधीनता आन्दोलन के बदलते परिप्रेक्ष्य, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–१६६२

शर्मा, रामविलास, प्रेमचन्द और उनका युग, नेशनल प्रिटिग वर्क्स, दिल्ली–१६५२

शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६७७

शर्मा,रामविलास, भारत मे अग्रेजी राज और मार्क्सवाद, खण्ड–१, २, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६८२

शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६५६

शर्मा, रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–१६७८

शर्मा, रामविलास, भारतीय नवजागरण और यूरोप, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय–१६६६

शर्मा, सन्तोष, महादेवी का बिम्ब बोध और प्रतीक सृजन, आर्य बुक डिपो, दिल्ली–१६८५.

शर्मा, कृष्णदेव, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–१६७६.

शास्त्री, धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी, गुप्त जी के काव्य मे कारूण्य धारा, पुस्तक भण्डार, लोहिया सराय, १९४१

शास्त्री, देवदत्त, सपादक, महादेवी अभिनन्दन ग्रन्थ, राष्ट्रीय मुद्रणालय, प्रयाग, (प्रकाशन वर्ष अप्राप्त)

शभूनाथ, सपादक, समकालीन सृजन, राष्ट्रीय आन्दोलन और प्रसाद, सयुक्ताक ४–६ अक्टूबर–८८, जून–८९, कलकत्ता

शभूनाथ, अशोक जोशी, सपादक, भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, आने वाला कल प्रकाशन, कलकत्ता–१९८६

शीन, विसेट, गॉधीजी, एक महात्मा की सक्षिप्त जीवनी, (हिन्दी अनुवाद) प्रकाशन विभाग, दिल्ली, १९६४

शुक्ल, रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, सवत, २०३५

शुक्ल, ललित, संपादक, मैथिलीशरण गुप्त युग और कविता, समानान्तर प्रकाशन, दिल्ली–१९८८

शुक्ल, मत्स्येन्द्र, प्रसाद जीवन और साहित्य, साहित्य लोचन, इलाहाबाद–१९७१.

सिह, दूधनाथ, आत्महन्ता आस्था निराला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१९८३

सिह, चन्द्रबली, सपादक, प्रेमचन्द एक इतिहास एक वर्तमान, कलम प्रकाशन, कलकत्ता–१९८०

श्रीवास्तव, परमानन्द, सपादक, महादेवी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद–१९७६.

स्ट्रास, लेवी, स्ट्रक्चरल एन्थ्रोपॉलजी, न्यूयार्क–१९६८

तलवार, निर्मला, सपादक, प्रसाद साहित्य प्रतिष्ठान, आगरा–१९७६

टडन, प्रेमनारायण, सपादक, माखनलाल चतुर्वेदी व्यक्तित्व एव कृतित्व, श्रीनन्दन एम०एस०सी० लखनऊ–१९७०

तनेजा, सत्येन्द्र कुमार, सपादक, नाटककार जयशकर प्रसाद, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–१९६७

टैगोर, रवीन्द्रनाथ, नेशनलिजम, रूपा, कलकत्ता–१९९२

ताराचन्द, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, खण्ड–३, ४, हिन्दी अनुवाद, प्रकाशन विभाग, दिल्ली–१९८४.

तिवारी, भोलानाथ, प्रसाद की कविता, साहित्य भवन, इलाहाबाद–१९७४

तिवारी, मजुलता, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे नारी, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ–१९७७

तिवारी, प्रदीप, स्थापित मानको को लॉघने की चुनौती, आजकल, जुलाई–१९९६

वाजपेयी, नन्द दुलारे, कवि निराला, वाणी–वितान प्रकाशन, वाराणसी–१९६५

वाजपेयी, नन्द दुलारे, जयशकर प्रसाद, लीडर प्रेस प्रयाग, सवत, २००४

वाजपेयी, नन्द दुलारे, प्रेमचन्द का साहित्यिक विवेचन, हिन्दी भवन, जालन्धर–१९५६.

वर्मा, निर्मल, ढालान से उतरते हुए, राजकमल प्रकाशन दिल्ली–१९९८

वर्मा, वी०पी० आधुनिक भारतीय राजनीतिक चितन, आगरा—१९५६

व्यास, विनोद शकर, प्रसाद और उनके समकालीन, हिन्दी साहित्य कुटीर, सवत, २०१७

ह्वाइट हेडेन, ट्रापिक्स आफ डिस्कोर्स, एसेज इन कल्चरल क्रिटिसिजम, जान हापकिस, युनिवर्सिटी प्रेस, बाल्टीमोर—१९७८

## अप्रकाशित लेख :—

कात्यायनी, निराला की राष्ट्रीय चेतना, सेमिनार १६—१९ सितम्बर—१९९७, इडियन इस्टिट्यूट आफ एडवास्टड स्टडी, शिमला.

नवल, नन्द किशोर, स्वाधीनता आन्दोलन और निराला की कविता, सेमिनार १६—१९ सितम्बर १९९७, इण्डियन इस्टिट्यूट आफ एडवास्ड स्टडी, शिमला.

वर्मा, अर्चना, निराला का अद्वैत और स्वाधीनता सघर्ष, सेमिनार १६—१९ सितम्बर १९९७, इण्डियन इस्टीट्यूट आफ एडवास्ड स्टडी, शिमला,

## पत्रिकाएँ :—

| पत्रिका का नाम | प्रकाशित स्थान |
|---|---|
| सरस्वती | इलाहाबाद |
| चॉद | इलाहाबाद |
| सम्मेलन पत्रिका | इलाहाबाद |
| हस | वाराणसी |
| नागरी प्रचारणी पत्रिका | वाराणसी |
| प्रताप | कानपुर |
| सुधा | लखनऊ |
| माधुरी | लखनऊ |
| वीणा | इन्दौर |
| विशाल भारत | कलकत्ता |